

सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला—८

आधुनिक हिंदी-काव्य में छन्द-योजना

लेखक

डॉ० पुत्तलाल शुक्ल

एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), पीएच्.डी., यू.पी.ई.एस्.



प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

५थम संस्करण ११००

मूल्य—बारह रुपये, पचास पैसे

हिन्दी संग्रह, प्रथम	
प्रकाशक	३९८९८
नराज्ञक	

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्व-विद्यालय की रजत-जयन्ती के अवसर पर बिसर्वा शुगर-फ़ैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उन्नत्कोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है, जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला' में संग्रहित होंगे। हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त

अध्यक्ष, हिन्दी तथा आधुनिक

भारतीय भाषा-विभाग,

लखनऊ-विश्वविद्यालय

अपि माषं मषं कुर्यात् छन्दोभङ्गं न कारयेत् । कस्यचित् कवेः ।

अखण्डा वंखरीधारा, मायावर्णस्तरङ्गिता ।

लयच्छन्दःसु विद्यन्ते, लयखण्डानि तानि नो ॥ लेखक ॥

छन्दोज्ञानमिदं भयाद्भूगवतो लेभे सुराणां पति—

स्तस्माद् दुश्च्यवनस्ततः सुरगुरुमण्डव्यनामा कविः ॥

माडव्यादपि सैवतस्ततः ऋषिर्यास्कस्ततः पिङ्गल—

स्तस्येदं यशसा गुरोर्भूवि धृतं प्राप्याऽस्मदाद्यैः कृतम् ॥

पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्, यादवप्रकाश टीका ।

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा ।

कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्तिस्तत्र च दुर्लभा ॥

व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र, विवेकस्तत्र दुर्लभः ।

सर्वशास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिध्यति ॥ अग्निपुराण ॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्ती कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात् साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ पाणिनीयशिक्षा ॥

अविदित्वा ऋषिं छन्दो, देवतं योगमेव च ।

योऽव्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः ॥ बृहदेवता ॥

हास्य सूक्तिः — बुभुक्षितैः व्याकरणं न भुज्यते,

पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।

नच्छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं,

हिरण्यमेवार्जय निष्फला क्रिया ॥ कस्यचित् कवेः ॥

बिन पिङ्गल छन्दर्हि रचै, बिन गीता के ज्ञान ।

बिना कोक के रति करै, सो नर पसू समान ॥ अज्ञातकवि ॥

जैसे वेद-विहीन द्विज, हीन लोक सों होय ।

त्यों ही छन्दोज्ञान बिन, कहैं सब कवि लोय ॥ छन्दोपयोनिधि ॥

कल्पना में है कसकती वेदना,

अश्रु में जीता सिसकता गान है ।

शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं,

समर्पण

परमश्रद्धेय डॉ० भगीरथ मिश्र को सादर समर्पित

साहित्ये बहुशास्त्रचिन्तनपरो मान्यो मनीषी सुधीः ।
शिष्यस्नेहघनश्च शिक्षकवरः सद्भिस्समाराधितः ॥
छन्दोमयं विभासितं मनसि मे यज्ज्ञानभास्वत्करैः ।
तस्मै मिश्रभगीरथाय गुरवे ग्रन्थोऽर्प्यते श्रद्धया ॥

विद्य रस-गङ्गा की कुशल अवतारणा से,
धन्य हुआ लोक भारती का तप-त्याग में ।
ज्ञान के भगीरथ की पुण्य साधना के साथ,
रम्य भाव-धारा बही कविता-प्रयाग में ॥
हो गया सुगम ज्ञान-पन्थ काव्य-मन्दिर का,
भासित हुआ जो भवदीय अनुराग में ।
सुरभिit होगी यह कृति भी समर्पण से,
पूज्य गुरुदेव - कर - कमल - पराग में ॥

‘चन्द्राकर’

भूमिका

पिछली शताब्दी में भारतीय जीवन में अनेक परिवर्तन हुए हैं। पाश्चात्य संस्कृति और विचारधारा के संसर्ग ने हमारे, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रों में युगान्तर उपस्थित किया। फलतः, हिन्दी-साहित्य की गतिविधि में भी परिवर्तन हुए। साहित्य के विषय, विचार, भाव-प्रकाशन-शैली और काव्य-शिल्प-विधान और मान्यताओं में भी भारी परिवर्तन उपस्थित हुए। इन परिवर्तनों में से कुछ को हम विकासोन्मुख कह सकते हैं और कुछ को ह्रासकारी। सन् १९४७ से पहले स्वतन्त्रता-आन्दोलन ने जीवन के विविध क्षेत्रों में प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं के प्रति विद्रोह और नवीनता तथा स्वच्छन्दता की चाह भर दी। इधर स्वराज्य-प्राप्ति के बाद तो हमारे जीवन में एक नई चेतना और नई स्फूर्ति आई है, जो नवीन हिन्दी-साहित्य में भी प्रस्फुटित हो रही है। आधुनिक हिन्दी-काव्य के भारतेन्दु और द्विवेदी युग उत्तम परिवर्तन के संक्रान्तिकाल थे। द्विवेदी जी के बाद के हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दता का एक प्रकार से आन्दोलन ही खड़ा हो गया। हिन्दी कवियों ने परम्परागत काव्य-कला-विधानों को बदल दिया। नये ढंग की अप्रस्तुत योजना और नये ढंग की छन्द-शैली प्रयुक्त की गई। हिन्दी की छायावादी कविता-शैली वैचित्र्य-प्रधान रही और फिर प्रगतिवादी और प्रयोगवादी शैलियाँ तो विशेष रूप से छन्दों के प्रयोग में स्वतन्त्र हो गईं। परम्परा-प्रेमी साहित्य मर्मज्ञों का यद्यपि ये स्वतन्त्र शैलियाँ नीरस प्रतीत होती रहीं और अब भी उन्हें हिन्दी के नवीन छन्दो-विधान में कवियों की उच्छृङ्खलता, अनियमितता तथा काव्यगत असोष्ठ्य ही लगता है, फिर भी इन शैलियों का ऐतिहासिक तथा सामाजिक महत्त्व है।

आधुनिक युग के साहित्य-क्षेत्र में हमने क्या प्रगति की है, विविध साहित्यांगों और उनके शिल्प-विधान में हमने क्या परिवर्तन किये हैं, ये परिवर्तन कितने लोकप्रिय और हृत्कारि हैं आदि साहित्यिक स्थिति के प्रश्न और समस्याएँ एक आवश्यकीय और महत्त्वपूर्ण अध्ययन के विषय हैं, जिनका सम्बन्ध हमारी सांस्कृतिक चेतना से भी है। इसी महती आवश्यकता को ध्यान में रखकर इस विश्वविद्यालय में अनुसंधान के लिये प्राचीन हिन्दी-साहित्य के विषयों के अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुमुखी अध्ययन विद्यार्थियों को दिये जाते रहे हैं, जिनमें से अनेक विद्यार्थियों ने अपने अध्ययन के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रस्तुत की हैं।

‘आधुनिक हिन्दी-काव्य में मुक्त छन्द’, विषय एम० ए० के निबन्ध रूप में श्री पुत्तलाल शुक्ल (अब डाक्टर पुत्तलाल शुक्ल) को दिया गया था। इसके बाद ‘आधुनिक

हिंदी काव्य में 'छन्द-योजना' विषय उन्हें पीएच. डी. निबन्ध के लिये दिया गया। जून १८६४ ई० में आचार्य जगन्नाथप्रसाद 'भानु' का 'छन्दःप्रभाकर' नामक हिन्दी का विंगल-विषयक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह एक बहुत उपयोगी और सुन्दर लक्षण-ग्रंथ हिन्दी छन्दों पर लिखा गया था। उसके बाद हिन्दी में जो पुस्तकें छन्दःशास्त्र पर निकलीं, वे बहुधा 'छन्दःप्रभाकर' के आधार पर विविध परीक्षाओं की दृष्टि से ही लिखी गईं। प्रयाग-विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल्० उपाधि के लिये स्वीकृत, लखनऊ विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक-स्वर्गीय डा० जानकीनारायण सिंह 'मनोज' का निबन्ध 'हिन्दी कवियों की छन्दःशास्त्रीय देन' (Contribution of Hindi Poets to Prosody)—रीतिकालीन हिन्दी छन्दों का एक सुन्दर ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करनेवाला ग्रन्थ है, परन्तु खड़ी बोली में जिन प्राचीन और नवीन छन्दों का प्रयोग हुआ, उनका गम्भीर अध्ययन अछूता ही पड़ा रहा। इसकी पूर्ति प्रस्तुत निबन्ध द्वारा की गई है।

डा० पुतूलाल शुक्ल के प्रस्तुत ग्रन्थ में चार अध्याय हैं और अन्त में एक परिशिष्ट भाग है। भूमिका में छन्दःशास्त्र विषय के सिद्धान्त पक्ष का विवेचन है। पृष्ठ-भूमि के स्पष्ट करने के लिए वैदिक और संस्कृत वृत्तों के विकास का विवरण भी दिया गया है। उत्तर भारत की कुछ आधुनिक भाषाओं के छन्दों के साथ भी हिन्दी-छन्दों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। ये स्थल मौलिक और रोचक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। खड़ी बोली में प्रयुक्त वृत्तों के विवेचन के बाद आधुनिक युग में प्रयुक्त प्राचीन और नवीन मात्रिक तथा मुक्त छन्दों का गम्भीर अध्ययन है। मुक्त छन्दों के नियमों को स्पष्ट करते हुए लेखक ने मूल-लयों का पहली बार पता लगाया है और उन्हीं मूल-लयों के आधार से छन्दों की निश्चित व्यवस्था की है। छन्दों के अध्ययन की यह पद्धति मौलिक है। इस अध्ययन में लेखक ने देश की सामाजिक चेतना का भी अध्ययन किया है। परिशिष्ट भाग में छन्द से सम्बन्धित विविध समस्याओं पर विचार किया गया है। इस प्रकार मेरी दृष्टि से यह ग्रंथ गम्भीर अध्ययन से पूर्ण एक उपयोगी और महत्वपूर्ण कृति है। डा० शुक्ल इस विभाग के श्रेष्ठतम विद्यार्थियों में रहे हैं। प्रस्तुत निबन्ध डा० भगीरथ मिश्र की देख-रेख में लिखा गया है और इस पर डा० शुक्ल को इस विश्वविद्यालय की पीएच्. डी० उपाधि मिली है। इस कृति के लिए लेखक तो मेरी प्रशंसा का पात्र है ही, इसके निर्देशक डा० भगीरथ मिश्र को भी मेरी बधाइयाँ हैं। लेखक के प्रति मेरी शुभकामनाएँ हैं कि उनकी लेखनी से और भी महत्त्वशाली ग्रन्थ प्रस्तुत हों।

डा० दीनदयालु गुप्त

एम० ए०, एल्एल्० बी०, डी० लिट्०,

प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष,

हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग,

लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ।

दीनदयालु गुप्त

प्रस्तावना

जीवन की भाव-तरंगों के समान छन्द की गति-तरंगें कविता की संप्राणता की द्योतक हैं। इन गतितरंगों में से कुछ तो सहज प्रत्यक्ष रहती हैं और कुछ सूक्ष्म एवं निहित। ये नियम-बद्ध होती हैं। जिस प्रकार प्रकृति की गतिविधि के अनेक नियम प्रत्यक्ष हो चुके हैं और अनेक अप्रत्यक्ष और अज्ञात हैं, उसी प्रकार छन्द की तरंगों के भी अनेक नियम ज्ञात और अनेक अज्ञात हैं। विभिन्न निश्चित गतियों और लयों के पारस्परिक सम्मिश्रण नवीन लयात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। जीवन की नूतन प्रगतियों और विकास के समान नवीन लयात्मक प्रयोग भी हमारी जीवन शक्ति के प्रमाण हैं।

जीवन की परिवर्तित परिस्थितियाँ, नव कल्पना और नव भावखंडों की सहज अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रतीक तथा नवीन छान्दसिक साँचों के निर्माण की प्रेरणा देती हैं। जनजीवन जिनका स्वागत करता है, उनका रूढ़िगत शास्त्रीयता के आधार पर विरोध, जीवन के विकास को अस्वीकार करना है। नव्य प्रयोगों को प्रचलन और प्रभाव की कसीटी पर स्वीकार करके उनके नये नियमों को ढूँढ़ना विश्लेषण-शील मस्तिष्क का कार्य है।

आधुनिक युग के नवीन प्रयोगों के रूप में आये मुक्तछन्दों का प्रारंभ में उपर्युक्त धारणा के विकसित न होने के कारण विरोध हुआ। विरोध का भाव प्रयोक्ताओं में भी कुछ था। जो प्राचीन है, वही अच्छा है, यह यदि हठधर्मी है, तो जो नतन है, वही ग्राह्य है और प्राचीन सब कूड़ा-करकट है, यह भी अनुदारता है। इस प्रकार के दोहरे विरोधों के फल-स्वरूप नवीन प्रयोगों का सुदृढ़ विकास और परम्परा का मामिक अपनाव नहीं हो पाता। यही दशा हिन्दी काव्य के अनेक प्रयोगों में रही और छन्द-संबंधी प्रयोग भी इस स्थिति के शिकार हुए। फिर भी प्रयोग चलते रहे और अब भी चल रहे हैं।

मुक्त छन्दों को कुछ लोगों ने छन्दहीनता का रूप समझा, जो नितान्त भ्रान्त धारणा थी। मुक्त छन्द अतिनियमित छन्दों से अधिक मुक्त हैं, पर है वे छन्द ही और नियमबद्ध भी। उनमें गति है, जो नियमित छन्दों की एक या अनेक लयों पर आधारित है। इस गति के नियम ढूँढ़ना जिज्ञासु का काम है और इसी काम के साथ नूतन शास्त्र का सूत्रपात या परंपरागत शास्त्र का विकास होता है। मुक्तछन्द की गति का सहज ज्ञान या संस्कार होना इस छन्द की रचना के लिए आवश्यक है और इस दृष्टि से नियमित छन्द लिखना मुक्त छन्द लिखने की अपेक्षा सरल है, क्योंकि उनमें मात्राओं या वर्णों को गिनकर हिसाब लगाया जा सकता है।

मुक्त छन्दों के विकास के अतिरिक्त आधुनिक युग में हिन्दी कवियों के द्वारा नियमित छन्दों और विशेषतः मात्रिक छन्दों में भी नवीन प्रयोग किये गये हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अन्य बातों के साथ-साथ छन्द के क्षेत्र में भी आधुनिक हिन्दी-काव्य में

अत्यधिक नूतनता और प्राचीन काव्य से काफ़ी भिन्नता दिखलाई देती है। आधुनिक कवियों के इन छान्दसिक प्रयोगों पर बँगला और अंग्रेज़ी के छन्द-विधान के स्वरूप का भी प्रभाव पड़ा है।

आधुनिक हिन्दी काव्य को पढ़ाते हुए मुझे ऐसा लगा कि इसमें परिव्याप्त उपर्युक्त सभी विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन करने वाले व्यक्ति के लिए कई बातों की अपेक्षा प्रतीत हुई। प्रथम तो उसके लिए भारतीय और विशेषतया संस्कृत छन्दशास्त्र के स्वरूप और विकास का ज्ञान हो। द्वितीय इस नवीन अध्ययन में इस परंपरागत शास्त्रीय ज्ञान का रूढ़िवादी आग्रह न हो। तृतीय उसके भीतर गति और लय का सूक्ष्म ज्ञान और संस्कार हो। साथ ही अंग्रेज़ी और कुछ भारतीय भाषाओं के छन्द-स्वरूप का भी ज्ञान हो। मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई, जब श्री पुत्तलाल शुक्ल को मैंने अपने शिष्य के रूप में पाया और उन्होंने अपने को इस अध्ययन के उपयुक्त सिद्ध किया। सब से पहले एम्. ए. के थीसिस के रूप में इन्होंने मुक्त छन्दों का अध्ययन प्रस्तुत किया और उसमें अभिनन्दनीय सफलता पायी। उसके पश्चात् पीएच्. डी. की उपाधि के लिए 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना' विषय पर अनुसन्धान किया। इसी का परिणाम प्रस्तुत ग्रंथ है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है इस विषय पर इस दृष्टि से अभी तक ऐसा ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है। इस कार्य पर इन्हें डिग्री तो सन् १९५३ में ही मिल गई थी, परन्तु मुद्रण-संबंधी कुछ कठिनाइयों और व्यवधानों के कारण यह विलंब से प्रकाशित हो पाया; यह एक खेद का विषय है।

प्रस्तुत ग्रंथ की विशेषताओं के संबंध में मेरा कुछ कहना उचित नहीं, क्योंकि यह मेरे निर्देशन में लिखा गया है और उनका विवरण एक प्रकार से आत्म-विज्ञप्ति होगी। परन्तु यह कहने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता कि डा० पुत्तलाल शुक्ल एक प्रतिभाशाली लेखक हैं। छन्दशास्त्र जैसे जटिल विषय का मर्म ग्रहण कर आधुनिक युग के नूतन छान्दसिक प्रयोगों के विश्लेषण में उसका उपयोग इनके छन्द-संस्कारों और सूक्ष्म गतिविवेक का परिचायक है। न केवल इस ग्रंथ में इन्होंने नवीन प्रयोगों का विश्लेषण किया है, वरन् मुक्त छन्दों के भीतर निहित कतिपय नियमों का अनुसंधान भी इन्हीं का काम है। फिर भी मैं यही कहूँगा कि यह तो इस दिशा में अपेक्षित कार्य का श्री-गणेश मात्र है। इसमें आये अनेक प्रसंगों पर स्वतंत्र रीति से अध्ययन प्रस्तुत किये जा सकते हैं और मुझे आशा है कि डा० पुत्तलाल शुक्ल आगे और भी अधिक गवेषणापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करते रहेंगे।

डॉ० भगीरथ मिश्र,

भगीरथ मिश्र

एम्. ए., पीएच्. डी.,

रीडर, हिन्दी-विभाग,

लखनऊ-विश्वविद्यालय,

लखनऊ

आमस

विक्रम की बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक और सामाजिक चेतना के आलीक के साथ हिन्दी-साहित्य अपूर्व जीवनी शक्ति लेकर जागरित हुआ । कविता, नाटक, उपन्यास, लेख, कहानी, आलोचना एवं अन्वेषण आदि साहित्य की विभिन्न शाखाएँ उस शक्ति से निरन्तर पल्लवित एवं समृद्ध होती गयीं । शताब्दी पूर्ण होने के पूर्व ही कविता के क्षेत्र में कई युगान्तर उपस्थित हुए और परिवेश-चेतना के अनुसार नवीन विषयों का चयन और सशक्त अभिव्यञ्जना-पद्धतियों का आविष्कार हुआ, जिनमें अभिनव छन्दोविधान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । युगधारा की प्रेरणा से उद्बुद्ध प्रतिभा-सम्पन्न अनेक कवियों ने छन्द की आन्तरिक शक्ति को हृदयङ्गम कर अनेक अभिनव छन्द-स्वरूपों का निर्माण किया, जिन्हें अब 'मुक्त छन्द' और 'स्वच्छन्द छन्द' की संज्ञा दी जाती है । छन्द के मर्म से अपरिचित होने के कारण तत्कालीन परम्परावादियों ने व्यङ्ग्य और उपहास से इनका नाम 'खर-केचुआ' छन्द रखा । इन छन्दों में परिव्याप्त लयों और नियमों का विश्लेषण न होने पर भी छन्दस्संस्कार-सम्पन्न साहित्यिक इसका अनुभव करते थे कि इन छन्दों में लयात्मकता अवश्य है । जीवन की प्राणशील चेतना अपने विकास में प्रकृति के विज्ञात और अविज्ञात नियमों का अवलम्ब लेकर ही अभिसंसरण करती है । इस विश्वास के आधार पर ही प्रत्यक्षतः दुर्विज्ञेय लगने वाले अन्तर्भूत सिद्धान्तों के समोद्घाटन में जिज्ञासा और सक्रिय विवेक की प्रवृत्ति संभव है । इसी आस्था के साथ मुक्त छन्दों का अध्ययन आरम्भ किया गया और श्रद्धेय डा० भगीरथ मिश्र के निरीक्षण में एम० ए० की परीक्षा के लिए १९५० में एक निबंध प्रस्तुत किया गया । इसके पश्चात् श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त ने आधुनिक हिन्दी-छन्दों के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन का आदेश किया, फलतः, मार्च १९५३ में यह निबन्ध पी.एच्. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया । यह छन्दशोध का कार्य, मई १९४९ से लेकर मार्च १९५३ तक, पूज्य डाक्टर भगीरथ मिश्र के विचक्षण निरीक्षण में हुआ है । उनके आशीष, प्रोत्साहन और स्नेह से, यह कार्य पूर्ण हो सका है ।

'ऋक् प्रातिशाख्य' के प्रणेता महर्षि शौनक से लेकर आधुनिक हिन्दी-युग तक सभी छन्दःशास्त्रियों ने छन्दों का गणितात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, परन्तु छन्द के सिद्धान्त पक्ष का विवेचन और उसके स्वरूप, महत्त्व, उपयोग एवं छन्द-सम्बन्धी समस्याओं की समीक्षा नहीं प्रस्तुत की गई । भारतीय छन्दःशास्त्रियों का सूत्रलक्षण-विधान और गणितमूलक विवेचन, ज्ञान के संसार में अद्वितीय है, यह सत्य छन्दोविदों में सर्वमान्य है । ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में छन्दोविषयक विभिन्न दार्शनिक धारणाएँ अवश्य मिलती हैं, पर उन्हें सैद्धान्तिक विवेचन के रूप में नहीं माना जा सकता । पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्, बृहत्संहिता, अग्निपुराण,

नाट्यशास्त्र, श्रुतबोध, सुवृत्तलिलक, छन्दोऽनुशासन, जयदेवछन्द, वृत्तिजातिसमुच्चय, वृत्तरत्नाकर, छन्दोमञ्जरी, छन्दःकौस्तुभ, वृत्तरत्नावली, वाग्वल्लभ, छन्दोऽङ्कुर, जनाश्रयी, प्राकृतपैङ्गलम्, वृत्तालङ्कार आदि संस्कृत-ग्रन्थों और छन्दविचार (चिन्तामणि त्रिपाठी), वृत्तविचार (शुकदेव मिश्र), शब्द-रसायन (देव), छन्दविलास (भाखन) वृत्तविचार (राम-सहाय), छन्दोऽर्णवपिगल (भिखारीदास), छन्दपयोनिधि (हरदेवदास), छन्दःप्रभाकर-प्रकाश (जानी विहारीलाल), छन्दमाल (लालमर्दनसिंह) छन्दरत्नमाला (रघुवरदयालु), सर्वापिगल (ज्वाला-स्वरूप) आदि हिन्दी ग्रंथों में केवल छन्दों के लक्षण और उदाहरण की ही पद्धति अपनायी गयी है। आचार्य जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने 'छन्दःप्रभाकर' के आरम्भ में कुछ विवेचन अवश्य किया है, परन्तु सिद्धान्त-पक्ष का विवेचन उसमें भी नहीं है। डा० जानकीनाथ सिंह 'मनोज' ने 'हिन्दी-कवियों की छन्दःशास्त्र को देन, (Contribution of Hindi Poets to Prosody) में यति, रस और अलंकार पर विचार किया गया है, पर आधुनिक छन्दों और समस्याओं से उसका सम्बन्ध नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम अध्याय में इस अभाव की पूर्ति के लिए सिद्धान्त-पक्ष का विवेचन किया गया है और परिशिष्ट में छन्द-सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। सिद्धान्त-पक्ष को परिपुष्ट और सर्वाङ्गीण रूप से आधुनिक बनाने के लिए वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, बँगला, मराठी, उर्दू और अंग्रेजी छन्दोग्रन्थों से विशेष सहायता ली गई है।

दूसरे अध्याय में भारतीय छन्दों का विकास, विभिन्न आर्य-भाषाओं की मूल लयों की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन और आधुनिक युग में हिन्दी में प्रयुक्त वृत्तों की विवेचना की गई है। ग्रीक-लैटिन; फारसी-उर्दू; बँगला और मराठी छन्दों की तुलनात्मक दृष्टि से विवेचना, आर्यभाषाओं के छन्दोविषयक साम्य को स्पष्ट करती है। यह दृष्टि भारत की प्रान्तीय भाषाओं को निकटतर लाने में योग प्रदान करेगी। इस अध्ययन की प्रेरणा आचार्य भानु जी द्वारा की गयी हिन्दी-उर्दू-छन्दों की लय-तुलना से प्राप्त हुई थी।

वैदिक छन्दों के विश्लेषण और विकास में 'ऋक्-प्रातिशाख्य' और 'वैदिक मीटर' (Vedic Metre) से सर्वाधिक सहायता ली गई है। ग्रीक और लैटिन की लयों के अध्ययन में 'लैटिन ग्रामर' और 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' सहायक रही है। जेन्द, छन्दों में 'दि जेन्दावेस्ता एण्ड हुज्वाराश' (The Zend Avesta and Hujvarash) और 'इन्ट्रोडक्शन टु होली गाथाज' (Introduction to Holy Gathas) से सहायता ली गई है। अरबी, फारसी और उर्दू की मूल लयों के अध्ययन में 'इल्मेउरूज', 'अमीरल उरूज' और भानु जी के छन्दःप्रभाकर और 'गुलज़ारे सखुन' से सहायता ली गई है। बँगला लयों के अध्ययन में 'रवीन्द्ररचनावली (छन्द)', 'छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ', 'बाङ्ला कवितार छन्द' और 'साहित्येर प्रसंग' से सहायता ली गई है। मराठी छन्दों में श्री पटवर्धन की 'छन्दोरचना' का उपयोग किया गया है।

निबन्ध के सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध (तीसरा और चौथा अध्याय) का विश्लेषण और

विवेचन लेखक का अपना कृतित्व है। तीसरे अध्याय के आरम्भ में मात्रिक छन्दों का विकास और छन्द के विभिन्न तत्त्वों का विवेचन है। तुकान्त के इतिहास के साथ अनुकान्त छन्द-प्रयोग का इतिहास दिया गया है। इसके पश्चात् खड़ी बोली में प्रयुक्त समस्त आधुनिक छन्दों के भेदों का विश्लेषण किया गया है। किसी युग में प्रयुक्त छन्दों का वर्गीकरण और विश्लेषण करके अभिनव छन्दोग्रन्थ की रचना लेखक के देखने में नहीं आयी। छन्दःशास्त्र के इतिहास में प्रस्तुत निबन्ध इस प्रकार का प्रथम प्रयास है। छन्द के तत्त्वों के विवेचन के बाद शास्त्रीय आधार पर निर्मित सम छन्दों का मात्राक्रम से विश्लेषण और वर्गीकरण किया गया है। साथ ही अन्य भाषाओं में प्रयुक्त समान लयों का निर्देश और प्रयोग की नवीनताओं का विवेचन किया गया है। इनमें बहुत से नवीन छन्द आये हैं, लेखक ने व्यावहारिक सुविधा के लिए उनका नामकरण कर दिया है।

आधुनिक मुद्रण-युग में नवीन लिपि-क्रम के कारण बहुत से समछन्द अर्द्धसम रूप में हो गये हैं, अतः इस वर्ग में भी विशेष वृद्धि हुई है। अर्द्धसम वर्ग के समान ही 'त्रिसम' छन्दों का नया वर्ग माना गया है। इसके बाद मिश्र छन्दों का विवरण आया है। इस वर्ग के छन्दों में दो निश्चित छन्दों का योग होता है। प्राचीन छन्द कुण्डली, छप्पय, अमृतध्वनि और हुत्लास मिश्र छन्द के वर्ग में आते हैं। उसके बाद 'नवविकर्षाधार' या नवीन निश्चित मात्रिक छन्दों का विवेचन किया गया है। यह वर्ग पूर्णतः आधुनिक युग की देन है। इसके साथ ही 'विषम विकर्षाधार' वर्ग के छन्दों का विश्लेषण किया गया है। मूल-लयों के आधार पर नवीन चरण-संख्या और चरण-विस्तार से निर्मित नवीन छन्द की इकाइयाँ छन्दस्समृद्धि की असीम संभावनाओं की सूचना देती हैं।

चौथे अध्याय के प्रारम्भ में अनुकान्त वर्णिक और मात्रिक छन्दों का विश्लेषण है। इन छन्दों को अँगरेजी में ब्लैंक वर्स (Blank Verse) कहते हैं। इसके पश्चात् युगान्तरकारी और महत्त्वपूर्ण मुक्तछन्दों या स्वच्छन्द छन्दों का पर्विक विश्लेषण करके मात्रा-क्रम से वर्गीकृत किया गया है। इन छन्दों को अँगरेजी में 'फ्री वर्स' (Free Verse) कहते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से ये छन्द विषम छन्द की कोटि में आते हैं। पर्विक विश्लेषण-पद्धति से यह न समझना चाहिये कि मुक्त छन्दों की मूललयों पर हिन्दीतर भाषा की लय का प्रभाव पड़ा है। मुक्त छन्दों का समस्त विधान हिन्दी की मूललयों के आत्मा से ही उद्भूत हुआ है। लेखक ने मुक्त छन्दों के नियम निर्दिष्ट करने वाले कुछ सूत्र भी स्मरण-सुविधा के लिए प्रस्तुत किये हैं।

प्रस्तुत निबन्ध स्वीकृत होने के लगभग पाँच वर्ष बाद प्रकाश में आ रहा है, अतः यत्र-तत्र कुछ परिवर्द्धन भी हुआ है और आधुनिकतम प्रकाशित पुस्तकों का उपयोग किया गया है। कुछ स्थानों पर उदाहरण के अभाव में लेखक ने अपने छन्द भी दे दिये हैं।

लखनऊ-विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग की प्रकाशन-समिति के सदस्यों एवं सभापति का लेखक कृतज्ञ है, जिन्होंने इस निबन्ध के प्रकाशन की व्यवस्था की।

इस ग्रन्थ के लिखने में जिन विद्वानों, सज्जनों, आत्मीयजनों, लेखकों एवं कवियों की कृतियों से सहायता मिली है, लेखक उन सबके प्रति कृतज्ञ है। विशेष रूप से डा० भगीरथ मिश्र का लेखक अत्यन्त आभारी है, जिनके पथ-प्रदर्शन और निरीक्षण में यह ग्रन्थ पूरा हुआ है। साथ ही डाक्टर दीनदयालु गुप्त का, लेखक विशेष कृतज्ञ है, जिनके स्नेह, परामर्श और प्रोत्साहन से लेखक को सतत बल मिला है।

आचार्य पं० कृष्णविहारी मिश्र, प्रो० ललिताप्रसाद शुक्ल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र और प्रो० नन्ददुलारे वाजपेयी के परामर्शों के लिए लेखक अत्यन्त कृतज्ञ है। मेरे अनुज श्री रामनारायण शुक्ल, एम० ए०, ने अनुक्रमणिका बनाने में सहायता की है, मैं उनके मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। मेरी पत्नी श्रीमती मालती शुक्ल, एम्. ए., एल्. टी., साहित्यरत्न, ने प्रूफ पढ़ने में योग दिया है, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

महाशिवरात्रि, वि० २०१४
(१६ फरवरी, १९५८)

पुत्तलाल शुक्ल

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

विषय	पृष्ठ
आधुनिक छन्दोविधान की समस्या	१—३
पूर्व परम्परा और आधुनिक छन्द	३—४
छन्दोविषयक धारणाएँ एवं परिभाषाएँ	५—१२
पश्चिमी धारणा	१२—१५
बँगला-छान्दसिक धारणा	१५—१८
मराठी छान्दसिक धारणा	१८—१९
हिन्दी छान्दसिक धारणाएँ	१८—२०
परिभाषा	२१—२४
छन्द का जन्म	२४—२७
छन्दःस्फोट	२८—३०
छन्द का महत्त्व	३१—३४
छन्द का उपयोग	३४—३७
भावच्छन्द	३७—३९
छन्द और रस	३९—५१
छन्दःशास्त्र और छन्द	५२—५४
छन्दोविषयक-शेष प्रकीर्ण विचार	५५—५७
गद्य और गद्यच्छन्द	५७—६४

द्वितीय अध्याय

छन्दों का विकास और विस्तार	६५—८२
प्रगति और छन्दस्वातन्त्र्य	८३—८६
ग्रीक छन्द	८६—१०१
जेन्द भाषा के छन्द	१०१—१०५
अरबी, फ़ारसी और उर्दू के छन्द	१०५—११४
बँगला छन्द	११५—१३१
मराठी छन्द	१३१—१४०
तामिल छन्द	१४०—१४१

विषय	पृष्ठ
<u>संस्कृत वृत्त</u>	१४२—१५२
वृत्त-विवेचन	१५२—१६१
<u>घनाक्षरी</u>	१६१—१६७
सर्वैया छन्द	१६८—१७०
अनुष्टुप्	१७०—१७२
वृत्त	१७२—१८८
वृत्त-प्रयोग की आलोचना और नवीनता	१८८—१९२

तृतीय भाग

<u>आधुनिक काव्य में मात्रिक छन्द</u>	१९३—१९५
<u>हिन्दी-छन्दों की मात्रिक परम्परा और उसका आधुनिक युग में विकास</u>	१९५—२०३
छन्द के विभिन्न तत्त्व—यति	२०३—२१३
अन्त्यानुप्रास या तुक	२१३—२२१
अन्त्यानुप्रास के क्रमायोजन	२२१—२२६
मुक्त छन्द में अन्त्यानुप्रास	२२६—२३८
अन्तरनुप्रास और अन्तर्यति	२३८—२४२
सम छन्द वर्ग	२४१—३०८
अर्द्धसम मात्रिक छन्द	३०६—३२०
त्रिसम वर्ग	३२०—३२२
मिश्र वर्ग के छन्द	३२२—३२६
प्राचीन मिश्र छन्दों का अर्वाचीन प्रयोग	३२६—३३०
नव विकर्षाधार—नवीन मात्रिक छन्द	३३१—३३१
सम विकर्षाधार	३३२—३४५
विषम विकर्षाधार	३४५—३६८
छन्दक और गीत	३५८—३७२
हिन्दी छन्दक और सम्पद	३७२—३८४
निश्चित मात्रिक छन्दों का सिंहावलोकन	३८५—३८५

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता में स्वच्छन्दता का आगमन	३८६—३८८
अतुकान्त छन्द	३८८—४०३
विषम छन्द या मुक्त छन्द	४०३—४०६
<u>मुक्त छन्द और लय</u>	४०६—४०८
मुक्तछन्द और अन्त्यानुप्रास-कला	४०८—४१२

विषय

मुक्त छन्द और लयखण्ड

वर्णिक लयाधार

अन्तमुक्त शुद्ध घनाक्षरी आधार

अक्षरमात्रिक मुक्त छन्द

मात्रिक लयाधार

छन्द की प्रवहमानता में पर्वों का योग

त्रिक पर्व

चतुष्क पर्व

पञ्चक पर्व

षष्ठक पर्व

सप्तक पर्व

अष्टक पर्व

नवक पर्व

उपसंहरण

पृष्ठ

४१२—४१३

४१३—४२०

४२०—४२३

४२३—४३८

४३८—४४२

४४२—४४२

४४२—४४२

४४३—४४३

४४३—४४५

४४५—४५३

४५३—४६०

४६०—४६६

४६६—४७०

४७१—४७२

परिशिष्ट

छन्द-पाठ

छन्द और गायन

छन्दःशास्त्र की सीमाएँ

छान्दसिक आनन्द

छन्द और संस्कार

छन्द और ताल

४७३—४७५

४७५—४७६

४७६—४८१

४८१—४८३

४८३—४९०

४९०—५०६

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

आधुनिक छन्दोविधान की समस्या

आधुनिक हिन्दी काव्य में नवीन छन्दो-योजना साहित्य के क्षेत्र में युगान्तरकारिणी घटना के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। इस अभिनव सृष्टि की उषा के आलोक की समसामयिक साहित्य के चिन्तकों, मर्मज्ञों और रसिकों ने विभिन्न दृष्टियों से देखा। परम्परावादियों की दृष्टि में आशंका थी, सचेष्ट जिज्ञासुओं की दृष्टि में कीतूहल और आधुनिक चेतना-सम्पन्न तर्कों की दृष्टि में अभिनन्दन का उल्लास था। वह युग-पराधीन भारत की स्वाधीन भावना के उद्बोधन और क्रियमाण प्रयत्नों की अदम्य हिलोरी से पूरित हो रहा था। नवीन चेतनाओं और धाराओं ने इस युग के कवियों की प्रतिभा को नवीन भावों और विषयों का दान किया।

विक्रम की बीसवीं शताब्दी के दीप्त मध्याह्न की आन्दोलित युग-चेतना में खड़ी बोली कविता का जन्म हुआ। भक्ति की द्रवित आत्मनिवेदना और जीवन के केलि-विनास की सरस शृंगारधारा उद्बुद्ध राष्ट्रीय भावावेग के प्लावन में तिरोभूत हो रही थी, और पदों, कवित्तों एवं सवैयाओं के प्राचीन भाव-वाहन अनुपयोगी सिद्ध हो रहे थे। क्रान्तिकाम सरस्वती के उपासक कवि, जन-जीवन के जागरण और दिशानिर्देश एवं स्थिति-विवेक को प्रचारित करने के लिये सरल-आहिणी भाषा में ओजमय छन्दोविधान का वेग देकर समाज की मानसिक भूमिका में युग-निर्माण करने को सन्नद्ध हो चुके थे। खड़ी बोली की विश्लेषणात्मक प्रकृति के अनुसार मात्रा-छन्दों का अधिकांश प्रयोग हुआ। इनमें से कुछ छन्दों का प्रयोग वीरयुग और भक्तियुग में विशेष रूप से हो चुका था और कुछ छन्द-छन्दःशास्त्रियों के विवेचन के विषय भी रह चुके थे, पर उनका विशद प्रयोग नहीं हुआ था। नवीन भाषा और नवीन विषयों में प्रयुक्त होने के कारण मूल प्रकृति में विशेष परिवर्तन न होते हुए भी बाह्यतः स्पष्ट नवीनता दृष्टिगोचर होने लगी। इन छन्दों का मात्राक्रम, यति, स्वरायोजन और गति में पहले की अपेक्षा भिन्नता आ गई, जैसे अभिनव वातावरण और परिस्थिति में व्यवित का सहज व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। इस युग में नवीन सामाजिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये कुछ नायकों का चरितार्थन कलात्मक प्रयोगों के साथ किया गया, जिसमें संस्कृत के वर्णवृत्तों को नवीन भूमि पर पुनः अवतरित

किया गया, परन्तु खड़ी बोली की असामासिक शब्दयोजना, सन्धिमुक्त प्रत्ययप्रवाह, विशृङ्खलित क्रियापद और स्वतन्त्र कारक-संगुम्फित-वृत्तयोजना अखण्ड संगीत के निर्माण में बाधक बनी; फलतः ये प्रयोग जनता में स्वीकृत न हुये, यद्यपि खड़ी बोली के निर्दोष शुद्ध उच्चारण से सहायता भी मिलती रही।

मात्राछन्दों की प्रकृति से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के पश्चात् कवियों ने यथावसर विभिन्न चरणसंयोजनों से नवीन छन्दों की सृष्टि की। ऐसे छन्दों के चरणों की संख्या और क्रम कवि द्वारा पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार अव्याहत रूप से चलता था। स्फुट कविताओं, गानों और गीतिमुक्तकों में ऐसे प्रयोग बहुत हुए हैं। यद्यपि इन छन्दों का शास्त्रीय विश्लेषण किसी आचार्य या कवि ने नहीं किया, तथापि लेखनशैली, पद्ययोजना और ध्वनिआवर्तन के आधार पर साहित्य के सामान्य विद्यार्थी को भी इस बात पर विश्वास करने में कठिनाई नहीं होती थी कि इनमें भी लय और यति-सम्पन्न छन्दोविधान है।

विकास की दूसरी स्थिति में मात्राछन्द ने अन्तमुक्त स्वरूप ग्रहण किया, और उसकी लय अखंड गति से चलने लगी। इन्हें पदान्तरप्रवाही छन्द कहते हैं। ऐसी कविता के चरण निश्चित मात्राओं के और निश्चित लय के होते हैं, परन्तु भाषा के अखंड वाक्य-प्रवाह में लय भी अप्रतिहत स्वरूप धारण करती है। इसमें भाव की पूर्णता पर छन्द विराम लेता है, अतः इसे 'भावछन्द' (verse paragraph) कहते हैं।

इस छन्द की चरण-संख्या अनिश्चित होती है, पर लय सर्वत्र निश्चित होती है। इस परस्परा-विघटन, विकास, अथवा नूतनता को भी शिक्षित समाज ने येन केन प्रकारेण स्वीकार कर लिया, क्योंकि चरणविस्तार की समानता ने प्राचीन संस्कारों को बहुत कुछ आश्वासन दिया। इस स्थिति को जनता ने बुद्धि से स्वीकार किया, हृदय से नहीं, परन्तु विकसित अभिरुचि और परिष्कृत छन्दसंस्कार के प्राचीन कवियों को इन छन्दों की अन्तरात्मा के दर्शन में कोई कठिनाई नहीं हुई। अन्त्यानुप्रास के अनन्य उपासक श्री मैथिलीशरण गुप्त ने

१. भावछन्द में जितने चरणों में एक भाव-पूर होता है, उतने ही चरणों का एक छन्द मान लिया जाता है। विशेष विवरण के लिए अनुक्रान्त पदान्तर प्रवाही वर्ग के छन्द देखिए। श्री मोहितलाल मजूमदार ने 'बाङ्ला कवितार छन्द', पृ. १७५ में verse paragraph के लिए 'भावछन्द' का प्रयोग किया है, यद्यपि पृ. १४४ पर 'छन्दसंज्ञ', 'पदबन्ध' और 'दीर्घछन्द' पर्यायों का भी प्रयोग किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में पठित 'गद्यछन्द' लेख में (रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, पृ. ३१२) एक भाव के व्यञ्जक पदविस्तार के लिए 'भावछन्द' शब्द का प्रयोग किया है। श्री प्रबोधचन्द्र सेन ने मधुसूदन दत्त के 'अमिल प्रबुधमान पयार' के लिए 'छन्दपंक्ति' (छन्दोगुप्त रवीन्द्रनाथ, पृ. १०७) का प्रयोग किया है। लेखक ने 'भावछन्द' शब्द को सर्वाधिक व्यञ्जक और सार्थक मान कर प्रयुक्त किया है। ले०

वर्णिकछन्द के आधार पर अनुकान्त छन्द का अत्यन्त सुन्दर और अभिनन्दनीय प्रयोग किया। परन्तु, इसके पश्चात् जो विकास की स्थिति आई, उसे देख कर बड़े-बड़े विद्वान्, रससिद्ध कवि और जीवन्त साहित्यालोचक भी चकित और विचलित हो उठे। ऐसा स्वाभाविक ही था, क्योंकि ये छन्द प्राचीन रुढ़ियुद्ध नियमों के अन्तर्गत नहीं आते हैं। इस नवीन छन्द-शैली के आगमन से एक बहुत बड़े परिवर्तन का अनुभव किया गया। इन छन्दों के प्रयोग के लिए छन्द-संगीत का गंभीर संस्कार अपेक्षित है, क्योंकि प्राचीन निश्चित नियम न होते हुए भी इन छन्दों में लय अनिवार्यतः अपेक्षित है। इन छन्दों को प्राचीन छन्दों का ही एक विकसित रूप माना जा सकता है। इन्हीं मुक्त छन्दों का शास्त्रीय विश्लेषण, विवेचन, वर्गीकरण एवं नियम निश्चित करना ही इस प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है। परन्तु, हिन्दी काव्य में प्रयुक्त छन्दों के संपूर्ण अध्ययन के लिए, इस युग में प्रयुक्त निश्चित और मिश्रित छन्दों का भी विश्लेषण, विवेचन और तुलनात्मक अध्ययन उसी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

समस्त भारतीय छन्दःशास्त्र के ग्रन्थों में केवल छन्दों के नाम और उनके उदाहरण ही प्राप्त हैं; उनके विभिन्न अंगों की विस्तृत विवेचना एवं तद्गत विभिन्न सिद्धांतों की स्थापना संस्कृत और हिन्दी साहित्य में नहीं हुई है। यह प्रबन्ध इसी अभाव की पूर्ति का एक प्रयास है। छन्दों के विश्लेषण और वर्गीकरण के पूर्व प्रस्तुत अध्ययन में सहायक सिद्धांत-पक्ष का भी विवेचन किया गया है। बिना सिद्धांत-पक्ष के समझे छन्दों का मर्म नहीं समझा जा सकता। इस विषय में हिन्दी का कोई दूसरा ग्रन्थ सहायता के लिए निर्दिष्ट भी नहीं किया जा सकता, अतः सिद्धांत-पक्ष का विस्तृत विवेचन अत्यन्त आवश्यक था। आधुनिक युग के काव्य में प्रयुक्त छन्दों के पूर्ण विश्लेषण और विवेचन के लिये, आधारभूत प्राचीन भारतीय छन्दःशास्त्र के स्वरूप और छन्द के तत्त्वों का संक्षिप्त विश्लेषण भी देना आवश्यक समझा गया, जो प्रस्तुत विषय के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा।

पूर्व परम्परा और आधुनिक छन्द

आधुनिक हिन्दी-छन्द विशाल भारतीय छन्द-परम्परा के विकसित परिणाम है। वर्तमान युग के विविध छन्दोविधान में प्रत्येक पूर्ववर्ती युग के छन्दों के तत्त्व विद्यमान हैं। पूर्वकालीन आर्यभाषाओं की विभिन्न छन्द-परम्पराओं के प्रसन्न समन्वय और समावेश के कारण आधुनिक छन्दों की समृद्धि और शक्ति पूर्ववर्ती भाषाओं से अधिक है। हर एक युग में छन्दों की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है, परन्तु उसमें कालक्रम से परिवर्तन एवं विकास भी होता रहा है। छन्द के इस विकास-क्रम में समाज की छन्दगत धारणा, उसके उपयोग और महत्त्व के भाव विशेष सहायता प्रदान करते रहे हैं। छन्द के जन्म की भावना भी छन्दोविषयक रमणीय कल्पना है। छन्दपाठ की कला उसके सामाजिक उपयोग की रमणीय पद्धति है। इन सभी सम्बद्ध प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए आधुनिक छन्दों के

अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त सहायक सत्त्वों की धारणा के विकास और योगदान का ऐतिहासिक क्रम से सिंहावलोकन कर लिया जाय और इसके साथ ही साथ छन्द की वर्तमानयुगीन चेतना से प्रान्तीय भाषाओं और अंगरेजी भाषा की धारणाओं का भी तुलनात्मक निर्देश किया जाय, क्योंकि इनके सम्पर्क से भी समय समय पर छन्दो-विषयक नवीन दृष्टिकोण बनाने में सहायता मिलती रही है। इसीलिए प्रकृत विषय के अध्ययन और विवेचन के पहले क्रमशः इन सभी विषयों का ऐतिहासिक विकासक्रम के अनुसार विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

छन्द का अर्थ : महर्षि पाणिनि के अनुसार छन्द का अर्थ आह्लादन है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'चदि'^१ धातु से सिद्ध होती है।

“चदेरादेश्च छः” (उणादि कोष) सूत्र से ‘च’ अक्षर ‘छ’ में परिवर्तित हो जाता है और ‘चन्दति’ का रूप ‘छन्दति’ बन जाता है, अतः जो हर्ष और दीप्ति प्रदान करता है, वह छन्द है।^२ इस शब्द की दूसरी व्याख्या ‘छदि संवरणे’ धातु से होती है, जिसका अर्थ है, आच्छादन करना। यास्क ने निरुक्त में यही अर्थ स्वीकार किया है।^३ छन्द के आच्छादन अर्थ से सम्बद्ध छान्दोग्योपनिषद् में अत्यन्त रमणीक एवं प्रतीकात्मक घटना का वर्णन आया है, जिसमें देवताओं ने मृत्युभय से बचने के लिए अपने को मन्त्रों से आच्छादित किया था, इसी कारण उनका नाम छन्द पड़ गया।^४ इसका वैज्ञानिक अर्थ यह है कि छन्द में जो बात कही जाती है, उसे समाज अधिक समय तक ग्रहण किए रहता है। दिव्य एवं “सत्” तत्त्व (देव सम्बन्धी), ‘असत्’ (असंगलकारी, आसुरी) परिस्थितियों में भी अपना प्रकाश प्रदान करते हैं, यदि उन्हें छन्द के द्वारा साहित्यिक रूप प्रदान कर दिया गया है। इसीलिए यह कहा गया कि छन्द के आश्रय से देवों की अमरता निश्चित हो गई।

पहली व्युत्पत्ति छन्द की आत्मा से सम्बन्ध रखती है, क्योंकि छन्द का आह्लादक गुण रस-सिद्धांत से सम्बन्ध रखता है। रस ही काव्य की आत्मा है। दूसरी व्युत्पत्ति छन्द के रूप को स्पष्ट करती है। इस व्याख्या का कला से सम्बन्ध है। ये दोनों व्याख्याएँ मिलकर छन्द के जीवन्त स्वरूप को स्पष्ट करती हैं, परन्तु पहली व्युत्पत्ति अपेक्षाकृत अधिक अभिनन्दनीय है।

१. चदि आह्लादनें वीप्ती च । पाणिनीय धातुपाठ, भ्वाविगण ।

२. चन्दति हृष्यति एन वीप्सते वा तच्छन्दः :—पाणिनि मुनि ।

३. मन्त्रः मननात् छन्वांसि छादनात् । यास्ककृत निरुक्त, देवतकांड (७।१२)

४. वेदा ये मृत्योर्विभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशन् । से छन्दोभिरच्छादयन् ।

यथेभिरच्छादय ॐ स्तंछन्वांसं छन्दस्त्वम् । छान्दोग्य उपनिषद्, प्रपाठक १ कण्ड ४ । प्रपाठक २ ।

छन्दोविषयक धारणाएँ एवं परिभाषाएँ

ऋग्वेद के प्रारम्भिक युग में छन्द का अर्थ स्तोत्र था। इसी अर्थ को निदिष्ट करके यास्क ने अपने निरुक्त में छन्द को स्तोत्र का पर्याय माना है।^१ ये मन्त्र श्रोताओं पर सम्मोहन, आकर्षण एवं आह्लादन का प्रभाव डालते थे, इसीलिए चन्द धातु (आह्लादन) से छन्द शब्द का उद्भव माना गया था। ऋग्वेद के परवर्ती काल में छन्द समूह को ही वेद माना गया, इसीलिए इस शब्द का प्रयोग बहुवचन 'छन्दांसि' में भी हुआ है, जिसका अर्थ वेदत्रयी (ऋक्, साम, यजु) से लिया जाता था। कई सहस्र वर्ष पीछे श्री शंकराचार्य और रामानुजाचार्य ने "छन्दांसि" का यही अर्थ लगाया था।^२ इसका कारण यह है कि वेद में छन्दों का समूह होता है, अतः वैदिक काल में ही छन्द और वेद पर्याय माने जाने लगे थे। दूसरा कारण यह है कि वैदिक युग में वेद से इतर कोई साहित्य ही न था, जिससे छन्द का दूसरा अर्थ लगाया जाता। परवर्ती काल के भाष्यकारों को भी अशोष्ट अर्थ की व्याख्या के लिए छन्द का रुढ़िगत अर्थ ही मानना पड़ा। अथर्ववेद के कौतूहलपूर्ण वर्णनों के लिए भी मूल आह्लादक अर्थ में छन्द शब्द प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद में एक जगह 'बृहच्छन्दस्' शब्द आवरण के अर्थ में छत की व्यंजना करता है।^३ 'ऋक् प्रातिशाख्य' के युग में छन्दःशास्त्र का विशद और गम्भीर विवेचन हो चुका है। 'ऋक् प्रातिशाख्य' के १५, १६, १७, १८ पातालों में समस्त वैदिक छन्दों का विश्लेषण और वर्गीकरण बड़े सुचारु रूप से हुआ है। एकाक्षर छन्द^४ से लेकर गायत्री (२४ वर्ण); उष्णिक् (२८); अनुष्टुप् (३२); बृहती (३६); पङ्क्ति (४०); त्रिष्टुप् (४४); जगती (४८) छन्द तथा अतिजगती (५२); शक्वरी (५६); अतिशक्वरी (६०);

१—रेमः जरिता कारः नवः स्तामः कीरिः गीः सूरिः नावः

छन्दः स्तुप् रुद्रः कृपण्युरिति त्रयोदशस्तोत्रनामानि । निघण्टु ३, १६ ।

२—ऊर्ध्वमूलमथः शाखामश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् । गीता, अ. १५, श्लोक १ ।

छन्दांसि छादनात् ऋग्यजुःसामलक्षणानि यस्य संसारवृक्षस्य पर्णानि इव पर्णानि । शांकरभाष्य ।

अश्वत्थस्य छन्दांसि पर्णानि आहुः, छन्दांसि श्रुतयः । रामानुजभाष्य ।

B. Chandas occurs in one passage of the Atharvaveda in the adjectival compound "Brihaachhandas" which is used of a house and must mean having a large roof, Vedio Index Vol. I P. 267, By Macdonel and Keith.

४—एकाक्षरं छन्दो वेदीगायत्रीति संज्ञायते । पिंगलछन्दःसूत्रम्,

अ० २, सूत्र ३, हलायुध टीका ।

अष्टि (६४); अत्यष्टि (६८); धृति (७२); अतिधृति (७६); कृति (८०); प्रकृति (८४); आकृति (८८); विकृति (९२); संकृति (९६); अधिकृति (१००); और उत्कृति (१०४) वर्णों तक अतिच्छन्दों का उदाहरण सहित विवेचन है । इनके नाना प्रमेदों में कुल ६१ छन्दों और १४ अतिछन्दों का विश्वलेखण है । मिश्रित छन्दों में २४ प्रगाथा भेदों के भी उदाहरण हैं, जिनमें ५ चरणों से लेकर ६ चरणों तक का विधान है: — बार्हत प्रगाथा (८, ८, १२, ८ । १२, ८, १२, ८) से लेकर त्रैष्टुभ प्रगाथा (११, ११, ११, ११ । १२, १२, १२, १२ वर्ण) तक विभिन्न भेद । छन्दःशास्त्र के सिद्धांत एवं व्यवहार पक्ष का इतना सांगोपांग वर्णन, प्राप्त संस्कृत बाङ्मय के किसी छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ में नहीं हुआ । इसका अध्ययन करके छन्दःशास्त्र के विद्यार्थी को आह्लादपूर्ण आश्चर्य होता है । 'ऋक् प्रातिशाख्य' के प्रणेता महर्षि शौनक के पहले भी छन्दःशास्त्र के विज्ञ ऋषियों की एक परम्परा रही होगी । शौनक सुभेषज^१ नाम के छन्दोविद् ऋषि का एक बार नाम लेते हैं और अन्य स्थानों पर "किन्हीं-किन्हीं"^२ का मत कहकर अपवादों का विवरण देते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में सैकड़ों बार 'छन्द' शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । इस ब्राह्मण ग्रन्थ की धारणा अधिक स्थानों पर प्रायः साहित्यिक ही है ।^३ इसके बिलखे विवरणों से वैदिक छन्दों पर एक ग्रन्थ का निर्माण हो सकता है, जैसा कि टिप्पणी के एक उदाहरण से आभासित होता है ।^४ इसके अतिरिक्त शतपथ में प्रकृति के विभिन्न रूपों और तत्त्वों के लिए भी छन्द शब्द का प्रयोग हुआ है । इस दृष्टि से संसार के विभिन्न जीवों, पादपों, पर्वतों, सरिताओं आदि का भी छन्दोमय रूपा है । स्थूल रूप के अतिरिक्त प्रजापति, दिशा,

१—ऋषि सुभेषज न कृति छन्दः ८० वर्ण) से लेकर उत्कृति (१०४ वर्ण) तक सात छन्दों का विश्वलेखण किया है ।

उत्तरास्तु सुभेषज । ५५ ।

कृतिः प्रकृतिराकृतिः कृतिः संकृतिस्तथा ।

षष्ठी चाभिकृतिर्नाम सप्तभ्युत्कृतिरुच्यते । ५६ ।

अशीतिश्चतुरशीतिरष्टाशीतिर्द्विन्वतिः ।

षण्णवतिः शतं पूर्णमुत्तमा तु चतुःशतम् । ५७ । पाताल १६, ऋक् प्रा० ।

२—अष्टकौ मध्यमः षट्कएकेषामुपदिश्यते । १७ । पाताल १६, धृति ।

३—रसो वै छन्दोऽसि । शतपथब्राह्मण (७, ३, १, ३७)

४—अष्टाक्षरा वै गायत्री गायत्रमग्नेश्छन्दः स्येनेवेनमेतच्छन्दसायते तानि सर्वाणि चतुर्विंशतिकपालानि सम्पद्यन्ते चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री गायत्रमग्नेश्छन्दः ।

(२, २, १, १७) शा० प्रा० ।

मन, प्राण, अन्तरिक्ष आदि नाना रूपों को भी छन्द माना गया है ।^१ आच्छादान के अर्थ में छन्द के इतने प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

सामवेद ताण्ड्यब्राह्मण में इन्द्र आत्मा के ऊपर रजोमय शरीर और इन्द्रियाँ छन्द के रूप में मानी गयी हैं ।^२ कौशीतकी ब्राह्मण में आत्मा पर प्राणों के आवरण को छन्द माना गया है ।^३ ऐतरेय उपनिषद् में प्रजापति ब्रह्म के अंगों के तुल्य विशाल संसार एक छन्दः पुंज है ।^४

छन्द की यह दार्शनिक व्याख्या सांख्य की प्रकृति और वेदान्त की माया के तुल्य ही जगत् के प्रति एक साहित्यिक दृष्टिकोण है । इसी बाणी (वाक्) से विश्व का विकास होता है, अतः छन्द समस्त विश्वरस का पर्याप्त है । वाक् (छन्द) की ऋक्, यजु और साम शक्तियों से ब्रह्म आच्छन्न है, अतः उससे उत्पन्न अन्तरिक्ष, भू, नक्षत्र, पशु, अन्न, मृग, प्राण आदि छन्दों के रूप हैं^५ । विश्व के इन स्वल्प छन्दों को अन्तर्भूत करने की क्षमता के कारण मूल छन्द (ब्रह्म) को 'प्रतिच्छन्द' या 'छदिच्छन्द' (जिसका प्रयोग शं० ब्रा० के

१. क—प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा सर्वयोऽभवत् परमेष्ठी छन्दइत्यापेवैप्रजापतिः परमेष्ठी ताहि परमे स्थाने तिष्ठन्ति प्रजापतिरेव परमेष्ठी छन्दोऽभवत्

—(८, २, ३, १३) शं० ब्रा०

ख—प्रथमाहाय वयोऽथ छन्दो वयसा च हचनां छन्दसा । —(८, २, ४, १६) वही ।

ग—पशवो वै छन्दांस्पन्नं पशवस्तान्यस्माऽअच्छन्दयस्तानि यदस्माऽअच्छन्दयस्तस्माच्छन्दांसि । (८, ५, २, १) वही ।

घ दिशो वै परिभूश्छन्द आच्छछन्द इत्यन्नंवा वाऽअच्छछन्दो मनश्छन्द इति प्रजापतिर्वै मनुश्छन्दो.... । (८, ५, २, ३) शं० ब्रा० ।

ङ—प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्द इति मनो वै समुद्रश्छन्दः ।

—८, ५, २, ४ । शं० ब्रा० ।

च—विशालं छन्द इत्ययं वै लेको विशालं छन्दश्छदिच्छन्द इत्यन्तरिक्षं ते छदिच्छन्दो दूरारोहणं छन्द इत्यसौ वाऽआदित्यो दूरारोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्द इति ।

—(८, ५, २, ६) शं० ब्रा० ।

२—इन्द्रियं वीर्यं छन्दांसि । —सामवेद, ताण्ड्य ब्राह्मण (६, ६, २६) ।

३—प्राणाः वै छन्दांसि । —कौशीतकी ब्राह्मण (७, ६ । ११, ८ । १७, २) ।

४—प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांसि । - ऐतरेय उ० २ । १८ ।

५—इसका अर्थ यह है कि छन्द उस वाक् विराज का नाम है, जो सांख्य की प्रकृति या वेदान्त की माया के समकक्ष है । सारा विश्व इसी से विकसित होता है, अतः छन्द सारे विश्व का रूप है, वह एक सूत्र है, जिसमें सारा नामरूपात्मक जगत् बँधा हुआ है, छन्द आत्मा या प्रजापति को आवृत्त कर लेता है और उससे आवृत्त आत्मा अतिरूप

पिछले उद्धारणों में हुआ है) कहते हैं । 'अतिच्छन्द' को तुरीयावस्था या पूर्ण अवैत कहा जा सकता है, इसे प्राप्त कर स्वल्प छन्द प्राप्त प्राप्तकाम हो जाता है । मूल छन्द विश्व के अनेक द्वन्दों में व्याप्त होकर 'छन्दोमा' कहलाता है । यह 'छन्दोमा' (आत्मा) ही विभिन्न छन्दों (व्यक्तिरूपों) को प्रकाशित करता है, फलतः उसके नाना देवकर्मा से विश्व-यज्ञ चल रहा है । आत्मा कर्ता ही शरीरों (छन्दों) के द्वारा कर्म सम्पादन करता है और उसी आत्मा की वाणी ही ऋषित्वपद प्राप्त करती है ।^१ छान्दसिक दृष्टि से ब्रह्मा, प्रकृति और जीव की यही व्याख्या है ।

छन्द का एक अर्थ कामना या आकांक्षा भी है । ऋग्वेद के दशम मंडल में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है ।

स्तोमः आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्दः श्रोपशः ।

सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ।^२ (सू० ८५, अनु० ७) ।

वाल्मीकि रामायण में सहसा वाल्मीकि के मुख से 'पादबद्धोक्षरसमं, तन्त्रीलव-समन्वितः' श्लोक निकलने पर ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा, 'मच्छन्दादेव से ब्रह्मन् प्रवृत्तय सरस्वती' अर्थात् मेरी इच्छा से ही सरस्वती आपकी वाणी में प्रवृत्त हुई है । चाणक्य ने भी छन्द का अर्थ इच्छा माना है ।^३

कहलाता है । विराज वाक् की जिन तीन शक्तियों, ऋक्, यजु, और साम का उल्लेख हो चुका है, वे सब छन्द में होने से, उससे आचक्षुष पुरुष उन समयसे युक्त कहा जाता है ।

'स उ एवंष ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयो वराजः पुरुषः

एष वै छन्दस्य साममयः प्रथमोऽक्षन् वराजः पुरुषो योऽन्नमसृजत'

मूल छन्द से ही उत्पन्न होनेवाले सारे देव, विशाणू, पशु, अश्व, पृथिवी, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, वर्ष आदि विश्व के नानारूप भी छन्द कहलाते हैं ।

— वैदिक वर्णन, (पृ० १८२, १८३)

'छन्द और छन्दोमा', डॉ० फतेहसिंह ।

१ — वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिर्वाचा हीवं सर्वं कृतम् ।—शतपथब्राह्मण (८, १, २, ६)

२—(सूर्यायाः) : पति के साथ जाती हुई उषा के तुल्य नववधू (स्तोमाः) के प्रति उत्तम गुण एवं स्तुत्य वचन हो (प्रतिधयः) लोग आवरार्थ प्रस्तुत करें और (छन्द) उसकी मनोकामना से (कुरीरं श्रोपशः) पतिसंगशयन और मंथन धर्म से सन्तान उत्पन्न (आसीत्) हो । (अश्विना) दोनों भोग्यभोक्ता रूप में परस्पर व्याप्त होकर (वरा) एक दूसरे का वरण करें और उसके (पुरोगव) समक्ष वाणी प्रकट करने वाला नायक (अग्नि) अग्नि को साक्षी करके अग्रणी बनें ।

३—यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनो ।

विभवे यश्व सन्तुष्टस्तस्य स्वर्ग इहेव हि । ३ ।

—चाणक्य नीति (द्वि० अ०, ३)

छन्दःशास्त्रीय दृष्टि से भी ऋग्वेद के अन्तिम समय तक छन्द का विषय एक शास्त्र के रूप में स्वीकृत हो चुका था और निश्चित प्रमाण के छन्दों को निश्चित संज्ञाएँ दी जा चुकी थीं ।^१ इस समय अक्षरगणना के आधार पर ही छन्द का निर्णय होता था, चरण या वृत्त (विशेष क्रम-निश्चित स्वरलहरी) को छन्दों के निर्णय में गौण स्थान दिया जाता था ।^२

मुंडकोपनिषद् में अपरा विद्याओं के महत्त्व को निष्प्रयोजन बताते हुए अंगिरा ने शौनक से वेद के षडंगों में छन्दःशास्त्र को भी गिनाया है । शौनक छन्दःशास्त्र के साथ अन्य वेदांगों के भी पंडित थे । उन्होंने अन्य विषयों से विमुख होकर अक्षरतत्त्व को अधिगमित करने के लिए छन्द के अध्ययन में ही अपनी शक्ति लगायी ।^३

पाणिनीयशिक्षा में वेदज्ञान की पूर्ण पुरुष के रूप में कल्पना की गयी है । छन्द उस पुरुष के चरण हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नासिका है और मुख व्याकरण है ।^४

श्रीमतिपिंगलाचार्य विरचित "पिंगलछन्दःसूत्रम्" की हलायुध भट्ट कृत टीका में छन्द को अक्षरसंख्या का परिमाण माना गया है ।^५ अक्षरप्रधान लक्षण वैदिक छन्दों के विश्लेषण के लिए बहुत समीचीन परिभाषा है । "अत्र" अव्यय के प्रयोग से छन्द की अन्य धारणाओं का वर्जन और भी अधिक वैज्ञानिक हो गया है, परन्तु वैदिक साहित्येतर छन्दों में यह परिभाषा निरर्थक हो जाती है, क्योंकि वृत्तों के साथ साथ वैदिक अनुष्टुप् छन्द से विकसित बाल्मीकि का अनुष्टुप् भी अक्षरसंख्या के अतिरिक्त कुछ अन्य नियमों से युक्त

(जिसका पुत्र अपने वश में है, स्त्री आज्ञाकारिणी है और जो प्राप्तधन से संतुष्ट है, उसके लिए यहाँ ही स्वर्ग है)

१—एवं बलूतप्रमाणानां छन्दसामुपदिश्यते । ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १७, छ० १ ।

२—अक्षराण्येव सर्वत्र, निमित्तं बलवत्तरम् । विद्याद्विप्रतिपन्नानां पादवृत्ताक्षरैर्ऋचाम् ।

—ऋ० प्रा०, पाताल १७, छ० १३ ।

३—तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामिति । अथ परा यया त्वक्षरमधिगम्यते ।

—(मुंडक० १, खंड १, प्रवाक् ५)

४—छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात् सांगमधोत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥ पाणिनीयशिक्षायाम् ।

५—छन्दः शब्देनाक्षरसंख्यावच्छन्दोऽत्रामिधीयते ।

—पिंगलछन्दःसूत्रम् द्वितीयोऽध्याय, कारिका १ ।

है ।^१ मध्यकाल में रचित ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका में भी वैदिक छन्द की 'अक्षरपरिमाण' परिभाषा मानी गयी है ।^२

वाल्मीकि रामायण में श्लोक के लक्षण के सम्बन्ध में यह भाव है कि जिसके चरण समान अक्षर के हों और जो तन्त्री की लय से युक्त हों ।^३ इस परिभाषा का पहला भाग अनुष्टुप् के अतिरिक्त कुछ छन्दों और समस्त वृत्तों पर लागू होता है, परन्तु दूसरा लक्षण 'तन्त्रीलयसमन्वितः' इतना विस्तृत एवं वैज्ञानिक है कि संसार की सभी भाषाओं के समस्त युगों के निखिल छन्दों पर लागू हो सकता है । लय ही प्रत्येक छन्द का प्राण है । तन्त्री स्वर और लय प्रधान होती है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक छन्द आ जाता है ।

साहित्य-दर्पण में छन्दोबद्ध पद को पद्य कहा गया है ।^४ 'छन्दोबद्ध' का अर्थ, छन्द-शास्त्र में कथित छन्द लक्षणों से युक्त, लगाने से परिभाषा पूर्ण होती है, अन्यथा पर्याय-दोष आ जाता है, क्योंकि संस्कृत में छन्द और पद्य बहुत सीमा तक समानार्थक ही हैं ।

नाट्यशास्त्र में छन्द को नानार्थसंयुक्त, चारपद और वर्णों से विभूषित वृत्त (विशेष अक्षर-क्रम) बताया गया है ।^५ दूसरी परिभाषा में नियत अक्षरों से युक्त, छन्दोयति से समन्वित और ताल के अवरोह से युक्त पद कहा गया है ।^६ पहली परिभाषा में 'वृत्त', शब्द और दूसरी में 'सताल' शब्द आ जाने से परिभाषाएँ अपने में पूर्ण हो जाती हैं । नाट्यशास्त्र में कुछ छन्द-सिद्धांत की पवित्रता भी आयी है जैसे 'न कोई शब्द छन्दहीन है और न कोई छन्द शब्दहीन ।'^७ प्रत्येक शब्द में छन्द की देखना वैदिक धारणा है, परन्तु दूसरा वाक्यांश जीवन में छन्द के महत्त्व का उपयोग और गौरव स्पष्ट करता है और अर्थसंपन्नता को स्वीकार करने के कारण संगीत से छन्द की सत्ता स्पष्ट प्रतीत होने

१—श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्रलघुपंचमम् ।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः । —श्रुतबोध १० ।

२—यस्य वाक्यं स ऋषिः । या तेनोच्यते सा देवता ।

यवक्षरपरिमाणं तच्छन्दः । —ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका ।

३ पादबद्धोक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।

श्लोकात्तस्य प्रवृत्ति मे श्लोको भवति नाभ्यथा । (वाल्मीकि रामायण) ।

४—छन्दोबद्धं पदं पद्यं तेन युक्तेन युक्तकम् । (साहित्यदर्पण, परि० ६, श्लो० ३१४) ।

५—एवं नानार्थसंयुक्तैः पदैर्वर्णविभूषितैः ।

चतुर्भिस्तु भवेद्युक्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत् । —४२।चतुर्विंशोऽध्याय, नाट्यशास्त्र ।

६—नियताक्षरसम्बन्धे छन्दोयतिसमन्वितम् ।

निबद्धन्तु पदं ज्ञेयं सतालपतनात्मकम् ॥२६ ॥

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः । ता. शा. आचार्य भरत ।

लगती है। छन्द के विभिन्न प्रभेद प्रस्तार के रूप में विकसित हुए हैं, अतः छन्दों की संख्या असंख्य हो जाती है।

‘प्राकृतपेंगलम्’ में छन्द की परिभाषा नहीं दी गयी है, यद्यपि उसमें वृत्त और जाति दोनों प्रकार के छन्दों का निदर्शन है। छन्दोमञ्जरी में पहली बार वृत्त के साथ जाति (मात्राछन्द या मात्राछन्द) की परिभाषा दी गयी है। पद्य चार चरण का होता है, उसके वृत्त और जाति दो भेद हैं। वृत्त निश्चित अक्षरसंख्या से नियन्त्रित होता है और जाति मात्राओं की संख्या से। ये दोनों परिभाषाएँ स्थूल सूचनाएँ हैं। इस ग्रन्थ में छन्दों के अक्षर और मात्राक्रम पर विचार नहीं किया गया है, परन्तु जहाँ पर छन्द का विशेष लक्षण या निदर्शन दिया गया है, वहाँ अक्षर एवं मात्रा की संख्या और क्रम का विशेष ध्यान रखा गया है, अतः इस न्यूनता का सामान्यतः आभास भी नहीं होता। इसीलिए छन्दोमञ्जरी (षष्ठ स्तवक) में आचार्य गंगादास को पद्य की परिभाषा में फिर ‘प्रागुक्त लक्षणं पद्यम्’ कहना पड़ा है।

केदार भट्ट ने ‘वृत्तरत्नाकर’ में पद्य की परिभाषा में कहा है कि अब्धिः (चार), भूत (पाँच), रस (छः), आदि लौकिक अक्षरसंख्या के छन्द होते हैं और उनका चतुर्थांश पाद कहलाता है।^१

मध्यकाल में छन्दशास्त्रियों ने छन्द की वैज्ञानिक परिभाषाएँ निश्चित करने का यत्न नहीं किया। आधुनिक युग में श्री जगन्नाथ प्रसाद “भानु” जी ने निश्चित और परंपरागत छन्दों के लिए परिभाषा दी है, “जिस पदरचना में मात्रा या वर्ण, यति, गति के नियमों का अनुसरण होता है और अन्त में अन्त्यानुप्रास होता है, वह छन्द है।”^२ अपने समय के अनुसार यह परिभाषा अत्यन्त वैज्ञानिक है। इस युग में भी यह परिभाषा अधिक प्रशंसा में शूद्ध ही है, केवल मुक्त और अतुकान्तछन्द अन्त्यानुप्रास के अपवाद हैं। यति, गति, और मात्रा अथवा वर्ण की तो मुक्तछन्द में भी प्रयुक्त किया जाता है। यति में भले ही स्थान-आग्रह न हो और पद की सीमा अनिश्चित ही हो।

हिन्दी भाषा की मुस्लिम शैली उर्दू में भी छन्द का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ है और उसका छन्दशास्त्र भी फ़ारसी के आधार पर प्रचलित है। फ़ारसी संस्कृत परिवार की भाषा है और जिन्दावेस्ता का “जन्द” शब्द “छन्द” का ही रूपान्तर है। फ़ारसी और

१—अब्धिभूतरसादीनां ज्ञेयाः संज्ञास्तु लौकिकः ।

ज्ञेयः पादश्चतुर्थांशो यतिर्विच्छेदसंज्ञितः । १२ ।

प्रथमोऽध्यायः, वृत्तरत्नाकर ।

२—सप्त वर्ण यति गति नियम, अन्तर्हि समता बन्ध ।

जा पद रचना में मिले, ‘भानु’ भनत सोइ छन्द ॥

छन्दः प्रभाकर, पृ० १ ।

उर्दू के समस्त छन्द हिन्दी के छन्दों के अन्तर्गत आ जाते हैं (जिसकी तुलना द्वितीय अध्याय में की जायगी) क्योंकि फ़ारसी और हिन्दी के उच्चारण में बहुत साम्य है ।^१ फ़ारसी में १५ मूल लयखंडों (अरकान) को निश्चित करना 'खलील इब्न अहमद बशरी' की सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि का परिणाम है । इन्हीं लयों के विनिवर्तन से "बहरे" बनती हैं, अतः उर्दू उरुज के आलिमों ने "बहर" का लक्षण एक खास वजन' माना है और इस प्रकार से वे लोग छन्द की धारणा को लय प्रधान ही मानते हैं ।^२

पश्चिमी धारणा

अंग्रेजी में छन्द के लिए मीटर (metre) शब्द का प्रयोग होता है, जो लैटिन की (mete) धातु (सं० मा (to measure), जिससे संस्कृत में "मात्रा" बना है), से बना है, जिसका अर्थ होता है, मा (one that measures)^३ किया के रूप में इस शब्द का प्रयोग नापने का पर्याय है ।^४ पंक्ति या पाद के लिए अंग्रेजी में वर्स verse (Versus-Greek) शब्द प्रचलित है । Versus और वृत (संस्कृत) दोनों शब्द एक ही 'वृ.ङ्' धातु से बने हैं, जिसका अर्थ आवर्तन है । Versus लयात्मक वर्णों के उस पाद को कहते हैं, जो यातियों से विभक्त हो ।^५ इन दो शब्दकोषों के

१—खलील इब्न अहमद बशरी ने अरकान अशरा की बाह्योत्तरा और उल-फेर से १५ बहरे तैयार कीं इस तरह १६ बहरे हैं । पृ० ६, ७ 'अमीरुल उरुज',

बख्शी अन्सारी ।

२—अ. हर मिसरे का एक खास वजन होता है, उसी को बहर कहते हैं । पृ. ४ ।

ब. अरकानः शब्दः के आधार पर "फरक़ात" (लय खंड) बनते हैं, उसी को बहर कहते हैं । पृ. ८ ।

"राज उरुज", सीमाव सिद्दीकी ।

3. Metre--(Meter), n. (From 'Mete' to measure) one that measures.

&

4. Meter—Metre (meter), v. t. 8, i. metered; metering, to compose in, or to put up into metre.

New International Dictionary.

5. Verse:—the name given to an assemblage of words so placed together as to produce a metrical effect. The art of making, and, the science of analyzing, such verses. According to Max Miller, there is an analogy between 'versus' and the sanskrit term वृत्त which the name given by ancient grammarian of India to the rule determining the value of quantity in vedic poetry. A verse is a series of rhythmical syllables, divided by pauses, and destined to occupy a single line.

Encyclopaedia Britanica, Vol 23.

आधार पर यह धारणा बनती है कि इन शब्दों से केवल छन्दों के विश्लेषण का ही अर्थ नहीं व्यक्त होता है, अपितु निर्माण की भी व्यंजना होती है।

अंग्रेजी भाषा के छन्दःशास्त्रियों ने छन्द की परिभाषा देते समय केवल अंग्रेजी भाषा के छन्दों और अंग्रेजी भाषा की प्रवृत्ति को ही सामने रखा। सामान्यतः अपने जीवनाभ्यस्त संस्कारों और पूर्वग्रहों से मुक्त होकर साहित्य के आभ्यन्तरिक रसविशेषत्व का मूल्यांकन और निरूपण करने के लिए अखंड एवं निरन्तर मानसिक साधना तथा अनुशीलनपूर्ण आत्मसंस्कृति की अपेक्षा रहती है। अंग्रेजी भाषा स्वराघात प्रधान (Accented) है, और उसके कुछ प्रमुख छन्द लगात्मक खण्ड (Iambic Foot) और गलात्मक खंड (Trochee Foot) की आवृत्ति हैं : यों तो प्रस्तार से दो वर्ण^१ (Syllables) के चार भेद, तीन वर्णों के ८ भेद और ४ वर्णों के १६ भेद संस्कृत की भांति ग्रीक और अंग्रेजी में भी हैं, पर सब प्रचलित नहीं हैं। अतः, प्रायः सभी छन्दःशास्त्रियों ने Accent की शर्त परिभाषा में अवश्य रख दी है, जो कि इतर भाषाओं के छन्दों पर लागू नहीं होती।

श्रीधर महाशय ने कहा है कि स्वराघात (Accent) और निराघात (Non Accent) के निरन्तर प्रवाह से उत्पन्न ध्वनि-तरङ्ग को लय कहते हैं, जिससे गद्य और पद्य में स्पष्ट भेद परिलक्षित होता है।^२ यह परिभाषा अंग्रेजी के अनुकूल पड़ती है, परन्तु फ्रेंच आदि स्वरसाम्य मूलक (unaccented) भाषाओं पर लागू नहीं होती। यहाँ पर समस्या के रूप में मैं यह कहना चाहता हूँ कि भाषा छन्द के संगीत में बँधकर स्वर प्रधान (Accented) या स्वराघातहीन (unaccented) बन जाती है।

(छन्द का शब्द पर्याय stanza है, verse नहीं। Verse का अर्थ चरण है, जिसे Line कह सकते हैं। जिस मूललय खंड के आधार पर Verse निर्मित होता है उसे foot कहते हैं। Foot (पर्व) में कई वर्ण होते हैं, उन वर्णों या foot के अल्पतम उच्चारण को syllable कहते हैं, जैसे Iambic foot U—में लघु और दीर्घ दो syllable (वर्ण) होते हैं।) ले०

१—यों सामान्यतः वर्ण का पर्याय (Letter) माना जाता है, पर अंग्रेजी में एक अल्पतम उच्चारण में लिपि के कई अक्षर आ जाते हैं। इस उच्चरित अक्षर को (syllable) कहते हैं, जिसे उच्चारण की दृष्टि से वर्ण का पर्याय मान लिया गया है। (ले०)

2. The undulation of sound produced by the continuous flow of accent and nonaccents is known as rhythm and that which constitutes the essential difference between poetry and prose. P. 1, R. F. Brewer. The art of versification and technicalities of English Verse.

अंग्रेजी के एक छन्दशास्त्री ने कुछ ललित गद्यांशों को लेकर यह सिद्ध किया है कि इस भाषा की गति स्वाभावतः लघुगुरुमूलक Iambic है। इसके विपक्ष में मेरा विनम्र निवेदन यह है कि यह निष्कर्ष भावात्मक गद्य से निकाला गया है, जिसमें भावावेग के कारण लय का आभास होने लगता है। ऐसा निष्कर्ष यदि दैनिक अखबार की तीरस भाषा से निकल सकता, तो यह विश्लेषण अवश्य मान्य होता। दूसरी बात यह कि यदि यह भाषा (Iambic) स्वर प्रधान है, तो उसमें Amphibrach (U-U) Anapaest (UU-), Tribrach (UUU) Dactyl (-UU) Antispaste (-UU), Pacon - (-UUU, U-UU, UUU, UUU)

आदि लयखंडों के आधार पर विभिन्न छन्दों के उदाहरण ही कैसे लिखे जा सकें। इससे यह सिद्ध होता है कि अंग्रेजी को Iambic foot प्रधान मानना अवैज्ञानिक है और यही कारण है कि यह भाषा छन्द के किसी भी Foot में उसकी लय के अनुकूल ढल जाती है। साथ ही साथ इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि किसी भाषा में किसी विशेष पदों की प्रधानता मानना भी अवैज्ञानिक है।

डा० ग्येस्ट ने संयोजक एवं संतोलक नियम को लय माना है। यही संपूर्ण चरण के अंगों का अनुशासन करती है। यह गति के नियन्त्रण और विषय के संघटन में उतनी ही सहायक है, जितनी ध्वनिक्रम के संयोजन में।^१ यह परिभाषा अधिक वैज्ञानिक और पूर्वग्रह से मुक्त है, क्योंकि इसके अनुसार लय भाषा को छन्द में ढाल कर अपनी तरंग भंगिमा के अनुकूल बनाती है, न कि (Accent) और (unaccent) मूलक शब्द मिलकर छन्द को निमित्त करते हैं।

इजर्टन स्मिथ ने छन्द की दो विशेषताएँ मानी हैं, प्रथमतः, बेखरी (मानवमुख से उच्चरित वाणी) का निरन्तर प्रवाह, अपरतः, क्रमिक उत्थान पतनशील तरंगभंगिमा का संयोग।^२ इन लक्षणों में भाषा और लय के संयोग को छन्द माना गया है, केवल "निरन्तर प्रवाह" में सावृत्ति दोष है, क्योंकि वह 'उत्थान पतनशील तरंगभंगिमा' में ही उसका समाहार हो

1—Rhythm in its widest sense may be defined as the law of succession. It is regulating principle of every whole that is made up of proportionate parts and is as necessary to the regulation of motion or to the arrangement of matter as to the orderly succession of sound.

History of English Rhythm by Dr. Guest,

2—There is more or less continuous stream of speech sound characterised by regular wave like rise and fall which we call rhythm (primary rhythm) and this is organized in regularly proportionate section — lines — or verses.

The Principles of English metro by Egerton Smith. p.208.

जाता है। लय-नैरंतर्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए वे दूसरे स्थान पर बड़ी सुन्दर बात कहते हैं। 'लय का निर्माण ध्वनियों के क्रम से होता है, चाहे वह ध्वनि अखंड हो अथवा सुव्यवस्थित श्रृंखला के रूप में' जो प्रत्यक्षीकरण में समान व्यवधान के कालिक खंडों में प्रतीत हो। इस लक्षण में "Equal in Duration" उसे सीमाबद्ध कर देता है, क्योंकि ऐसे भी छन्द होते हैं, जिनमें विविध लयखंडों का मिश्रण होता है।^१

लंसल्स एबरक्राम्बी ने लयात्मक आदर्श की निश्चित आवृत्ति को छन्द माना है। यह परिभाषा मुक्त छन्द के अतिरिक्त समस्त क्रम निश्चित सुव्यवस्थित छन्दों पर लागू होती है।^२

जार्ज सेन्ट्सवरी लयादर्श की आवृत्ति का विरोध करते हुए कहते हैं कि ध्वनि का एक क्रम से आवर्तन हो, यह अनिवार्य नहीं, केवल (लय की) एक विशेष संयत व्यवस्था होनी चाहिए।^३ इसका अर्थ यह है कि सभी छन्द आवर्तनमूलक ही नहीं होते हैं, बल्कि कुछ छन्द अनेक लय खंडों के योग से बनते हैं, जो स्पष्टतः सत्य है।

बँगला छान्दसिक धारणा

बँगला छन्दःशास्त्रियों एवं कवियों की धारणाएँ वैज्ञानिक कम और भावात्मक एवं कवित्वपूर्ण अधिक हैं, अतः इन्हें परिभाषाएँ न कहकर तद्विषयक धारणाएँ, कलनाएँ एवं भावात्मक शृंभाशसाएँ कह सकते हैं। श्री कालिदास राय छन्द के वैविध्य एवं वैचित्र्य को कवि-मानस का आवेग कहते हैं। उनके दृष्टिकोण से कवि सायास नवनव छन्दो-निर्माण का विधान नहीं करता, भाव स्वतः उनसे छन्द की सृष्टि करवाते हैं।^४

1. (Rhythm) is constituted by a sequence of sound either a continuous or a discreet series—which perceptibly falls into periodic sections equal in duration, P. 8.

The Principles of English metre-By Egraton Smith.

2. Metre is the modulated repetition of a rhythmical pattern. P. 42.
Principles of English prosody, Pt. 1 By Lascells Abercrombie.
3. Rhythm : An orderly arrangement, but no necessarily a correspondent succession of sound. P. 290
Historical manual of English Prosody By George Saintsbury.

४. छन्दःशिल्पी रूपे छंदैर्वैचित्र्यं सृष्टिं करेन नई। ताहार कविमनेर आवेगेर सुरइ छन्दे वैचित्र्य रचना करियाछे।

पृ० १६२,

साहित्येर प्रसंग, श्री कालिदास राय।

श्री मोहितलाल मजूमदार रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं नवीन छन्द-श्रायोजना की जो प्रशंसा करते हैं, उससे उनका छन्दो-विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है—(अ) भाव के अनुरूप कवि स्वयं छंद का निर्माण करता है। (ब) कविता की शब्दश्रायोजना में ध्वनि-संगीत अपेक्षित है। (स) कवि को प्राचीन छन्दःशास्त्र की परम्परा मानने की आवश्यकता नहीं। (द) पदबन्ध में गण और मात्राओं के अतिरिक्त संगीत वैभव होता है। (ग) छन्दों का आनन्द लेने के लिए छन्दःशास्त्र की अपेक्षा प्राण, कान और कंठ के संस्कार अधिक अपेक्षित हैं।^१

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भावात्मक दृष्टि से 'छन्द' नामक ग्रन्थ लिखा था, जो रवीन्द्र-रचनावली में प्रकाशित हुआ है। वे विशेष मात्रा-संख्या और विशेष वेग-गति इन दो के संयोग को छन्द मानते हैं।^२ ये परिभाषा बंगाल के ही सभी छन्दों पर लागू नहीं होती, क्योंकि ब्रजशैली की बँगला कविताएँ हिन्दी की मात्राओं के तुल्य हैं, वेग बँगला के छन्द वर्णिक और अक्षरमात्रिक^३ हैं। इस परिभाषा में "विशेष वेग" पद जितनी आनी सार्थकता

१. भावेर अनुरूप छववेश गड़िया उठायछे, ता छाड़ा, ए सकल कवितार शब्दश्रायणाय ये ध्वनि संगीत (Phrasal beauty) आछे, ताहा कंन छवशास्त्रेअ अधीन नय — भावेर सहित भाषा, एवं भाषार सहित छंदेर एमून संगति सरयकार कविप्ररणा अपेक्ष, ताह एह पदबंधटिके केवल गनिया वा मात्रिया देखिलह हइबे ना-पाठकेर प्रान, कान ओ कण्ठ एह तिनरइ समान साहाय्य चाह। पृष्ठ १३६

'बाङ्लाकवितार छन्द', श्री मोहितलाल मजूमदार

२—विशेष संख्या के मात्रा ओ विशेष वेगेर गति एह कुछ निर्मद छव।

पृ० ३५१, रवीन्द्र रचनावली, भाग २१।

३—अक्षर मात्रिक छंद की प्रबोधचंद्र सेन ने ('प्रास्वरिक छंद' या 'स्वर वृत्ति' की संज्ञा प्रदान की है,) (छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ, पृ० २८) क्योंकि यह छंद 'स्वर' या Syllable के आधार पर चलते हैं, जिसको अंग्रेजी में Syllabic foot कहते हैं। इस प्रकार के छंद मात्रा और वर्ण की संख्या में पूरे नहीं उतरते हैं, परंतु भाषा की प्रकृति के अनुसार उच्चारण में समान एवं निश्चित ध्वनिस्थान घेरते हैं, यथा:—

अ मि यदि । जन्म नितेम् । कालिवासेर । काले,

देवे हतेम् । वशम रत्ने । नवरत्नेर । माझे ॥

(कणिका, से काले, रवि ठाकुर)

इसमें ध्वनि मात्रागत समता है और इस प्रकार तीन पदों एवं एक पदार्ध से चरण बनता है। यहाँ प्रत्येक पद अपने उच्चारण में चार अक्षरों के बराबर है, यद्यपि लिपि में सर्वत्र चार अक्षर नहीं हैं। 'जन्म नितेम्,' 'कालीवासेर,' 'देवे हतेम्,' 'नवरत्नेर,' के अंतिम अक्षर हल् उच्चरित होते हैं, फलतः उच्चारण चार अक्षरों के बराबर हो जाता है। मात्रिक आधार के लिए हिंदी के कुण्डल छंद (६ + ६ + ६ + ४ मात्राओं) से इसकी तुलना की जा सकती है, यथा:—'बुद्धशरण, धर्मशरण, संघशरण, जा तू' यशोधरा, गुप्त ।

सिद्ध करता है, उतनी ही अस्पष्टता का प्रचार भी करता है। सुर और गति-वेग के सम्बन्ध में उनके विचार उद्धरणीय हैं^१। 'सुर एक वेग है। वह अपने में अपने आप स्पन्दित होता है। कथा जैसे अर्थ को व्यक्त करती है, सुर वैसा नहीं करता, वह अपने आप प्रकाशित होता है। विशेष सुर के संग में विशेष सुर के संयोग से ध्वनि-वेग में एक समवेग उत्पन्न होता है, ताल उस समवेग में गति प्रदान करती है। ध्वनि के इस गति-वेग में हमारे हृदय में जो गति-संचार होता है, वह विशुद्ध आवेग मात्र है, उसका कोई अवलम्बन नहीं।' रविठाकुर की 'छन्द'शब्द विषयक अनेक धारणाएँ हैं। कुछ धारणाएँ प्राचीन मतों का समर्थन करती हैं।^२

(१) ऐतरेय ब्राह्मण की सूक्ति है—शिल्पानि शंसन्ति देवशिल्पानि। मानवीय शिल्प देव-शिल्प का गान कर रहे हैं, मानव-शिल्प विश्व-शिल्प के रहस्य का अनुसरण करता है। यह मूल रहस्य छन्द है। वही रहस्य आलोक-तरंग है, शब्द-तरंग है, रक्त-तरंग है, स्नायु-तरंग एवं वैद्युत् तरंग है। मनुष्य सृष्टि के प्रथम छन्द में, अपनी देह में सजीव हुआ। इसीलिए उसकी देह छन्दरचना के लिए उपयोगी है।

(२) छन्द शिल्प एक संस्कृति है। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—आत्म-संस्कृतिर्वा शिल्पानि। शिल्प ही आत्म-संस्कृति है। सम्यक् रूपदान ही संस्कृति है, उसी को शिल्प कहते हैं। आत्मा को सुसंयत^३ कर मनुष्य जब आत्म-संस्कार करता है अर्थात् उसे सम्यक्

१—सुरपदार्थटोड एकटो वेग। से आपनार मध्ये आपनि स्पन्धित होच्चे। कथा एमून अर्थेर मोक्षतारि करिवारजन्य, सुर तेमून नय, से आपन के आपनि प्रकाश करै। विशेष सुरेर संगे विशेष सुरेर संयोगे ध्वनिवेगे एकटो समवेगे उत्पन्न हय। ताल सिद्ध समवेगे वेगटोके गतिदान करे। ध्वनिर एइ गतिवेगे आमादेर हृदयेर मध्ये ये गतिसंचार करे, से एकटो विशुद्ध आवेगमात्र, तार एन कोनो अवलम्बन नइ।

रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, पृ० २६५

२. ताइ ऐतरेय ब्राह्मण बलेछेन—शिल्पानि शंसन्ति देवशिल्पानि। मानुषेर सर्व शिल्प देवशिल्पेर गान करेछे, विश्वशिल्पेर रहस्य कइ अनुसरन करे मानवशिल्प। सेइ मूल रहस्य छन्द। सेइ रहस्य आलोक तरंग, शब्द-तरंग, रक्ततरंग, स्नायुतरंग, वैद्युत्तरंग। मानुष तार प्रथम छन्देर सृष्टि के जागियेछे आपन देहे। केनना तार देह छन्दरचनार उपयोगी। रवीन्द्ररचनावली भाग, २१, 'बाङ्ला छन्देर प्रकृति', कलकता विश्वविद्यालय पठित, रवि ठाकुर।

३. ऐतरेय ब्राह्मण बलेछेन, 'आत्मसंस्कृतिर्वा शिल्पानि'। शिल्पइ होच्चे आत्मसंस्कृति। सम्यक् रूपदानइ संस्कृति, ताकेइ बले शिल्प। आत्मा के सुसंयत करे मानुष जखन आत्मार संस्कार करे, अर्थात् ताके दिये सम्यक् रूप सेउ तो शिल्प। मानुषेर शिल्पेर उपादान केवल तो काठपाथर नय, मानुष निजे। बबैर अवस्था थेके मानुष निजके संस्कृत करेछे। एइ संस्कृति स्वरचित विशेष छन्दोमय शिल्प। छन्दोमय वा ऐतरेयमान आत्मान संस्कृते। शिल्प-यज्ञेर यजमान आत्माके संस्कृत करेन, ताके करेन छन्दोमय।

रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, छन्द।

रूप देता है, उसे भी शिल्प कहते हैं। मानव के शिल्प का उपादान केवल काठ-पत्थर नहीं है, स्वयं मनुष्य ही है। बर्बर अवस्था से मनुष्य ने अपने को संस्कृत किया है। यह संस्कृति स्वरचित विशेष छन्दोमय शिल्प है। शिल्प-न्याय के गजमान ने आत्मा को संस्कृत किया, उसे छन्दोमय बनाया।

(३) पीछे ऋग्वेद और वाल्मीकि रामायण के उद्धरण से छन्द का 'इच्छा' अर्थ सिद्ध किया जा चुका है। रविठाकुर इस धारणा का भी समर्थन करते हैं:—

'छन्द का अर्थ इच्छा है। मनुष्य की भावना रूपग्रहण की इच्छा से नाना शिल्प एवं छन्दों का निर्माण करती है। मनुष्य की आनन्दमय इच्छा उस छन्दोलीलता का नटराज है, वही इच्छा विभिन्न भाषाओं के साहित्य में और नवनव नृत्य में आन्दोलित होती है^१'।

(४) उन्होंने अनुशासन के अर्थ में भी छन्द का प्रयोग किया है:—'युद्ध भी छन्दोबद्ध शिल्प है, छन्द का समुत्कर्ष ही उसकी शक्ति है^२'।

(५) व्यवहार-व्यवस्था के अर्थ में छन्द का नवीन प्रयोग दर्शनीय है, 'गृहणीत्व यदि सत्य है, तो उसे सुन्दर होना चाहिए, अकीशल से श्रीहीनता बढ़ती है, जो कि कर्म एवं लोक व्यवहार का छन्दोभंग है। भग्न छन्द का छिन्न सौंदर्य को समाप्त कर देता है^३'।

(६) छन्द रूप-साहित्य है और काव्य-साहित्य केवल रस-साहित्य है। साधारणतया शब्द-समूह अर्थ का वहन करता है, किन्तु छन्द उसका रूप ग्रहण करता है^४।

मराठी छान्दसिक धारणा

मराठी छन्दःशास्त्र के आचार्य माधवराव पटवर्धन पय की लयबद्ध अक्षर-रचना

१. छन्द मानव इच्छा। मानुषेर भावना रूप ग्रहणेर इच्छा करेले नाना शिल्प, नानाछन्द। मानुषेर आनन्दमय इच्छा सेइ छन्दोलीलार नटराज, भाषाय भाषाय तार साहित्य, सेइ इच्छा नवनव नृत्य आन्दोलित।

पृ० १५४, रवीन्द्ररचनावली, भाग, २१।

२. युद्ध ओ छन्द बंधा शिल्प, छन्द समुत्कर्ष थेकेइ तार शक्ति।

पृ० १५४, वही।

३. गृहणीपना यदि सत्य ह्य, ताके सुन्दर हइते ह्ये, अकीशल्य धरापड़े कृश्रीताय, कर्मेर व लोकव्यवहारेर छन्दोभंग। भांगा छन्देर छिन्न वियेइ लक्ष्मी धिवाय नेने।

पृ० १५४, वही।

४. काव्य-साहित्य केवल रस-साहित्य, ता रूप-साहित्य। साधारणतया भाषाय शब्दगुलि अर्थवहन करे, किन्तु छन्द तारा रूप ग्रहण करे।

पृ० १५६, वही।

मानते हैं^१ । पद्य भाषासापेक्ष होता है, (छन्द केवल लयपूर्ण) अतः उसे 'अक्षर-रचना' कहना असार्थक नहीं । आगे वे छन्द की परिभाषा में केवल लयबद्धता को ही स्वीकार करते हैं:—
छन्द वह है, जो सहज लयबद्धता से युक्त हो^२ । पद्य में निश्चित ध्वनि-विस्तार की आवश्यकता के बारे में वे कहते हैं:—'पद्य में एक चाल होती है, अतः पद्य में निश्चित लम्बाई के चरण या पाद की अक्षरावली होती है^३ ।'

हिन्दी छान्दसिक धारणाएँ

हिन्दी के आधुनिक युग में छन्द के क्षेत्र में महान् क्रान्ति हुई, पद्य बहुसंख्यक कवियों और आलोचकों ने उसे भावात्मक दृष्टि से ही देखा । डा० जानकीनाथ सिंह 'मनोज' ने अपने निबन्ध में छन्द का लक्षण दिया है, 'लय छन्द की आत्मा है' । यह लक्षण जितना भावात्मक है, उतना ही वैज्ञानिक भी^४ । श्री सुमित्रानन्दन पन्त का यह कथन कि 'कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है'^५ कविता में संगीत, भावावेग और लय की स्वीकृति देता है । वे छन्द को एक सजीव व्यक्तित्व मानते हैं:—'छन्दबद्धशब्द, चुम्बक के पार्श्ववर्ती लौहचूर्ण की तरह अपने चारों ओर एक आकर्षणक्षेत्र (Magnetic field) तैयार कर लेते, उनमें एक प्रकार का सामंजस्य, एक रूप, एक विन्यास आ जाता, उनमें राग की विद्युत्-धारा बहने लगती, उनके स्पर्श में एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है ।^६ साथ ही साथ संपूर्णता, स्वरैक्य तथा संयम को वे छन्द के उपलक्षणाँ में मानते हैं:—'अपने उत्कृष्ट क्षणाँ में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता, उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता स्वरैक्य और संयम आ जाता है^७ ।'

१. पद्य म्हणजे लयबद्ध अक्षररचना होय ।

(और)

२. छन्दपण हें या सहजलयबद्ध तेंतच असतें ।

(और)

३. पद्याची काही चाल असावी म्हणू पद्यांत ठराविक लाम्बीचे पावे वा चरण म्हणजे अक्षरावली असतात ।

पृ० २. छन्दोरचना, मा. रा. पटवर्दन ।

४. Rhythm is the soul of metre. 'Soul of Metre'—topic, Contribution of Hindi Poets to prosody

By Dr. J. N. Singh.

५. पल्लव, प्रवेश, पृ. २१, श्री सुमित्रानन्दन पन्त ।

६. " " " " "

७. " " " " "

पन्त जी भी ब्राह्मणसाहित्य की छन्दोविषयक धारणा के तुल्य विश्व को छन्दोमय मानते हैं—‘कविता की भाषा का प्राण राग है। राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है। राग-ध्वनि-लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है। संसार के पृथक्-पृथक् पदार्थ पृथक्-पृथक् ध्वनियों के चित्रभाष हैं। समस्त ब्रह्मांड के रोशनों में व्याप्त यही राग, उसकी शिरोपशिराओं में प्रभावित हो, अनेकता में एकता का संचार करता, यही विश्ववीणा के अगणित तारों से जीवन की अंगुलियों के कोमल पर्कश घात-प्रतिघातों, लघु-गुरु-सम्पर्कों, ऊँचनीच प्रहारों से अनन्त भंकारों, असंख्य स्वरों में कूटकर हमारे चारों ओर आनन्दाकाश के स्वरूप में व्याप्त हो जाता, यही संसार के मानस समुद्र में अनेकानेक इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं, कल्पनाओं की तरंगों में प्रतिफलित हो, सौंदर्य के सौ-सौ स्वरूपों में अभिव्यक्ति पाता है। प्रेम के अक्षय मधु में सने, सृजन के बीजरूप पराग से परिपूर्ण संसार के मानस शतदल के चारों ओर यह चिर-असुप्त स्वर्णभूंग एक अनन्त गुंजर में मँडराता रहता है’^१।

अधोलिखित पीयूषवर्षी छन्द भी उनकी छन्दोविषयक अनन्त वितृत एवं परिव्याप्त धारणा की सूचना देता है:—

कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है ;
धूम्य आहों में गुरीले छन्द है,
मधुर लय का भी कहीं अवसान है ।^२

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने “साहित्य का मर्म” विषयक भाषण में, छन्द सम्बन्धी धारणाओं को स्पष्ट किया है। छन्द को वे साधन^३ और अभिव्यंजना का उपकरण मानते हैं।^४ छन्द के सूक्ष्म रूप को उन्होंने इस धारणा से सुस्पष्ट किया है कि ‘अर्थमयी भाषा और संगीत के मिलने से छन्द की सृष्टि होती है।’^५ वे सामाजिक धर्म के प्रस्फुटित मंगल को छन्द का ही व्यापार मानते हैं।^६

१. पल्लव, पृ० १५।

२. पल्लव, आँसू, पृ० १३, पन्त।

३. छन्द आवेग का वाहन है। साहित्य का मर्म, पृ० ४१।

४. एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तों में अनायास संचरित करनेवाला महान् साधन है, यही। पृ० ४६।

५. वस्तुतः अर्थहीन छन्दः प्रवाह संगीत ही है। यही, पृ० ४१।

६. यही छन्द धर्म के रूप में प्रकटित होता है और सामाजिक संतुलन की रक्षा करता हुआ, आचार-परंपरा में आध्यात्म का ऐश्वर्य संचरित करता है।

रभाषा

छन्द वह वैखरी ध्वनि^१ है, जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंगभङ्गिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके ।

वैखरी ध्वनि

अपने व्यापक धर्म में छन्द एक ध्वनि समूह है । यों तो ध्वनि पशु-पक्षी की बोली में, पवन-संचरण में, मेघगर्जन में, निर्भर-प्रवाह में, सिन्धु-हिल्लोल में, यन्त्रचालन में, स्वरकला में, विद्युत्-व्यंजन में एवं वाद्य-यन्त्रों में भी होती है, परन्तु छन्द की सीमा मनुष्य द्वारा उच्चरित ध्वनि-परिधि में ही आबद्ध है । छन्द का प्रकृत विषय मनुष्य समाज से ही सम्बद्ध है । मनुष्य ने ही निरन्तर अपने भावों एवं ऐन्द्रिय अभिरुचियों की परिष्कृति से स्वर को छन्द के उन्नत धरातल पर विकसित करके उसे वैविध्य एवं विस्तार प्रदान किया है । इस सांस्कृतिक सम्पत्ति के विकास में प्रत्येक युग ने योग दिया है और पिता-पुत्र की अविच्छिन्न विशाल परम्परा से इसका समाहरण, संकलन तथा संयोजन हुआ है, अतः छन्द का मनुष्य मात्र से सम्बन्ध है । मानवीय विशेषत्व की उच्चतम उदात्त परिकल्पना 'देवत्व' से छन्द का सम्बन्ध मानव ने ही जोड़ा है, अतः छन्द एवं छन्दःशास्त्र की सीमा वैखरी ध्वनि के ही अन्तर्गत है ।

प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंगभङ्गिमा

वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि (sound) तरंगों (waves) में ही प्रसरित होती है, जो जल की लहरों की भाँति उत्थानपतनमूलक होती है, अतः 'भङ्गिमा' शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, परन्तु ध्वनि की वायु-तरंगें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि मनुष्य उनका आभास भी नहीं पा सकता । मानव की श्रवणेंद्रिय कुछ विशेष सीमा की ध्वनि-तरंगों को

जिस समाज में छन्द नहीं, उसमें संतुलन भी नहीं है, और उसमें आध्यात्म-भावना का अभाव हो जाता है । समूची सृष्टि में ही एक प्रकार छन्दोमयी गति है । काव्य का छन्द उस बृहत्तर सत्य के अनुरूप होने से ही महान् है ।
'साहित्य का मर्म,' पृ० ४६, ।

१. वैखरी:—मानवोच्चरित ध्वनि ।

वैखरी वाक्:—मौखिकवाच्यभिव्यङ्ग्यः सर्वश्रुतिगोचरः स्थूलः शब्दः ।
१६०४ श्लोक, सर्वतन्त्रसिद्धान्तपदार्थलक्षण, पृ० २५५, निर्णय-सागर प्रेक्ष संस्करण ।

ही सुन सकती है, फिर उस ध्वनि में स्वर का उत्थान-पतन अनुभूत करने के लिए ध्वनि-तरंगों में विशिष्ट गति एवं तीव्रता होनी चाहिए, नहीं तो मनुष्य उस भंगिमा का आभास नहीं पा सकेगा, अतः 'भंगिमा' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ पर बल देने के लिए किया गया है। ध्वनि के निरन्तर प्रवाह से विशेष भाव का जागरण होता है। संछित लय और विशृङ्खलित स्वर हृदय के भावों को आन्दोलित नहीं कर सकते, अतः परिभाषा में निरन्तर शब्द का होना आवश्यक है। ध्वनि-ग्रहण की पद्धति को स्पष्ट करने के लिए प्रत्यक्षीकृत (perceived) कृदन्त विशेषण का प्रयोग हुआ है। कभी-कभी ध्वनि-तरंग के निःसरण-निरन्तर्य में अल्पकाल के लिए व्याघात आ जाता है, परन्तु संगीत और लय की अन्तर्निष्ठ शक्ति के कारण मनुष्य आनन्द लेता ही रहता है और उसे संछित तरंगों में भी ध्वनिलहरी अखंड रूप में प्रतीत होती है¹। तरंगभंगिमा का प्रत्यक्षीकरण छन्द के शसण्ड प्रभाव का रहस्य है।

आह्लाद के साथ

तरंगभंगिमा में यह विशेषत्व होना चाहिये कि वह मानव-संगीत-वृत्ति को तृप्त करके आनन्दरस का अनुभव करा सके। ध्वनि-लहरी के साथ उत्पन्न हुए, प्रत्येक भाव से आह्लाद और आनन्द प्राप्त होता है। प्रत्येक कला का प्रमुख उद्देश्य आनन्द की सृष्टि करना है। छन्द का स्वरूप सूक्ष्मतम है, अतः अन्य कलाओं से वह मानव मन के अधिक निकट है। भारतीय काव्यशास्त्री कविता को कला नहीं मानते, परन्तु जैसक के मत के अनुसार छन्द-रचना निश्चय ही एक कला है, क्योंकि इसके विकास एवं रूपदान में हृदय के साथ बुद्धि का सायासयोग होता है और छन्द-शिल्पी को छन्द में विशेषत्व, विस्तार एवं वैविध्य उत्पन्न करने के लिए अभ्यास एवं मनन की साधना करनी पड़ती है, जो कला के लिए आवश्यक है।

आनन्दानुभव के धरातल तक उठने के लिए तरंगभंगिमा की विशेषत्व का योग लेना पड़ता है। वह तरंग-भंगिमा, जो आनन्द नहीं उत्पन्न कर सकती, छन्द की कोटि में नहीं आयेगी। इस भंगिमा को उत्पन्न करने के लिए किसी लय-खंड (pattern of rhythm) की आवृत्ति की जाती है या अन्य क्रम का आयोजन होता है। लय-खंड की आवृत्ति का निर्देश परिभाषा में इसीलिए नहीं किया गया, क्योंकि मुक्त छन्द के मूलाधार में लयादर्श होते हुए भी ठीक उसकी आवृत्ति नहीं होती, निरन्तर अपवादों का स्वागत होता है, अतः इस स्थान पर अव्याप्ति दोष से बचने के लिये 'लय-खंड' का प्रयोग किया गया है।

1. The instinct of rhythm is so firmly rooted in human nature that it will lead into involuntary formation of rhythmical groups even where originally there were none; i.e. where the stimuli did not vary objectively (Experiments of L. T. Bolton)

American Journal of Psychology, Jan. 1894.

भाव और अर्थ की

साहित्य में उसी भाषा का प्रयोग होता है, जिसके शब्दों से भाव (राग-तत्त्व) और अर्थ (मूतिकल्पना) दोनों ही व्यक्त हों । गणित या विज्ञान की अर्थमयी भाषा का साहित्य में प्रयोग नहीं हो सकता, क्योंकि राग के अभाव में उससे साहित्यरस निष्पन्न नहीं होगा । ऐसा विकृत शब्द जिसका कोई सामाजिक अर्थ नहीं, साहित्यिक सृष्टि में योग नहीं दे सकता, अतः सामाजिक दृष्टि से छन्द में सार्थक भाषा ही वाञ्छित है । यों तो 'अड़ बड़' जैसे निरर्थक शब्दों से छन्द पूरा हो सकता है, पर उसे 'लय-छन्द' कहना चाहिए, 'साहित्य-छन्द' नहीं, अन्यथा संगीत के 'बोलों' या 'परनों' से छन्द की सीमा अलग नहीं की जा सकेगी । व्यवहारात्मक और उपयोगात्मक विचार के कारण "आह्लाद उत्पन्न करना" छन्द का प्रकृत धर्म माना गया है । 'आह्लाद' मनुष्य की विकासाकांक्षा की पूर्ति में सहायक होता है ।

अभिव्यञ्जना कर सके

इस पद-समूह से छन्द के प्रति समाज की आकांक्षाएँ प्रकट होती हैं । यदि छन्द समाज के साहित्यरूप (दिव्य, उच्च एवं मंगलमय) को आलोकित न कर सका, तो उसकी समाज के लिए कोई उपयोगिता नहीं । छन्द इसीलिए अमर है, क्योंकि अमर समाज से उसका सम्बन्ध है । समाज उन्हीं ध्वनि-समूहों को छन्द कहता है, जो उसकी आशा-आकांक्षा को पूरा कर सकें, यों तो कशेड़ों ऐसे छन्द हैं, जो मानव के कंठ में एक बार भी उतरने का सौभाग्य न प्राप्त कर सके । भाषा, भाव और छन्द के संयोग से अनायास ही सहज रसरमणीयता आलोकित होने लगती है । छन्दो-ज्योति के विकासोन्मुख आकर्षण का उद्देश्य मानव के हृदय, मन और जीवन को समुन्नत करना है ।

नीचे छन्द की सरल सामान्य परिभाषा दी जाती है:—

छन्द नियमित मुखध्वनि-रचना है ।

रचना—रचना शब्द से कलात्मकता और सचेतन प्रयास की सूचना मिलती है । जिस प्रकार अन्य कलाओं (संगीत, चित्र, मूर्ति, वास्तु) में मनुष्य के आयास से रमणीयता आती है, उसी प्रकार ध्वनि को विशेष क्रम देने से आह्लादक तत्त्व और रमणीयता का जन्म होता है, इसलिए छन्द को भी एक रचना मानना चाहिए । मरसपुरावादी लोग वैदिक छन्दों को भले ही अपौरुषेय कह कर 'रचना' शब्द पर आपत्ति करें, परन्तु यह अखण्ड वैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक छन्द मनुष्य की रचना है । छन्द की मधुरता और स्वर-संयोजन के लिए मनुष्य ने अपनी सोदयबोधवृत्ति का सचेतन उपयोग किया है ।

मुखध्वनि—संसार में अनेक प्रकार की रचनाएँ हैं । उनमें छन्द ध्वनि-रचना है ।

ध्वनि-रचना संगीत में भी होती है, पर वाय-मन्त्रों की मोहक-रचना छन्द नहीं है। छन्द के लिए आवश्यक है कि उसकी ध्वनि मनुष्य की वाणी से निर्मित हो। मनुष्य की वाणी में जो कलात्मक रचना की जाती है, उसे ही छन्द माना जा सकता है। एतद् ध्वनि-रचनाएँ छन्द से भिन्न हैं।

नियमित—प्रत्येक छन्द किसी न किसी नियम से परिचालित होता है। ये नियम प्रत्येक भाषा की उच्चारण-पद्धति के अनुसार अलग-अलग होते हैं। एक भाषा में ही कई कई उच्चारण-शैलियाँ भी होती हैं, जैसे भारतीय आर्य-भाषाओं में भाषिक और धार्मिक दो क्रमों से ध्वनि-रचना मिलती है। छन्द का यह नियम चाहे सचेतन रूप से प्रयुक्त हो, चाहे अचेतन रूप से, पर नियम का योग छन्द के अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

सामान्य धारणा के अनुसार जातीय संगीत और भाषावृत्ति के आधार पर निर्मित लयादर्श की आवृत्ति को छन्द कहते हैं। प्रत्येक भाषा की अपनी उच्चारण पद्धति होती है, उसी के आधार पर वहाँ की जनता अपने संगीत और गीतों को ढालती है। भाषाभाषी व्यक्ति भाव के आवेग में गाने की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर निरन्तर क्रम से जो शब्द-समूह उच्चारित करता है, वही उस भाषा के छन्दपुंज का मूल बनता है। फिर, सचेतन कलाकार उसकी विशेषताओं को विशेष व्यवस्था और कलात्मक सीढ़व एवं भावानुकूल स्वरसंधान के योग से साहित्यिक रूप देता है। छन्दःशास्त्र प्रमुखतः ऐसे ही साहित्यिक छन्दों का विश्लेषण करता रहा है।

छन्द का जन्म

प्रणव या उद्गीथ ही छन्द-सृष्टि का आदि रूप है।^१ इसी छन्द में उच्चतम आनन्द (ब्रह्म) की निष्पत्ति हुई है। यही छन्द विश्वकमल पर भूँग की भाँति गुंजार कर रहा है। इसी से त्रयी विद्या की छन्दोमयी त्रिधारा^२ अनेक ऋषि-कठों से फूटकर समाज को प्राप्तकाम करती रही है। इस छन्द की अजस्र रसवृष्टि प्रत्येक देश, काल और व्यक्ति में हो रही है। इस तथ्य का विवेचन पुरुष-सूक्त में किया गया है। पुरुष से ही छन्द—ऋक्, यजु और साम की उत्पत्ति बताई गई है।^३ वेद के माध्यम से ब्रह्मा जब अपनी

१. प्रणवश्छन्दसामिव, रघुवंश, प्रथम सर्ग, ११, कालिदास।

२. उद्गीथः तेनेव त्रयी विद्या वर्त्तते (ऋक्, यजु और साम) छान्दोग्योपनिषद्, प्रपाठक १, खण्ड १, प्रवाक् ६।

३. तस्माद्व्यज्ञात्सर्ववृत्तं ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्वांसि जज्ञिरे, तस्मात् यजुस्तस्मादजायत ॥ ६ ॥

पुरुष-सूक्त, वक्षस मण्डल, ऋग्वेद।

अभिव्यक्ति करता है, तो पहले 'छन्दस्य' पुरुष का ही रूप धारण करता है, फिर "छन्दस्य" ऋङ्मय, यजुर्मय, साममय रूप में त्रिवृत्त होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी इसी बात का समर्थन किया गया है कि आत्मा ने वाक् द्वारा ऋक्, यजु और साममयी सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की।^१ ऋषि छन्द (ऋषिच्छन्द) की उत्पत्ति के विषय में 'ऋक् प्रातिशाख्य' के प्रणेता शौनक ने गणितात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रजापति, देव एवं असुरों के सातों छन्दों के संयोग से ऋषि छन्द की उत्पत्ति हुई, तब छन्द पूर्णता को प्राप्त हुए :—

तानि त्रीणि समागम्य सनामानि सनाम तत् ।

एकं भवत्यृषिच्छन्दस्तथा गच्छन्ति सम्पदम् ॥^२

भावावेग से छन्द के जन्म का सिद्धांत प्रतीक रूप से रामायणकार की क्रीञ्च-कथा से व्यक्त होता है। सुसंस्कृत कवि जब भावावेग में आता है, तब स्वभावतः उसके कंठ से छन्द फूट निकलता है। भाव अपने जन्म के लिए जितने सुसंस्कृत व्यक्ति के हृदय की अपेक्षा करता है, अपनी अभिव्यक्ति के लिए उससे भी अधिक सुसंस्कृत प्राण और वाणी की अपेक्षा रखता है। क्रीञ्चबध से ऋषि की रागवृत्ति पर आघात हुआ और तज्जनित करुणा संस्कृत वाणी में श्लोक के रूप में फूट पड़ी।^३

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीस्समाः ।

यत्क्रीञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

यह संस्कृत भाषा का पहला श्लोक माना जाता है। छन्दःशास्त्र की दृष्टि से इस प्रथम छन्द की व्याख्या यह है कि अनुष्टुप् छन्द वैदिक युग में भी था, पर इस पद्य में लय को नयी व्यवस्था और चरणों को सर्वथा एक अपूर्व क्रम प्राप्त हुआ, जिसका विश्लेषण आचार्यों ने इस प्रकार किया है :—

१. स तथा वाचा तेनात्मनेदं सर्वमसृजत् यदिदं किं चर्चो यजूषि सामानि छन्दांसि ।

बृहदारण्यक उपनिषद् (१, २, २)

२. ऋक्प्रातिशाख्य, पाताल १६, छन्द ४ ।

छन्द	प्रजापति	देव	असुर	ऋषि
गायत्री	८	१	१५	= २४ वर्ण
उष्णिक्	१२	२	१४	= २८ "
अनुष्टुप्	१६	३	१३	= ३२ "
बृहती	२०	४	१२	= ३६ "
पङ्क्ति	२४	५	११	= ४० "
त्रिष्टुप्	२८	६	१०	= ४४ "
जगती	३२	७	९	= ४८ "

३. निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः, श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।

रघुवंश, १४ सर्ग, ७० कालिदास ।

इलोके पठं गुरुर्गो सर्मथ तपुर्नमम् ।

द्विचतुष्पादगोर्ह्रस्वं सप्तमं, दीर्घमन्ययोः ॥^१

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्वास है कि गद्दी कवि का शाप छन्द को बाहुन बनाकर अब तक चल रहा है और शाश्वत रूप से काल-कालान्तर से अनेक कंटों से ध्वनित हो रहा है । इस शाश्वत कथा को प्रकाशित करने के लिए ही छन्द है ।^२ वे एक स्थान पर अत्यन्त वैज्ञानिक निदर्शन द्वारा निरूपण करते हुए कहते हैं, 'रूप-सूष्टि का प्रवाह ही विश्व है।' उसी रूप से छन्द जगता है । आधुनिक परिमाणतत्त्वा से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है । साधारण विद्युत्प्रवाह आलोक देता है, ताप देता है, उससे उसका रूप नहीं दिखाई देता है, किन्तु जब विद्युत्कण विशेष गति से हमारे चेतन्य के तार पर आते हैं, तो हमारे समीप प्रकाश रूप धारण करता है । '..... विशेष संख्या की मात्राएँ और विशेष वेग की गति इन दो से छन्द चलता है ।'^३

श्री सुमित्रानन्दन पन्त रचना-कालीन कवि की मानसिक-अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है । हमारे जीवन का पूर्ण रूप हमारे अन्तर प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उसकण्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता.... ।'^४

एजर्टन स्मिथ महोदय के अनुसार मनुष्य की वाणी में सुनियन्त्रित और निश्चित लय नहीं थी, इसकी प्रेरणा उसने नृत्य से ली । '.....नृत्य की निश्चित पद-निक्षेप

१. श्रुतबोध, १० ।

२. सेइ जन्म कविर शाप छन्देर बाहुन को नीचे काल धेके कालान्तरे छूटिते चाहलो ।

... किन्तु सेइ आदिकविर शाप शाश्वत कालेर कंठे ध्वनित होये रहल । एइ शाश्वत कालेर कथा के प्रकाश करवार जन्यइ तो छन्द ।

रवीन्द्र-रचनावली, भाग २१, पृ० २६१ ।

३. रूपसूष्टिर प्रवाहइ ता विश्व । सेइ रूपटो जगे छन्द । आधुनिक परिमाणतत्त्वे से कथा सुस्पष्ट । साधारण विद्युत्प्रवाह आलो देय, तार धेके रूप देखा देय ना, किन्तु विद्युत्कण जखन विशेष संख्याय गति से अमादेर चेतन्यद्वारे घामारे तखन आमादेर काछे प्रकाश पाये रूप..... विशेष संख्या के मात्रा ओ विशेष वेगेर गति एइ बुझ नियइ छन्द..... ।

रवीन्द्र-रचनावली, भाग २१, पृ० ३५१ ।

४. पल्लव, प्रवेश, पृ० २१ ।

एवं अंगचालन की तरह प्रारंभिक युग के गीत में लय की एक रूपता थी। भाव और ध्वनि में तरंगों की भाँति उत्थान-पतन, काव्य की प्रमुख लय का निर्माण करता है।^१

ऋग्वेद के छन्दोवैविध्य को देखने से एजर्टन की यह धारणा गलत हो जाती है कि आदिकाल के छन्दों में एक रूपता थी। ठीक उनके विपक्ष का प्रतिपादन करते हुए जार्ज सैन्ट्सबरी महोदय कहते हैं कि प्राचीन काल के छन्दों में सामान्य और असामान्य लम्बाई और छोटाई की पंक्तियाँ थीं, जिनका विकास आदिकालीन जातियों की भाषा के अनुसार हुआ। वे प्राचीन छन्दों का विकास प्रकृति की ध्वनियों से मानते हैं।^२

जो हो, यह निश्चित है कि मनुष्य की प्रकृति ने ही छन्द का दान दिया है, चाहे वैदिक धारणा को स्वीकार किया जाय, चाहे शाय्विक भौतिक व्याख्या को। निर्भरों का निनाद, पत्रों का मर्मर-संगीत, पवन का सनसन, बाँसों का चुरमुर, उत्सों का कलकल, बादलों की रिमरिम, वज्र का गर्जन, पक्षियों का कलकल गायन, सिन्धुओं का हिल्लोल और वृक्षों का सवेग कम्पन मनुष्य के लय-संस्कार बनाने में सहायक अवश्य हुआ है। प्रकृति के गायन और नर्तन से मनुष्य ने बहुत कुछ सीखा है। संभवतः, भावावेग ने अविकसित मानव को लयच्छन्द प्रदान किया होगा, जिसे उसने वाग्विकास और कला-प्रियता के साथ-साथ अनुशासन करके साहित्यिक छन्द का रूप दिया है।

1.Strict and exact rhythm was not inherent in ordinary speech but imposed upon it by bodily movement that we regular to the point of monotony.....like the regularity of dance movement, the regular movement of early song was a regular movement in time. This regular wave like rise and fall in the flow of sense and sound constitutes the primary rhythm of poetry.

The Principles of English Metre P. 6., By Egerton Smith.

3. Its origin is quite unknown, but presence of closely allied forms in the different Scandanavian and Teutonic languages assures beyond doubt a natural rise from some speech rhythm and time rhythm proper to the race and tongue. It is also probable that the remarkable difference of length—short, normal and extended which is observable in O. E. poetry is of the highest antiquity. It has at any rate preserved to the present day in the metrical successor of the line and there is probably no other poetry, which has at a majority of its periods, if not throughout, indulged such a variety of line length as English. Nor perhaps, is there any which contains even in its oldest and roughest forms of a metrical and a quasi-metrical arrangement more cised to the naturally

छन्दःस्फोट

जिस शक्ति के द्वारा वाक्-तत्त्व (शब्द) की अभिव्यक्ति होती है, उसे स्फोट कहते हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा अव्ययतापरथा से व्यक्त अवस्था को धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा बुद्धि की सहायता से अवर्णा धारण को व्यक्त रूप प्रदान करता है। इसकी प्रक्रिया यह है:—आत्मा बुद्धि से समन्वित होकर अर्थों की प्रकट करने की इच्छा से मन को प्रेरित करता है, मन शरीर की अग्नि को प्रेरित करता है; शरीराग्नि वायु को प्रेरित करता है; वायु ऊपर में विचरण कर गंभीर स्वर उत्पन्न करता है, पुनः प्रातःसवन के योग से छन्द गायत्र (गायन) का आश्रय लेता है..... फिर वायु ऊपर आकर मूर्द्धा से टकराता है और मुख में लोट कर पाँच प्रकार के वर्णों को जन्म देता है; २ व्यक्तावस्था में प्रस्फुटित करता है। स्फोटवाद के अनुसार स्फोट 'वाच्य' है और उसकी "वाचक" शक्ति को 'नाद' कहते हैं। यह नाद अव्याकृत से व्याकृत होकर गद्य और पद्यमय नाना वर्णों को जन्म देता है (वर्णनात्मना विभवंति मयथादिभेदशः)।

शेवागम के अनुसार शिव, शक्ति का आश्रय लेकर परिग्रह-शक्ति बिन्दु में क्षोभ उत्पन्न करते हैं, जिससे शब्द और अर्थ की दो धाराएँ परा, पदयन्त्री, मध्यमा एवं वैखरी का पृथक्-पृथक् रूप धारण करती हैं ^३। शब्द वैखरी या नाद व्याकृत के अनवच्छिन्न,

increased but no denaturalized emphasis of impassioned utterance more thoroughly born from the primeval oak and rock. Book IV, Ch. III, P. 316

Historical Manual of English Prosody,

By George Saintsbury.

१. स्फोटः स्फुटति व्यक्तीभवति अर्थोऽस्मादिति गृह्यतयर्थस्य प्रकाशकत्वं, प्रकाशश्च ज्ञानम्। वैयाकरणभूषणसार, कौण्डभट्ट प्रणीत।

२. आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युज्यते विवक्षया।

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मातृत्वं। ६।

मातृत्वंस्तूरसि चरन्मन्त्रं जनयति स्वरम्।

प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्। ७।

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्यमातृत्वं।

वर्णज्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः। ८।

पाणिनीयशिक्षायाम्॥

३. शिव की शक्ति का नाम ज्ञान शक्ति है, जो सारी सृष्टि का निमित्त कारण है। शिव और एक शक्ति मिलकर शिव-शक्ति तत्त्व बनते हैं, जिससे परमेश्वर की परिग्रह-शक्ति या क्रिया-शक्ति का जन्म होता है। परिग्रह-शक्ति बिन्दु कहलाती है और सृष्टि का उपादान कारण है। यह बिन्दु शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का है। शुद्ध बिन्दु को

अखंड एवं संगुम्फित विभिन्न रूपों को “लयच्छन्द” कहते हैं। यह “लयच्छन्द” भावमयी अर्थ-वैखरी से संयुक्त होकर “साहित्य छन्द” का स्वरूप ग्रहण करता है। छन्द-स्फोट सिद्धांत के विषय में लेखक का ऐसा मत है, जो नाम से नवीन होते हुए भी स्फोटवाद के सम्पूर्ण सिद्धांत से अपनी अनुकूलता स्थापित करके प्रस्तुत सिद्धांत में अपूर्व योग से समृद्धि प्रदान करता है।

अखंड छन्दःस्फोट

पद वर्णों का अखंड समुदाय होता है, वर्णविली नहीं, अतः पद को समुदायात्मक रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। “घट” शब्द कहने से “घ” और “ट” अक्षर पर ध्यान नहीं जाता, “घट” शब्द की सम्पूर्ण ध्वनि से अर्थ का ग्रहण होता है^१। इसी प्रकार वाक्य में “पद” अलग नहीं होते, वाक्य का अखंड प्रभाव अर्थ-ग्रहण में आता है। वाक्य की आत्मा अनवयव, नित्य, अखंडस्फोट एवं सर्वांगीण है^२। अखंड स्फोट-निर्णय में भी कौण्ड भट्ट ने कहा है:—

पदे न वर्णा विद्यन्ते, वर्णव्यवयवा न च।

वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ॥

वर्ण, पद और वाक्य की अखंडता पहले से ही सिद्ध है, अतः यहाँ भाव एवं अर्थ की अखंडता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, केवल ‘लयच्छन्द’ के विषय में यह तथ्य विशेषतः स्पष्ट करना है कि “लय” के निरूपण में जिन लयखंडों का विश्लेषण किया जायगा, वे केवल विश्लेषण एवं निरूपण के लिए हैं। लय का ग्रहण श्रोता अखंड एवं सम्पूर्ण रूप में करता है और उसका प्रभाव भी समग्र रूप में ही पड़ता है। लय-खंडों पर कोई कवि, पाठक या श्रोता ध्यान नहीं देता, वह तो केवल छन्दः

महाविन्दु या महामाया तथा अशुद्ध विन्दु को साया भी कहते हैं। शक्ति तथा विन्दु के सम्बन्ध को “विकल्प” या “भेदज्ञान” कहते हैं। इसी विकल्प का आश्रय लेकर शिव “शुद्ध विन्दु” में क्षोभ पैदा करता है, जिससे शब्द और अर्थ की दो धाराएँ चलती हैं। इन दोनों की पृथक्-पृथक् चार अवस्थाएँ परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी होती हैं।

वैदिकदर्शन, पृ० २८,

डॉ० फतहसिंह

१—वर्णसमुदायः पदे न वर्णा इति प्रतीतेर्वर्णातिरिक्त पूर्वापरीभूत तत्समुदायात्मक पद-स्वीकारः आवश्यकः। “स्फोट”, वाणीवैयाकरणभूषणसार, कौण्डभट्ट।

२—वाक्यात्माऽनवयवो नित्योऽखंडस्फोटोऽङ्गीकर्तव्य इति। वही ॥

शास्त्र का विश्लेषण मात्र है। 'स्फोट-सिद्धांत' को गद्य एवं पद्य दोनों क्षेत्रों से पूर्ण करने के लिये यह नवीन सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है।^१

जिस प्रकार व्याकरण-शास्त्र ने भाषा के एक एक वाक्य, शब्द एवं स्वर का विशद विश्लेषण करने के पश्चात् स्फोट के द्वारा फिर उसे प्रकृत रूप प्रदान किया, उसी प्रकार छन्दःशास्त्र भी विभिन्न लयों का विश्लेषण करके "छन्दःस्फोट" के द्वारा विभिन्न लयों को मूल रूप में ग्रहण करने का संदेश देता है।

लय की अखंडता के अभिव्यंजन एवं ग्रहण का सिद्धांत अन्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर मानते हैं कि विशेष सुर के संग विशेष सुर के संयोग से ध्वनिवेग में एक समवेग उत्पन्न होता है। ताल उस समवेग को गति प्रदान करती है। ध्वनि के इस वेग से हमारे हृदय में जो गति संचरित होती है, वह विशुद्ध आवेगमात्र है।^२

स्मिथ इजर्टन् महोदय छन्द को काव्यात्मक अभिव्यंजन के आवेग पूर्ण अभ्यन्तर अनिवार्यता से उद्भूत^३, एक सावयव संपूर्ण आयोजन मानते हैं। वे छन्द को भावों का स्वाभाविक प्रवाह मानते हैं^४ और यह भी मानते हैं कि श्रोता उसे पूर्णता में ग्रहण करता है।

काल्रिज महोदय मानते हैं कि भावावेग छन्द की प्रवेगशील प्रक्रिया को संतुलित करता है।^५ इस प्रवेगशील प्रक्रिया में अखंड प्रवाह का सिद्धान्त अन्तर्निहित है।

१—इस नवीन सिद्धान्त की स्थापना के साथ लेखक ने अपनी स्वल्प बुद्धि से सूत्ररूप में एक श्लोक भी जोड़ दिया है, यदि विद्वान् लोग इसे स्वीकार कर सकें तो निवेदन है:—

अखण्डा वृत्तरीधारा मात्रावर्णस्तरङ्गिता ।
लयच्छन्दःसु विद्यन्ते लयखंडानि तानि नो ॥

२—विशेषसुरेर संगे विशेष सुरेर संयोगे ध्वनिवेग एकटो समवेग उत्पन्न ह्य, ताल सेइ समवेग टोके के गतिदान करे । ध्वनिर एक गतिवेगे आमादेर हृदयेर मध्ये ये गतिसंचारकरे से एकटू विशुद्ध आवेगमात्र । पृ० २६८, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्र-रचनावली, भाग २१ ।

3. Metre.....but an organic scheme evolved from vital inner necessities of poetic expression. P. 21

The Principles of English Metres—E. Smith,

4. Rhythmical expression is a natural outcome of poetic emotions and in its turn to convey that emotion to others. P. 5, वही ।

5. For the property of passion is not to create but to set in increased activity.

—Coleridge, Biographia Literaria, Ch. XVIII.

छन्द का महत्त्व

वैदिक युग में छन्द देवताओं की प्रसन्न करने के साधन थे, अतः उनकी महत्ता भी देवी और श्रलौकिक मान ली गई थी। छन्द के द्वारा संसार की सभी कामनाएँ पूर्ण की जा सकती हैं, उस युग का ऐसा विश्वास था। छन्द विश्व की समस्त भीतियों से मुक्त करने वाला और अमरत्व-प्रदाता है। एक बार मृत्यु ने देवताओं पर आक्रमण किया। देवताओं ने मृत्यु के भय से बचने के लिए त्रयी विद्या (वेदविद्या) में प्रवेश किया। उन्होंने अपने को मन्त्रों से (पञ्चात्मक छन्दों से) ढक लिया, अतः आच्छादन का हेतु होने के कारण मन्त्रों का नाम छन्द पड़ गया।^१ तथ्य यह है कि वेदज्ञान को सूचना की तरह प्राप्त कर लेने से कोई लाभ नहीं होता, अतः इस स्थिति में मृत्यु ने उन्हें इस प्रकार देख लिया, जिस प्रकार मछली पानी में दिखाई पड़ती है। यह समझ कर कि यहाँ हम मृत्यु से छिपे नहीं हैं, देवों ने ऋक्, यजु और साम के ऊपर चढ़कर (वेद-ज्ञान के मर्म को प्राप्त कर) स्वर (ऊँ, में प्रवेश किया।^२ यह अक्षर अविनाशी है, अमृत है, अभय है। उसमें प्रवेश करके देवता अमृत और अभय हो गए।^३ जो व्यक्त इस अक्षर का उच्चारण करता है और स्वरामृत अभय अक्षर में प्रवेश करता है, वह देवताओं के तुल्य अमृत हो जाता है।^४

छन्दों का आश्रय लेकर स्वयं देवताओं ने स्वर्ग लोक को प्राप्त किया था^५। सामगायन करने वाला भी देवताओं की कामनाओं को प्राप्त होता है। छान्दोग्य में लिखा है कि जो इस रहस्य को जानता हुआ, साम गाता है, वह दोनों को (अग्निदेवत्व और अध्यात्म आत्मा को, जो आदित्य में पुरुष है, और जो अक्षि में पुरुष है; वस्तुतः जो दोनों में ही एक है) गाता है। वह उस (आदित्यस्थ पुरुष) के द्वारा उस (सूर्य) से परे लोकों की और देवताओं

१—देवा वै मृत्योर्विभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशन्ते छन्दोभिरच्छादयन् यदे भिरच्छादय ॐ-स्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् । प्रवाक् २, चौथा खंड, प्रपाठक १, छान्दोग्योपनिषद् ।

२—तान् तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुक्ते परिपश्येदेवं पर्यपश्यद् ऋचि साम्नि यजुषि । ते नु वित्वोर्द्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन्, प्रवाक् ३, वही ।

३—यवा वा ऋचमाप्नोत्येमित्येवातिस्वरति, एव ॐसामैवं यजुरेष उ स्वरो, यदेवक्षर-मेतदमृतमभयं, तत् प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन् । प्रवाक् ४, वही ।

४—स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणोति, एतदेवाक्षरं ॐस्वरममृतमभयं प्रविशति, तत् प्रविश्य यदमृता देवास् तदमृता भवति ।

प्रवाक् ५, खंड ४, प्रपाठक १, छान्दोग्य उपनिषद् ।

५—छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुयते । (२।३।४।३२) शतपथब्राह्मण ।

की कामनाओं को प्राप्त करता है^१ । ठीक इसी बात का समर्थन एतरेय ब्राह्मण में है, 'सभी छन्दों के द्वारा देवताओं ने स्वर्गलोक को जीत लिया । यजमान भी उसी प्रकार उन्हीं सभी छन्दों की उपासना करके स्वर्ग लोक को जीतता है'^२ ।

विभिन्न छन्दों के पाठ से विभिन्न अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है:—अनुष्टुभ् (३२ अक्षर) छन्द से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।^३ वृहती (३६ अक्षर) से ही स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है, अतः इससे भी स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है ।^४ विराट् छन्द (४० वर्ण) अश्वमेध में सभी देवताओं को प्रसन्न करके सभी कामनाओं को प्राप्त कराता है ।^५ त्रिष्टुभ् (४४ अक्षर) ओज, इन्द्रिय और वीर्य का प्रतीक है, अतः शक्ति (वीर्य) को प्रदान करता है ।^६ जगती (४८ अक्षर) पशुओं की कामना पूर्ण कराता है ।^७ शक्वरी छन्द (५६ अक्षर) के महान् वेगवान् रव से वसिष्ठ ने इन्द्र को शक्ति प्रदान की थी ।^८ छन्द की इन विभिन्न फल-फलपनाओं एवं देवों की प्रसन्नता की उल्लसित भावनाओं ने वैविध्यपूर्ण नव-नव छन्दों के निर्माण में सहायता की होगी ।^९

१—अथ य एतदेवं विद्वान् साम गायति, उभौ स गायति, सोऽमुनेव, स एष ये चामुष्मात् पराञ्चोलोकास्तांश्चिच्छान्नोति देवकामांश्च । प्रपाठक १, खंड ७, प्रवाक् ७, छांदोग्य उपनिषद् ।

२—सर्वे वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गलोकमजयन् । तथैवेतत् यजमानः सर्वेछन्दोभिरिष्ट्वा स्वर्गलोकञ्जयति । द्वि. अ, खंड ३, एतरेय ब्राह्मण ।

३—अनुष्टुभ् स्वर्गकाम कुर्वीत । एतरेयब्राह्मण, प्र. अ, खंड ५ ।

४—षट्त्रिंशदक्षरावृहती बृहत्याभिस्वर्गलोकः प्रतिष्ठितस्तद्वसतो बृहत्यैव छन्दसा स्वर्गं लोके प्रतिष्ठति । (१३। ५। ४। २८) शतपथ ब्राह्मण ।

५—एतच्छन्दो यद्विराट् सर्वकामा अश्वमेधे सर्वान् देवान् प्रीत्वा । (१३। ४। १। १३२) श. ब्रा. ।

६—त्रिष्टुभौ वीर्यकामः कुर्वीत । ओजो वा इन्द्रियवीर्यं त्रिष्टुभ् । (अ. १, खं. ५) ऐतरेय. ब्रा. ।

७—जगत्यो पशुकामः कुर्वीत । ऐत. ब्रा. (१ अ. खं. ५) ।

८—'यच्छक्वरी बृहता रवेण शूभमावधत्ता यो वसिष्ठः ।'

History of Sanskrit Literature of Vedic Period, Rigvedic Metro P. 74. By G. V. Vaidya से उद्धृत ।

9. They show confidence that a new 'song' will be more pleasing to the gods than one which is old fashioned. It is a common place of western criticism that in many of the mechanical arts the Hindu workmen follow too submissively ancient rules and models. But no statement justly be made with regard to the poetic literature of India, either ancient or modern, rather the faculty of inventing and appreciating new and delicate variations of rhythm seems to be a special gift of the race.

The Historical development of the art of versification of Vedic Metro. P. 19.

स्वर, वर्ण और अर्थसंयुक्त छन्द का ज्ञान करके जो वेद का अध्ययन करता है, वह ब्रह्मलोक का भागी होता है ।^१ इसके विपरीत जो असावधानी से छन्द का प्रयोग करता है, वह पाप का भागी होता है । 'यदि कोई मन्त्र का अर्थ जाने बिना स्वर और वर्ण से च्युत सद्योष प्रयोग करता है, तो वह वाणी यजमान को उसी तरह मारती है, जैसे इन्द्र का शत्रु 'इन्द्रशत्रु' समस्त पद के अशुद्ध उच्चारण के अपराध से मरा था ।^२ जो व्यक्ति अवक्षर (उच्चारण में न्यूनाक्षर), अनायुष्य (आयु को क्षय करने वाला), विस्वर (विह्व स्वर), व्याधिपीडित (रोगी सा उच्चारण) मन्त्र का पाठ करता है, उसके शीश पर अक्षत शस्त्ररूप में वज्र पतित होता है ।^३ जो स्वर और वर्णों से वर्जित हस्तहीन (बिना हस्तचालन) अध्ययन करता है, वह ऋक्, यजु एवं साम से दग्ध होकर विकृष्ट योगिनि में प्राप्त होता है ।^४ यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वरों के अनुसार वेद-पाठी अपने हाथ सञ्चालित करता है ।

छन्दों के शुद्ध प्रयोग से पुण्य और अशुद्ध प्रयोग से पाप की धारणा ने वैदिक छन्दों के स्वरूप को अक्षुण्ण, आरिर्वर्जित एवं अदोष रूप में संवित रखने में बड़ी सहायता की है ।

इस प्रकार के विधान का चाहे कोई आध्यात्मिक मूल्य हो या न हो, पर इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि भाषा की स्थिरता, संस्कारों के निर्माण, छन्दपाठ की निश्चयात्मकता और उच्चारण-विशुद्धता की रक्षा में ये विश्वास अत्यन्त सहायक रहे हैं । जो जाति अपने साहित्य के प्रति इतना सम्मान का भाव नहीं रख सकेगी, उसका सांस्कृतिक अभ्युत्थान संभव नहीं ।

मध्यकाल में भी चाहे छन्दः का आमुष्यिक महत्त्व कम पड़ गया हो, पर उसका ऐहिक महत्त्व दिन-दिन बढ़ता ही गया । काव्य-शास्त्र के ग्रंथों और भोज-प्रबन्ध की कथाओं से सामान्य जीवन में छन्द की व्यावहारिक उपयोगिता का पता चलता है । मयूर, बाण, विल्हण, तुलसी और पद्माकर को स्तोत्र-रचना के द्वारा कायिक पीडन से मुक्ति मिली थी । अनेक रामभक्तों का विश्वास है कि 'रामचरितमानस' के पाठ से उन्हें

१—हस्तेन वेद योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।

ऋग्यजुः सामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ पाणिनीयशिक्षा, ५५ ॥

२—मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५२, वही ॥

इन्द्रशत्रुः तत्पुरुष समास और इन्द्रशत्रुः बहुव्रीहि है ।

३—अवक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ।

अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३, वही ॥

४—हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।

ऋग्यजुः सामभिर्बन्धो वियोगिमधिगच्छति ॥ ५४, वही ॥

विपत्तियों से छुटकारा मिला है । पर, विज्ञान इन किम्बदन्तियों और विश्वासों को स्वीकृति देने में असमर्थ है ।

छन्द का उपयोग

गद्य की अपेक्षा छन्द अधिक काल तक समाज में प्रचलित रहता है, अतः उसके रचयिता को भी अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक सुवश मिलता है । निर्मित छन्द अपरिवर्त्तनशील होता है, उसकी भाषा, लय, अन्त्यानुप्रास और यति आदि काल की धारा से अप्रभावित रहते हैं । जो भाव छन्दोबद्ध होता है, उसे अपेक्षाकृत अधिक अमरत्व मिलता है । यही पर छन्द की "प्राच्छादक" विशेषता सार्थक होती है । मानव-संस्कृति के विकास का इतिहास छन्द की ही सहायता से प्राप्त हो सका है । यदि यही विवरण गद्य में होता, तो कब का विलीन हो गया होता । वज्र का गढ़ टूट सकता है, पर, छन्द की एक कड़ी नहीं टूट सकती ।

लिपि-आविष्कार के पहले मनुष्य के जीवन का इतिहास—सुख-दुःख, आशा-निराशा, आकांक्षा-उदासीनता, जय-पराजय, हर्ष-उल्लास, सम्पन्नता-विपन्नता, परिग्रह-त्याग, विक्रम-दुर्बलता, जन्म-मरण, संयोग-वियोग, मुक्ति-ईर्ष्या, हास-अश्रु, समृद्धि-असमृद्धि का लेखा और मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास का इतिहास प्राचीन काल में छन्द के कोश में सञ्चित कर दिया गया था । इस इतिहास की वाचिक आवृत्ति मानव के लिए आनन्द एवं रसास्वाद का हेतु ही न थी, वरञ्च, प्रेरणा का स्रोत भी थी भावी जीवन-यापन के लिए सुचिन्तित इंगित । मानवता ने अपने हृदय के सारों की झंकार को छन्द के माध्यम से ही अपने कानों सुना है और शिशु-कीर्तुल से उस इतिहास में अपने जीवन की आकृति पाई है । कुछ विद्वानों की दृष्टि से इन गीतों के संग्रह ने महाकाव्य का स्वरूप दिया ।^१ जो हो, पर, यह निश्चित है कि इन्होंने महाकाव्यों के

1. The earliest composition of all the languages were metrical, Long before the art of writing was invented rude songs of war and love and hymn to the gods were composed in some rude forms of measure or jingle that was catching to the ear and handed down by tradition.

In course of time, these rude lyrical pieces were collected and committed to writing, with narrative verses interpreted, in order to give an unity to the collection; hence, in broad outline, the original epic poem. Page 6.

The art of Versification and the technicalities of poetry— R. F. Brewer

निर्माण में विषय सामग्री, छन्द और भाषा-वैभव तथा अभिव्यंजन-कुशलता अवश्य प्रदान की।

स्मरणीयता और उपयोग

भाव को प्रेषित करने के साथ छन्द में मुग्ध करने की शक्ति होती है। छन्द के द्वारा कल्पना का रूप सजग होकर मन के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है, अतः उन भावों को ग्रहण करने में मन को प्रयत्न नहीं करना पड़ता। छन्द अपनी समग्रता में संस्कार रूप से मन में जम जाता है और उससे सम्बन्ध रखने वाले भाव या शब्द-समूह के उद्दीप्त होते ही समस्त नियमित छन्द की शृंखला स्मृति के धरातल पर आ जाती है।^१ छन्द रूपवान् होता है, अतः उसका ध्यान मन में सम्पूर्ण रूप से आता है, जैसे कि ध्यान में मनुष्य का सावयव चित्र आता है। ऋषियों ने छन्द का साक्षात्कार किया था। 'ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः' से उसकी पुष्टि भी होती है।

एबरकाम्बी का मत है कि छन्द के द्वारा कवि के मन में उठे हुये रचनाकालीन संवेग और संवेदन का अनुभव अखंड और पूर्ण रूप में मूर्तिमान होता है।^२

स्मरणीयता के गुण के कारण ही प्राचीन काल में आयुर्वेद, ज्योतिष, इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति आदि विश्लेषण और चिन्तन-परक विषयों को भी छन्दोबद्ध किया गया था।

छन्द की व्यंजना-शक्ति भी गद्य की अपेक्षा अधिक होती है।^३ इसके माध्यम से थोड़े शब्दों में बहुत बात कही जा सकती है। छन्द की सीमा में बँधकर भाव अधिक वेगवान् और प्रभावशाली हो जाता है, जिस प्रकार तटों के बन्धन से सरिता वेगवती बनती है। छन्द के आवर्तन में एक ऐसा आह्लाद होता है, जो तुरन्त मन को छू लेता है। कवि के मानस में काव्य-रचना के पहले जो भाव एवं संवेदना होती है, छन्द उसकी

१—से सुनिविड़ सुनियमित छन्द आसादेर स्मृतिर सहायता करे।

रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, पृष्ठ ३७१।

2. Conception or internal expression, the private expression of the inspiration in the poet's own mind, by the completion of the imaginative process into a stable, isolated and self-contained.... Page 15.

Principles of English Prosody, Part 1. By Lascelles Abercrombie

3. The poet is seeking to express and verse pattern gives him a range of expression beyond that of prose. The poet tells us something, which he cannot tell us in prose.

Rhetoric and Prosody, P. 99. By Brander

अभिव्यक्ति ही नहीं करता है, बल्कि उस भाव, संवेदना तथा अनुभूति को तद्वत् पाठक और श्रोता के मन में संचारित करता है । ^१ कवि और रसज्ञ पाठक के मानस धरातल को समान करने का समस्त व्यापार छन्द के ही द्वारा साध्य होता है ।

रवीन्द्रनाथ के मतानुसार स्थिर कथा को वेग देकर चित्त में प्रवेश कराने का श्रेय छन्द को ही है । जिस प्रकार वायु समुद्र में कंपन उत्पन्न करता है, उसी प्रकार छन्द हमारे मन में कवि के भावों को जगाता है । जब तक मनुष्य के पास भाव रहेंगे और उनके व्यक्त करने की इच्छा रहेगी, तब तक छन्द का प्रयोग होगा । देवताओं की स्तुति, श्रद्धेय के प्रति भक्ति-निवेदन और प्रणयिनी के प्रति अनुराग-दान छन्द रूप में ही प्रस्तुत करने से संतोष मिलता है । वर का अभिनन्दन, कन्या की विदाई, अभिसार का संवाद, मेघों का उल्लास, शारदीय चन्द्र का हास, उपः की अरुणिमा और वसन्त की सुमन-समृद्धि को गद्य में वर्णन करने से कभी भी पूर्ण संतोष नहीं मिल सकता ।

छन्द मनुष्य को आह्लाद ही नहीं देता, वह उसे संस्कृतात्मा बनाता है, भावों का परिष्कार करता है और कोमलता का निर्माण करता है, अतः छन्द का सांस्कृतिक महत्त्व है । छन्द-पाठ के समय मनुष्य का आत्मा उन्नत धरातल पर पहुँच जाता है और स्थूल इन्द्रिय-

1. Any thing affirmed in the mind is accompanied by the emotion peculiar to its affirmation. The mere fact and the extent of the affirmation, may be expressed in the semantic effect of words but this does not give the experience which occurred. The expression of fact must be accompanied, for complete expression of actual experience, by expression of emotion, and this is usually given by rhythmical effect of the words used..... But the differentia of poetic expression is, that is concerned with the things affirmed is no greater than its concern with the manner of the affirmation; its purpose is to express a whole experience. And poetic expression therefore relies as much on rhythm as on semantic, in order to reproduce, along with the thing thought, the emotion of thinking it. Page 29.

Principles of English Prosody, L. Abercrombie.

१—आमावेर चित्त वेगवान, किन्तु कथा स्थिर । कथा के वेग दिए आमावेर चित्तेर सामग्री करे तोलवार जन्ये छन्देर वरकार । एह छन्देर बाहुन योगे कथा के बोले ये द्रुत आमावेर चित्त प्रवेश करे ता नय, तार स्पन्दन निजैर स्पन्दन योग करे वेये । गुनीते हाते रेखा श्री रंगेर छन्दोबन्धन हलह । नाडिर मध्ये प्राणेर स्पन्दन चलिते थाके, आमावेर चित्तस्पन्दन तार लय टाके स्वीकार करे, धरते थाके गतिर संगे गतिर सहयोगिता धातासेर हिल्लोलेर संगे समुद्र के तरंगेर मतो ।

वासना निम्न धरातल पर छूट जाती है। छन्द में जगत् का आनन्द इन्द्रियों के माध्यम से न मिलकर हृदय से मिलता है और संसार की कटुता भी मधुरता में परिणत हो जाती है। असत् की परिधि में भी सत् का राज्य हो जाता है। यदि स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना मनुष्य की महत्ता है, तो उस विकास में छन्द सदैव सहायक रहेगा। छन्द भाव का बन्धन होकर भी हृदय को मुक्ति देता है। भाव का अरुण छन्द के आलोक में विष्वात्म बन जाता है, और व्यक्ति के जीवन-वृत्त की परिधि विस्तृत होकर सृष्टि-व्यापी अनन्त मानस का स्पर्श कर लेती है। यही तो मानव-संस्कृति का उद्देश्य है।

भावच्छन्द

किसी विशेष लय-खंड के आधार पर व्यक्त किए गए एक भाव में जितने चरणों का विस्तार होता है, उन सभी के आद्योपान्त योग से 'भावच्छन्द' की इकाई बनती है। कभी कभी एक बड़े भाव या दृश्य को चार चरणों में व्यक्त करने में कठिनाई होती है, अतः उसके आगे भी भाव की पूर्णता के लिए चरण-विस्तार करना पड़ता है। इसी भावना से प्रेरित होकर वैदिक युग में चतुरधिक चरणों के छन्द और २४ प्रगाथाओं (ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार) का आविष्कार हुआ था। संस्कृत साहित्य में भी दो (युग्मक), तीन (सांद्रानतिक), चार (कलापक), और पाँच या पंचाधिक (कुलक) छन्दों में एक भाव को व्यक्त करने की परंपरा रही है।^१ किरातार्जुनीय^२ में पाँच छन्दों का और शिशुपालवध में^३ दस छन्दों का कुलक प्रयुक्त हुआ है। तीन छन्द के सांद्रानतिक को विशेषक और तिलक संज्ञा भी दी गई है। रघुवंश के तेरहवें अध्याय में एक कलापक का उदाहरण आया है।^४

१—द्राभ्यां तु युग्मकं सांद्रानतिकं त्रिभिर्दिष्यते । कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् ।

साहित्यदर्पण, ६ परि. ३१४। ३१५।

२—किरातार्जुनीय, तृतीय सर्ग, 'ततः शरच्चन्द्र' से लेकर 'मुनिभावभाषे' तक ।

३—तेन शिशुपालवधादौ दशादिभिः पद्यैः कुलकं संगच्छत इत्याद्युहनीयम् । साहित्यदर्पण, लक्ष्मीटीका, ६ परि. ३१५ श्लोक ॥

४—क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलेषुक्तामयो यष्टिरिवानुविद्धा ।

अन्यत्र साला सितपंकजानामिन्दोरैरुत्खचितान्तरेव ॥५४॥

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बरसंसर्गवतीव पंक्तिः ।

अन्यत्र कालागुरुवत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥५५॥

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।

अन्यत्र शुभ्रा शरवभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥५६॥

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य ।

पश्यानवद्यांगि ! विभाति गंगा, भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥५७॥

कालिदास, रघुवंश, १३ अ. ॥

प्रबन्ध काव्यों में ऐसे प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुए हैं। तुलसी के मानस से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, यथा, प्रारंभ में 'बंदउँ गुहाद' से 'बसकरनी' तक। मुक्त छन्दों के साथ आधुनिक भावच्छन्दों के विश्लेषण सहित उदाहरण आगे दिए जायेंगे। यहाँ उनकी प्रमुख विशेषताओं की सूची दी जाती है।

(१) भावच्छन्द अन्त्यानुप्रासयुक्त एवं मुक्त छन्द के बीच में अवस्थित है।

(२) यद्यपि इसका निश्चित लयाधार रहता है, पर बाह्याकृति या पंक्ति (चरण)-संख्या अनिश्चित है, जो कि कवि की भावानुभूति एवं कला पर निर्भर है।

(३) इसमें छन्द पदान्तरप्रवाही (Run-on—Benjamement) रहता है।

(४) छन्द के विभिन्न स्थानों पर भाव के अनुकूल यतियाँ रहती हैं, जिसका स्थान गद्य विराम चिन्हों की भाँति अर्थ के आधार पर कंठ द्वारा निर्धारित होता है।

(५) भावच्छन्द अवतरण (Paragraph) का सा रूप धारण कर लेता है, जिसमें अर्थमय भाव-विस्तार ही रूप की सूचना देता है। इसे 'दीर्घच्छन्द' भी कह सकते हैं, क्योंकि यह सामान्य छन्द के रूप से सदैव बड़ा ही होता है।

(६) इसमें कवि को छन्दमंडल की वृहत्तर एवं वृहत्तम परिधि-विस्तार का सहज अवकाश रहता है।

(७) आपादशीश रत्नसंचार की भाँति भावच्छन्द में भाव आद्यन्त संचरण करता है और समग्रता से संगीत-सुषमा विकीर्ण करता है।

(८) गंभीर, उदात्त एवं ओजोमय भाव एवं क्षिप्रगामी कथानक के लिए भावच्छन्द अत्यन्त उपयोगी होता है। इसके लिए लयाधार वशिक होना चाहिए। यदि इस छन्द में कोमल भाव की अभिव्यक्ति करनी हो, तो मात्रा-छन्द को लयाधार बनाना चाहिए।

(९) भाषा-श्रृंगार के लिए अन्तःश्रुतिप्रस और यमक की वर्ण-योजना सहायक होती है।

(१०) इसका अन्त लयाधार की सम्पूर्णता की अपेक्षा नहीं करता और प्रारंभ के लिए लयाधार के आदि स्वर-क्रम की आवश्यकता नहीं है।

(११) इसमें कई व्यक्तियों की चालों को सम्बद्ध एवं विच्छिन्न करने का सुवीता रहता है, अतः गीति-नाट्य में इसका प्रयोग अधिक सफलता प्रदान करता है।

'भावच्छन्द' की इतनी ही निश्चित विशेषताएँ नहीं हैं, छन्द-सौपम्य के हेतु नवीन भावनाशाली कवि अपनी कला से इसकी गरिमा एवं विशेषत्व में परिवर्द्धन ही करते रहेंगे।

एक उदाहरण से ये लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित हो जायेंगे :—

अचल समाधि रही, बाधाएँ मिला गईं।

देवि, वह दिव्य दृष्टि पाकर ही वे उठे,

जिसमें समस्त लोक और तीनों काल भी

दर्पण में जैसे, उन्हें दीख पड़े, सृष्टि के

सारे भेद खुल गये, चेतन का, जड़ का,

कोई भी प्रकार-व्यवहार नहीं जा सका।

दुःख का निदान और उसकी चिकित्सा भी
ज्ञात हुई। जन्म और मृत्यु के रहस्य को
जानकर देव स्वयं जीवन्मुक्त हो गये।
और, धर्म-चक्र के प्रवर्तन के साथ ही,
दूसरों को भी वे मुक्ति-मार्ग में लगा रहे^१।

बँगला भाषा में 'मेघनाद-बध' और 'पलासीर-युद्ध' में पयार छन्द के आधार पर
निर्मित भावच्छन्दों का प्रयोग हुआ है।^२

छन्द और रस

मनुष्य के संस्कारों या वासनाओं का जागरण या तो स्वतः काम (इच्छा) से प्रेरित होता है या प्रकृति की किसी स्थिति विशेष एवं वस्तु के सम्पर्क से। व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले समाज और उसके वातावरण को रसवादियों ने 'विभाव' नाम दिया है। स्वतः जगने वाली वृत्तियाँ अमरत्वाकांक्षा (जिजीविषा) एवं आत्म-विस्तार से सम्बन्ध हैं। विभाव के द्वारा उद्बुद्ध अन्य वृत्तियाँ आत्मोद्धार और लोकमंगल की भावना से सम्बन्ध रखती हैं। व्यक्ति के ये संस्कार उसके पोषक वातावरण के अनुरूप बनते हैं। समाज में प्रचलित और स्वीकृत नैतिक मूल्य, जीवन-दर्शन, लौकिक समृद्धि एवं पारलौकिक कल्पनाओं के प्रभाव से संस्कारों का निर्माण होता है। इन संस्कार-वृत्तियों को रस रूप देना कवि का कर्म है। कवि जितना ही जीवन की गहराइयों से परिचित होगा और उसकी अभिव्यंजना जितनी ही कुशलता से कर सकेगा, रस-निष्पत्ति उतनी ही सफलता से होगी। रससिद्ध कवीश्वरों के समय में ही विशाल छन्दोवैविध्य एवं छन्द के प्रौढ़ प्रयोगों के दर्शन होते हैं, यह केवल आकस्मिक संयोग की बात नहीं है। छन्द और रस का अभिन्न सम्बन्ध है। किसी युग के छन्दोवैभव को स्पष्ट करना, उस युग की साहित्यिक अभिरुचि एवं सामाजिक गरिमा का इतिहास अंकित करना है।

समाज के पास रस-तत्त्व को जागरित एवं उद्बुद्ध करने के अनेक साधन हैं, (१) मूर्तिकला (२) चित्रकला (३) संगीत कला (४) एवं साहित्य विशेषतः कविता। मूर्तिकला भाव का स्थूल रूप से आलम्बन बनती है, एवं चित्रकला सूक्ष्म रूप में। चित्रकला की भावभंगी अधिक स्पष्ट एवं तीव्र होती है। इसमें जीवन का एक व्यापार या प्रकृति का दृश्य, जो जीवन के मनोराम से सम्बद्ध है, स्वल्प आधार पर मोहक रूप में अंकित किया

१ — गुप्त, यशोधरा, पृ. १२१, १२२।

२ — विशेष विवरण के लिये प्रस्तुत ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय में 'अनुकान्त छन्द' शीर्षक देखिये।

जाता है, परन्तु इसमें उद्दीपन के नैरन्तर्य का अभाव खटकता रहता है। साथ ही साथ चक्षुरिन्द्रिय मात्र ही भाव ग्रहण में तत्पर रहती है, अतः तीव्रता कम होती है, केवल इंगनों के द्वारा दीप्त कल्पना ही इसकी ग्रहण-संवेदना की तीव्रता बढ़ाती है। नैरन्तर्य का अभाव संगीत में नहीं होता। इसकी निरन्तरवाही विभिन्न मूर्छनाओं से विभिन्न भावों का जागरण होता है, परन्तु प्रथमतः इसके ग्रहण में उच्च वा सूक्ष्म कलात्मक परिष्कार की अपेक्षा है, अपरतः स्वरों की अल्प परिधि में विषयगत समस्त व्यापार नहीं समा सकते। अन्य इन्द्रियों के प्रत्यक्षीकरण की बात तो दूर, केवल श्रवणेन्द्रिय-सम्बद्ध व्यापार-सिन्धु-गर्जन, उत्ताल तरंगों के उत्थान-पतन की ध्वनि, आँधी का हवाहाकार एवं एटम बम का महान् विस्फोट-गर्जन तथा व्योम-विक्षोभ, संगीत के स्वरों में नहीं उतर सकता। साथ ही साथ सामान्य अर्थपरक मानवीय रागों के अभाव में ग्रहणशीलता विचलित एवं अस्थिर होती रहती है। कविता इन सभी अभावों से मुक्त होती है। इसका छन्द-संगीत और शब्द समायोजन मानवीय मनोरागों के अर्थपरक प्रतीकों का वहन करता है। शब्द समस्त इन्द्रियों के संवेदना-संस्कारों को उद्बुद्ध करने में सफल होते हैं और छन्द उस शब्दावली को अपनी स्वरधारा में बहाकर सरलता और सुकरता से अनुभव-शृंखला को सवेग गतिमान तथा भाव को परिपुष्ट करके रस की निष्पत्ति करता है। छन्द, शब्द के अर्थानुवाद में ही मन की सहायता नहीं करता है, अपितु तीव्र संवेदनाओं को संपटित करके संगीत में दोलायमान करता हुआ मनोव्यापार के श्रम को भी दूर करता है। छन्द (लयच्छन्द) संगीत का एक रूप है, अतः वह अर्थरूप (भाषा) को संगीत-स्वर की संवेदना से भी युक्त करता है। छन्द स्वयं संगीत की भाँति स्वरूप में ही भाव को दीप्त कर सकता है। विभिन्न छन्दों का स्वरक्रम किस प्रकार विभिन्न भावों एवं रसों की सिद्धि करता है, यह छान्दसिक (Prosodist) का महत्त्वपूर्ण अध्ययनीय विषय है।

छन्द और रस का प्रगाढ़ सम्बन्ध प्रत्येक युग के कवियों को विदित रहा है। वैदिक युग में विभिन्न भावों के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग होता था, फिर भी ऋषियों ने अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् और जगती जैसे सर्वरससिद्ध छन्दों की परख कर ली थी। शीनक ने त्रिष्टुप् और जगती छन्दों के बारे में कहा है कि समस्त जीवों, मनोगतियों और स्पर्श, गन्ध, रस तथा शब्द (समस्त प्रकृति-व्यापार और इन्द्रियानुभव) इन दोनों छन्दों में भक्ति के साथ अन्तर्भूत हो जाते हैं।^१

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में विभिन्न स्थितियों और घटनाओं के वर्णन के लिए

१—सर्वाणि भूतानि मनोगतिश्च, स्पर्शाश्च गन्धाश्च रसाश्च सर्वे ।

शब्दाश्च रूपाणि च सर्वमेतत्, त्रिष्टुप्जगत्या समुपेति भक्त्या ।

ऋक्-प्रातिशाख्य, पाताल १८, ३२ वलीक ।

विभिन्न छन्दों के प्रयोग का विधान किया है। वीर के भुजदंडों के वर्णन में स्रग्धरा और नायिकावर्णन में वसन्ततिलकादि (कोमल छन्दों) का प्रयोग होना चाहिए।^१

शृंगार रस में रूप-दीपक-संयुक्त (अलंकार) आर्षाओं और वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए। उत्तरोत्तर वीर रस में जगती, अतिजगती, संकृति वर्ग के छन्दों का; युद्ध-संफेद में प्रकृति वर्ग के छन्दों का, कण्ठ में शक्वरी तथा अतिवृत्ति छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। जिन छन्दों का वीर रस में प्रयोग होता है, जन्हीं का रीढ़ में भी प्रयोग होना चाहिए। शेष छन्दों का प्रयोग रस के अनुकूल करना चाहिए।^२

क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' के तृतीय परिच्छेद में काव्य-रस के अनुसार और वर्णन के अनुगुण से वृत्तों का विनियोग बताया है। शास्त्रकाव्य में दीर्घवृत्तों का प्रयोग होना चाहिए। आक्षेप, क्रोध, धिक्कार में पृथ्वी छन्द और वर्षाप्रवास में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग करना चाहिए।^३ मन्दाक्रान्ता का वर्गीकरण निश्चित ही 'मेघवृत्त' के उदाहरण से किया गया है, अतः सिद्ध है कि छान्दसिक लोग पहले के प्रयोगों को देखकर वर्गीकरण में प्रवृत्त हुए हैं।^४ प्रबन्ध में यथास्थान निर्दोष गुणसंयुक्त सुवृत्त का प्रयोग मोतियों की तरह शोभा पाता है।^५

१—वीरस्य भुजदंडानां, वर्णने स्रग्धरा भवेत्।

नायिकावर्णने कार्यं वसन्ततिलकादिकम् ॥

भरत नाट्यशास्त्र, चतुर्विंश अध्याय, ११२, कात्यायन मत ॥

२—रूपदीपकसंयुक्तमार्यावृत्तसमाश्रयम् ।

शृंगारे तु रसे कार्यं भृद्वृत्तं तथैव च । १०६ ।

उत्तरोत्तरसंयुक्तं वीरे काव्ये तु यदभवेत् ।

जगत्यातिजगत्या च संकृत्यादीनि योजयेत् । १०७ ।

तथैव युद्धसंफेदी प्रकृत्यां संप्रयोजितौ ।

कण्ठे शक्वरी चैव तथा चातिवृत्तिः स्मृतः । १०८ ।

यद्वीरे कीर्यते छन्दस्तद्वीरे सम्प्रयोजयेत् ।

शेषाणामर्थयोगेन छन्दः कार्यं तथा रसः । १०९ ।

आचार्य भरत, नाट्य-शास्त्र, अध्याय, १६ ॥

३—काव्यरसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च । कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् । ७ ।

शास्त्रकाव्येऽतिदीर्घानां वृत्तानां च प्रयोजनम् ।

साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वीरक्षणा । प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते । २१ ।

४—सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रयत्नति । सदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगाङ्गना । ३४ ।

५—प्रबन्धसुतरां भाति यथास्थान विवेचकः । निर्दोषः गुणसंयुक्तः सुवृत्तमीवितकरिव । १८ ।

सुवृत्ततिलक, तृतीय परिच्छेद ।

आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रकाश में छन्द श्रीर रस का विवेचन किया है, 'कसण' में मदाक्रान्ता श्रीर पुष्पितागा, शृंगार में पृथ्वी, वीर में स्रग्धरा, शिखरिणी, शार्दूल-विक्रीडिता श्रीर हास्य में दोषक का प्रयोग अनुकूल है^१ ।

अग्नि-पुराण के मत से प्रबन्ध के लिए ११, १२, १३, १४, १५ और १६ वर्ण वाले छन्द—त्रिष्टुभ्, जगती, अतिजगती, क्षयवरी, अतिक्षयवरी, अष्टि वर्ण के छन्द श्रीर वृत्तान्त बदलने पर पुष्पिताग्रा आदि भिन्न छन्दों का प्रयोग होना चाहिए और कोमल भाव वाले सर्ग में मात्रा छन्दों का प्रयोग भी अभिन्नवन्दीय है^२ ।

आचार्य भोज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' में 'गति' शब्दालङ्कार द्वारा 'अभिन्नरूप-छन्दस्त्व' का समर्थन किया है^३ टीकाकार रामसिंह ने गति के प्रसंग में लघु-गुरु अक्षर-क्रम के आधार पर द्रुम, मध्य और विलम्बित गतियों तथा उनके मिश्रित प्रभेदों का विवेचन किया है । इस गति विवेचन में छन्द और भाव के सम्बन्ध का आभास मिलता है ।

एक सर्ग में प्रायः एक ही मूल भाव होता है, अतः आचार्य विश्वनाथ ने एक सर्ग में एक वृत्त के प्रयोग का निर्देश किया है और आगामी भाव-सर्ग के आने की सूचना को नवीन छन्द से सूचित करने का परामर्श दिया है । यदि सर्ग में विभिन्न भावों का संयोग हो तो विभिन्नतापूर्ण छन्दोयोजना पर उन्हें आपत्ति भी नहीं^४ । आचार्य बंडी ने भी विभिन्न भावों के लिए विभिन्न वृत्तों के प्रयोग को स्वीकार किया है^५ । पश्चिमी छन्दशास्त्र के पंडित

१—अत्रेवंबोध्यं । कसणे मन्दाक्रान्ता पुष्पिताग्रादीनामेधानुगुणत्वम् । शृंगारादौ पृथ्वी, स्रग्धरादीनां वीरादौ, शिखरिणीशार्दूलविक्रीडितादीनामानुगुण्यम्, हास्ये च दोषकस्य प्रतिपदविच्छेदित्वेननिर्गुण्यमिति, एत एव तत्तत्प्रसे तत्तच्छब्दो नियम्य शेषानामनुयोगेन' इति भरतौऽप्याह ।

॥ काव्य-प्रकाश ॥

२—शक्यव्यातिजगत्यातिशक्यव्या त्रिष्टुभातथा । २६।

पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिर्जनैश्चारुभिः । २७।

मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम् । २७।

अतिशक्यविरिकाष्टिभ्यामेकसंकीर्णकैः परः ।

मात्रयाऽप्यपराः सर्गाः प्राशस्त्येषु च पश्चिमाः । २८।

अग्निपुराण, सर्ग ३३७ ॥

३—पद्यं गद्यं च मिश्रं च काव्यं यत्सा गतिः स्मृता ।

अथौ चित्यादिभिः सापि वागलङ्कार इष्यते ॥

सरस्वती कण्ठाभरण (२, १८)

४—एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेन्यवृत्तकैः । नानवृत्तमयः पद्यापि सर्गः कदाचन दृश्यते ।

साहित्यदर्पण, परि. ६, आचार्यविद्वनाथ ।

५—सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तरूपेण लोकरञ्जनम् । काव्यादर्श, परिच्छेद १, १६, बंडी ॥

भी भावाभिव्यक्ति में छन्दरूपा का विशेष महत्त्व स्वीकार करते हैं। जेडेर महाशय का कहना है कि यदि कवि ने सुन्दर छन्द (रूप) का चयन किया है, तो वह उसकी अद्भुत सहायता करेगा, क्योंकि अभिव्यञ्जना में रूप और भाव साथ ही साथ चलते हैं^१। प्रसिद्ध छन्दशास्त्री लैसल्स एबरक्राम्बी छन्द की भावात्मकता के विषय में कहते हैं, “यह कला का सामान्य नियम है कि प्रभावात्मकता में अभिव्यञ्जकता भी होती है। उदाहरणार्थ, यदि छन्द विशेष मानसिक भाव को दीप्त कर सकता है, तो वह निदिष्ट अनुभूतियों का अभिव्यञ्जक भी होगा, क्योंकि इस माध्यम से कवि अपने अनुभवों को श्रोता के मन में जागरित कर सकता है। यह कर्म वाह्याभिव्यञ्जना है^२।”

भाव की मूर्तिमत्ता में अर्थ और विषय अन्तर्हित रहते हैं। उस समय उसका एक अखंड रूप होता है, और अभिव्यञ्जना-शैली छन्द-प्रतिबिम्ब में उसका अवतरण करती है। भाव का मन में जो रूप होता है, छन्द में तदनुकूल स्वरूप धारण करता है। अपने सूक्ष्म रूप में जिस वस्तु में जिस प्रकार के विकसित होने के तत्त्व होंगे, उसी रूप में उसे विकसित किया जा सकता है। तुलसी और वट के बीज समान होते हैं, पर उनमें विकसित होने के तत्त्व अपने वंश के अनुकूल होते हैं। तुलसी के बीज को वट के रूप में और वट को तुलसी के रूप में नहीं पल्लवित किया जा सकता। जामुन के बीज को कोई आम के फल के रूप में नहीं विकसित कर सकता, क्योंकि प्रकृति का नियम इसमें बाधक बनता है। इसी प्रकार भाव का रूप अपने सूक्ष्म रूप में विशेष प्रकार के रूप धारण करने की शक्ति रखता है, अन्यथा प्रयत्न उसको विद्रूप और विकृत ही करेंगे। छन्द ही सूक्ष्म रस के रूप को धारण करता है, इस बात को रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मोहितलाल मजूमदार ने भी स्पष्ट किया है^३।

1—“If he choses his form well, it will assist him wonderfully so that form and idea grow together with that kind of expression.” Page 120.

Rhetoric and Proseody—By L.R.M. Brander.

2—It is general law of art, that the effective is also the expressive. If, for example, meter can effect certain feelings in the mind, then the metre will be the expression of these feelings, since by its means the poet, who experiences, can provoke them in the hearers mind and to do that is his expression on the external side.” Page 15.

Manual History of English Prosody,

By L. Abercrombie.

३. अ—काव्य साहित्य केवल रस-साहित्य, ता रस साहित्य साधारणतः भाषाय शब्दगुलि अर्थवहन करे, किन्तु छन्द तारा रूप ग्रहण करे।

रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, पृष्ठ. १४६।

ब. छन्द के उपादान करिया ये विविध छाप निर्माण करा संभव, भाव के रूप दिवार पक्षे ताहारओ सामर्थ्य कि रूप....

पृ. १४४, बाङ्ला कवितार छन्द, मो. ला. मजूमदार।

छन्द का वैचित्र्य और अपवाद भाव की प्रेरणा से ही होता है। श्रीधर महीदय ने कहा है: छन्दोवैचित्र्य एकरूपता की विरसता को समाप्त करके अभावपूर्ति का लक्ष्य ही नहीं सिद्ध करता, वरंच भावपरिवर्तन की सूचना और विचार विशेष के आशय से शब्द-सन्तुलन करके विधेयात्मक योग भी देता है^१।

सत्येन्द्रनाथ ने रवीन्द्रनाथ के बारे में कहा है कि छन्द-शिल्पी के रूप में उन्होंने छन्दोवैचित्र्य की सृष्टि नहीं की, उनके कवि-मन के आवेग के सुर ने ही छन्द में वैचित्र्य उत्पन्न किया^२।

अंगरेज कवियों ने भी विभिन्न भावों के लिए विभिन्न छन्दों को चुना है। एक प्रकार के विषय को एक ही प्रकार के छन्द में लिखने की वहाँ बहुत दिनों तक परम्परा रही। इन छन्दों और विभिन्न रसों के योग का विश्लेषण करने से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं^३:—

बैलेड (Ballad)—ये प्राचीन जनगीत हैं। इसमें आत्मा की भाँति प्रेम और युद्ध के मिश्रित गीत गाये जाते हैं। यह छन्द वर्णन-प्रधान है। इसमें महापुरुषों की यशोगाथा या स्तुति होती है।

एलेजी (Elegy)—ये कसूर गीत हैं। इसमें किसी के मरण के पश्चात् जीवन और विशेष घटनाओं तथा कवि की वेदनाओं का वर्णन होता है।

टेट्रामीटर (Tetrametre)—यह छन्द कथात्मक प्रवेगशील और संवेदनाशील होता है। इसमें कसूर रस सम्यक् रूप से व्यक्त होता है। इसके युग्मक अन्त्यानुप्रास में तीव्र और संवेदनशील भाव अधिक कुशलता से व्यंजित होते हैं।

हीरोइक वर्स (Heroic Verse) - यह पाँच लघुगुरु उच्चरित वर्णों (Iambic Pentametre) से बनता है, और प्रबन्ध काव्यों के लिए सर्वाधिक प्रचलित और उपयुक्त छन्द है। वीरों की यशोगाथा वर्णन की परम्परा से ही इसे वीर छन्द

1—.....the irregularities are introduced not merely for the negative purpose of avoiding monotony, but also for the positive end of marking some emotional changes or emphasizing some thought movement, as well as to gain definite verbal harmony.

The art of Versification and the technicalities of poetry. Page 204,
By R. B. Brewer.

२. रवीन्द्रनाथ सत्येन्द्रनाथ के मते छन्दःशिल्पी रूपे छन्दोवैचित्र्य सृष्टि करने नाह, कविमनोरो आवेगोरो सुरो छन्दो वैचित्र्य रचना करियाछे। पृ० १६२।

साहित्योर प्रसंग, श्री कालिदासराय।

३. अंगरेजी छन्दःशास्त्र के ग्रन्थों से संगृहीत ॥

की संज्ञा दी गई है। इसमें गंभीर, ओजोमय, उदात्त भाव एवं विशाल कल्पनाएं अपने समस्त वैभव से स्फुटित होती हैं। यह पर्यावृत्ति-प्रधान पाठशैली का छन्द है, और नाटकीय चर्चाएँ एवं पदान्तर प्रवाही भावच्छन्द-निर्माण में कुशल है।

सॉनेट (Sonnet)—यह चतुर्दश पदों का बहुतम पदबन्ध है, जो अष्टक (क ख ख क क ख ख क या क ख क ख ग घ ग घ क्रम से अन्त्यानुप्रास) और पष्ठक (ग ख ग ख ग या ग घ ग घ ग घ या ग घ घ च ग च या च छ ज, च छ ज क्रमिक अन्त्यानुप्रास) के योग से बनता है। इसमें तीव्रतम करुणा और प्रेम की घनीभूत अभिव्यक्ति होती है। वेदना, वासना, हर्ष और शोक की अनुभूतियाँ सुदृढ़ पदबन्धके संयत संगीत में अखंडरूप से फूटती हैं। यह छन्द शृंगार रस का प्रधान मुक्तक रहा है।

ओड (Ode)—यह सम्बोधि-गीति है। संयत संगीत के द्वारा ओड किसी उच्च सम्मान्य या आराध्य के प्रति प्रशंसा, अभ्यर्थना अथवा तदीय गरिमा को व्यक्त करता है। पिण्डारिक ओड का प्रयोग, यज्ञस्थली में ऋचाओं के तुल्य सामूहिक रूप से, नृत्य के साथ किया जाता था।

ब्लैंक वर्स (Blank Verse)—यह अन्त्यमुक्त पदान्तरप्रवाही भावच्छन्द है। इसका लयाधार निश्चित होता है, जो गंभीर ओजोमय भाव को गीतात्मक भाषण-शैली में व्यक्त करता है।

फारसी और तदनुगामिनी उर्दू भाषा में भी विभिन्न रसों के लिए विभिन्न शैली के छन्दों का समायोजन हुआ है।

रूबाई^१ (अन्त्यक्रम अ, अ, ब, ब, यह छन्द चार चरणों का मुक्तक है, जो आर्या और दोहे की भाँति शृंगार और प्रेम में प्रयुक्त होता है। इसमें केवल १० कोमल लयखंडों (अरकान) का ही प्रयोग होता है। रूबाई में उमरखइयाम के प्रेम-गीत प्रसिद्ध हैं।

ग़ज़लः—इसका भावार्थ ही “रमणी-संलाप” है। इसमें शृंगार और करुणा रस अधिक सफलता से निष्पन्न होते हैं। प्रेम, सौंदर्य, गरिमा, उन्माद, विलास, आशा, निराशा, मान और समर्पण, पतझड़ और बसन्त, दम्पति-संयोग, प्रणय, विरह और करुणा के भाव इसमें प्रभावात्मक रूप से प्रकट होते हैं। इसका अन्त्य क्रम (अ, अ, ब, अ, स, अ.....५ चरणों से ३४ चरणों तक यथा खवि विस्तार हो सकता है) निश्चित है। इसके अन्तिम चरण को ‘मकता’ कहते हैं।

भसन्त्रीः—इसका शब्दार्थ “युग्मक” है। यह चौपाई शैली का युग्मक अन्त्यानुप्रास-सम्पन्न अनिश्चित विस्तार का छन्द है, और प्रबन्धकाव्य की अखंड धारा के लिए उपयुक्त है। इसमें केवल सात लय खंडों के प्रयोग का विधान है।

क़सीदाः—यह स्तुति छन्द है। इसमें व्याज-स्तुति और व्याज-निन्दा का विषय आता है। यह छन्द वीररस के सभी भेदों के लिए उपयुक्त है।

हिन्दी में आचार्य जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' ने 'काव्यप्रभाकर' में चौपाई, दोहा, सोरठा, छप्पय, सवैया और कवित्त को सभी रसों के अनुकूल माना है^१। डा० जानकीनाथ सिंह 'मनोज' ने चौपाई, दोहा, सोरठा, छप्पय, सवैया, कवित्त, अमृतध्वनि, भुजंगप्रयात, हरिगीतिका, मोतियदाम, पद्धरि, रोला, वीर, विभंगी, छोटक, और नाराच—इन १६ छन्दों की रसानुकूलता का विवेचन किया है^२।

आधुनिक हिन्दी में अनेक नये विषयों पर कवियों की लेखनी चली है। नवीन भावों और रसों का भी योग हुआ है। इसके लिए कवियों ने नवनव छन्दों की उद्भावना की है। यह युग छन्द की दृष्टि से इतना समृद्ध है कि केवल प्राचीन निश्चित छन्दों से परिचित व्यक्ति के लिये गायाजाल सा प्रतीत होता है। विभिन्न रसों में किन किन प्राचीन विकसित एवं नवीन छन्दों का प्रयोग किया गया है और उनमें उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है, यह विवेचनीय विषय है।

विभिन्न रसों में छन्दों की अनुकूलता:—

शृंगार:—इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्दान्तान्ता, शार्दूलविक्रीडित, वंशस्थ, मत्तगयंद, दुर्मिल, मदिरा, घनाक्षरी।

आर्या, गीति, उद्गीति, विष्णुपद, सरसी, सार, महरठा माधवी, ताटक, मानव (१४ मात्रा), वीर, दोहा, चौपाई, रोला, राधिका, हरिगीतिका, पीयूषवर्षी, प्लवंगम, अल्लि, शृंगार, पद्धति, पादाकुलक, योग, हाकलि, लीला, चौपाई, त्रिलोकी, सखी, वीर, विधाता, रूपमाला, मधुमालती, माधवमालती, सरस्वती, कामिनी, दिग्गल।

वीर और रौद्र रस:—शार्दूलविक्रीडित, भुजंगप्रयात, सगंधरा, पंचचामर, वंशस्थ, शिखरिणी, वीर, अरिल्ल, छप्पय, रोला, हरिगीतिका, अमृतध्वनि, मोतियदाम, कुंडलिया, नाराच, पद्धरि, छोटक, घनाक्षरी, तिलोकी, पद्धरि और घनाक्षरी पर आश्रित मुक्त छन्द।

करुण:—मन्दान्तान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, वंशस्थ, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, हरिणी, शालिनी, रथोद्धता।

वैतालीय, आर्या, पुष्पिताम्रा, मानव, ताटक, हाकलि, पीयूषवर्षी, हरिगीतिका, रूपमाला, सखी, प्लवंगम, रोला, चौपाई, विष्णुपद, सार, पादाकुलक, त्रिलोकी, सुमेरु, दुर्मिला, विधाता, सरसी, शृंगार, चौपाई, मधुमालती, सरस्वती, कामिनी, माधवमालती, सवैया।

१—काव्यप्रभाकर, पृ० ६५७।

२—"Contribution of Hindi Poets to Prosody" (manuscript) Ch. Motre—
Subject—Rasa and alankar'

हास्य :—दोधक (? मम्मट), कवित्त, सबैया, चोटक (? भानु, वामन), हरि-
गीतिका, शृंगार, चौपाई, ताटंक, योग, सरसी, माधवी ।

वीभत्स :—रोला, घनाक्षरी, छप्पय, दोहा, चौपाई, सबैया । इस युग की कविता
में इस रस का प्रयोग कम ही हुआ है ।

भक्ति ^१ :—शिखरिणी, अनुष्टुभ्, वसन्ततिलका, तोटक, शादूलविक्रीडित, स्रग्धरा,
भुजंगप्रयात, इन्द्रवज्रा, पंचचामर ।

चौपाई, दोहा, पद, भजन (विष्णुपद, सार, सरसी, श्रीरूपमाला पर आधृत)
नाराच, रोला, त्रिभंगी, दुमिल, चौपाई, अरिल्ल, ताटंक, दंडक, भूलना, हरिगीतिका,
पद्धरि, शृंगार ।

वात्सल्य ^२ :—पद, ताटंक, चौपाई, चौपाई, अरिल्ल, हाकलि, सखी, शृंगार, सार,
घनाक्षरी, आर्पागीति, मिताक्षरी ।

शान्त :—मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, वंशस्थ, दोहा, चौपाई, सोरठा,
रोला, चौपदा, रूपमाला, कुंडली, सखी, शबब (पद), हरिगीतिका, मोहिनी, त्रिभंगी,
भूलना, ताटंक, अरुण, पद्धरि, दंडक, वीर, मरहठा माधवी, सरसी, चतुषादी, सरस्वती,
शक्तिपूजा, योग, गोपी, मानव और घनाक्षरी ।

प्रकृति चित्रण और रूप चित्रण :—द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, वंशस्थ, रोला,
तिलोकी, ताटंक, पादाकलक, चतुष्पद, पीयूषवर्षी, राधिका, सार, रूपमाला, सरसी,
शृंगार, चौपाई, शृंगारहार, (१६, १२, अंतः) रोला, मानव चतुष्पदक (१५ मात्रा, अन्तः)।

हिन्दी के कुछ कवियों ने स्वयं छन्दों की विषयानुकूलता के सम्बन्ध में अपने विचार
प्रकट किये हैं । यह विचार विश्लेषणात्मक न होकर कवि के प्रातिभज्ञान एवं हृदय-संवेदना
के परिचायक हैं । श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने पल्लव के प्रवेशक में कई छन्दों के विषय में
अपना मत प्रकाशित किया है :—

(१) “सर्वैया और कवित्त छन्द भी मुझे हिन्दी की कविता के लिए अधिक उपयुक्त
नहीं जान पड़ते । सर्वैया में एक ही सगण की आठ बार पुनरावृत्ति होने से, उसमें एक
प्रकार की जड़ता और एकस्वरता (monotony) आ जाती है ।” ❧

(२) “कवित्त छन्द, मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का और सजात नहीं, पोष्य
पुत्र है, न जाने, यह हिन्दी में कैसे और कहाँ से आ गया, अक्षर मात्रिक छन्द बंगला में
मिलते हैं, हिन्दी के उच्चारण संगीत की वे रक्षा नहीं कर सकते । कवित्त को हम
संलापोचित (colloquial) छन्द कह सकते हैं ।” ❧

१:२—नबीन काव्यशास्त्री और मनोविज्ञानी भक्ति और वात्सल्य को भी रस मानते हैं ।

(१), (२)—पल्लव, प्रवेशक, २५, २५ पृ० ।

❧—इन मतों से लेखक सहमत नहीं है ।

(३) “हिन्दी में रोला छन्द अन्त्यानुप्रासहीन कविता के लिए विशेष उपयुक्त जान पड़ता है, उसकी साँसों में प्रशस्त जीवन तथा स्पन्दन मिलता है। उसके तुरही के समान स्वर से निर्जीव शब्द भी फड़क उठते हैं। ऐसा जान पड़ता है, उसके राजपथ में मेला लगा है, प्रत्येक शब्द ‘प्रवालशोभा एवं पादपानां’ तरह तरह के संकेत और चेष्टाएँ करता, हिलता झुलता आगे बढ़ता है।”

(४) “भिन्न भिन्न छन्दों की भिन्न-भिन्न गति होती है, और तदनुसार वे रस विशेष की सृष्टि करने में सहायता देते हैं। रघुवंश में ‘अजबिलाप’ का वैतालीय छन्द करण रस की अवतारणा के लिए कितना उपयुक्त है? जैसे अधिक अद्भुत के कारण उसका कंठ मद्गद हो गया हो, भर गया हो। यदि विहाग राग की तरह उस छन्द का बिभ भी कहीं होता, तो उसकी आँखों में अवश्य आँसुओं का समुद्र उमड़ता हुआ मिलता। मालिनी छन्द में भी करण आह्वान अच्छा लगता है।”

(५) “हिन्दी के प्रचलित छन्दों में पीयूषवर्णण, रूपमाला और सखी, प्लवंगम छन्द करण रस के लिए मुझे विशेष उपयुक्त लगते हैं। पीयूषवर्णण की ध्वनि से कैसी उदासीनता टपकती है। मरुभूमि में रहनेवाली निर्जन तटिनी की तरह, जिसके किनारे पत्र-पुष्पों के शृंगार से विहीन, जिसकी धारा लहरों के चंचल कलख तथा हास परिहास से वंचित रहती, यह छन्द भी वैधव्यवेश में, अकेलेपन में सिसकता हुआ श्रान्त जिह्मगति से अपने ही अश्रुजल से सिक्त थोरे थोरे बढ़ता है। हरिगीतिका छन्द भी करणरस के लिए अच्छा है।”

(६) “रोला और रूपमाला छन्द दोनों चौबीस मात्रा के हैं, पर इन दोनों की गति में कितना अन्तर है? रोला जहाँ उरसाती नाले की तरह अपने पथ की रुकावटों को लाँघता तथा कलनाद करता हुआ आगे बढ़ता है, वहाँ रूपमाला दिन भर के काम धन्ध के बाद अपनी ही थकावट के बोझ से लदे हुए किसान की तरह, चिन्ता में डूबा हुआ नीची दृष्टि किए, ढीले पाँवों से जैसे घर की ओर जाता है।”

(७) “राधिका छन्द में ऐसा जान पड़ता है, जैसे इसकी क्रीड़ा-प्रियता अपने ही परवों में ‘गत’बजा रही हो। जैसे परियों की टोली परस्पर हृद्य पकड़, चंचल नूपुर नृत्य करती हुई, लहकों की तरह गंग-अंगियों में उठती झुकती, कोमल कंठ स्वरों में गा रही हो। इस छन्द में जितनी ही अधिक लघु मात्राएँ रहेंगी, इसके चरणों में जतनी ही मधुरता तथा नृत्य रहेगा।”

(८) “सोलह मात्रा का अरिल्ल छन्द भी निर्भरिणी की तरह कल कल, छल छल, करता हुआ बढ़ता है। इसके तथा चौदह मात्रा के सखी छन्द की गति में कितना अन्तर है? सखी छन्द के प्रत्येक चरण में अन्त्यानुप्रास अच्छा नहीं लगता, दूर दूर चुक रहने से

यह अधिक करण हो जाता है, अन्त में मरण के बदले भरण अथवा नगण रखने से इस की लय में एक प्रकार का स्वरभंग आ जाता है, जो करण का संचार करने में सहायता देता है। पन्द्रह मात्रा का चौपई छन्द अनमोल मोतियों का हार है, बाल-साहित्य के लिए इससे उपयुक्त छन्द मुझे कोई नहीं लगता। इसकी ध्वनि में बच्चों की सासें, बच्चों का कंठरस मिलता है, बच्चों की ही तरह इधर उधर देखता हुआ, अपने को भूल जाता है। अरिल्ल भी बाल-कल्पना के पंखों में खूब उड़ता है।”

इस प्रकार का भावुक छन्दो-निरूपण शास्त्रीय दृष्टि से भले ही महत्त्वपूर्ण न हो, परन्तु इसमें कवि छन्द की गति को अपने हृदय के स्वरों में मिलाकर अधिक आन्तरिक प्रभावात्मक स्पर्शन को अभिव्यक्त कर सका है। कवि के प्राण, कंठ, कान और चेतना पर छन्द-संगीत का प्रभाव अविकल नाद के द्वारा पड़ता है। कवि छन्दःशास्त्र की गणित-मूलक विश्लेषक परिभाषाओं और लक्षणों से उतना काम नहीं लेता, जितना संगीत-धारा के क्रमिक उत्थान और निपात के प्रभाव से। अतः, ऐसी व्याख्याओं और प्रभावाभि-व्यंजनों का भी विशेष मूल्य है, क्योंकि इसमें बौद्धिक व्यायाम के साथ हृदय के अनुभव की भी शक्ति है। “अन्यानुप्रासमुक्त” शीर्षक में यह दिखाया जा चुका है कि अतुकान्त के “पदबन्ध” या “भावच्छन्द” में एक अखंड उदात्त ओजोमय भाव, कुशलता से व्यक्त होता है। तीव्र अनुभूतियों के विपरीत वाह्य-प्रकृति की चित्र-शृंखला या प्रबन्ध-घटना का आवेग-अनुबन्ध-वर्णन इस शैली में विशेष साफल्य प्राप्त करता है। यह छन्द वीर, रौद्र, करुण, विक्षोभ, उद्वेग, अभियान, संकल्प, आदि पौरुष भावों में अधिक शोभित होता है, विशेषतः जब लयधार वर्णित हो। यदि ऐसे छन्द में शृंगार का वर्णन होता है, तो वह स्वस्थ, मांसल, दिव्य, दृढ़स्निग्ध, उल्लास-सीम्य होता है और ऊष्म आकांक्षा, निर्भीक समर्पण तथा सशक्त स्वीकृति की सूचना देता है। “सपने का क्षीण क्षीणरूप”, “लघुलघु कम्पन”, “श्वासों के अक्षर” और “मूक मंदिर मधुर करुण” भाव उसमें शोभा नहीं पाते। कोमल भावों और क्षीण रूपों के चित्रण में मात्रिक अतुकान्त कुछ ही सीमा तक सफल हो सकते हैं।

यहाँ पर रसानुकूल मुक्त छन्दों के भी उदाहरण देना अभीष्ट है, क्योंकि निर्देश मात्र से उसके रूप को गृहीत करने में कठिनाई होगी। साथ में सामान्य लक्षण भी दिये जायेंगे, विशद विवेचना चौथे अध्याय में होगी।

वीर और रौद्र भाव कवित्त छन्द की लय पर निर्मित मुक्त छन्द में कुशल रस-निष्पत्ति करता है:—

१—कीन लेगा भार यह/ ?

कीन विचलेगा नहीं/ ?

दुर्बलता इस अस्थि/मांसकी—

ठोक कर लोहे से/परख कर वज्र से/

८ वर्ण

८ ”

८, ३=११ वर्ण

७, ८=१५ ”

प्रलयोत्का खंड के नि/कष पर कस कर/
चूर्ण अस्थिषुंज सा हैं/सेगा अट्टहास कीन/
साधना पिशाचों की वि/खर चूर चूर हो के/
धूलि से उड़ेगी किस/दुष्ट पातक्यार से/

*

आह इस खेवा की/
कीन थामता है पत/वार ऐसे अन्धड़ में/
अन्धकार पारावार/गहन नियति सा/
उमड़ रहा हो ज्योति/रेखा हीन क्षुब्ध हो/

८, ८=१६ वर्ण

८, ८=१६ ,,

८, ८=१६ ,,

८, ८=१४ = त=त

(८ + ७=१५) ,,

७ वर्ण

८, ८=१६ वर्ण

८, ७=१५ वर्ण

८, ७=१५ ,,

(पेशोला की प्रतिध्वनि, लहर; प्रसाद)

२—गोले जिनके थे गेंद/
अग्निमयी श्रीड़ा थी/
रक्त की नदी में/सिर ऊँचा छाती कर/
तैरते थे/
वीर पंचनद के स/पूत मातृभूमि के
सो गये प्रतारणा की/थपकी लगी उन्हें,
छल बल बेदी पर/आज सब सो गये ।
रूपभरी आशा भरी/वीर्य अधीर भरी,
पुतली प्रणयिनी का/बाहुपाश खोलकर,
दूध भरी दूध सी दु/लार भरी माँ की गोद/
सूनी कर सो गये/

८ वर्ण

७ वर्ण

६, ८=१४ वर्ण

४ ,,

८, ७=१५ ,,

८, ७=१५ ,,

८, ७=१५ ,,

८, ८=१६ ,,

८, ८=१६ ,,

८, ८=१६ ,,

७ वर्ण

(शेरसिंह का शस्त्रसमर्पण, लहर, प्रसाद)

यहाँ मात्रिक लयाधार का ही एक उदाहरण पर्याप्त होगा । निम्न छन्द का लयाधार अष्टकपर्व है :—

आर्य राष्ट्र के/महायज्ञ की/अन्तिम वेदी/पूर्ण हो चुकी/स्वतन्त्रता का /सामगान
गुं/जार कर रहा/श्रीर दिशाएँ/तूट हो रहीं । /दूष्ट नेत्र से/महिमागम मुख/मंडल में आ/भा
भर करके/जय जय हूँ/कार मचाते/निकल पड़ो तुम/पूर्णहिंति के/दिव्य मन्त्र से/
(प्रयाण सीत, लेखक)

शृंगार रस (१)

स्वर्ग कथा—

लासमयी, हासमयी/विविध विलासमयी/
सुंदरियाँ, अप्सरियाँ/किन्नरियाँ/
नंदन निकुंज में/

४ 'वर्ण'

८, ८=१६ वर्ण

८, ४=१२ ,,

७ ,,

क्षारिजात पुंज में/	७ वर्ण
जहाँ, केलि करती हैं/कल्पलता मंडप में/	८, ८=१६ वर्ण
जहाँ, अर्धमोलित दृग/किए देव गंधर्व/	६, ७=१६ वर्ण लयभिन्नता
पीते हैं सुरा, सुधा/सोम रस, मधुपर्क/	७, ८=१५ ,,
(उर्वशी, श्री वासवदत्ता, श्री सोहनलाल द्विवेदी)	

३—अष्टक मात्रिक पर्व पर आधृत एक मात्रा-मुक्त का उदाहरण लीजिए:—

उसके मधुरे/ बोल उषा बे/ला में,	१६, ४, मात्राये
हैं सी/चते सुधा से/पथगत पंथी/के श्रवणों को/,	४, ८, ८, ८ ,,
होते धीमी/सी उजियाली/,	८, ८ ,,
कोकिल बैनी/का स्वर बन कर/,	८, ८ ,,
उठती बोल कोयलिया उपवन/पाली,	१६, ४ ,,
अपनी जलतरंग की सी कल/ध्वनि में,	१६, ४ ,,
और बिखर जा/ती अरुणा की/लाली,	८, ८, ४ ,,
साथ साथ ही/छिटक छिटक रह/जाती है फूल/बारी, ८, ८, ८, ४ ,,	
मुसकाती नव/कलियाँ, हँसते/फूल डोलते/पल्लव, ८, ८, ८, ४ ,,	

पनघट, चित्रण, डा० भगीरथ मिश्र

शान्तरस (१)

ज्ञान गरिमा विशिष्ट/	८ वर्ण
कीन बूझ तुम हे त/पस्वि, नित्य एकनिष्ठ/	१६=८+८ वर्ण
स्थित हो जहाँ वहाँ सुसंस्थित हो/	१२ ,,
एकासनासीन सदा/	८ ,,
एक ध्यान धारणा निलीन सदा/	१२ ,,
नित्य अचलित हो/	७ ,,

बापू ५, श्री सियारामशरण गुप्त

अखंड प्रवेगशील भावधारा में वर्णिक मुक्त छन्द अधिक सफल होता है और कोमल मंथर सरल शोभन भाव मात्रा-मुक्त छन्द में। यदि ओजोमय भाव को मात्रा मुक्त में प्रकट करना हो, तो निरन्तर पदप्रवाही रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। पूर्णकों के रखने से संगीत प्रधान हो जाता है और भाव शिथिल पड़ जाता है।

विषय और रूप के क्षीर-मधु-सम्मिलन से कविता का निर्माण होता है। भाव और छन्द दोनों एक दूसरे की आत्मा में समाते हुए अपना अस्तित्व विस्मृत कर कविता को जन्म देते हैं अमर रम्य रूप में।

छन्दःशास्त्र और छन्द

छन्दःशास्त्र पद्य-रचना का व्याकरण है। जिस प्रकार व्याकरण लिखित साधुभाषा एवं दैनिक व्यवहार की भाषा के एक एक शब्द, उपसर्ग, प्रत्यय, धातु शब्द-संयोजन पर विचार करके उसको पुष्ट रूप प्रदान करता है, उसी प्रकार छन्दःशास्त्र भी गण, मात्रा, वर्ण, लय और लय-योजना एवं विकर्षाधारों पर विचार करके सहज अनुभव को अवगत कराके छन्द को पुष्ट करता है। व्याकरण के ज्ञान के बिना भाषा बोलना जितना सरल है, छन्दःशास्त्र के ज्ञान के बिना छन्द-रचना भी उतनी ही सरल है, पर उसका विवेचनात्मक ज्ञान रचनागत बाधाओं और व्याधातों से बचाता ही नहीं है, बल्कि नवीन दिशा-निर्देश भी करता है। छन्द के रोग-दोष के शोधन का भार भी छन्दःशास्त्र पर है। छन्द का संवित् श्रवणोन्मित्र के माध्यम से मन को प्राप्त होता है, और छन्दःशास्त्र बुद्धि और चक्षु माध्यम से। छन्द के इस अनुभूति और विवेचनमूलक रूप को एवरक्राम्बी ने सुचारु रूप से विवक्षित किया है^१ :—

“तात्पर्य यह कि गणों (फीट) का सम्बन्ध विश्लेषण से है। वे छन्द के अनुसंधान में उपस्कर मात्र हैं। छन्द की रचना और उसकी मूल प्रवृत्ति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। गण का विभाजनात्मक विश्लेषण केवल लयाधार की दृष्टि से एक एक वर्ण की तुलना करने में सहायक होता है—सूक्ष्म परिवर्तन के अध्ययन में। एतसे उस छन्द के प्रत्यक्ष रूप का रेखांकन होता है, जो विशेष लयाधार के मान पर निर्मित होता है। इन आदर्श रूपों का प्रातिभ शक्ति से निर्देश किया जाता है और हम उसको छन्द के लयाधार के रूप में ग्रहण करते हैं। सुनने और अनुभव करने में जो छन्द समान लगता है, वही देखने में भी

1—“Feet, that is to say, belong wholly to scansion; they are formality used in the investigation of metre and have nothing to do with its composition or with its real nature. Scansion by foot division pretends to do no more than to show by enabling us to compare line, syllable to syllable, with the component of the base precisely how and precisely when it modulates. It is a notation for visually recording exactly how verse is spaced out against the standard of the pattern when we instinctively refer actual to ideal rhythm and intelligently here total equivalence of wholeline to whole pattern which gives metre. What was heard and felt as equivalent may thus be seen as equivalent and the precise manner of the equivalence may be seen without any pretence that every verse foot is equal. Each verse foot is shown to be the representative of a base foot.

Principles of English Prosody, Page 104,

*By Lascelles Abercrombie.

समान लगने लगता है और तब गण सोने की तुला पर तुलित प्रतीत होता है । छन्द का प्रत्येक गण लयाधार के गण के प्रतीक में प्रदर्शित किया जाता है ।”

‘छन्दस्फोट’ शीर्षक में इस विषय का विवेचन किया जा चुका है कि छन्द का उद्भव (कविमानस या गायक के मुख से) अखंड रूप में होता है और उसका ग्रहण (श्रोता के श्रवण संवित् में) भी अखंड रूप में ही होता है । हाँ, पाठक जब तक मौन होकर पाठ करता है, उसका अन्तःकरण अर्थ पर अधिक रहता है, अतः वह छन्द को खंडशः भी ग्रहण कर सकता है । उसके प्रत्यक्ष के आकर्षण और अर्थ-गीरव-ग्रहण की क्रिया छन्द को मूर्छित किए रहती है, अतः छन्द का सम्पूर्ण वैभव, अविकल स्वर सौंदर्य और सद्यःपरिनिर्वृत्ति का प्रभाव देखने के लिए या तो छन्द को सुनना चाहिए, अथवा गाना चाहिए । समाचार पत्र की भाँति पढ़ने से तो कविता के विषयों और चित्रों की सूचनामात्र मिलती है । जिस प्रकार रमणी के सौंदर्य वर्णन में उसके शरीर का समस्त वैज्ञानिक विश्लेषण (अस्थि, शिरा, मांस आदि) भुलाना पड़ता है, उसी प्रकार छन्द की लय में रमण करने के लिए छन्दःशास्त्र को विस्मृत सा कर देना आवश्यक है । जब तक छन्द, स्वर और भाव के सहारे मन के द्वारा गृहीत होता है, तभी तक उसका छन्दस्त्व है, बुद्धि द्वारा ग्रहण करने में उसका रमणीय रूप समाप्त हो जाता है ।

निघंटु के भाष्यकार श्री दुर्गाचार्य ने शब्द के व्यक्त भाव और श्रोत्रद्वारा से पुनः बुद्धिगम्यता के विषय में जो कहा है, ठीक वही बात छन्द की अभिव्यक्ति और ग्रहण के विषय में कही जा सकती है । उनका भी आप्रह्वणों में व्यक्त हुए शब्द को अभिधान-अभिधेय (अर्थतत्त्व वस्तु और स्वरतत्त्व) को सर्वार्थरूप में व्याप्तिमान समझकर ग्रहण करना चाहिए क्योंकि लिखित वर्ण और मात्रा तो ध्वनि के प्रतीक मात्र हैं । शब्द आकाश और श्रवणेन्द्रिय व्याप्त होता है, वह कागज पर कभी नहीं उतरता । ठीक वही बात छन्द के स्वर समूह के लिए सत्य है ^२ ।

१—अन्तःकरण जिसरूप से इन्द्रियग्रहीत विषय के सम्पर्क में आता है, उसे मन कहते हैं । चिद्विज्ञास, सेन्द्रिय प्रत्यक्षाधिकरण, पृ०, २३ । श्री सम्पूर्णानन्द ॥

२—शरीरे ह्यभिधानाभिधेयरूपाबुद्धिर्द्वयान्तर्गताकाशप्रतिष्ठिता तयोर्भिधानरूपाभिधेयरूपयोर्बुद्धयोर्मध्येऽभिधानरूपया शास्त्राभिमतप्रयोजनविजिज्ञापयिषया बुद्ध्या पुरुषेण तदभिष्मक्तिसमर्थेन स्वगुणभूतेन, प्रयत्नेनोदीर्यमाणः शब्दः उरःकंठादिवर्णस्थानेषु निष्पद्यमानस्तया, पुरुषार्थाभिधानसमर्थवर्णाविभावमापद्यमानः पुरुषप्रयत्नेन, वह्निर्विनि-भिप्तोऽविनाशिनी व्यक्तिभावमापन्नः श्रोत्रद्वारेणानुप्रविश्य प्रत्याय्यस्य बुद्धिः सवार्थरूपां सर्वाभिधानरूपां व्याप्नोतीत्येव व्याप्तिमाञ्छन्दः ।

दुर्गाचार्य, निघंटुभाष्य, अ. १, खंड २, सूत्र १७ ।
‘इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः’ सूत्र की टीका ।

छन्द का स्वरूप अन्तःकरणमूलक है। जिस प्रकार विश्वव्यापी सृष्टि में एक गंभीर विराट् प्राणधारा का स्पन्दन चल रहा है, उसी प्रकार कवि के व्यष्टि मानस में भी सहज रूप से स्पन्दन चला करता है, जो भाव के जगमे पर स्वतः आवेग का रूप धारण कर लेता है। योगी भी समाधि अवस्था में छन्द के इस विराट् आलोचन का अवगण करता है। योगी के अहद नाद और कवि के छन्द का मूल श्रोत एक ही है। इन “असमानो शब्दों” की प्रेरणा भीतिक जगत् से नहीं प्राप्त होती है। अमर लयों की विशाल राशि अपने समस्त वैभव में सदैव विद्यमान रहती है और रसास्वादन-काल में भावार्थवयी भाषा को विविध रूपों में गति प्रदान करती है। यह गति कई बार आवृत्त होकर जब स्मृति में संस्कार का रूप धारण कर लेती है, तो बिना भाव या भाषा के केवल स्वरक्रम में ही व्यक्त हो सकती है, जिसको पीछे “लयच्छन्द” की संज्ञा दी जा चुकी है। लयच्छन्द भी व्यवहार में आने के कारण भाषा सापेक्ष हो जाता है, उसका पूर्व रूप केवल स्पन्दन के रूप में शेष रहता है। कवि के उच्चतम मानस धरातल से ये छन्द अन्तःकरण की संकल्पात्मक अनुभूति के समय स्पन्दन रूप में स्थूल मन में अवतरित होते हैं। श्री रवि ठाकुर ने छन्द के इस अस्तित्व को प्रातिभ रूप से अनुभूत किया था। उनका कहना है, “सुर-तत्त्व ही एक वेग है। वह अपने आप स्पन्दित होता है। कथा जिस प्रकार अर्थ के मुक्त करने से उत्पन्न होती है, सुर उस प्रकार नहीं उत्पन्न होता, वह अपने आप को स्वयं प्रकाशित करता है। विशेष सुर के संग विशेष सुर के योग से ध्वनि-वेग में एक संतुलन उत्पन्न होता है। ताल उस समवेग को गतिदान करती है। ध्वनि का यह वेग हमारे हृदय में जो गति संचार करता है, वह एक विशुद्ध आवेगमात्र है, उसका कोई अवलम्बन नहीं है। गाने के सुर से हमारी चेतना में जो स्पन्दन होता है, वह किसी घटना के उपलक्ष्य में नहीं होता, उसका जन्म अव्यवहित भाव से होता है। उससे जो आवेग उत्पन्न होता है, वह प्रकारण आवेग है। उससे हमारा चित्त अपने स्पन्दन वेग को स्वयं जानता है, बाह्य जगत् से उसका कोई व्यावहारिक सम्बन्ध नहीं होता।”

१—सुर पदार्थ टोड़ एधटो वेग। से आपनार मध्ये आपनि स्पन्दित होच्च। कथा येमून अर्थेर मोक्तारि करबारजन्य, सुर तेमून नय, से आपनारके आपनि प्रकाश करे। विशेष सुरेर संगे विशेष सुरेर संयोगे ध्वनि-वेगे एकटो समवाय उत्पन्न हय। ताल सेइ समवेग टोके गतिदान करे। ध्वनिर एक गतिवेगे आमावेर हूबयेर मध्ये ये गतिसंचार करे, से एकदू विबुद्ध आवेग मात्र, तार येन कोनो अवलम्बन नय... गानेर सुरे आमावेर चेतना के ये नाड़ा देय, से कोनो घटनार उपलक्ष्य दिए नय, से एकबारे अव्यवहित भावे। सुतराँ ताते ये आवेग उत्पन्न हय, से अहेतुक आवेग। ताते आमावेर चित्त निजेर स्पन्दन वेगेइ निजे के जावे, बाहरइ संगे कोनो व्यवहारेर योग नय। पृ० २६८।

छन्दोविषयक शेष प्रकीर्ण विचार

काव्य में कवि अपने अन्तःकरण के स्थित संस्कारों, अनुभूतियों एवं धारणाओं को ही छंदित करता है। ये संस्कार कल्पना के सजग और सक्रिय होने से अधिक तत्परता और क्रमिक सुयोग से गुम्फित होते हैं। छंद की प्रस्पन्दित झंकार, अपनी स्वर--हिलोर से, कल्पना और समस्त संस्कारों को दोलायित कर देती है, फलतः कुती का साधनापथ अधिक सुगम और आत्म-संप्रसरण अधिक सरल हो जाता है। छंद का नियत एवं मधुर आवर्त्तन मानस धरातल पर गीत की धारा बहाता है, जिसमें वर्ण, शब्द, वाक्यांश और वाक्य वेग से प्रवाहित होकर मूर्त होते हैं। छंद की भंगिमाओं से नवीन शैलियों का भी जन्म होता है। इस प्रकार विषय भाव और छंद का संयुक्त और सहसंचारित आयास एक उदात्त अभिव्यंजना करता है, जिसे कविता कहते हैं^१।

छंद केवल उत्तेजना, उत्प्रेरणा एवं उद्दीपन का ही कार्य नहीं करता; संयम, नियम और अधिकृत क्रम-योजना में भी योग देता है, क्योंकि स्वयं छंद का लयाधार निश्चित और संयत होता है। छंद के किनारों में बंधकर कविता की धारा वेगवती ही नहीं होती है, सुनियंत्रित और अनुक्रम से तरंगायित भी होती है। छंद स्वरसमूह के आत्मानुशासन से ही अवधारणा में आता है, फलतः अपने योग से भावों में एक अभीष्ट एवं अनुकूल अनुशासन का विधान भी करता है। यह अनुशासन सर्वत्र मंगलमय है। जिस प्रकार मनुष्य का आत्मनिग्रह और संयम रुधिर को घनीभूत संवेदना और शिराओं को उल्लसित आवेग देकर ज्ञानेंद्रियों को अधिक ग्रहणशील बनाता है, उसी प्रकार छंद का संयम भाव को अधिक दीप्त, घनीभूत, सुस्पष्ट, संयोजित एवं चारुवर्णित बनाकर कवि को अभीष्ट सिद्धि का वरदान देता है।

प्रत्येक काव्यशास्त्री ने छंद और कविता का व्यावहारिक रूप में अविनाभाव सम्बन्ध माना है। यदि रस कविता की आत्मा है, तो छंद उसका मोहक, मधुर, मांसल और सुवर्ण शरीर है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व व्यवहार जगत् में संभव नहीं। एक के ग्रहण से दूसरे का स्वयं ही ग्रहण हो जाता है, क्योंकि दोनों का अङ्गाङ्गि-सम्बन्ध है। कविता के मानस अन्तराल तक पहुँच कर रस-कैलि में आनन्दित होने के लिए

1. His (poet's) subject has excited him originally and the regular beating, once established, runs in his mind and increases his mental excitement, so that phrases and ways of expressing his subject come to him more easily than before.....The essential thing to realize is that whether subject or metre comes first, they work together, so that he expresses himself in that exalted way, we call poetry. Page 87.

Rhetoric and prosody

By Brander,

छन्दों का संस्कार आवश्यक है। छन्द में मग्न होते ही भाव की प्रत्येक चेष्टा प्रत्यक्ष होने लगती है, उसकी अनुभूति खिंची चली आती है, आलम्बन का रूप साकार होता है और उद्दीपन का वातावरण ध्वनित होता प्रतीत होता है। रसभिगासु छन्द-संस्कार से, जिस काव्य का ग्रहण हृदय द्वारा करते हैं, उसके अभाव में स्थिति का ग्रहण बुद्धि-व्यवसाय और अनुमान के सहायता से संभव होता है। निश्चित है कि पहली पद्धति में ही आनन्द है, दूसरी में आनन्द की सूचना मात्र। दैनिक अनुभव की बात है कि हम उत्सव या आयोजन के प्रत्यक्ष में जितना आनन्द लेते हैं, उतना आनन्द उसकी सूचना में नहीं मिलता। छन्द में मुखरित भाव प्रत्यक्षीकृत होने लगते हैं। इसीलिए गद्य का वैज्ञानिक और तार्किक आयास छन्द के सामने न अपनी समकक्षता सिद्ध कर सका और न छन्द के महत्त्व और महर्था को न्यून कर सका।

छन्द ने भाषा के शब्द-भाण्डार को भरने की भी विशेष प्रेरणा दी है। किसी भाषा के पास कितने शब्द हैं, इस सूचना से उसके साहित्य-वैभव और समाज के विकास-स्तर का पता चलता है। समाजिकों का जितना ही सूक्ष्म चिन्तन होगा, वह किसी वस्तु के जितने ही धर्मों और उपयोगों पर विचार करेंगे, उतने ही शब्दों का निर्माण होगा। छन्द इस शब्द-भाण्डार का उपयोग ही नहीं करता है, उनकी वृद्धि भी करता है। छन्द की एक विशेष क्रमवद्ध लहरी होती है, जो शब्द उसमें अनुकूल नहीं पड़ता, वह प्रयुक्त नहीं हो सकता, इसके लिए कवि को समानार्थक पर्याय शब्द का अनुकूल प्रयोग करना पड़ता है। इस प्रकार विस्मृत शब्दों को नवीन जीवन और सक्रियता प्राप्त होती है। कभी कभी कवि को समान अर्थ को व्यंजित करने वाला नवीन शब्द भी गढ़ना पड़ता है। निम्न उद्धरणों के दीर्घ मुद्रित शब्दों को देखिये:—

(१) रिपुसूदन पद कमल नमामी।

(२) रामनाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल (बालकांड)

(३) रघुपति निकट गयउ घननादा। (लंकाकांड)

(४) इस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कंध पूजित,

उस ओर रुद्रवन्दन जो रघुनंदन कूजित। (राम की शक्तिपूजा)

(५) जागी पृथ्वीतनया कुमारिका-छवि अच्युत। (राम की शक्ति पूजा)

(६) अरी शैलवाले ! नादान

यह अविरल कलकल छलछल। (पल्लविनी, निर्भर)

(७) औषध अनूप वर्णहीना, अम्बिकेश्वरि ! तू,

स्थाणु जिसे पाकर अमृत फल देते हैं। (शर्वाणी)

(८) कामरिपुकामिनी ! प्रकाम करुणाकुल हो,

अलसित लसित सितद्युति जम्हाती है। (शर्वाणी)

गद्य में ऐसी विशेषणपरक नवीन शब्द-योजना की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

छन्द ही अपनी अनुकूलता के लिए नव-नव शब्दों का आह्वान करता है।

छंद के प्रयोग से युग की सामाजिक चेतना का भी पता चलता है। वैदिक युग की मुक्त चेतना उसके समृद्ध छन्दोवैविध्य में प्रकट हुई है^१। मध्यकाल के सुदृढ़ अनुशासन और कला-प्रियता में सुनिश्चित छन्दों का प्रयोग हुआ। वृत्त एक गंभीर और प्रौढ़ स्वस्थ शक्ति की सूचना देते हैं। मात्रिकों का जन्म कोमल अनुदात्त भावना के युग में हुआ। महाकाव्यों की रचना सांस्कृतिक प्रौढ़ता एवं कलात्मक परिपक्वतापूर्ण समस्यापरक युग में होती है और मुक्त काव्य की रचना वैयक्तिक ऐकान्तिकता या विनोद-विलास के युग में। इसके अपवाद सर्वत्र हैं, पर उन दोनों के निर्माण में इसी प्रकार की चेतना प्रेरक होती है। जब समाज में परम्परावादी धारणाएँ और रुढ़ियाँ अधिक होती हैं, तो घिसे मँजे कुछ छन्द सर्वत्र प्रयुक्त होते हैं। आधुनिक युग की स्वतंत्र चेतना ने काव्य के क्षेत्र में अपनी अभिव्यक्ति की, तो छन्दों के सैकड़ों नवीन प्रयोग हुए और प्राचीन छन्दों के नवीन संस्कार भी किये गये। निराला जी ने अपने मुक्त छन्दों के समर्थन में इसी विश्लेषण को प्रस्तुत किया है^२।

गद्य और गद्यछन्द

संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में पद्य के गंभीर विश्लेषण और लक्षणों के साथ गद्य पर भी विचार किया गया है। यद्यपि वह विश्लेषण अधिक विस्तृत नहीं है, परन्तु वर्गीकरण की सूक्ष्मदृष्टि और अनेक आचार्यों का एक ही ढंग से विचार करना तद्विषयक निश्चित सिद्धांत-परम्परा और धारणा की सूचना देता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज ने बड़ी उदारता से काव्य के दो भेद करके गद्य को भी पद्य की समकक्षता दी।^३ अग्निपुराणकार ने काव्य के भेदों में गद्य को भी स्थान दिया।^४ आचार्य विश्वनाथ ने चम्पू को काव्य का भेद न मानकर अलग एक मिश्रित कोटि निर्धारित कर दी थी।^५ आचार्य गङ्गादास ने साहित्य के लिए अधिक वैज्ञानिक शब्द 'वाङ्मय' का प्रयोग किया था और गद्य को काव्य का भेद

१. वैदिक साहित्य काव्य में इस प्रकार की स्वच्छन्द सृष्टि को देखकर हम तत्कालीन मनुष्य-स्वभाव की मुक्ति का अन्दाज़ा लगा लेते हैं। पृ. १६, परिमल, निराला।

२. साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति-प्रयास का पता चलता है। धीरे धीरे चित्रप्रियता छूटने लगती है। मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है। साहित्य में इस समय यही प्रयत्न जोर पकड़ता जा रहा है और यही मुक्ति प्रयास के चिह्न भी हैं। पृ. १७, १८ परिमल, भूमिका, निराला।

३—अव्यं श्रोतव्यमात्रं तत् गद्यपद्यमयं द्विधा। ३१३।

षष्ठ परिच्छेद, साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ।

४—गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादिः त्रिविधं स्मृतम्। ८, अ. ३३७, अग्निपुराण।

५—गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूस्त्यभिधीयते। ३३६, षष्ठ परिच्छेद, साहित्यदर्पण।

बताकर उसकी उच्चता का मुक्त हृदय से समर्थन किया ।^१ कथित या वाचिक भाषा के साधुरूप को गद्य कहते हैं । गद् (कथन) धातु से उसकी निष्पत्ति ही इस लक्षणा की सूचना देती है । जनता के बोलने की शैली ही उसके रूप का आदर्श है । एक सम्पूर्ण अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्द-समूह की धारा को वाक्य कहते हैं, और यही गद्य की इकाई है । गद्य और वाक्य अपने धात्वर्थ में समानार्थी ही हैं । गद्य में अक्षर-रचना, रूप-विस्तार और वर्णों के लघु-गुरु-क्रम का कोई निश्चित नियम नहीं है, केवल अर्थ को लक्ष्य करके न्यूनाधिक विश्राम लेकर स्वर में कुछ भङ्गिमा (आरोहावरोह) अवश्य दे दी जाती है ।^२

सर आर्थर क्विलर कूश (Arthur Quiller Couch) के अनुसार गद्य स्मरणीय वाणी है, जिसमें छन्द और लय का नियम शिथिल एवं अपवादपूर्ण होता है और साथ ही इस सीमा तक शिथिल और वैभिन्नयुक्त कि आधुनिक युग तक गद्य को नियमों में बद्ध नहीं किया जा सका, और संभवतः कभी ऐसे नियम बन भी नहीं सकते^३ । अंगरेज छन्दःशास्त्री प्रो० सेन्ट्सबरी ने "A History of English Prose Rhythm" में विभिन्न लेखकों के गद्यांशों को लेकर विविध गणों में बाँधने की चेष्टा की है, परन्तु वह अपवादों में इतना उलझे हैं कि सारी दुनिया का चक्कर लगाकर फिर अपनी जगह पर आ गये हैं । श्री इजर्टन स्मिथ महोदय को भी भावात्मक गद्य ने छन्द के पूर्वाभ्यास के कारण मुग्ध कर लिया है, परन्तु उन्होंने यह अवश्य स्वीकार किया कि यह छन्द

१—पद्यं गद्यमिति प्राहुर्वाङ्मयं द्विविधं स्मृतम् । १, षष्ठ स्तवक, छन्दोमंजरी,
आचार्य गङ्गादास ।

२—जें आपल्या नेहमीच्या बोलण्यांसाठी रलें (/ गद्) ते गद्य होय । गद्याचे अर्थ पूर्तीच्या अनुरोधाने जे तुकड पडतात त्यांना वाक्यें म्हणतात, गद्यांत या वाक्यांची लांबी किती असावी, आणि त्यांची अक्षर-रचना कशी असावी या विषयी, म्हणजे वाक्यांत अक्षरांची संख्या, लघुगुरुक्रम आणि विरामस्थान यां विषयी काही नियम नसतो । अर्थाकडे च लक्ष्य देऊन ठिकठिकाणीं न्यूनाधिक विश्राम घेत जे आपण नेहमीच्या बोलण्या प्रमाणे, आणि केला च तर स्वरांत किंचित चढउतार करून उच्चारितों ते गद्य होय ।

श्री मा. रा. पटवर्द्धन, छन्दोरचना, पृ० २, गद्य आणि पद्य ।

2—.....prose is memorable speech set down without constraint of metre and in rhythm both and various—so lax, so various, that until quite recently no real attempt has been made to reduce them to rule, I doubt, for my part, if they can ever be reduced to rules; Pages 43.

On the difference between verse and prose, On the Art of Writing,
By Sir Arthur Quiller-Couch.

परि वर्तनशील, विच्छिन्न, अन्तर्विरामी और अनियमित है । विभिन्नवाक्यों में समयावधान भिन्न होता है और वाक्य असमान होते हैं, वस्तुतः इसमें शिथिल छन्द का आभासमात्र होता है ।^१

आचार्य विश्वनाथ ने गद्य के सूक्ष्म वर्गीकरण के द्वारा इस समस्या का बड़ा सुन्दर समाधान किया है । उन्होंने गद्य के चार भेद माने हैं (१) मुक्तक (२) वृत्तगन्धि (३) उत्कालिकाप्राय और (४) चूर्णक^२ । अग्निपुराणकार और आचार्य गङ्गादास ने सर्वथा समास-रहित गद्य मुक्तक को दो-तीन पद के समासवाले चूर्णक के अन्तर्गत ही मान लिया है, अतः तीन-तीन भेदों को स्वीकार किया है^३ । उन चारों प्रकार के गद्य का लक्षण इस प्रकार है ।

(१) मुक्तक—यह गद्य सर्वथा समास रहित होता है । इसमें वाक्य का प्रत्येक पद अलग होता है^४ ।

(२) वृत्तगन्धि या गन्धिवृत्तः—उस गद्य के बीच में लव मात्र आंशिक रूप से वृत्त (छन्द) ध्वनित होता है । इस गन्धिवृत्तत्व ने ही बहुत से विचारकों को “गद्यछन्द” का वर्ग मानने के लिए विवश किया है^५ ।

1—In prose, too, rhythm is felt to be intermitted, not sustained and regularly continuous as in verse. It is changing in character, not homogeneous, the time interval vary in different sentences, they are more than approximately equal, in fact, only in a loose sense rhythmical, wherein poetry rhythm is a systematic.

The Principles of English Metre, Page 19,

By Egerton Smith.

२—वृत्तगन्धोऽभूतं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।

भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् । ३३४, षष्ठ परिच्छेद, साहित्यदर्पण,
आचार्य विश्वनाथ ।

३—अपदः पदसन्तानो गद्यं तदपि गद्यते ।

चूर्णिकोत्कलिकागन्धिवृत्तभेदास्त्रिरूपकम् । १६। अ. ३३७, अग्निपुराण ।

अपदः पदसन्तानो गद्यं तत्तु त्रिधा मतम् ।

चूर्णिकोत्कलिकाप्रायवृत्तगन्धिप्रभेदतः । २। षष्ठस्तवक, छन्दोमंजरी, आचार्य गङ्गादास ।
अनिबद्धं पदवृत्तं तथा चानियताक्षरम् ।

अथपेक्षाक्षरयुतं ज्ञेयं चूर्णपदं बुधैः । ३५, पंचदशोऽध्याय, भरतनाट्यशास्त्र ।

४—आद्यं समासरहितम्, (सा. द.) समासरहितं सर्वथा समासशून्य—

समासेन, मुक्तमितिमुक्तकम् (लक्ष्मी टीका) साहित्यदर्पण, ३३५, षष्ठ परिच्छेद ।

५—वृत्तभागयुतं परम् (सा. द.) वृत्तस्य छन्दसः भागेन किंचिदंशेनयुतं गद्यं परं वृत्तस्य
गन्धो लवोऽस्यास्तीति वृत्तगन्धिः (लक्ष्मी टीका) ।

वृत्तछायाहरं वृत्तगन्धिभेततिकलोत्कटम् । ११। अ. ३३७, अग्निपुराण ।

वृत्तकदेशसम्बन्धात् वृत्तगन्धिः पुनः स्मृतम् । ४। षष्ठस्तवक, छन्दोमंजरी,
आचार्य गङ्गादास ।

(३) उत्कलिका:—यह गद्य अनेक पदवृत्तियों की आवृत्ति से युक्त और दीर्घसमास सम्पन्न होता है। इसके उच्चारण में स्वर की ऊँची-नीची तरंगें उठती हैं^१।

(४) चूर्णकः—जिसमें दो तीन शब्द तक के समास हों। इस गद्य में दीर्घ समास के अभाव में अल्पमात्र विराम मिलता है। इसमें कोमल अक्षरों का प्रयोग और मृदु वातावरण का वर्णन होता है।^२

अग्निपुराण में गद्यकाव्य के पाँच अन्य अभेद विषय की दृष्टि से भी दिए गए हैं। गद्य की मधुरिमा, भंकार, और वृत्ताभास से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है^३।

श्री प्रबोधचन्द्र सेन ने श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के “गद्यछन्द” शीर्षक (कलकत्ता विश्वविद्यालय में पठित) लेख की आलोचना में कहा है, ‘जिस रचना के लिए सुनियमित ध्वनि-विन्यास को स्वीकार नहीं किया जाता, उसी का नाम गद्य है। सुतरां स्वभाव से ही गद्य का कोई छन्द नहीं हो सकता। वस्तुतः “गद्य के छन्द” की बात ही स्वविरोधी है।’ पक्षान्तर में गद्य का ध्वनि-विन्यास अनियमित, अनिर्दिष्ट और एक तरह से अनिरूपित होता है, अर्थात् गद्य भाषा के लिए ध्वनि का कोई सुनिर्दिष्ट रूप नहीं है।’^४

यह सर्वानुभूत तथ्य भी है कि गद्य के बाह्य रूप का कोई नियम नहीं होता। उसकी इकाई एक अर्थ या विचार की संपूर्णता है। अर्थ-गत विराम ही उसका विस्तार है।

१—अन्यदीर्घसमासाढ्यं (सा. द. ६.) दीर्घेण अनेकपदवृत्तिना समासेन आढ्यं युक्तं गद्यं अन्यत्, उच्चारणसमये उच्चावचतरंगतुल्यमिति उत्कलिकाप्रायम् (लक्ष्मी टीका)। दीर्घसमासोत्कलिकाभवेत्। अग्निपुराण, अ. ३३७, १०।

भवेदुत्कलिकाप्रायं समासाढ्यद्वाराक्षरम्।^४। स्तवक ६, छन्दोमंजरी, आचार्य गङ्गादास।

२—तुल्यं चाल्यसमासकम् (सा. द.) अल्पसमासकं द्वित्रिमात्रपदनिष्ठ समासयुतं गद्यश्च दीर्घसमासभावेन चूर्णस्य विन्दोरिव अल्पमात्रे विश्रामाच्चूर्णकम्। लक्ष्मी टीका)।

३—अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसंदर्भनिर्भरं, चूर्णकं नामतो’”। १०, ३३७ अध्याय, अग्निपुराण। अकठोराक्षरं स्वल्पसमासं चूर्णकं विदुः। ३, ६०, छन्दोमंजरी, आचार्य गङ्गादास। आख्यायिका कथा खंडकथा परिकथा तथा।

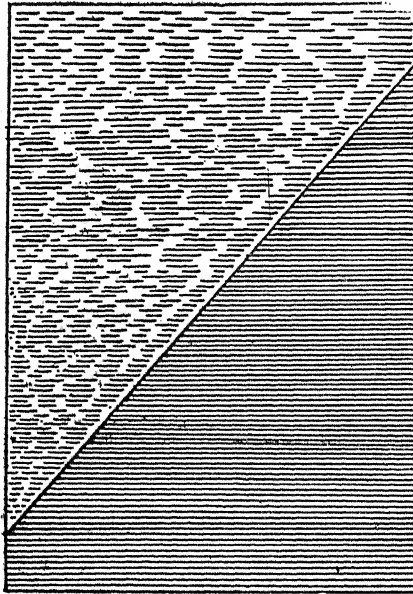
कथानिकेऽति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा। १९, ३३७ अ., अग्निपुराण।

४—आर ये रचनाय ओइ सुनियमित ध्वनिविन्यास के स्वीकार करा हय ना, तारइ नाम गद्य। सुतरां स्वभावतइ गद्येर कोनो छन्द थाकते पारे ना, वस्तुतः “गद्येर छन्द” कथा-टोइ स्वविरोधी। पक्षान्तरे गद्ये ध्वनिविन्यास होच्चे अनियमित, प्रपरिमित ओ अनिर्दिष्ट, अनिरूपित, अर्थात् गद्यभाषाय ध्वनिर कोनो सुनिर्दिष्ट रूप नेइ। पृ० १७२, छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ, श्री प्रबोधचन्द्र सेन।

गद्य का प्रत्येक पद ही नहीं, संज्ञा, सर्वनाम और विभिन्न कालिक क्रियाओं के प्रत्यय भी अधिकांश खंडशः और असम्बद्ध रूप में उच्चारित होते हैं, अतः वहाँ संगीत माधुरी के लिए स्थान कहाँ! बिना अविच्छिन्न और अखंड स्वरधारा के संगीत जन्म नहीं लेता। गद्य के शब्द ओसकण की भाँति भिन्न-भिन्न होते हैं, जब कि पद्य के शब्द निर्भर-धार के समान बहते हैं। पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की भाँति गद्य, छन्द के एक छोर पर है और संगीत दूसरे छोर पर, बीच में कविता है।

संगीत

छन्द
(स्वर माधुरी)



तराना या परन
संगीत
नाट्य संगीत
गीत
भावगीत, कविता, प्रबन्ध
छन्दोबद्ध विचार
गद्यछन्द (वृत्तगन्धि)
विचारपूर्ण गद्य

अर्थ

(टिप्पणी : यह आक्र छन्दोवचना (पृ० ११) के आधार पर बिकसित और वर्गीकृत हुआ है।)

स्वाभाविक रूप से कविता (छन्द) का सम्बन्ध विशुद्ध भाव और संगीत से है एवं गद्य का सम्बन्ध बुद्धि और अर्थ या विचार से, परन्तु मनुष्य की कला ने इसके मध्यस्थानीय बहुत से प्रयोग किए हैं। कभी कभी मनुष्य ने वैज्ञानिक निरूपण के लिए छन्द और भावाभिव्यंजन के लिए गद्य को भी अपनाया है। लोलिम्बराज ने वैद्यक के लिए, वराह-मिहिर ने ज्योतिष के लिए, चरक ने चिकित्सा के लिए, चाणक्य ने अर्थशास्त्र के लिए, व्यास ने राजनीति और कूटनीति के लिए, माधवाचार्य ने दर्शन के लिए और भरत, मम्मट, जयदेव, अप्पय दीक्षित आदि ने काव्यशास्त्र के लिए छन्द का ही प्रयोग किया है। आधुनिक युग में गुप्त जी ने 'भारत-भारती' में भारतवर्ष का भावात्मक इतिहास लिखा है। मिस्टर अल्फ्रेड

नाइस् (Alfred Naves) ने एलिजाबेथ युग का इतिहास 'ड्रेक' (Drake) शीर्षक से बारह खंडों में कुछ वर्ष पूर्व ही लिखा है। पद्य की भाषा को गद्य की भाषा के समान बनाने का भी यत्न हुआ है, जैसे वर्ड्सवर्थ के द्वारा, और हिन्दी के द्विवेदी युग में, विशेषतः श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा। वाल्ट्व्हीटमैन (Walt Whitman) ने छन्द को गद्य के धरातल पर उतारा और रवीन्द्रनाथ ने गद्य को छन्द के स्तर तक उठाने का स्वल्प-परिणामी प्रयास किया था। प्रबंध काव्यों के लेखक छन्द को सर्वत्र स्वीकार करते हुए भी भावकी अपेक्षा चरित्र और घटना को अधिक महत्व देते रहे हैं, जैसे कि इलियड और ओडेसी में होमर ने किया है। 'आगे चले वहुरि रघुराई, ऋष्यमूक पर्वत नियराई' में घटना और गीत है, पर काव्य नहीं। जार्ज वर्नर्डिशा ने Cashel Byron's Profession नामक अपने उपन्यास के त्वरित प्रवहमान गद्य को ही Blank Verse की कोटि में मान लिया था। लोगों ने राजनीतिक पत्रों तक को पद्यबद्ध किया है, हाँ, वैयक्तिक पत्र पद्य में अवश्य शोभा दे सकते हैं। आधुनिक युग में रससिक्त भावों, उल्लासों तथा आत्मनिवेदन एवं विचारपूर्ण पश्चात्तापों को गद्य में भी लिखा जाता है। श्री रायकृष्णदास, श्री विद्योगी हरि और दिनेशनन्दिनी ऐसे लेखकों में अग्रगण्य हैं। डा० भगीरथ मिश्र ने इस कोटि के गद्य को 'भावात्मक गद्य' की संज्ञा दी है। ऐसे गद्यांशों में वृत्तगन्धि स्पष्ट ही प्रतीत होती है। गद्य का पद्य के धरातल तक उठने का प्रयास करना और पद्य का गद्य भाषा को उदारता से स्वीकार करना जनवादी चेतना के विकास की सूचना है। यह सत्य है कि इन दोनों काव्यों को एकीभूत नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि भाव और विचार एकीभूत न होकर अलग अलग विकसित हो रहे हैं। विज्ञान, दर्शन, राजनीति और अर्थ-शास्त्र का ज्ञान-भांडार अधिकाधिक बढ़ रहा है, अतः गद्य को क्रमशः गद्यात्मकता की ही समृद्धि प्राप्त होगी। गद्य का गौरव वैज्ञानिक स्पष्टता, तार्किकता, प्रौढ़ सूक्ष्म विचार सिद्धांत-प्रतिपादन और एकार्थनिश्चय आदि सामाजिक उपयोगों में है। गद्य का लक्षण वाचिकता है, संगीतात्मकता नहीं। 'गद्यच्छन्द' की कल्पना आधुनिक युग की देन है। भाव-प्रधान गद्य में आवेग और शब्द-संगुम्फन के कारण वृत्तगन्धि स्वयमेव आ जाती है। एक ही भाव के कई गद्यावतरणों में विकसित और पल्लवित रूप को लोगों ने 'गद्य गीत' की भी संज्ञा दी है। वस्तुतः ऐसे गद्य को 'गद्यकाव्य' की ही संज्ञा दी जा सकती है, जैसा कि संस्कृत के आचार्यों ने किया है। बाण भट्ट की कादम्बरी में सर्वत्र छन्द-भंकारों की प्रलम्ब मौक्तिक-माला स्पष्ट मोहक है। हर्षचरित और यासवदत्ता (सुबन्धुकृत) की सामासिक शब्द-योजना और आलंकारिक शैली है, रमणीयता भी कम नहीं है, पर उसे किसी ने "गद्यच्छन्द" न माना और न आधुनिक युग में इस अर्थ में इन कृतियों का निर्देश होता है। ब्राह्मणों, उपनिषदों और आचार्य शंकर के गद्य ने पद्य की अमरता तो पाई, पर उसे छन्द की संज्ञा नहीं मिली। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के रसप्राही सहृदय हृदय ने रसपूर्ण भावात्मक गद्य की ईषत् भंकारों से प्रभावित होकर उसे 'गद्यच्छन्द' की संज्ञा दी। वे स्वयं मानते हैं कि

आदि से ही “गद्यच्छन्द” में छन्द की अन्तःशीला धारा, जिसे आचार्यों ने “वृत्तगन्धि” माना है, प्रवेश करती है। रस की चंचलता ही शब्दों को सज्जित कर देती है। इसमें ताल और सुर का आभास मात्र होता है। भाव का आवेग छन्द-प्रस्फुरण में सहायक होता है, इसीलिए उन्होंने अनुभव किया कि जहाँ रस का आविर्भाव होता है, वहाँ केवल छन्द की गतिलीला (छायानृत्य कहना अधिक उपयुक्त होगा) आ जाती है^१। उनके रूप-विश्लेषण से पूर्णतया स्पष्ट है, गद्यच्छन्द ध्वनिसंगीत से अपेक्षाकृत बड़ी इकाई में समाप्त होता है, उसमें वह अर्थविचार के अनुसार अपनी पंक्ति पूर्ण करता है^२।

रवि ठाकुर ने गद्यच्छन्द को “भावेर छन्द” या “भाव छन्द” कहा है। Verse Paragraph के लिये उस संज्ञा का प्रयोग उपयुक्त है, क्योंकि वहाँ छन्द तो है ही, साथ ही विस्तार भी भाव समाप्ति की सीमा तक होता है। लेखक ने भावछन्द को Verse Paragraph के ही रूप में स्वीकृत किया है। श्री मोहितलाल ने मधुसूदन के ‘मेघनादवध’ के छन्दों को “भावछन्द” की संज्ञा दी है।^३ श्री प्रबोधचन्द्र ने इन नवीन संज्ञाओं और वर्गीकरण का विरोध किया है।^४ “साहित्येर स्वरूप” के “काव्य और छन्द” शीर्षक लेख में रवि ठाकुर ने निश्चित छन्द को नटी का ‘अलंकृत पदक्षेप’ और गद्य काव्य को अभिजात तरुणी का ‘संयतपदक्षेप’ कहा है। उसमें उन्होंने अशिक्षित सहज छन्द के दर्शन

१—गद्यसाहित्येर आरंभ थेके तार मध्ये मध्ये प्रवेश करछे छन्देर अन्तःशीला धारा। रस येखाने चंचल होयेछे, रस येखाने चेयेछे रूपनिते सेखानइ शब्दगुच्छ स्वतय सज्जित हय उठेछे। भावरसप्रधान गद्य आवृत्तिर मध्ये सुरलागे अथच ताके रागिनी बला चले ना, ताते तालमानसुरेर आभासमात्र आछे, एमून गद्यरचनाय येखाने रसेर आविर्भाव सेखाने छन्द अतिनिर्दिष्ट रूप निते ना, केवल तार मध्ये थेके याय छन्देर गतिलीला।

पृ० ३६८, रवीन्द्र—रचनावली, भाग २१।

२—गद्यछन्देर प्रधान लक्षण पंक्ति सीमा नाय। निर्दिष्टसंख्यक ध्वनिगुच्छ एक एकटि पंक्ति संपूर्ण। से पंक्ति शेषे एकटि करे बड़ो यति। गद्यछन्द येखाने आपन ध्वनिसंगीत के अपेक्षाकृत बड़ो रकमेर समाप्ति देये, अर्थनिर्वाचारे सेइ खाने पंक्ति शेष करे। पृ. ३६८, गद्यछन्द कलकत्ता विद्वद्विद्यालये पठित लेख, रवीन्द्र—रचनावली, भाग २१।

३—बाङ्ला कवितार छन्द, पृ. १७५, मोहितलाल मजूमदार।

४—काजेइ गद्यछन्द कथाटि अनर्थक को अवास्तव। रवीन्द्रनाथ बलछेन गद्येर छन्द होच्चे भावेरछन्द वा भावछन्द। केनना छन्द कथार सर्वस्वीकृत ओ चिरंतन अर्थ होच्चे काव्येर ध्वनि-विन्यास रीति। काजेइ भावविन्यास प्रणाली के ओ यदि छन्द बल अभिहित करा याय, ताहले ओ, शब्दटिअ अकारण अर्थ संप्रसारण घटे एवं तार संज्ञार्थनिरूपण ओ कठिन हये पड़े। पृ. १७२-१७३।

छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ, श्री प्रबोधचन्द्र सेन।

किए हैं^१ । एक स्थान पर उन्होंने 'भावच्छन्द' के लिए 'पल-रंग' पद का प्रयोग किया है, जिसे "वृत्तगन्धि" का पर्याय माना जा सकता है । इस पद की स्वीकृति में कोई शास्त्रीय आपत्ति नहीं हो सकती ।

अन्ततः, यह कहना आवश्यक है कि "भावात्मक निबन्ध" शब्दमधुरिमा, कोमला वृत्ति, भावप्रवणता, अलंकार-सज्जा, वक्रोक्तिभङ्गिमा, प्रतीकव्यञ्जना और शब्दगुम्फन-जनित ईष्वभङ्कार से छन्द की संज्ञा नहीं पा सकते, क्योंकि छन्द का लक्षण अखंड लय है ।

१—नदीर नाचे शिक्षितपटे अलंकृत पदक्षेप । अपर पक्षे एमून कोनों तरंगीर चलन बोजन-रक्षार एकटि स्वाभाविक नियम आछे, एइ सहज सुन्दर चलार संगति एकटि अशिक्षित छन्वे आछे, ये छन्द तार रक्तेर मध्ये, ये छन्द तार वेहे । गद्यकाव्येर चलन होली, सेइ रकम अनियमित उच्छ्रंखल गति नय, संयत पदक्षेप ।

साहित्येर स्वरूप, पृ. ४७,
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

द्वितीय अध्याय

छन्दों का विकास और विस्तार

सृष्टि छन्दोमयी है। उसकी सीमा में प्रत्येक व्यवित्तत्त्व अथवा स्वरूप अपने में एक छन्द है। दिक्, काल और वस्तु स्वयं अपने में छन्द हैं, और इनकी विस्तार-परिधि में ज्ञानेन्द्रिय विषय और मानसदृश्य (स्मरण, मनन, अनुमान और कल्पना) सभी छन्द के स्वरूप हैं। शतपथ ब्राह्मण में दिशा, प्राण, मन, समुद्र, अन्न, लोक, अन्तरिक्ष, आदित्य को छन्द की संज्ञा दी गई है^१। ताण्ड्यब्राह्मण में आत्मा के आच्छादन—इन्द्रियों को वीर्य छन्द कहा गया है^२। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि के स्वरूप के वर्णन में, विभिन्न अवयवों में विभिन्न छन्दों की कल्पना की गई है^३। यह निरूपण छन्द के स्थिर और रूपात्मक विधान

१—अ, छन्द उस वाक् विराज का नाम है, जो सांख्य की प्रकृति या वेदान्त की माया के समकक्ष है। सारा विश्व इसी से विकसित होता है, अतः छन्द सारे विश्व का रस है, वह एक सूत्र है, इसमें सारा नाम रूपात्मक जगत् बँधा हुआ है, छन्द आत्मा या प्रजापति को आवृत कर लेता है और उससे आवृत आत्मा अतिरूप कहलाता है। विराज वाक् की जिन तीन शक्तियों, ऋक्, यजु और साम का उल्लेख हो चुका है, वे सब छन्द में होने से, उससे आछन्न पुरुष उन सबसे युक्त कहा जाता है... मूल छन्द से ही उत्पन्न होने वाले सारे देव, दिशाएँ, पशु, अश्व, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, वर्ष आदि विश्व के नाम रूप भी छन्द कहलाते हैं और इन सभी छन्दों का आप्य (द्रवीय) वायव्य तथा पिंडीय वर्णों में विभाजित किया गया है, जिनको नानारूप में करने वाले देवों को 'कवि' कहा गया है। डा. फतेहसिंह, वैदिक दर्शन, पृ. १८२, १८३।

ब. प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्द इति मनो वै समुद्रश्छन्दः (८, ५, २, ४) दिशो वै परिभूश्छन्दः आच्छन्द इत्यक्षं वाऽआच्छच्छन्दो मनश्छन्द इति प्रजापतिर्वै मनुश्छन्दः। (८, ५, २, ३) शतपथ ब्राह्मण।

स. अक्षं वै वयश्छन्दः वयस्कृच्छन्द इत्यग्निर्वै वयस्कृच्छन्दो विषपर्वाश्छन्द इत्यसौ वै लोको बिषपर्वाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्द इत्यन्तरिक्षं वै छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्द इत्यसौवाऽ आदित्ये दूरोहणं छन्दस्तन्द्रछन्द इति। ८, ५, २, ६, शतपथ ब्राह्मण।

२—इन्द्रियं वीर्यछन्दासि। ६, ६, २६, ताण्ड्यब्राह्मण।

३—शतपथ ब्राह्मण में १०, ३, २, १ से लेकर १०, ३, २, १२ तक।

ज्ञापन है। छन्द की गतिमूला धारणा भी इतनी ही विश्वव्यापिनी है। समस्त सृष्टि जान है, अतः प्रत्येक गतिशील धर्म में एक छन्द है। नक्षत्र, पृथ्वी और आदित्य आदि ग्रह किसी न किसी निश्चित छन्द से गतिमान हैं, जैसे पृथ्वी की गति में ऐसा छन्द। अर्हनिश काल की मात्रा के माप से ३६५^१/_४ मात्राओं में पूरा होता है। श्री रवि ने इस धारणा का प्रतिपादन किया है^१। मंथर तरंगधित पवन, कल्लोलिनी नी, लघुद्युतिमान विद्युत्प्रवाह, गगन-गामिनी प्रकाशरश्मियाँ और परिमाणुओं के तन की भू-व्यास व्यापिनी अजस्र परिक्रमा, निश्चित और आवर्तित अनुक्रमधर्म के छन्दमयी प्रक्रियायें हैं।

प्रकृति के भावात्मक सम्पर्क में मानवीय प्रतिक्रिया की वाचिक अभिव्यंजना छन्द में प्रकट हुई। प्रकृति की अस्फुट मधुर ध्वनियों ने भी इस आनन्द-स्वर-साधना में योग दिया, पर, ये मधुर ध्वनियाँ छन्दःशास्त्र के अन्तर्गत नहीं आतीं। छन्द की परिधिलयों तक ही है। बाह्य जगत् के आवेग आन्तरिक आवेग के रूप में परिवर्तित छन्द का रूप ग्रहण करते हैं^२।

इस सहज निःसृत छन्द का स्वरूप क्रमशः बुद्धि के योग से परिशीलित, त एवं निश्चित रूप धारण करने लगा। मनुष्य ने बार बार अभ्यास और अपनी कृति को सुन्दरतर बनाने की निरन्तर साधना की। वाल्मीकि द्वारा पना का प्रतीकात्मक वृत्त इसी सिद्धांत की सूचना देता है। जब कवि के मुँह से सिद्ध श्लोक—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्^३ ॥

तो उन्होंने बाद में विश्लेषण किया कि यह श्लोक “पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलय-” है। भावावेगजनित मूर्त छन्द में जब विवेक बुद्धि का योग हुआ, तो केवल छन्द कास नहीं प्रारंभ हुआ, छन्दःशास्त्र की भी अज्ञातरूप से नींव पड़ गई।

० ठीक चौबीस घण्टार घूर्णिलये तिनशो पंयसठि मात्रार छन्दे सूर्य के प्रवक्षिणा । पृ. २६१, रवीन्द्र रचनावली, भाग २१ ।

वर रवीन्द्र ठाकुर ने कहा है कि मनुष्य की सत्ता में अनुभूति-लोक ही वह रहस्यक है, जहाँ बाहर के रूप-जगत का सम्पूर्ण आवेग अन्तर का आवेग बन जाता है और यह अन्तर का आवेग बाहर रूप ग्रहण करने को उत्सुक हो उठता है। इसीलिए वाक्य जब हमारे अनुभूति लोक के वहन के काम में नियुक्त होता है, तो उसमें गति का होना आवश्यक हो जाता है। वह अपने से तो बाहरी घटनाओं को व्यक्त करता है, किंतु गति के द्वारा आन्तरिक वेग को प्रकाशित करता है। साहित्य का मनः, १७ ।

वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, १५ श्लोक ।

इस दिशा में संगीत ने बहुत योग दिया है। वस्तुतः इस संगीत का अर्थ शास्त्रीय संगीत नहीं मानना चाहिए। यह संगीत मानव की आत्मा में सहज ही व्याप्त है। जिस प्रकार समष्टि में अनन्त श्रवणीय तथा श्रवणीय संगीत की धाराएं प्रवाहित होती रहती हैं, ठीक उसी प्रकार आत्मा (व्यष्टि) में भी स्वयं अव्याहत तरंगें उठा करती हैं। मनुष्य की वृत्ति जब इस कलात्मक दिशा में सक्रिय हुई, तो संगीत की अनन्त शक्ति विभिन्न रूपों में और विभिन्न लयों में विभिन्न भावों के साथ व्यक्त हुई। आत्मा की संगीतात्मकता ने छन्दोजगत् का विस्तार किया, तो बुद्धि के योग ने उसे सुव्यवस्थित एवं शास्त्रीय रूप प्रदान करने में सहायता की। मनुष्य, विभिन्न भावों के आन्दोलन में उठती तरंगों की तुला पर संतुलित करके विभिन्न लयों का योग-विनियोग करता गया, फलतः, उसका छन्द-भांडार बढ़ता ही गया। इन छन्दों को नामों की शृङ्खला में तो बहुत बाद में बाँधा गया होगा, परन्तु मनुष्य ने उन्हें ज्ञानशक्ति (Cognition) द्वारा अवश्य ही पहले विविक्त कर लिया होगा। इस युग में भी बहुत से नवीन छंद आये हैं, जिन्हें कोई संज्ञा नहीं प्रदान की गई है, अतः लोग पंक्तियाँ उद्धृत करके अथवा कविता का नाम देकर छन्द विशेष का निर्देश करते हैं। प्रत्येक छन्द अपनी क्षमता और वृत्ति के अनुसार विशेष प्रकार के भाव के अभिव्यंजन में सहायक बना। निरन्तर अभ्यास और प्रयोग से छन्द के स्वरूप इतने स्थिर हो गये कि उनकी कल्पना एक व्यक्तित्व के रूप में सामने आने लगी। जिस व्यक्ति में काल्पनिक मूर्तिमत्ता की शक्ति जितनी ही होगी, उतनी ही कुशलता से वह अशरीरी और सूक्ष्म वस्तुओं के व्यक्तित्व की कल्पना कर सकेगा। ऐसा परिणाम व्यक्तिगत संस्कार और छन्दों में रमण तथा मनन के योग से निकलता है। ये काल्पनिक मूर्तिमत्ता विभिन्न व्यक्तियों की भिन्न हो सकती हैं। आज के कवि लोग भी छन्द विशेष के साथ एक वातावरण और मानवीय आचरण तथा तदनुरूप लौकिक स्थूलरूप की कल्पना करते पाये जाते हैं।

वैदिक युग में विभिन्न छन्दों के साथ विभिन्न देवों की कल्पना की गई थी। उस समय तक देवताओं के व्यक्तित्व के साथ उनके आचरण और धर्म तथा स्वरूप भी स्थिर हो चुके थे। छन्द की व्यक्तित्व-कल्पना और देवों की पूर्व प्रतिष्ठित कल्पना में साम्य के आभास के आधार पर ही छन्द विशेष को विशेष देवता के अनुकूल मान लिया गया होगा। गायत्री छन्द के देव अग्नि, उष्णिक् के सविता, अनुष्टुप् के इन्द्र, जगती के विश्वेदेवा, अतिछन्द के प्रजापति, विच्छन्द के वायु, द्विपदा के पुरुष और एकपदा के देव ब्रह्म हैं।^१ वर्तमान युग में कविता का विषय और उद्देश्य मानवत्व है, देवत्व नहीं। आधुनिक

१—अग्ने गायत्र्यतोऽधिष्ठे भक्त्या देवतामाहुतः।

सप्तानां छन्दसामृचो न पक्तेः सा तु वासवी। ६।

प्राजापत्या त्वतिच्छन्दा विच्छन्दा वायुदेवता।

द्विपदा पौरुषं छन्दो ब्राह्मीत्वेकपदा स्मृता। ७।

पाताल १७, ऋग्वेद प्रातिशाख्य।

युग में काव्य लोकमंगल और मानववृत्ति-परिष्कार का साधन है, अतः भिन्न छन्दों के साथ देवताओं की कल्पना नहीं की गई ।

यह वैदिक युग की चाक्षुष मूर्तिमत्ता की स्पष्टता का ही परिणाम है कि विभिन्न छन्दों के रंग की भी कल्पना की गई । गायत्री छन्द का रंग श्वेत (white), उष्णिक् का सारंग (brown), अनुष्टुप् का पिशंग (blackish), बृहती का अग्रखर्वण (कृष्ण), विराज का नील, त्रिष्टुप् का इन्द्र गोंपवर्ण (लोहित), जगती का स्वर्णवर्ण, पंक्ति का अरुण, अतिछन्द का श्याम, विच्छन्द का गौर, द्विपद का बभ्रु (कपिल), एकपद का धूम्रवर्ण (नकुलवर्ण), विराज का पुश्नि (Variegated, भिन्नवर्ण), निचृत् का श्याव (dark brown) भूरिकू का पुशत्वर्ण (विन्दुमत् या opeckled) और ब्रह्म छन्द का वर्ण कपिल (yellowish brown) है^१ ।

इसी प्रकार अक्षरों के आधार पर छन्दों के वर्णों का भी निर्माण किया गया । छन्दोवैभिन्न्य तो केवल गति-प्रधान युग में रहता है, अतः ऋग्वेद के परिवर्ती काल में ऐसे छन्द निश्चित व्यवस्था के अन्तर्गत आ गए हैं^२ । यह वर्गीकरण जातिव्यवस्था या वर्ण-व्यवस्था के तुल्य अलग अलग गुणकर्म-विभाग से भावाभिव्यंजन के आधार पर हुआ है । छन्दों की रसानुकूलता के सिद्धांत को लेकर प्रथम अध्याय में छन्दों का विवेचन किया जा चुका है, जिससे छन्द की वृत्तियों और स्वभावों का पता चलता है । जिस प्रकार विभिन्न वृत्तियों के व्यक्ति विभिन्न व्यापारों के लिये उपयुक्त हैं, उसी प्रकार छन्द विशेष अपने गुण के कारण विशेष भावों को ही व्यक्त कर सकता है । इसका कारण यह है कि भाव और छन्द दोनों ही मानवीय मन से उद्भूत होते हैं । विशेष प्रकार की भावावस्था में विशेष प्रकार की शब्दावली और विशेष प्रकार का स्वर समूह एवं छन्द प्रयुक्त होते रहे हैं, इस तथ्य से हम जिस निगमन फल (Deduction) तक पहुँचते हैं, उसी तक प्रागम (Induction) से इस परिणाम पर भी पहुँचते हैं कि छन्द विशेष अमूक भाव को प्रकट

१—एतेनैव क्रमेणैषां वर्णतो भजितहच्यते ।

श्वेतं च सारंगमतः पिशंगं कृष्णमेव च । ८ ।

नीलं च लोहितं चैव सुवर्णमिव सप्तमम् ।

अरुणं श्यामगौरे च बभ्रु वै नकुलं तथा । ९ ।

पुश्निवर्णं तु विराजं निचृच्छ्यावं पुषद्भूरिक् ।

ब्रह्म सामर्चयजुश्छन्दः कपिलं वर्णतः स्मृतम् । १० । पाताल १७, ऋक्प्रातिशाख्य ।

विशेष—अंगरेजी पर्याय मंत्रसमूलर के अनुवाद के आधार पर दिए गए हैं—लेखक ।

2—The lyric metre being practically unknown in later literature, may be presumed to belong to the more distinctly early parts of the Rig-veda, Page 9.

Vedic Metre, E. Vernon Arnold .

करता है। यों, सिद्धहस्त कवि छन्दःशास्त्र के सिद्धान्त के विपरीत छन्द को इतर रसों में भी प्रयुक्त करके सफलता प्राप्त कर लेता है, इसी कारण से प्रयोगों का अनुगमन करके छन्दःशास्त्र अपना विकास करता है। वैदिक युग में स्वर-पाठ के कारण केवल वर्णिक संख्या के आधार पर छन्दों का लक्षण और स्वरूप निर्धारित किया गया था। अक्षर-गणना का यह निरूपण व्याकरण और लिपि-युग के पश्चात् हुआ है। छन्दःशास्त्र की समस्त व्याख्याएं व्याकरण, उच्चारण एवं लिपि पर आश्रित हैं, अतः यह सिद्ध है कि ऋक् प्रातिशाख्य के पूर्व भारतवर्ष में व्याकरण और लिपि का विकास हो चुका था। आज हम वर्णों की स्वरित, उदात्त, अनुदात्त स्वर-पाठ-युक्त गायन शैली के वातावरण से बहुत दूर जा चुके हैं और वह संगीत अब न श्रव्य है और न संस्कारजन्य। आज भी ब्राह्मण पण्डितों की परम्परा में वैदिक छन्दों को उसके लिखित व्याकरण के अनुसार पाठ करने और वैदिक छन्द-परम्परा को अक्षुण्ण रखने का प्रयास चल रहा है, परन्तु यह समझना कि यह ठीक वैदिक पाठ है, अपने को प्रवञ्चित और भ्रान्त करना है।

प्रत्येक पीढ़ी में उच्चारण का रूप परिवर्तित होता रहता है, अतः हजारों वर्ष पूर्व प्रचलित उच्चारण-पद्धति का पूर्णतः शुद्ध अनुकरण सिद्धान्ततः ही असंभव है। छन्दःशास्त्र की पिछली समस्त परम्परा हमारे साहित्य की निधि है और आवश्यकता पड़ने पर उन सबका अपने ढंग से तोड़-मरोड़ के साथ उपयोग भी होगा, परन्तु यह अभिमान करने की क्या आवश्यकता कि हम अमुक युग में प्रचलित पद्धति के अनुसार अमुक छन्द पढ़ सकते हैं, जब कि हम मातृभाषा की शब्दावली को ही माता के समान उच्चारित नहीं कर सकते। इस उच्चारण-भेद से ही तो दो व्यक्तियों की ध्वनि पहचानने का विवेक ओता में आता है।

व्यक्ति, देश एवं काल-भेद के सिद्धान्त को इसलिए विविक्त किया गया है, क्योंकि हम वैदिक छन्दों के संगीत का कोई रिकॉर्ड नहीं दे सकते, केवल लिपि और व्याकरण के मानदंड पर छन्दों का शास्त्रीय विश्लेषण और विकास दे सकते हैं।

संगीत के विकास के विषय में उपनिषदों में बहुत सुन्दर दार्शनिक व्याख्या दी गई है। षस्तुतः, आत्मा सङ्गीतमय है। उसी अखण्ड एवं सम्पूर्ण सङ्गीत की अभिव्यक्ति चक्षु, श्रोत्रादि के माध्यम से आङ्गिक (साकार) रूप में होती है^१। मूल उद्गीथ में ही प्राणों का रस

१—हमारे शरीर में चक्षु, श्रोत्र आदि जो अलग अलग क्रियाएं कर रहे हैं, उनको यदि संगीत मान लें, तो यह कहना पड़ेगा कि हमारे शरीर में अनेक प्रकार के संगीत हो रहे हैं। परन्तु, ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि वास्तव में यह विचित्र संगीत एक संपूर्ण शरीरव्यापी बृहत्तर संगीत के छोटे छोटे अंगमात्र हैं और पृथक् पृथक् अपना अस्तित्व रखते हुए भी, इसी एक स्वरिय संगीत के पूर्णत्व में सहयोग दे रहे हैं। एक स्वरिय सङ्गीत आत्मा है, जिससे उक्त बहुस्वरिय संगीत विकसित होता है।

पृ. ३६, वैदिक दर्शन, डा० फतहसिंह।

उपासित होता है, तब बृहती वाणी पृथक् हो जाती है और बृहस्पति (बृहती वाक् का पति) उसकी उपासना करता है। फिर अयास्य (आस्यात् अयने, आस्य + अयः = अयास्यः = मुख से निःसृत) उसकी उपासना करता है, जिससे उस अमर सङ्गीत का जन्म होता है, जिसे दाल्भ्य (दल्भ्य के पुत्र) ने गाकर समस्त कामनाओं की प्राप्ति की थी^२।

सङ्गीत की इसी पद्धति से छन्दों का विकास हुआ है। पहले भी कहा जा चुका है कि विश्व के समस्त स्पन्दन और सङ्गीत-विधान सूक्ष्म रूप से आत्मा में सन्निहित हैं, इसी लिए आत्मा की प्रेरणा से विविध छन्दों की सृष्टि होती है। जिस देश का आध्यात्मिक घरा-तल जितना ही ऊँचा और उदात्त होगा, उस देश का छन्दो-विस्तार उतना ही दीर्घायत होगा। भारत का आध्यात्मिक जागरण और साधना सर्वदेशोपरि रही है, अतः उसका छन्दो-वैभव अतुलनीय है। वर्नन अर्नाल्ड इसी निष्कर्ष का समर्थन करते हैं^३।

२—तं॒ह्यङ्गिरा उद्गीथमुपासाञ्चक्रे, एतमु बृहस्पतिं मन्यन्ते, अङ्गानां यद्रसः। १०।

तेन। तं॒ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासाञ्चक्रे। एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते, वाग्धि बृहती तस्या एष पतिः। ११।

तेन। तं॒ह्ययास्य उद्गीथमुपासाञ्चक्रे। एतमु एव एवायास्यं मन्यन्त, आस्पाद् ब्रूयते। १२।

तेन। तं॒ह वको दाल्भ्यो विदाञ्चकार, स ह नैमिषीयानामुद्गाता बभूव। स ह वै ऽस्मभ्यः कामानां गायति। १३।

अर्थ—अङ्गिरस् ने प्राण की दृष्टि से उद्गीथ (ओउम्) की उपासना की, और लोग इसी को (प्राण को) ही अङ्गिरस् मानते हैं, इसलिए कि प्राण ग्रंथ का रस है (शरीर के ग्रंथ इसी से हरे भरे रहते हैं)। अङ्ग + रस = अङ्गिरस्। १०।

बृहस्पति ने प्राण की दृष्टि से उद्गीथ (ओउम्) की उपासना की, और लोग इसी को बृहस्पति मानते हैं, इसलिये कि वाणी बृहती है और यह (प्राण) उसका पति है (बृहती + पति = बृहस्पति)। ११।

अयास्य ने प्राण की दृष्टि से ओम् की उपासना की, और लोग इसी को अयास्य मानते हैं, इसलिए कि वह मुँह से आता है। १२।

उसको (प्राण को) दाल्भ्य (दल्भ्य के पुत्र) वक ने जाना (उद्गीथ के तीर पर उपासना की) वह नैमिषीयों (नैमिष वन के याज्ञिकों) का उद्गाता बना, और उसने गाकर इनकी कामनाओं को पूरा किया। १३।

छन्दोग्योपनिषद्, प्रपाठक १, खंड २, अनुवादक राजाराम।

2—It is common place of western criticism that in many of the meehanical arts the Hindu workman follows Too submissively to anocient rules and models. But no statement justly be made with regard to the poetio literature of India, either ancient or modern; rather the faculty of inventing and appreciating new and delioate variations of rhythm seems to be a special gift of the race, Page 19.

The Historical development of the art of versification, Vedio Metre, E. Vernon Arnold.

वैदिक युग में छन्द केवल अक्षर-गणना के आधार पर चलते थे । इसीलिए आचार्य हलायुध भट्ट ने पिङ्गलछन्दःसूत्र की सञ्जीवनी टीका में छन्द के लिए “अक्षरसंख्यावत्” का प्रयोग किया है^१ । सर्वानुक्रमणी में कात्यायन ने भी इसी परिभाषा को माना है^२ ।

वैदिक युग में एक अक्षर (दैव्येकं, एकाक्षरं छन्दो देवी गायत्रीतीति संज्ञायते) से लेकर एक सौ चार अक्षरों (उत्कृति छन्द) तक के छन्दों का वर्णन है^३ । छन्द के सात प्रमुख भेद हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुभ्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुभ् और जगती । इनमें प्रत्येक के आठ प्रभेद हैं—आर्षी, देवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची, ब्राह्मी । सातों छन्दों का देवी प्रभेद एक से लेकर क्रमशः सात अक्षरों तक है । आसुरी प्रभेद पन्द्रह अक्षरों से नौ अक्षरों तक क्रमशः एक-एक घटकर है । प्राजापत्या के भेद आठ से बत्तीस अक्षर तक क्रमशः चार चार अक्षर बढ़कर बनते हैं । प्राजापत्या, आसुरी और देवी प्रभेदों को मिलाने से आर्षी प्रभेद बनता है । याजुषी प्रभेद छः अक्षरों से लेकर क्रमशः एक-एक बढ़कर बारह अक्षरों का होता है । साम्नी प्रभेद १२ अक्षरों से क्रमशः २, २, अक्षरों के बढ़ने से २४ अक्षरों तक का होता है । आर्ची प्रभेद १८ अक्षरों से क्रमशः ३, ३, अक्षर बढ़कर ३६ अक्षरों का होता है । याजुषी, साम्नी और आर्ची प्रभेद को मिलाकर ब्राह्मी प्रभेद बनता है ।

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुभ्	बृहती	पङ्क्ति	त्रिष्टुभ्	जगती	अङ्गवृद्धिक्षय
१ आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	४ वृद्धि
२ देवी	१	२	३	४	५	६	७	१ वृद्धि
३ आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	१ क्षय
४ प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	४ वृद्धि
५ याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२	१ वृद्धि
६ साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२ वृद्धि
७ आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६	३ वृद्धि
८ ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२	६ वृद्धि

१—छन्दः शब्देनाक्षरसंख्यावच्छन्दोऽत्राभिधीयते । पिङ्गलछन्दःसूत्रम्, २ अ., सूत्र १ ।

२—यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः, सर्वानुक्रमणी, मैकडानेल्—सम्पादित, भाग १ ।

३—वाजसनेयी संहिता (२१, ४३) ।

इन छन्दों के चरणों में एक या दो अक्षरों के कम होने और एक या दो अक्षरों के बढ़ जाने का भी विधान है। ऐसा भेद-सौषम्य संसार की किसी भाषा के छन्दों में नहीं मिलेगा। यदि किसी छन्द के चरण में एक अक्षर घट जाय तो नाम के पहले “निचूत्” विशेषण और यदि एक अक्षर बढ़ जाय तो “भूरिक्” विशेषण लगा दिया जाता है।^१ यदि किसी छन्द के चरण में दो अक्षर कम हों, तो उसे “विराज” और यदि दो अक्षर अधिक हों, तो “स्वराज” विशेषण से युक्त कर दिया जाता है।^२

छन्दों का आर्षी भेद ही अधिक प्रचलित है। इनकी संख्या २१ है—गायत्री (२४ अक्षर), उष्णिक् (२८ अक्षर), अनुष्टुप् (३२ अक्षर), बृहती (३६ अक्षर), पङ्क्ति (४० अक्षर), त्रिष्टुप् (४४ अक्षर), जगती (४८ अक्षर), अतिजगती (५२ अक्षर), शक्वरी (५६ अक्षर), अतिशक्वरी (६० अक्षर), अष्टि (६४ अक्षर), अत्यष्टि (६८ अक्षर), धृति (७२ अक्षर), अतिधृति (७६ अक्षर), कृति (८० अक्षर), प्रकृति (८४ अक्षर), आकृति (८८ अक्षर), विकृति (९२ अक्षर), संकृति (९६ अक्षर), अतिकृति (१०० अक्षर) और उत्कृति छन्द (१०४ अक्षर)। इनके प्रत्येक छन्द में चार चरण होते हैं। यदि इन समस्त भेदों के किसी चरण में दो अक्षर कम हों, तो उन छन्दों को क्रमशः राज (गायत्री से दो अक्षर कम २२), विराज (उष्णिक् में दो अक्षर कम = २६), सम्राट्, स्ववासिनी, परमेष्ठी, प्रतिष्ठा, भ्रमन्, भ्रमृत, वृषा, शुक, जीव, पय, तृप्त, अर्णस्, अंश, अभ्रस्, अम्बु, वारि, आप और उदक विशेषणों से युक्त कर दिया जाता है। आर्षी छन्द के गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती आदि भेदों में भी प्रभेद होते हैं, परन्तु उन प्रभेदों के सब चरणों के अक्षर मिल कर उस छन्द के सम्पूर्ण अक्षरों के बराबर होते हैं, यद्यपि विभिन्न चरणों में अक्षर-संख्या भिन्न होती है।^३

१—एक द्व्यूनाधिका सैव निचूतनाधिका भूरिक् । १ । पाताल १७, ऋक्प्रातिशाख्य ।

२—विराजस्तुत्तरस्याहुर्द्वाभ्यां या विषये स्थिताः ।

स्वराज एवं पूर्वस्य याः काश्चैवं गता ऋचः ।

शौनक, ऋक्-प्रातिशाख्य, पाताल १७, २ ।

३—(१) ८, ८, ८, गायत्री । (२) ६, ६, ६, ६, गायत्री । (३) ५, ५, ५, ५, ५, पदपङ्क्ति । (४) ५, ५, ५, ५, ६, पदपङ्क्ति भूरिक् । (५) ५, ५, ५, ५, ६, पदपङ्क्ति । (६) ८, १०, ७, गायत्री भूरिक् । (७) ७, ७, ७, गायत्री विराज । (८) ८, ६, ७, गायत्री अतिनिचूत् । (९) ६, ७, ८, गायत्री वर्द्धमान । (१०) ८, ६, ८, गायत्री निचूत् । (११) १२, १२ द्विपाद । (१२) ७, १०, ७, गायत्री यवमध्या । (१३) ६, ७, ११ गायत्री उष्णिक्गर्भं । (१४) ८, ८, १२ उष्णिक् । (१५) १२, ८, ८, पुरउष्णिक् । (१६) ८, १२, ८ ककुभ । (१७) ७, ७, ७, ७ अनुष्टुप् का उष्णिक् । (१८) ११, १२, ४, ककुभ में अङ्कुरा निचूत् ।

दो-दो छन्दों के समिश्रण से मिश्र छन्द बनाने का प्रचार वैदिक युग में चल चुका था ।^१ विशाल छन्दों की कल्पना वैदिक युग की महान् वाणी-शक्ति, अतुल बल, अपरिमित

(१६) ११, ६, ११ उष्णिक् पिपीलिका मध्या । (२०) ११, ११, ६ तनुशिरा । (२१) ५, ८, ८, ८ उष्णिक् अनुष्टुभ्गर्भ । (२२) ४, ८, ८, ८, ८ अनुष्टुभ् । (२३) १२, ८, १२ पिपीलिका मध्या । (२४) १२, १२, ८ कृति । (२५) ६, १२, ६ काविराज । (२६) ६, १०, १३ नष्टरूप । (२७) अः १०, १०, १० विराज । (२७) बः ११, ११, ११ विराज । (२८) ५, ५, ५, ५, ५, ६ महापदपंक्ति । (२९) ८, ८, १२, ८, बृहती । (३०) १२, ८, ८, ८, पुरस्ताद्वृहती । (३१) ८, ८, ८, १२, उपरिष्ठाद्वृहती । (३२) ८, १२, ८, ८ न्यकुसारिणी, स्कंधोग्रीवी, उरोवृहती । (३३) १२, १२, १२ ऊर्ध्ववृहती विराज । (३४) ८, १०, १०, ८, विस्तार वृहती । (३५) ६, ६, ६, ६, वृहती । (३६) १३, ८, १३, पिपीलिका मध्यमा । (३७) ६, ८, ११, ८ वृहती विषमपाद । (३८) ८, ८, ८, ८, ८ पंक्ति । (३९) १०, १०, १०, १०, विराज । (४०) १२, ८, १२, ८, सतोवृहती । (४१) ८, १२, ८, १२, विपरीत । (४२) ८, ८, १२, १२, आस्तारपंक्ति । (४३) १२, १२, ८, ८ प्रस्तारपंक्ति । (४४) १२, ८, ८, १२, सस्तारपंक्ति । (४५) ८, १२, १२, ८, विस्तारपंक्ति । (४६) ११, ११, ११, ११ त्रिष्टुभ् । (४७) १२, १२, ११, १२, उपजाति । (४८) १२, ११, १२, ११, त्रिष्टुभ् । (४९) १०, १०, १२, १२, अभिसारिणी । (५०) अः ६, ६, १०, ११ विराट्स्थान । (५०) बः १०, १०, ६, ११ विराट्स्थान । (५१) १०, १०, ८, ८, ८, विराट्पूर्व पंक्त्युत्तरा । (५२) ११, ११, ११, ८ विद्रूप । (५३) १२, १२, १२, ८ ज्योतिषमती (उपरिष्ठात्) । (५४) ८, १२, १२, १२ ज्योतिषमती (पुरस्तात्) । (५५) १२, ८, १२, १२, ज्योतिषमती (मध्ये) । (५६) १२, १२, ८, १२, ज्योतिषमती (मध्ये) । (५७) ८, ८, ८, ८, १२, महावृहती । (५८) ८, ८, १२, ८, ८, यवमध्या । (५९) १२, १२, १२, १२, जगती । (६०) ८, ८, ८, ८, ८, ८, महापंक्ति । (६१) ८, ८, ७, ६, १०, ६, महापंक्ति । (६२) ८, ८, ८, १२, १२, महासतोवृहती ।

अतिछन्द

(६३) १२, १२, १२, ८, ८, अतिजगती । (६४) ८, ८, ८, ८, ८, ८, शक्वरी । (६५) १६, १६, १२, ८, ८, अतिशक्वरी । (६६) १६, १६, १६, ८, ८, अष्टि । (६७) १२, १२, ८, ८, ८, १६, ८, अत्यष्टि । (६८) १२, १२, ८, ८, ८, १६, ८, घृति । (६९) १२, १६, ८, ८, ८, १२, ८, अतिघृति । (७०) २०, २०, २०, २० कृति । (७१) २१, २१, २१, २१, प्रकृति । (७२) २२, २२, २२, २२, आकृति । (७३) २३, २३, २३, २३, विकृति । (७४) २४, २४, २४, २४ संकृति । (७५) २५, २५, २५, २५ अभिकृति । (७६) २६, २६, २६, २६, उत्कृति ।

संयुक्त छन्द

१—(१) बार्हत (बृहती+सतोवृहती) = (८, ८, १२, ८) + (१२, ८, १२, ८)

(२) काकुभ (ककुभ+सतोवृहती) = (८, १२, ८) + (१२, ८, १२, ८)

श्रीज श्रीर स्तुत्य संगीतात्मकता की सूचना देते हैं। इन छन्दों के मिश्रण में भी मूल लय का ध्यान रखा गया है, जैसे वृहती (८, ८, १२, ८) श्रीर सतोवृहती (१२, ८, १२, ८) से मिल कर वार्हत छन्द बनता है। उसके आठों चरणों में मूल लय एकसी होती है, जैसे आगे चतुर्थ अध्याय के मुक्त छन्दों में ८, १२, १६ श्रीर २० मात्राओं के चरण एक साथ स्वरूप-स्वातंत्र्य की सूचना देकर मूल लय अष्टक को मानदंड मान कर आन्तरिक नियम का परिचय देते हैं। आठ अक्षरों के ड्योढ़े विस्तार से ही बारह वर्णों का चरण बना लिया गया है, (यद्यपि बारह वर्णों की पंक्ति दूसरी विभिन्न लयों के आधार पर भी बन सकती है) श्रीर क्रम में ८, ८, १२, ८, १२, ८, १२, ८, वर्णों की पंक्तियों के आने से लय की धारा एक ही रहती है। केवल विश्लेषण के समय वर्णों के क्रम के लिखने में स्वच्छन्दता परिलक्षित होती है। कभी दो अन्य लयों के छन्दों का योग भी कर दिया जाता था, जैसे

- (३) आनुष्टुभ (अनुष्टुभ + २ गायत्री) = (८, ८, ८, ८) + (८, ८, ८) + (८, ८, ८)
 (४) गायत्रि वार्हत (गायत्री + वृहती) = (८, ८, ८) + (८, ८, १२, ८)
 (५) गाण्डिकाकुम्भ (गायत्री + ककुम्भ) = (८, ८, ८) + (८, १२, ८)
 (६) श्रीणह (उष्णिह + सतोवृहती) = (८, ८, १२) + (१२, ८, १२, ८)
 (७) पाँवतकाकुम्भ (काकुम्भ + पंक्ति) = (८, १२, ८) + (८, ८, ८, ८, ८)
 (८) महावार्हत (महावृहती + महासतोवृहती) = (८, ८, ८, ८, १२) + (८, ८, ८, १२, १२)

(९) वार्हत =

अः (वृहती + जगती) = (८, ८, १२, ८) + (१२, १२, १२, १२)

बः [वृहती (उपरिष्ठात् + अतिजगती)] = (८, ८, ८, १२) + (१२, १२, १२, १२)

सः (वृहती + यवमध्या) = (८, ८, १२, ८) + (८, ८, १२, ८, ८)

(१०) विपरीतान्त = (वृहती + विपरीत) = (८, ८, १२, ८) + (८, १२, ८, १२)

(११) द्विपादाधिका = (वृहती + सतोवृहती + द्विपाद) = (८, ८, १२, ८) + १२
 (१२, ८, १२, ८) + (१२, ८)

(१२) आनुष्टुभ जागत = (अनुष्टुभ (विराज) + जगती) = (१०, १०, १०) +
 (१२, १२ १२, १२)

(१३) द्विपाद वार्हत = [(द्विपाद (वृहती) + वृहती (पिपीलिकामध्या) = (१२, १२)
 + (१३ ८, १३)

(१४) काकुम्भ वार्हत = (काकुम्भ + वृहती) = (८, १२, ८) + (८, ८, १२, ८)

(१५) आनुष्टुभोष्णिह = (अनुष्टुभ + उष्णिह) = (८, ८, ८, ८) + (१२, ८, ८)

(१६) वार्हंतानुष्टुभ = (वृहती + अनुष्टुभ) = (८, ८, १२, ८) + (८, ८, ८, ८)

(१७) आनुष्टुभ पाङ्क्त = (अनुष्टुभ + पंक्ति) = (८, ८, ८, ८) + (८, ८, ८, ८, ८)

अनुष्टुभ् त्रैष्टुभ् छन्द; अनुष्टुभ् (८, ८, ८, ८ वर्ण) और त्रिष्टुभ् (११, ११, ११, ११ वर्ण) के संयोग से और त्रैष्टुभ् जागत छन्द, त्रिष्टुभ् (११, ११, ११, ११) एवं जगती (१२, १२, १२, १२) छन्द के संयोग से बनते हैं । इस प्रकार छन्द-संयोग से एकरूपता की विषयता समाप्त हो जाती है और नये रूप की सुषमा आ जाती है । हिन्दी में छप्पय (रोला + उल्लाहा) कुंडलिया (दोहा + रोला), अमृतध्वनि (दोहा + व्यष्टक), हुलास (पद्धरि + हरि-गोतिका) आदि छन्द इसी वृत्ति के द्योतक हैं । मुक्त छन्द में भी एकरूपता में नवीनता लाने के लिए नवीन लय का प्रयोग कर दिया जाता है । हिन्दी में इस आदर्श को सामने रखकर सैंकड़ों प्रकार के अन्य नवीन छन्द बन सकते हैं । वैदिक युग में ऐसे मिश्रित छन्दों को प्रगाथा संज्ञा दी गयी है, आर्या, गीति, उद्गोति आदि विषम मात्रिक छंदों को इसी आधार पर 'गाथा' संज्ञा प्रदान की गयी है । मिश्रित छन्द निश्चित छन्दों के परवर्ती युग के होते हैं । इसी प्रकार गाथा छन्द प्राकृत युग में निश्चित मात्रिक छन्दों के बाद आए हैं ।

वैदिक युग में केवल छंदों के चरण-विस्तार में ही स्वतन्त्रता नहीं ली गयी, वरन् भावानुकूल २, ३, ४, ५, ६, ७, और ८ चरणों के छंदों का भी निर्माण हुआ ।

$$(१८) \text{ काकुभ त्रैष्टुभ् } = [(ककुभ + त्रिष्टुभ् (ज्योतिषमतीमध्ये)]$$

$$= (८, १२, ८) + (१२, ८, १२, १२)$$

$$(१९) \text{ आनुष्टुभ् त्रैष्टुभ् } = \text{अनुष्टुभ्} + \text{त्रिष्टुभ्} = (८, ८, ८, ८) + (११, ११, ११, ११)$$

$$(२०) \text{ वार्हत त्रैष्टुभ् } = [(वृहती + त्रिष्टुभ् (ज्योतिषमतीमध्ये)]$$

$$= (८, ८, १२, ८) + (१२, ८, १२, १२)$$

$$(२१) \text{ त्रैष्टुभ् जागत } = (\text{त्रिष्टुभ्} + \text{जगती}) = (११, ११, ११, ११) + (१२, १२, १२, १२)$$

$$(२२) \text{ अनुष्टुभ् त्रैष्टुभ् } = (\text{अनुष्टुभ्} + \text{महासतोमुख}) = (८, ८, ८, ८) + (१०, १०, ८, ८, ८)$$

$$(२३) \text{ जागत } = (\text{जगती} + \text{त्रिष्टुभ्}) = (१२, १२, १२, १२) + (११, ११, ११, ११)$$

$$(२४) \text{ त्रैष्टुभ् } = (\text{त्रैष्टुभ्} + \text{जगती}) = (११, ११, ११, ११) + (१२, १२, १२, १२)$$

(ऋक् प्रातिशाक्य के आधार पर)

लेखक ।

१—दो पंक्तियों के छन्द—द्विपाद गायत्री, द्विपाद त्रिष्टुभ्, द्विपाद सतोवृहती, द्विपाद जगती ।

तीन पंक्तियों के छन्द—गायत्री (८, ८, ८, वर्ण), उष्णिक् (८, ८, १२ वर्ण) ककुभ (८, १२, ८ वर्ण), विराज (त्रिपाद त्रिष्टुभ्) (११, ११, ११), पुर उष्णिक् (१२, ८, ८,), त्रिपाद जगती (१२, १२, १२) ।

कहीं-कहीं तो ठीक एक ही चरण की समान प्रावृत्ति होती थी, जैसे गायत्री (आठ अक्षर, तीन चरण), त्रिपाद त्रिष्टुप् (ग्यारह अक्षर, तीन चरण), त्रिपाद जगती (बारह अक्षर, तीन चरण), अनुष्टुप् (आठ अक्षर, चार चरण), विराट्स्थान (दस अक्षर, चार चरण), त्रिष्टुप् (ग्यारह अक्षर, चार चरण), जगती (बारह अक्षर, चार चरण), अतिजगती (तेरह अक्षर, चार चरण), पंक्ति (आठ अक्षर, पाँच चरण), शक्वरी (ग्यारह अक्षर, पाँच चरण), पंचपाद जगती (बारह अक्षर, पाँच चरण), महापंक्ति (आठ अक्षर, छः चरण) और कहीं एक निश्चित लय को प्रावृत्तितानुसार आधा या ड्योढ़ा कर दिया जाता है, जैसे आठ अक्षर की लय में दो खंडों को ड्योढ़ा करके बारह अक्षरों की लय बन सकती है और चार अक्षरों की अर्द्धलय हो सकती है। उष्णिक् (८, ८, १२), ककुब् (८, १२, ८ अक्षर), पुरउष्णिक् (१२, ८, ८), द्विपाद पुर उष्णिक् (८, ४, ८, ८), द्विपाद उष्णिक् (८, ८, ८, ४), बृहती (८, ८, १२, ८), स्कंधोष्ठीव (८, १२, ८, ८), विपरीत (८, १२, ८, १२), विष्टरपंक्ति (८, १२, १२, ८), सतोबृहती (१२, ८, १२, ८), मध्यज्योतिष (१२, ८, १२, १२), प्रस्तारपंक्ति (१२, १२, ८, ८), उपरिष्ट ज्योति (१२, १२, १२, ८), द्विपाद बृहती

चार पंक्तियों के छन्द—द्विपाद विशाज (५, ५, ५, ५), पाव पंक्ति (५, ५, ५, ११), द्विपाद पुर उष्णिक् (८, ४, ८, ८), द्विपाद उष्णिक् (८, ८, ८, ४), अनुष्टुप् (८, ८, ८, ८), बृहती (८, ८, १२, ८), स्कंधोष्ठीव (८, १२, ८, ८), विपरीत (८, १२, ८, १२), विष्टर पंक्ति (८, १२, १२, ८), विराट् स्थान (१०, १०, १०, १०), पुरस्ताद् बृहती (११, ८, ८, ८) विषमपाद (११, ८, ११, ८), त्रिष्टुप् (११, ११, ११, ११), सतोबृहती (१२, ८, १२, ८), मध्यज्योतिष (१२, ८, १२, १२), प्रस्तारपंक्ति (१२, १२, ८, ८), उपरिष्टज्योति (१२, १२, १२, ८), जगती (१२, १२, १२, १२), अतिजगती (१३, १३, १३, १३)।

पाँच पंक्तियों के छन्द—महापाद पंक्ति (५, ५, ५, ५, ११), द्विपाद बृहती (८, ८, ८, ४, ८), उपरिष्टाद् बृहती (८, ८, ८, ८, ४), पंक्ति (८, ८, ८, ८, ८), महाबृहती (८, ८, १२, ८, ८), शक्वरी (११, ११, ११, ११, ११), महसतोबृहती (१२, ८, १२, ८, ८), पंचपाद जगती (१२, १२, १२, १२, १२)।

छः चरणों के छन्द—आस्तारपंक्ति (८, ८, ८, ४, ८, ४), महापंक्ति (८, ८, ८, ८, ८, ८)।

सात चरणों के छन्द—अत्यष्टि (१२, १२, ८, ८, ८, १२, ८) धृति, (१२, १२, ८, १२, ८, १२, ८)।

आठ चरणों के छन्द—अतिधृति (१२, १२, ८, ८, ८, १२, ८, ८) आदि (श्री वनंन ग्रान्त्स के "वैदिक मीटर" के वर्गीकरण के आधार पर) लेखक।

(८, ८, ८, ४, ८), उपरिष्ठाद् वृहती (८, ८, ८, ८, ४), महावृहती (८, ८, १२, ८, ८), महासतोवृहती (१२ ८, १२, ८, ८), आस्तारपंक्ति (८, ८, ८, ४, ८, ४), अत्यष्टि (१२, १२, ८, ८, ८, १२, ८), धृति (१२, १२, ८, १२, ८, १२, ८), अतिधृति (१२, १२, ८, ८, ८, १२, ८, ८) आदि छंद इसी आधार पर निर्मित हुए हैं। ऐसे छन्दों में रस एक ही रहता है, अतः लय का मूलाधार भी एक ही रहता है, पर भाव की सीमा के अनुसार छंद विस्तृत अथवा स्वल्प शरीर धारण करता है। कहीं २ लयों का एक ही छन्द में योग हो गया है। सामान्य लय के बीच असामान्य या भिन्न लय छन्दक (टेक) के रूप में प्रारम्भ में आती है अथवा अन्त में, क्योंकि नवीन लय के आने पर छन्द की समाप्ति अवश्यम्भावी है, जैसे पादपंक्ति (५, ५, ५, ५, ११ वर्ण), के चार चरणों के बाद एक दम नयी लय आ जाती है और फलतः छन्द समाप्त हो जाता है। पुरस्ताद् वृहती में पहला चरण ११ अक्षर का और शेष तीन चरण आठ अक्षर के होते हैं। यहाँ छन्दक (टेक) में भिन्न लय है और प्रवाही चरण भिन्न लय के ह।

वैदिक छन्दों के विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण करने से पता चलता है कि उसकी छन्द-परंपरा वैदिक युग से बहुत पुरानी है। संसार की समस्त भाषाओं के छन्दों में यह गुण है कि उनका आधार लघु गुरु ही है, जो मानव की उच्चारण प्रकृति के बहुत अनुकूल है। मनुष्य या तो धीरे से किसी स्वर को उच्चरित करेगा या जोर से। श्रवणीय स्वर स्पन्दन से लेकर एक निश्चित उच्चारण तीव्रता तक लघु स्वर माना जाता है, और उसके ऊपर गुरु। लघु और गुरु के बीच निश्चित रेखा खींचना बड़ा कठिन है, क्योंकि ध्वनि का स्पन्दन क्रमिक रूप से तीव्र होता है। लघु स्वर के ऊपरी धरातल पर दीर्घता का मिश्रण स्पष्ट होता है, ऐसे उदाहरण ब्रज और अवधी आदि वर्तमान भाषाओं से भी दिये जा सकते हैं। उर्दू कविता में दीर्घ उच्चारण प्रायः लघुता प्राप्त कर लेता है। यह उच्चारण-स्वातंत्र्य संस्कृत में नहीं पाया जाता। खड़ी बोली हिन्दी की उच्चारण-प्रवृत्ति संस्कृत के समान ही है, यद्यपि उर्दू और प्रचलित गीतों में यह अपवाद बहुशः प्राप्य हैं। दीर्घ स्वर से भी अधिक दीर्घता वैदिक युग में पायी जाती थी, अतः वहाँ त्रिमात्रिक स्वर प्लुत भी विद्यमान था। प्लुत होने पर भी वैदिक युग में लघु और गुरु दो ही स्वरों का प्राधान्य था, जिसमें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन स्वर-निपातों का योग किया जाता था। यदि समस्त छन्दों का विवेचन किया जाय, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक छन्दों में लघु-गुरु-मूलक वृत्ति की धारा सर्वत्र सन्निहित है। यही बात ग्रीक एवं तदनुगामिनी भाषाओं में भी है, जिसका वर्णन आगे होगा।^१

1. In almost all metres a general iambic rhythm may be noticed, in the sense that the even syllables, namely the second, fourth and so on, are more often long than short. Hence it has been supposed that Vadic metre has arisen historically from some

लय में लघु स्वर से दीर्घ की ओर गति का विकास स्वाभाविक है, अतः दीर्घ स्वर से प्रारंभ होने वाले छन्द परवर्ती माने जाने चाहिये। लघु और गुरु के प्रयोग से चार अक्षरों का लघुतम लय खंड बना और इसी की आवृत्ति से अनुष्टुप् की आठ अक्षरों वाली लय तैयार हुई, जिसमें चरण के प्रारंभ और निपात के क्रम पर विशेष ध्यान दिया गया, क्योंकि गायन के यही दो मूलधार हैं। लगक्रम (लघु-गुरुक्रम) के कारण अनुष्टुप् का दूसरा और चौथा अक्षर प्रायः दीर्घ होता है। विकसित अवस्था में दो चरणों को मिलाकर एक लय का निर्माण हुआ, तो अन्तिम स्वर-निपात दूसरे अष्टक के अन्तिम अक्षरों पर पड़ने लगा, अतः अन्तिम स्वर अनिवार्यतः लग-प्रधान होते हैं।^२

यह नियम संस्कृत काव्य-युग में बहुत दृढ़ हो गया है^१। वैदिक युग में एक दो अक्षरों का घटना और बढ़ना भी मान्य था^२। उस अवस्था में निश्चित रूप से स्वाभाविक उच्चारण से भिन्न पद्धति स्वीकार की जाती है, क्योंकि छन्द की संगीतात्मक धारा के सामने अपवाद रूप में व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगों को भी अपनाया गया है। धीरे-धीरे समय के साथ अनुष्टुप् छन्द का स्वरूप शास्त्रीय (Classical) होता चला गया। यह विकास अपनी सहज जीवनी शक्ति के कारण हुआ है, किसी अभ्यास के कारण नहीं^३। प्रारम्भिक

combination of iambic feet, such as is found in so many Greek metres, Paragraph 33.

The Principal metre—Vedic Metre.

By E. Vernon Arnold.

2. (a) The opening first syllable is indifferent. The second and the fourth syllable are preferably long but often short (quantity of the third syllable is indifferent). But if the second syllable is short, the third is almost invariably long. Para 37. Vedic Metre, E. V. Arnold.
- (b) In all the metres the rhythm of later part of the verse is much more rigidly defined than that of the earlier part.

Para 34.

Vedic Metre—By E. Vernon Arnold

१—इलोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

श्रुतबोध - कालिदास ।

२—एवं क्लृप्तप्रमाणानां छन्दसामुपदिश्यते ।

एकद्वयनाधिका सेव निचूदनाधिकाभूरिक् । १ ।

ऋग्वेद प्रातिशाख्य, पाताल १७ ।

8. It seems unlikely that there is any conscious imitation of older forms, for the whole growth of epic Anustubh rhythm is so gradual that the idea of deliberate choice seems to be excluded. P. 163.

Vedic Metre—By E. V. Arnold.

छन्दों से यह सूचना मिलती है कि यह छन्द अपने निश्चित विकास के लिये लय-अपवादों के स्वरूप में स्वयं गतिमान है। छन्द का आरंभ लगक्रम (ISIS) अथवा 'सामान्य गति' (Normalopening).... a phrase coined by E. V. Arnold.) से होता है, पर साथ ही साथ दूसरे अपवादों के लिये भी स्थान रहता है। छन्द का अन्तिम स्वरनिपात निश्चित ७प से लगात्मक (Iambic cadence) होता है। परवर्ती काल में क्रमशः ये अपवाद भी तिरोभूत हो गये हैं। इस छन्द का प्रभाव उष्णिक, अत्यष्टि और ककुभ सतोवृहती के विकास में सहायक हुआ और इन छन्दों का स्वरनिपात अनुष्टुभ की भाँति लगात्मक हो गया।

पहले अनुष्टुभ का स्वर-निपात ही लगात्मक था, यद्यपि आरंभ गुरुमूलक हो सकता था। बाद में जब आरंभ भी लगात्मक हो गया तो अनुष्टुभ (SSSS/ISIS का रूप (SSSS/ISIS) और (ISIS/ISIS) हो गया। फिर ड्योड़ी आवृत्ति से (ISIS/ISIS/ISIS) रूप बना। इसमें यति का स्थान खोजने के लिये दीर्घ अक्षरों की आवश्यकता हुई, तो चतुर्थ गुरु के बाद का अक्षर गुरु हो गया और स्वर के ऊपर चढ़ जाने से एकदम उतरने की आवश्यकता पड़ी, तो छठे स्थान पर लघु स्थायी हो गया। इस प्रकार बहुत से परिवर्तनों के बाद जगती ने नया रूप खोज निकाला। त्रिष्टुभ ने भी अनुष्टुभ से अपना विकास किया है। इसके विकास की स्थितियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। धीरे-धीरे बाधक अपवादों का तिरोभाव होता गया। अक्षरों की संख्या के विस्तार के साथ बीच में विराम की आवश्यकता हुई, तो कभी चार, कभी पाँच, कभी छः, कभी सात और कभी आठ अक्षरों के बाद विराम दिया गया। फिर आरंभ और मध्य का लगात्मक क्रम विकसित हुआ और उसने अन्तिम गलात्मक लय से अपना समन्वय किया। वैदिक युग के पहले ये छन्द (७ ७ ७ ७ / ७ - - / ७ - ७) रूप में थे। उपरि-चिह्नित अक्षरों की गुरुता पर विशेष ध्यान रखा जाता था।

4. The earliest type is shown as in the Anustubh hymn. Here the 'normal' and iambic rhythm are equally common in the opening, all other forms being occasional; in the cadence the iambic rhythm is alone regular, but variations are common as compared with the later periods. Hymn in usnik, Atyashti and Kakubh Satobrahti do not greatly differ from this type, but the iambic opening is rather less common and the iambic cadence rather more strict. Page 170.

Vedio Metre—By E. V. Arnold.

1. Variations of almost every kind appear side by side in those groups which we can assign most confidently to the archaic period, resulting in a rhythm which we may call the less rigid trimetre rhythm and which exactly corresponds to the earliest

ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि चतुष्क की अर्द्धवृत्ति युग्मक (गुरु गुरु) का योग दूसरे चतुष्क के पहले उसी लय प्रवाह में हुआ होगा । (१ १ १ १ १ १ १ १ १ १), फिर उच्चारण की पद्धति से तीसरे अक्षर का उत्थान चौथे पर न सक कर पाँचवें अक्षर पर रुकने लगा और स्वर की उच्चता के बाद लघु अक्षर की आवश्यकता पड़ी, तो दीर्घ के स्थान पर दो लघु कर दिये गये और (१ १ १ १ १ १ / १ १ १ १ १) स्वरूप में दो गुरुओं के बाद तीन लघु एक दम स्वर को गिरा देते हैं, अतः आठवाँ अक्षर गुरु हुआ और लगात्मक परंपरा एवं दूसरे, तीसरे तथा चौथे अक्षरों की लयावृत्ति के साम्य पर रगण का स्वरूप क्रमशः यगण हो गया और (१ १ १ १ १ १ / १ १ १ १ १)

form of diametre rhythm. This, we seem bound to recognize as the earliest form of trimetre verse in the Rigveda. But the different variations which together contribute to this general rhythm do not disappear simultaneously. Just when the rests and most other variations are becoming rare, we find a development of a iambic rhythm, especially in connection with the secondary caesura. This rhythm affecting chiefly the break, but to some extent the opening also. Thus the iambic and cretic variations no longer appear as contrasted, but as characterizing successive stages in the development of the metre of all parts of verse, the opening lends itself least to the historical treatment..... the dominant form of prevedic trimetre verse, and as the possible starting point of the development of the vedic forms generally

$\underline{u} \quad (u) \quad \underline{u} \quad (u) / uu - - / \underline{u} - \underline{u}$ all the symbols being understood to mark preferences for less marked than those of the Rigveds generally. P. 225, 226.

Vedic Metre—By E. V. Arnold.

यति विवेचनः—(iii) the 'break' or rhythm of the fifth, sixth and seventh syllable. Page 177.

The caesura is the dominant feature of trimetre verse, and its position decisively affects the rhythm both of the opening and of the break. The caesura is a natural pause, corresponding to the taking of the breath in recitation and occurs regularly in all parts of Rigveds, either as an early caesura, that is, a pause after the fifth syllable. Verses of these two types are everywhere combined in the same stanza, P. 179. chiefly in the Vashistha hymns, we find a variation which may turn the secondary caesura, being an approximation of the first eight syllables of trimetre verse to the diametre type. Page 179, 180.

Vedic Metre, By E. V. Arnold.

स्वरूप स्थिर हो गया। आर्नल्ड महोदय इस व्याख्या से भिन्न मत रखते हैं। इसी-लिये त्रिष्टुभ् के विश्लेषण में उनके सामने समस्या उठ खड़ी हुई। पहले प्रकार के विश्लेषण में वे चार या पाँच अक्षर पर यति के दो भाग कर देते हैं। दूसरे विश्लेषण में तीन भाग मानते हैं, परन्तु ये भाग उनकी व्याख्या से मेल नहीं खाते। जब तक उसके विकास में लेखक द्वारा की गयी अथवा वैसी ही एक अन्य व्याख्या की कल्पना न की जाय।^१ त्रिष्टुभ् और जगती में अनुष्टुभ् की अन्तर्धारा आदि से अंत तक चलती है, इसीलिए त्रिष्टुभ् में नवें और जगती के ग्यारहवें अक्षर की लघुता प्रायः निरपवाद है और इनके पहले के आठवें और दसवें अक्षर अनुष्टुभ् के प्रभाव से ही दीर्घ हुए हैं, केवल कुछ अपवादों के साथ, परन्तु वहाँ भी आठवें और दसवें अक्षर की लघुता को समाप्त करने का आयास भी दोनों छन्दों में देखा जाता है।^२

त्रिष्टुभ् छन्द से जितने भी विकास हुए, उनमें इन्द्रवज्रा (SSISS || SSS) ही सर्व-प्रमुख हुआ। त्रिष्टुभ् के समस्त छन्दों की दशा जैसे इसी ओर विकसित होती दिखाई पड़ती है। जगती की अपेक्षा इन्द्रवज्रा की धारा वेगशील, गंभीर और सुचारु सुगठित है, उसमें मंदगामिता की संभावना नहीं, अतः शृंगार और वीर आदि तीव्र भाव इस छन्द में कुशलता से व्यक्त हो जाते हैं। यही कारण है कि ऋग्वेद में दो तिहाई छन्द (२४०००) त्रिष्टुभ् हैं।^३ आन्तरिक स्वरूप संगठन, तीव्र धिरोधी ध्वनियों

1. Trimetre verse may be analysed in two ways:—

- (i) into two parts, as separated by the caesura which regularly follows either the fourth or the fifth syllable.
- (ii) into three members (a) the opening, which consist of the first four syllables; (b) the break, consisting of fifth., sixth and seventh syllable and (c) the cadence, which includes remaining syllables, beginning with the eight. Para 42.

The Principal metres—Vedic Metre.

By E. V. Arnold.

2. The 'Cadence' of trimetre verse shew the same general rhythm as that diametre verse. Thus the ninth syllable, and in Jagati verse the eleventh, are regularly short. Its eight and the tenth are regularly long but either or both are occasionally short. We are, however, able to trace of progressive tendency to eliminate the employment of short syllables in eighth and tenth place.

Page 47.

Vedic Metre. By E. V. Arnold

3. Almost two third of the Rigveda is composed in trimetre verse, the numbers of verses being nearly 24000. Page. 203.

Vedic Metre. By E. V. Arnold,

के संयोग का अभाव और घनीभूत क्षिप्रगति संगीत की समृद्धि उसके गरिमामय विकास की सूचना देते हैं। महाकाव्य-युग में इस छन्द का बहुशः प्रयोग हुआ है। पहले अक्षर को लघु करके उसका उपेन्द्रवज्रा प्रभेद और दोनों के समिश्रण से उपजाति प्रभेदों को आर्नल्ड महोदय एक 'इन्द्रवज्रा' संज्ञा ही से अभिहित करने का परामर्श देते हैं, क्योंकि इन सभी के मूल में लयात्मक अन्तर्धारा एक ही है।^१

अनुष्टुभ् छन्द के पश्चात् गायत्री छन्द का निर्माण हुआ।^२ भारोपीय छन्दों का निर्माण युग्मकों के आधार पर हुआ है। छन्द के चरणों की संख्या विषम होना इस परिवार के छन्दों की विशेषता भी नहीं है। मालूम होता है कि गायत्री छन्द अनुष्टुभ् के एक चरण को घटा कर बना लिया गया है, परन्तु इस आधार पर इसकी प्राचीनता पर संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऋग्वेद का पहला छन्द 'अग्निमीडे पुरोहित' गायत्री ही है और इसका प्रयोग प्रगीतों में भी हुआ है। ऋग्वेद में गायत्री छन्द के स्वरूप से यह स्पष्ट विदित होता है कि यह छन्द विकसित और परवर्ती है। लगात्मक या लघीयान प्रारंभ, लय-निपात की निश्चित रूपात्मकता और छन्द के अनुसार चरणों की स्थिति के अनुकूल स्वरूप भेद परवर्ती काल की विकसित अवस्था की सूचना देते हैं।

1. The Indian theory of classical sanskrit metre unnecessarily distinguishes two forms of this verse, according to the quantity of initial syllable, and it fails to take adequate account of the caesura which is the most important feature in the verse, at any rate as used in Rig-veda. Still the term Indravajra will be convenient for the scheme just given if we may modify the traditional meaning by regarding the quantity of the initial syllable as indifferent and late caesura as essential. Although the Indravajra verse never becomes established as the basis of an independent metre, it holds a position of such prominence amongst the various forms of trishtubh verse that it may fairly be considered as the dominant type, which has emerged from the competition of numerous Vedic rivals. Page 184.

Vedic Metre, By E. V. Arnold.

2. Gayatri on the whole appears to be later than Anustubh. This is first suggested by the form of stanza; for the whole balance of the Indo-European structure of metres is based upon duality, and the stanza of three verses seem to be a reduction from the normal stanza of four. But although the trimetre stanza of three verses and it is impossible to doubt the antiquity of Gayatri metre as used in

प्रगति और छन्द-स्वातन्त्र्य

संगीत-प्रधान आत्माभिव्यंजक काव्य में छन्द की रुढ़ि का दृढ़ पालन नहीं किया जा सकता है। वहाँ भाव की प्रधानता रहती है और उच्चारण में शास्त्रीय विधान पर बहुत जोर नहीं दिया जाता। छन्द की लय, उच्चारण और चरण का विस्तार आवश्यकतानुसार षटाया और बढ़ाया जा सकता है। आर्नल्ड महोदय स्वातंत्र्य प्रधान छन्दोविधान से युक्त गीतों को निश्चित छन्दों के युग से प्राचीन मानते हैं। परन्तु, यह भी संभव है कि ऐसी रचनाएँ समसामयिक हों, क्योंकि प्रत्येक युग में जब कि निश्चित छन्दों का प्रयोग होता है, तो उसी के साथ जन सामान्य के गीति-साहित्य में अशास्त्रीय छन्दों का प्रयोग चलता रहता है, यद्यपि उनमें लय और आन्तरिक गीति-चेतना की दृष्टि से कोई दोष नहीं होता, क्योंकि अशिक्षित के कण्ठ से भी जो गान फूटता है, उनमें प्रकृतिसाध्य एक सहज छन्दोव्यवस्था होती है। इसीलिये प्रगीतों में प्रयुक्त अनुष्टुप् के चरण में दस अक्षर भी पाये जाते हैं।^१

प्रायः छन्द के अन्तिम अक्षर की कमी चरण के अन्तिम अक्षर पर जोर देकर ज्यादा देर तक गाने से पूरी हो जाती है, और बीच की कमी हल् को सस्वर कर देने से पूरी हो जाती है, जैसे गायत्री के 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' का उच्चारण 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' होता है। इससे आठ अक्षरों की गणना पूरी हो जाती है और लय का व्याघात समाप्त हो जाता है।

वर्नन आर्नल्ड महोदय के अनुसार छन्द के इस निचूत रूप का कारण यह है कि अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्दों ने एक दूसरे को अपनी लय से प्रभावित किया है।

hymn like VIII, in combination with lyric metres.....the great mass of Gayatri hymn in Rigveda is distinguished by characteristics, which suggest a latter date and at same furnish a transition to the metres of the popular Rigveda. These characteristics are the growth of the syn-copated opening, the increased regularity of the cadence and the differentiation of the verses according to their position in the stanza.

Vedic Metre, By E. V. Arnold. Page 171.

1. The number of syllable in a verse is not quite rigidly prescribed. Thus many diametre verses contain seven syllables only. Such verses, if they correspond in rhythm to an ordinary diametre verse with less of the last syllable, we turn catalectic diametre verses, if otherwise the more general name hyptasyllabic may be used.

Trimetre verses which contain the only the syllables are not uncommon, such verses being equally equivalent to the verse of eleven syllables with less of syllable before or after the caesura. These shorter uses may be termed decasyllabic. Page 7.

The Principal Metre, Vedic Metre, By E. V. Arnold.

त्रिष्टुभ् के प्रभाव से अनुष्टुभ् के चरण में सात अक्षर रह जाते हैं, और अनुष्टुभ् के प्रभाव से त्रिष्टुभ् में बारह अक्षर हो जाते हैं। परवर्ती काल के गीतों में तो अधिकांश आठ और बारह अक्षरों के चरण ही प्रयुक्त हुए हैं, पर पूर्वकाल में सभी प्रकार के चरणों का योग रहता था।^१ बारह अक्षरों का जगती छन्द इसीलिए त्रिष्टुभ् और अनुष्टुभ् के बाद का माना जाता है।

गीतों में पहली पङ्क्ति अथवा अन्तिम पङ्क्ति प्रायः लम्बी होती है, क्योंकि चरण-वैषम्य से, भाव में विशेष परिवर्तन की सूचना दी जाती है। ऐसे स्थल ही गीत के प्राण-केन्द्र बनते हैं। खड़ी बोली के गीतों के प्रथम और अन्तिम चरण में प्रायः प्राणकेन्द्र होता है। इसी प्रकार भवितकाल के छन्दकों (टेकों) और रीतिकालीन सवैया-घनाक्षरी के अन्तिम चरणों में अधिकांश प्राणकेन्द्र होता है। वैदिक प्रगीतों में अनुष्टुभ्, त्रिष्टुभ् और जगती चरणों का क्रमायोजन निश्चित नहीं होता है। इन स्वतन्त्र छन्दों के चरणों में महाकाव्य-युग के शास्त्रीय छन्दों के लयांश खोजे जा सकते हैं जैसे यज्ञे यज्ञे सपर्याति स देवान्' में शालिनी छन्द^२ (SSSS/ SISSISS) का आभास मिलता है। "आधिवासाति अग्नेः" अनुष्टुभ् का निचृत् चरण है, जो मन्दाक्रान्ता (SSSS/ III IIS/SISSISS), स्रग्धरा (SSSSISS/III IIS/SISSISS), मेघविस्फूर्जिता (ISSSSS/ III IIS/ SISSISS) के अन्तिम लयखण्ड के समान है। इस प्रकार बहुत से अपवादों की व्याख्या की जा सकती है, क्योंकि छन्द की प्रकृत धारा नियम-भिन्न होकर भी किसी नई दिशा की ओर प्रवाहोन्मुख रहती है।

अनुष्टुभ् छन्द ने विस्तार के विभिन्न रूपों को धारण किया है। अष्टक के तीन चरणों से गायत्री, चार चरणों से अनुष्टुभ्, पाँच चरणों से पङ्क्ति (८, ८, ८, ८, ८), ६: चरणों से महापङ्क्ति (८, ८, ८, ८, ८, ८), सात चरणों से शकवरी (८, ८, ८, ८, ८, ८, ८), नौ चरणों से आनुष्टुभ् पाङ्क्ति (८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८) और दस चरणों से आनुष्टुभ् (अनुष्टुभ् + दो गायत्री) { (८, ८, ८, ८) + (८, ८, ८) + (८ + ८ + ८) } छन्द का निर्माण होता है। इसी प्रकार अन्य संख्या के चरणों में भी

1. The mutual influence of the diametre verse of 8 syllables and the trimetre verse of 11 is sufficient to account for the creation of a diametre verse of seven syllables and trimetre verse of twelve: in uneven lyric metre all these varieties are combined, but in the latter lyric poetry only verses of 8 and of twelve syllables are used. P. 117

Vedic Metre. By E. V. Arnold.

२—ह्रस्वो वर्णो जायते यत्र षष्ठर-तीक्ष्णप्रज्ञे ! तद्वदेषाष्टमान्यः ।

विश्रामः स्याच्छात्रवेदैः तुरंगैस्तां भाषन्ते शालिनी छान्दसीयाः ॥

भुतबोध, १७ ।

मूललयो ने अपना विस्तार किया है। सप्तक के तीन चरणों से विराज गायत्री और चार चरणों से उष्णिक् अनुष्टुप् बनता है। वृहती पंक्ति और अतिच्छन्दों के वर्ग में ८, १२ और १६ अक्षरों के ही चरण प्रायः मिलते हैं, क्योंकि इनकी लयात्मक अन्तर्धारा एक सी है। वृहती (८, ८, १२, ८) और सतोवृहती (१२, ८, १२, ८) के स्वरूप का विभिन्न दिशाओं में विस्तार हुआ है। अत्यष्टि का यह रूप (१२, ८, १२, ८, १२, ८) निश्चित रूप से सतोवृहती का ड्योढ़ा है। इसी प्रकार १२ और ८ अक्षर के चरणों के योग से ही उष्णिक् (८, ८, १२), ककुभ (८, १२, ८,), पुरउष्णिक् (१२, ८, ८), वृहती (८, ८, १२, ८), स्कन्धोष्ठीव (८, २२, ८, ८), विपरीत (८, १२, ८, १२), विष्टरपंक्ति (८, १२, १२, ८), सतोवृहती (१२, ८, १२, ८,), मध्येज्योतिष (१२, ८, १२, १२), प्रास्तारपंक्ति (१२, १२, १२, ८), महावृहती (८, ८, १२, ८, ८), महासतोवृहती (१२, ८, १२, ८, ८), अत्यष्टि (१२, १२, ८, ८, ८, १२, ८), धृति (१२, १२, ८, १२, ८, १२, ८,) और अतिधृति (१२, १२, ८, ८, ८, १२, ८, ८) छन्दों का निर्माण हुआ है। इन छन्दों के लक्षण पर विहंगम दृष्टि डालने से ही पता चल जाता है कि मूलतः इन छन्दों की चेतना एक ही है और केवल क्रम-भेद एवं चरण-विस्तार के कारण उनका अलग नामकरण हो गया है। आठ और बारह अक्षरों के मिश्र छन्दों को ही आर्नल्ड महोदय ने गीत-युग के प्रमुख छन्दों में माना है।^१ पीछे प्रगाथा छन्दों की सूची में विभिन्न छन्दों के योग से विषम छन्द के विशाल वैभव को सहज देखा जा सकता है।

विशाल छन्दों-विस्तार की सूचना इसी से मिलती है कि एक मन्त्र में तीन से लेकर पन्द्रह छन्दों तक का प्रयोग होता था। संहिताओं में एक से अधिक मन्त्र भी एक साथ लिखे जाते थे। वैषम्य-वैभव-मंडित छन्द-सौषम्य की सराहना करते हुए आर्नल्ड ने कहा है कि ऋग्वेद के सभी छन्दों के चरणों के प्रथम और अंतिम अक्षर लघु-गुरु-नियम में भिन्न हैं, अतः इस प्रकार से प्रत्येक छन्द स्वरूप की दृष्टि से स्वतंत्र है।

विकास की दृष्टि से वैदिक छन्दों के तीन युग माने जा सकते हैं (समय विभाजन में पूर्व वैदिक युग के छन्द भी सम्मिलित हैं) (१) विषमता और अपवाद का युग

1. Lyric metre may also include verses of four syllables and even of sixteen but these are comparatively rare. The most important lyric metres are Ushnik (8, 8, 12, or 8, 8, 8, 4), Kakubh (8, 12, 8), Brahti (8, 8, 12, 8), Satobrahti (12, 8, 12, 8), and Atyasti (12, 12, 8, 8, 8, 12, 8),

The Principle Metre Para 24, E.V. Arnold

2. In all metres in Rigveda the quantities of the first and the last syllables of each verse is independent in structur. Para 32.

The Principal Metres, By E. V. Annold.

(२) निश्चयात्मकता और अपवाद का युग और (३) केवल निश्चित नियमों के छन्दों का युग ।^१

वैदिक छन्दों से ही महाकाव्ययुग के शास्त्रीय छन्दों का विकास हुआ है, जिनका वर्गीकरण और विकासात्मक विवेचन आगे दिया जायगा । यहाँ पर थोड़ा सा यह विचार कर लिया जाना संगत ही होगा कि वैदिक भाषा और छन्दपरम्परा से विकसित ग्रीक लैटिन तथा फ़ारसी आदि आर्य-भाषाओं पर वैदिक छन्दों का क्या प्रभाव है और उन भाषाओं की छान्दसिक अन्तश्चेतना किस प्रकार वैदिक संस्कृत अथवा उससे विकसित भाषाओं के छन्दों से किस सीमा तक मिलती है । एक तो इन सभी भाषाएँ का स्रोत एक ही भाषा है, दूसरे मानव की संगीत-चेतना के विकास में देश, काल और पात्र का भेद होते हुए भी, प्रकृति किस प्रकार समान प्रेरणा और विकास प्रदान करती है, यह सिद्धान्त भी इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा । मानव प्रकृति मूलतः समान है, अतः प्रत्येक कला में देश-काल की विशेषता होते हुए भी एकता के तत्त्व स्पष्ट परिलक्षित होते हैं ।

वैदिक छन्दों का यह विहंगावलोकन इसलिये आवश्यक था, क्योंकि, जिस प्रकार एक ही लय के आधार पर उस युग में चरण-विस्तार की सुविधा थी, उसी प्रकार आधुनिक मुक्त छन्दों में भी एक ही लय के आधार पर विभिन्न सीमाओं तक चरण-विस्तार का प्रयोग होता है ।

ग्रीक छन्द

ध्वनि के लघुतम उच्चारण मात्र को ही सभी प्राचीन भाषाओं के छन्दों का आधार माना गया है । संस्कृत की भाँति ग्रीक में भी दीर्घ (Long) और लघु (short) उच्चारण ध्वनियों को महाकाव्य-युग में छन्द का आधार माना गया है । भारत के मात्रिक छन्दों की भाँति दीर्घ ध्वनि दो लघु ध्वनियों के बराबर मानी जाती थी^१, परन्तु ऐसी वृत्ति निश्चित रूप से बहुत परवर्ती है ।

1. Upon the general view of the development of the external structure of the verse, it may be said that the archaic period is characterised by irregularity and variety, the strophic period regularity and variety and that the normal and cretic periods are marked by the regularity only.

Vedic Verse, Page 252, By E. V. Arnold.

1. One chief principle in ancient verse was quantity i. e. the amount of time in expressing a syllable. Accordingly, the two basal types which lie at the foundation of classical metre are 'long and shorts'. The convention was that a long syllable was equal to two short ones, accordingly there was real truth in calling the succession of such feet, metre for the length or weight, of the syllables forming them could be, and was measured. Encyclopaedia, Britanica.

संस्कृत और हिन्दी की भाँति ग्रीक में भी लयखंडों का निर्धारण और निरूपण हुआ है। चपल और मंद गति के आधार पर सगण (UU—या ॥ s ; संज्ञा Anapaest) और भगण (—UU या s ॥ ; संज्ञा Dactyl) दो गतियाँ मानी गयी हैं। लघु और दीर्घ ध्वनियों के से लय-खंड लग (U—या ॥ s ; नाम Iambic) और गल (—U या s ॥ ; नाम Trochee) अधिक काव्योपयोगी माने गये हैं। इन दो ध्वनियों के बीच सौषम्य के लिये ग ग (——या ss ; नाम Spondee) और ल ल (UU या ॥ ; नाम Pyrrie) लय-खंडों का भी प्रयोग होता है। ग्रीक छन्दःशास्त्रियों ने अनेक छन्दों और लयों को माना है।¹

अधिक गतिमान छन्दों में त्रगण (UUUया ॥ ॥ ; Tribrach), सगण (— — —या sss ; Molossus), जगण (U—U या ॥ s ॥ ; Amphibrach), रगण (—U—या s ॥ s ; Amphimacer), यगण (U— —या ॥ ss ; Bacchius), और तगण (— —u या ss ॥ ; Antibacchius) का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त चतुष्क (—UU—या s ॥ s ॥ s , chrioamb) और पञ्चक (U— —U—या ॥ ss ॥ s Dochmiac) का भी प्रयोग होता था। अन्तिम दो लय-खंड नृत्य-गति के समीप हैं, अतः लेखक का अनुमान है कि इन छन्दों के साथ नृत्य का आयोजन होता होगा।

महाकाव्य युग में छः भगणों के चरण का छन्द प्रचलित था। इसे महाकाव्य छंद (Epic Verse) या वीर छन्द (Heroic Verse) कहते हैं, क्योंकि महाकवि होमर ने 'इलियड' और 'ओडेसी' महाकाव्यों में इसी छन्द का प्रयोग किया था। इसका लक्षण था छः भगणों का चरणः—

/ UU — / UU — / UU — / UU — / UU — / UU

अपवादस्वरूप अन्तिम भगण (Dactyl) के स्थान पर गग ss या ग ल s ॥ का प्रयोग संभव था, यथा

— / UU — / UU — / UU — / UU — / UU — / U

संस्कृत और व्रज भाषा में भगणात्मक सदैवा यथा मत्तगयंद (७ भगण + ss) का प्रयोग बहुशः हुआ है, जिसकी लय का इस छन्द से साम्य है। इस ग्रीक छन्द का हिन्दी रूपान्तर यों होगाः—

मंगल मूरति राम तुमारि, मनोहर रूप, } भगण के स्थान
लोचन की छवि फुल्ल सरोज समान अनूप । } पर s ॥

1. besides these definite types, the ingenuity formalists have invested an almost infinite number of other 'feet'. Encyclopaedia Britannica. Vol. 23. P. 96.

या

सीय सुहावनि संग लसी मन-भावनि देखा । भगण के स्थान
मंजु मयूख पसारत भू पर ज्यों ससि-लेखा । पर SS

या

वीर सरासन हाथ धरे लगि लोभत लोचन । निश्चित
कन्ति-विधायक गान्ति-प्रसारक सोक-विमोचन ॥ छन्द (लेखक) ।

भाषा की जीवनी-शक्ति के अनुकूल ग्रीक छन्द का जो रूप रहा होगा, वह हिन्दी के इस वर्ग के छन्दों से बहुत भिन्न होगा। हिन्दी में यह छन्द शृंगार रस के अनुकूल पड़ता है, क्योंकि व्रजभाषा में ऐसे ही परम्परा रही है। जो हो, इन हिन्दी उदाहरणों से ग्रीक हेक्सामीटर की कल्पना जिज्ञासु पाठकों के लिए अधिक सुगम-साध्य बन जायेगी।

करण रस के काव्य में भगणात्मक अमरपाद (Dactylic Hexametre) के साथ भगणात्मक पञ्चपाद (Dactylic Pentametre) का चरण लगाकर छन्द का निर्माण किया जाता था।

इन छन्दों के बाद आरोहात्मक छन्द का प्रयोग हुआ, जिसमें लगात्मक (Iambic) खंडलय की आवृत्ति होती थी। यह छन्द गद्य के अधिक समीप था, अतः सामान्य विचार एवं भाव का सहज वाहन बन सका, और जनप्रिय भी हो गया। यूरिपिडीज ने इस लय का प्रचुर प्रयोग किया था।¹

ग्रीस में गीति-छन्द की धारा एशिया में गई थी, निश्चय ही यह वैदिक युग के संगीत का प्रभाव था।²

फारस के युद्ध के पश्चात् एथेन्स नगर साहित्य का केन्द्र बन गया था और नाटकों के विकास के साथ बातचीत (Dialogue) और स्वकथन (Monologue) संयुक्त गीतों (Chorus) में समस्त पूर्ववर्ती और समकालीन दूरदेशवर्ती छन्दों का प्रयोग किया गया। पर, अधिकांश नाटकों में लगात्मक त्रिपाद (Iambic Trimeter) का

1. Iambic metre was, next to the dactylic hexametre. The form of verse most frequently employed by the poets of Greek antiquity. It was not far removed from the prose; it gave to writer an opportunity for expressing popular thoughts in a manner which simple men could appreciate being closed to their own unsophisticated speech. In particular, it presented itself as a heaven-made instrument for the talent of Euripides.

Encyclopaedia Britannica. Vol. 23 P. 96

2. The lyric inspiration came originally from the island of Lesbos and it passed down through Asiatic archipelago before it reached the mainland of Greece.

Encyclopaedia Britannica. Vol. 23. P. 96,

प्रयोग किया गया, क्योंकि यह सुखान्त और दुःखान्त दोनों नाटकों में रसनिष्पत्ति के अनुकूल था ।

गीतकार ईस्किलस् ने अपने सहगीतों में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया था । उन छन्दों को साफोक्लीज् और युरिपिडीज् ने शास्त्रीय रूप प्रदान किया था । नाट्य-युग के पश्चात् ग्रीक छन्दोवैभव का ह्रास हो गया और सिकन्दर-युग में काव्य का उद्धार हुआ, तो नवीन छन्दोयोजना के स्थान पर पुराने घिसे-घिसाए छन्द ही प्रयोग में आये, विकास की कोई नवीन दिशा नहीं दिखाई दी ।^१

ग्रीक छन्द-समूह भारतीय छन्दों की एक शाखा का विकास है । उन छन्दों की मूल प्रेरणा स्वरों का आरोह और अवरोह है । ग्रीस का लघु-दीर्घ-विधान विकास की स्थिति में भारतीय महाकाव्य-युग के समकक्ष है, क्योंकि महाकाव्य युग में ही प्राचीन वैदिक छन्दों को गणात्मक रूप दिया गया है, यद्यपि वैदिक छन्दों में भी लगात्मक क्रम का निश्चित विकास हो रहा था, जिसका विवरण पीछे दिया जा चुका है । इस युग के पश्चात् ग्रीक कवियों और छन्दःशास्त्रियों ने छन्दों का समृद्ध विकास और विश्लेषण किया । छन्दों की संगीतात्मकता के अतिरिक्त लयाघात (Ictus ग्रीक शब्द—Rhythmical Accent) का प्रयोग निश्चित रूप से वैदिक सस्वर पाठ का प्रभाव सिद्ध करता है । ग्रीक छन्दों में भी भारतीय छन्दों की भाँति लयाघात सामान्य भाषा के उच्चारण से प्रमुखता प्राप्त करता है । ग्रीक भाषा में उच्चारण के स्वराघात को थेसिस { (Thesis या Accented (अँग्रेजी)) और निराघात उच्चारण खंड को आर्सिस { Arsis=Unaccented (अँग्रेजी) } कहते हैं । ग्रीक छन्दों में हिंदी मात्रिक छन्दों की भाँति दो लघुओं का समय (Tempus=Time) एक गुरु के बराबर माना जाता है और अपवाद रूप में एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग भी मान्य है । ग्रीक का गणात्मक विधान

1. After the happy event of the Persian War, Athens became the centre of literary activity in Greece and here the great school of drama developed itself using for its vehicle, in dialogue, monologue and chorus, nearly all the metres which earlier ages and distant provinces had invented. The verse from which the dramatists preferred to use was almost exclusively the iambic trimeter, a form which adopted itself equally well to tragedy and to comedy. Aeschylus employed for his chorus a great number of lyric measures, which Sophocles and Euripides reduced and regulated. With the age of the dramatists, the creative power of Greeks in versification came to an end, and the revival of poetic enthusiasm in the Alexandrian age brought with it no talent for fresh metrical invention.

(feet) भी संस्कृत के गणों के समान है। गणों के योग-विनियोग से भारतीय छन्दों की भाँति बहुत से छन्दों की कल्पना की गयी है,¹ यद्यपि भारतीय छन्दःशास्त्रियों की अप्रमत्त छन्द-कल्पना, वे लोग नहीं कर पाये।

ग्रीक छन्दों के ये मानदंड लैटिन भाषा में गये और लैटिन के प्रभाव से अन्य योरोपीय भाषाओं में इन का प्रचार हुआ। अँग्रेजी कविता का गण-विधान बिल्कुल लैटिन जैसा है, यद्यपि बहुत कुछ प्रेरणा और प्रभाव की आत्मसात करने के साथ अँग्रेजी ने अपनी स्वतंत्र छन्दशैली का भी विकास किया है।

तुलना

Tempus लैटिन लयखंड—	mora (time)	मात्रा	संस्कृत लयखंड
(^u का दुगुणा)	गुरु	गुरु	(लघु का दुगुणा)
- ^u Trochee	जैसे Legit	गल	जैसे, राम
-lambus	जैसे Legunt	लग	जैसे, रमा
—Bacchius	जैसे Legebant	यगण	जैसे, अन्यती
---Molossus	जैसे Egerunt	मगण	जैसे, शर्वाणी
-- ^u Antibacchius	जैसे Legistis	तगण	जैसे, शृङ्गार
- ^u -Cretic	जैसे Legerint	रगण	जैसे, उर्मिला
- ^{uu} Dactyl	जैसे Legimus	भगण	जैसे, शंकर
^{uuu} Tribrach	जैसे Legite	नगण	जैसे, विमल
^{uu} -Anapaest	जैसे Legerent	सगण	जैसे, रमणी

1. Theoretically, the number of metres is unrestricted but practically only

लैटिन में, (1 s 1) जगणावृत्तिमूलक प्रयोग नहीं हुआ है, क्योंकि इसकी लय उठकर गिर जाती है। पर, यदि यह स्वतन्त्र रूप में गए खोजना ही हो, तो ल ग (Iambus) की आवृत्ति में सहज ही मिल जायगा।

इसके अतिरिक्त लैटिन में चार वर्णों के गए भी प्रयुक्त हुए हैं:—

U U U U Proceleusmaticus	जैसे, ^{U U U U} Lelegitur	जैसे, मधुमद
- U U U First Paeon	जैसे, ^{U U U U} Legiritis	जैसे, जागरण
U U U - Fourth Paeon	जैसे, ^{U U U U} Legemini	जैसे, सफलता
- - U U Ionicusa maiore	जैसे ^{U U} Collegimus	जैसे, संजीवन
U U - - Ionicusa maiore	जैसे, ^{U U} Relegébant	जैसे, अभिमानी
- U U - Choriambus	जैसे, ^{U U} Collegerant	जैसे, पावनता
- U - U Ditrochee	जैसे, ^{U U} Colliguntur	जैसे, देवदेव
U - U - Diambus	जैसे, ^{U - U} Legamini	जैसे, शकुन्तला
U - - - First Epitrite	जैसे, ^U Religerunt	जैसे, सुधाधारा

those metres are important that serve to embody the principal rhythm.

Versification—Latin Grammar,

By

B. L. Gildersleeves.

(Professor of Greek in the Johns Hopkins University)

&

Gonzalez Lodge,

(Professor of Latin in Bryn Mawr College)

- u - - Second Epitrite	जैसे $\bar{E}l\bar{i}ge\bar{b}ant$	जैसे, पद्यनेत्री
- - u - Third Epitrite	जैसे $Se\bar{l}e\bar{g}er\bar{i}nt$	जैसे, पद्यावती
- - - u Fourth Epitrite	जैसे $Co\bar{l}le\bar{g}i\bar{s}ti\bar{s}$	जैसे, चन्द्रालोक
u - - u Antipast	जैसे $Le\bar{g}i\bar{b}ar\bar{i}s$	जैसे, पद्मोरात्र
- - - - Dispondee	जैसे $Se\bar{l}e\bar{g}er\bar{u}nt$	जैसे, श्यामापांगी
u - u u Second paeon	जैसे $Le\bar{g}e\bar{n}ti\bar{b}us$	जैसे, पल्लिक
u u - u Third paeon	जैसे $Le\bar{g}i\bar{t}o\bar{t}e$	जैसे, वरदान

चार वर्णों के गण में भारतीय छन्दःशास्त्र के अनुसार १६ भेद होते हैं, जो लैटिन गणों में भी वर्तमान हैं, अतः, यद्यपि लैटिन में प्रस्तार का कहीं वर्णन नहीं मिलता, तथापि छन्दशास्त्रियों को इसका ज्ञान अवश्य रहा होगा, अन्यथा ये भेद पूरे न होते। चार वर्णों का प्रस्तार निम्नांकित है:—

(१) SSSS	(६) SSSI
(२) ISSS	(१०) ISSI
(३) SISS	(११) SISI
(४) IISS	(१२) IISI
(५) SSIS	(१३) SSII
(६) ISIS	(१४) ISII
(७) SII S	(१५) SIII
(८) IIIS	(१६) IIII

इन लय खंडों का मात्रा पर्वों में भी वर्गीकरण हो सकता है, यथा:—

त्रिमात्रिक पर्व

Trochee
Iambus
Tribrach

-U | SI
U— | IS
UUU | III

चतुर्मात्रिक पर्व

Dactyl	- u u	SII
Anapaest	u u -	IIS
Spondee	- -	SS
Proceleusmaticus	u u u u	IIII

पंचमात्रिक पर्व

Cretic	- u -	S S
First Paeon	- u u u	SIII
Bacchius	u - -	ISS

षण्मात्रिक पर्व

Ionicus a maiora	- - u u	SSII
Ionicus a minore	u u - -	IIS
Choriambus	- u u -	SII S
Ditrochce	- u - u	SISI
Diambus	u - u -	ISIS

इनके अतिरिक्त निम्नांकित लयखंडों का प्रयोग लैटिन काव्य में नहीं हुआ है, यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से इन्हें स्वीकार किया गया है:—

Pyrrhic	u u	Intispast	u - - u
First Epitrite	u - - -	Dispondee	- - - -
Second Epitrite	- u - -	Second Paeon	u - u u
Third Epitrite	- - u -	Third Paeon	u u - -
Fourth Epitrite	- - - u	Molossus	- - -

ये समस्त लयें ऐसी विषमात्मक हैं, कि उस भाषा के अनुकूल नहीं बैठ सकती हैं।

लैटिन में लयाधार के नाम पर लय का नाम दिया जाता है, जैसे चरण में ट्रांकी (s i) की प्रावृत्ति होगी, तो Trochaic Rhythm नाम दिया जायगा। लयात्मक शृंखला में गण की क्रमिक प्रावृत्ति होती है, अतः प्रावृत्ति की संख्या के आधार पर बहुधा नाम प्रचलित हुए हैं:—

द्विपदी	Dipady	= दो गण
त्रिपदी	Tripady	= तीन गण
चतुष्पदी	Tetrapody	= चार गण
पंचपदी	Pentapody	= पाँच गण
और षट्पदी	Hexapody	= छः गणों की आवृत्ति से निर्मित

होती है ।

प्रत्येक लय की, अपनी वृत्ति के अनुसार और मानवीय श्वास की सीमा के अनुसार, अधिकतम आवृत्ति की सीमा निश्चित होती है, अतः Dactyl और Anapaest की आवृत्ति अधिकतम चार बार (ग्रीक में ५ बार) एवं Trochee तथा Iambic की ६ बार हो सकती है, इससे अधिक आवृत्ति कम्पाउण्ड (Compound) कहलाती है, जैसे संस्कृत और हिन्दी में अधिक अक्षरों और मात्राओं के छन्द दंडक कहलाते हैं। ऐसे छन्दों में श्वासशक्ति सीमा के कारण यतियों का प्रयोग अवश्य होता है ।

वैदिक युग के निचूत् और भूरिक् की भाँति लैटिन छन्दों में भी एक या दो मात्राओं की कमी हो जाती है, जो क्रमशः \wedge और $\overline{\wedge}$ चिह्नों से सूचित की जाती है । ऐसे रिक्त स्थाव की पूर्ति दीर्घ वर्ण की तीन या चार मात्राओं का समय देकर की जाती है । ३ मात्राओं के (प्लुत उच्चारण) के लिये \angle ('Triseme long) और चार मात्राओं के लिये ————— (Tetraseme long) चिह्न प्रयुक्त होता था । जब छन्द की लय के कारण दीर्घ Syllable का उच्चारण लघु होता है, तो वहाँ 7 चिह्न लगाया जाता है, और जहाँ दीर्घ के स्थान पर दो लघु आते हैं, वहाँ W चिह्न लगता है । कभी कभी ग ल (Trochee s) के स्थान पर भगण (Dactyl s) का प्रयोग होता है, तो भगण का उच्चारण $१\frac{३}{२} + \frac{३}{२} + १ = ३$ मात्राओं के ही बराबर रखा जाता है, जिसे — $\cup\cup$ द्वारा सूचित करते हैं । देखिय नीचे की पंक्ति में समस्त अपवाद एक साथ दिये जाते हैं:—

Nullam / $\overline{\cup}$ Vare sa/ \angle cra/ vite/ $\overline{\cup}$ pri/ \cup us / $\overline{\cup}$ severis / \cup arbo / $\overline{\cup}$ rem \wedge
 Para 744, Versification-Latin Grammar.

लैटिन छन्दों पर निश्चित रूप से वैदिक छन्दों का प्रभाव है । पश्चिमी छन्दः शास्त्री लैटिन के प्राचीनतम यज्ञगीत और प्रार्थनाओं को अपने मानदण्डों पर सफलतया विशिष्ट न कर पाने पर उन्हें नियम-रहित मानते हैं, लेकिन उन्हें इतना आभास हो गया है कि दो दो अक्षरों के चार स्वराघात हैं^१:—

1. The oldest remain of Italian poetry are found at some fragments of ritualistic and sacred songs, and seem to have had no regard to quantity. No definite theory can be formed of this so called 'Numerous Italians' in which they were composed but they seem

Mars pater te precor/quaesoque uti sis

Volens propitius/

Mihi domo/familiaeque nostrae/

Prayer to Mars, From Cato

मास पेटर ते प्रीकोर । क्वाइसोकी उटी सीस ।

वालेन्स प्रापीटिअस ।

मीहीदामो/फेमिलिआक नास्तरे ।

पहले तीन चरण गायत्री के हैं, जिनमें ऽ, ढ, ढ, अक्षर हैं और पाँचवाँ चरण जगती का, जिसमें १२ अक्षर हैं एवं चार अक्षरों के पश्चात् यति है। इसे हिन्दी संगीत से पढ़ने में आनन्द नहीं आता, पर बँगला संगीत से पढ़ने पर वर्णच्छन्द का संगीत आ जाता है, अतः इस तुलना को बंगाली पाठ-पद्धति से परिचित सज्जन अधिक शुभाशंसा की दृष्टि से देखेंगे।

यहाँ पर कुछ लैटिन छन्द दिये जाते हैं, जिनका संस्कृत और हिन्दी रूपान्तर भी संभव है, क्योंकि उस प्रवृत्ति के छन्द हमारे छन्दःशास्त्र में पहले से विद्यमान हैं।

Trimetre:— u — u — / u — u — / u — u — / (1S1S/1S1S/1S1S)

यह छन्द जगती (१२ अक्षर) का रूपान्तर है । आदिकाल में जगती में चार अक्षरों के बाद यति होती थी ^१ और इस छन्द की प्रवृत्ति लगात्मक (Iambic) हो रही थी ^२ जैसे:—

| S | S S S | | S | S | S

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम्

मुंडकोपनिषद्, म० २, खं० २, मं० १०

प्रस्तुत चरण जगती का ही हैं। यहाँ अपवादतः बारह के स्थान पर तेरह वर्ण आए हैं।

to have been in series of four thesis, usually united in pairs or triplets, but sometimes separate. Para 755.

Versification—Latin Grammar.

1. The caesura is a metrical pause, corresponding to the taking of the breath in recitation and occurs regularly in all parts of Rigveds, either as an early caesura, that is a pause after the fourth syllable, P. 179, Vedic Metre, By E. V. Arnold.
2. Just when the rest and the most other variations are becoming rare, we find a development of the iambic rhythm. Page 224.

Vidio Metre, By E. Vernon Arnold.

यह सैटिन छन्द प्रमाणिकावृत्त (जरी लगी : | S | S | S | S) का उद्योका है और पंचचामर का तीन चौथाई है, जिसका लक्षण है 'प्रमाणिका पदद्वयम् यदन्ति पंचचामरम् ।' इस छन्द का हिन्दी रूपान्तर निम्न होगा:—

पवित्र पुण्य नीर से, तरंगिनी !
मुझे बना, गिरीश-शंक-रंजिनी !
कुभाव से विमुक्त, दिव्य कल्पना,
रहे सदैव सत्य श्रम्भ ! जल्पना ।

| S | S | S | S | S | S

इसका संस्कृत वृत्त-लक्षण यों बन सकता है:—

'जरी जरी वदाम्यहं प्रमाणिनी' (लेखक)

2. Iambic quaternarius (Diameter) का उदाहरण निम्न है:—

$\begin{array}{ccccccc} \cup & \angle & - & \cup & \angle & \cup & - \\ \text{Inarsit aestuosius} & & & & & & (\cup - \cup - \cup - \cup -) \end{array}$

$\begin{array}{ccccccc} \cup & \angle & \cup & - & \cup & \angle & \cup & \angle \\ \text{Imbres nivesqus comparat} & & & & & & & (\cup - \cup - \cup - \cup -) \end{array}$

यह छन्द अष्टाक्षरी गायत्री (या अनुष्टुप्) का विकसित रूप है। इसी से विकसित छन्द प्रमाणिका (प्रमाणिका जरी लगी, वृत्त रत्नाकर) है:—

लघुश्रुतं मदोद्धतं । गुरुश्रमाय केवलम् ।

न यत्परोपकारकृत् । वृथैव तत्प्रमाण्यपि ।

यह छन्द अनुष्टुप् के छियासिखे भेद के अन्तर्गत आता है ।

3. Anapaestic Dimeter catalectic (Paroemiac) का उदाहरण निम्न है:—

$\begin{array}{ccccccc} \cup & \cup & / & \cup & \cup & / & \cup \\ \text{Volucer pede corpore pulcher} & & & & & & \cup \cup \angle \cup \cup - \cup \cup \angle \cup \end{array}$

$\begin{array}{ccccccc} \cup & \cup & \angle & \cup & \cup & / & \cup & \cup \angle \cup \\ \text{Lingua cat usore canorus} & & & & & & & - \angle \cup \cup - \cup \cup \angle \cup \end{array}$

$\begin{array}{ccccccc} \bar{\cup} & \bar{\cup} & \cup & \cup & \angle & \cup & \cup & \angle & \cup \\ \text{Verum memorare magis quaw} & & & & & & & - \angle \cup \cup - \cup \cup \angle \cup \end{array}$

$\begin{array}{ccccccc} \bar{\cup} & \cup & / & - & - & \cup & \cup & \angle & \cup \\ \text{Functum laudare decebit} & & & & & & & - \angle - - \cup \cup \angle \cup \end{array}$
(Anson)

यह प्राचीन लैटिन का छन्द है, जो सगण (Anapaestum या iis) के आधार पर चलता है। इस छन्द की अवस्था गणात्मक वृत्त न रहकर मात्रिक हो गयी है, अतः दो लघुओं के स्थान पर एक दीर्घ का प्रयोग किया गया है, परन्तु सभी चरणों में १३ मात्राएँ हैं।

4. Dactylic rhythm:—Dactylic (Heroic Hexametre)

इसमें छः भगण (Dactyle—UU) का चरण होता है, अन्तिम भगण की चार मात्राएँ (spondee SS) से पूरी की जाती है और बीच में भी आवश्यकतानुसार भगण के स्थान पर दो गृह्यों का प्रयोग होता है। इसमें अधिकतम १७ वर्णः) (SII SII SII SII SS) और कम से कम १३ वर्ण (SS SS SS SS SS SII) हो सकते हैं।^१ यह महाकाव्यीय वीररसानुकूल छन्द है। पीछे इस छन्द का हिन्दी रूपान्तर दिया जा चुका है। इसका मात्रिक रूप हिन्दी के रोला के समान होगा (२४ मात्राएँ बिना ग्यारवीं मात्रा पर यति दिये हुए)। बर्जिल को एक पंक्ति लीजिए, जो इस छन्द का उदाहरण है:—

Quadrupedante putrem sonitu quatit ungula campum.

5. Dactylic tetrameter (metrum Alcmanium) का उदाहरण निम्न है:—

Nunc decet aut vindi nitidum caput (—UU—UU—UU—UU)

pallide mors aequo pulsat pede (—UU—UU—UU—UU)

Vitae summa brevis spem nos vetat (—UU—UU—UU—UU)

यह छन्द संस्कृत के मोटक छन्द (मोटकनाम समस्तभमीरय, छन्दोमंजरी) छन्द के समीप है, जिसमें भगण की चार बार आवृत्ति होती है। इस छन्द के गणात्मक रूप का मात्रिक उदाहरण नीचे दिया जाता है, जो चौपाई के समान है:—

ताके जुग षद कमल मवावउँ ।

जासु कृपा निरमल मति पावउँ । (स्थूलाङ्कित में भगण का रूप शेष है)

6. Dactylic Tetrameter (Archilochium) का उदाहरण निम्न है:—

Aut Epheson bimarise corinthe (—UU—UU—UU—U)

-
1. The heroic hexameter is composed of two Dactylic tripodies, the second of which ends in a spondee. Spondees may be substituted for the Dactyl in the first four feet, in the fifth foot, only when a special effect is to be produced. Such verses are called spondaic. The longest hexameter contains five Dactyls and one spondee (or Trochee) in all, seventeen syllables; the shorts in use, five spondees and one Dactyl in all, thirteen syllables. This variety in the length of the verse combined with the great number of caesural pauses, gives the hexameter peculiar advantages for continuous composition.

Ó fortēs peioraque passi (-----uu-u)

Mensorem cohibent Archyta (---uu---u)

यह छंद (SH SH SH SH) चौपई (१५ मात्रा के) समकक्ष है, जिसमें समगति के प्रवाह के अंत में त्रिकल खंड गुरु लघु आता है ।

७. Archilechian (Greater) = Dactylic Tetrametre, Trochaic tripody का उदाहरण निम्न है:—

Solvitur Acris heims grata vice veris et Favoni

- u u - u u - u u - u u - u - u - u

यह संयुक्त छन्द है, जो चार भगण और तीन गल (गुरु लघु) से बनता है:—

शीतलता भरि लावत सौरभ, मन्द मन्द बाय ।

राजु करै मन में यक छवित, आजु काम राय ।

इन दो लयों का संयोग हिन्दी में प्रवाहिकता को भंग करता है ।

८. Tetrameter Acatalectic का उदाहरण निम्न है:—

Ex bonis pessum (i) et fraudulentissumi

-u--u--u--u--

ऐ बनी पेसु में फ्राडुलेंटीसुमी

यह छन्द चार रमणों के स्रग्विणी छन्द (रेञ्जन्तुभिद्युता स्रग्विणी सम्मता, वृत्तरत्नाकर) है । जिसका उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं,

माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम् ।

इन्दिरामन्दिरं चे तसा सुन्दरम्,

देवकीनंदनं नंदजं संदधे । (अच्युताष्टक)

इसके समानान्तर अरबी और फारसी की बहर यों हैं:—

.फायलुन् .फायलुन् .फायलुन् .फायलुन् ।

९. Bacchic tetrameter का उदाहरण निम्न है:—

Quibus nec locust ullu nec spes parata

Misericordior nulla mest feminarum

By Titus Maccius Plautus—250-184 B. C.

विववुस मैक लोकुस्ट ऊलू नेक स्पेस पराटा ।

मेजेरी काडियार नूला मैस्ट फैमीनारुम ।

(For which, there is no place nor any ready hope.
There is no woman more compassionate towards me.)

हिन्दी और संस्कृत में इस वर्ग के छन्द को भुजंगप्रयात (भुजंगप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः, वृत्तरत्नाकर) कहते हैं, जिसमें चार यगण होते हैं:—

तुषाराद्रिसंकाशगौरं गंभीरं

मनोभूतकोटिप्रभासीशरीरम् ।

स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चोरुगंगा,

लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगाः । (रुद्राष्टकम्)

फारसी में यह छन्द “फ़ज़लुन् फ़ज़लुन् फ़ज़लुन् फ़ज़लुन्” के आधार पर चलता है, अन्तिम अक्षर को लघु करके फिरदौसी ने शाहनामा में यही छन्द प्रयुक्त किया है:—

बपोशीद रुस्तम सलीहे न बुर्द,

बसे अज् जहाँ आफ़री याद कर्द ।

न शिस्त अज् बरे कोहये जिन्दा पील,

हमींशुद चु कश्ती ब दरियाये नील । (शाहनामा)

१० Archilochian strophe:—

—UU/UU—UU/_UU/_UU/_/_ _//
—UU/_UU/_ _//
—UU///_UU/_UU/_ _//
—UU/_UU/_ _//

इस छन्द के प्रथम चरण में Dactylic Hexamater और द्वितीय में Lesser Archilochian का प्रयोग हुआ है । यह लैटिन का प्रचलित गीत छन्द है । इसका हिन्दी रूपान्तर विशेषतः व्रजभाषा मत्तगयंद लय में, बहुत सुन्दर हो सकता है:—

माधव आवन को कहि गो, अलि, द्वै दिन माहीं ॥

क्यों अब आवत नाही ॥

वे गुरु ती मथुरा, उनके बिन जोगिन हवै हैं ?

लै विष कौ मरि जैहैं ॥ लेखक

११. Alemanian strophe का लक्षण निम्नांकित है:—

SH SH SH SH SH SS

SH SSI SH SS

१२. अनाकुसिस द्वारा प्रयुक्त गीत का विकर्षाधार अत्यन्त सुन्दर है:—

Ionicus a minore scheme:—

^U ^U — — ^U ^U — —
Miserarumest neque amori

^U ^U ^U ^U — — ^U ^U ^U ^U — —
Dare ludum neque dulci

^U ^U — — ^U ^U ^U ^U — —
Mala vino laver (e) aut exanimari

^U ^U — — ^U ^U — — ^U ^U — —
Metuentis patruae verbera linguae

Horace

^U ^U ^U — — ^U ^U ^U — — ॥

^U ^U ^U — — ^U ^U ^U ^U ॥

^U ^U ^U — — ^U ^U ^U — — ^U ^U ^U — — ॥

^U ^U ^U — — ^U ^U ^U — — ^U ^U ^U — — ॥

मेजरारु मेस्ट निकवे अमोरी

डारे लूडुम निकवे डूलसी

माला विनो लावेरे आउट इक्जानीमारी

मेट्रुवेंटस पेटरुए वेरबैरा लिंग्वे ।

(It is the lot of the unfortunate, neither enjoy the play of love, nor to wash away evils by delicious wine or to forget himself, being afraid of the whips of the uncle's tongue.)

छन्द का हिन्दी रूपांतर:—

प्रिय आओ, प्रिय आओ ॥

घन हो के, प्रिय आओ ॥

मतवाले नयनों में अब छाओ ॥

रस-क्रीड़ा-निधियों को प्रिय लाओ ॥१॥ (लेखक)

हिन्दी में इस छन्द की व्याख्या (॥ ५५) षष्ठक मात्रिक पर्व की आवृत्ति के अनुसार होगी । लैटिन में निर्दिष्ट छन्द का लघुगुरुक्रम निश्चित है, अतः (॥ ५५) की आवृत्ति गणात्मक रूप में मानने से भी इस छन्द की व्याख्या हो जाती है ।

जेन्द भाषा के छन्द

सेसेनियन समय में अवेस्ता भाषा पर लिखी गयी पहलवी भाषा की टीका के अवशेष को आज जेन्द कहते हैं । अवेस्ता शब्द अजोती (यश्न में प्रयुक्त, यश्न = अध्याय, गाथा ५७, ८) से निकला है, जिसका विकास, वैदिक 'यज्ञ' और पहलवी 'इजाशना' रूप में हुआ है । यज्ञ की प्रार्थनाओं को छन्द कहते हैं । इसी छन्द शब्द से जेन्द (Zend) शब्द का निर्माण हुआ है । २

डा० ग्रियर्सन का यही मत है, जिसका उद्धरण पहले अध्याय में छन्द शब्द की व्याख्या के साथ दिया जा चुका है । पारसी लेखक फामजी ने जेन्द को स्वतंत्र भाषा मानने के लिये इस सूत्र को जानबूझ कर अस्वीकार किया है । उन्होंने "छन्द" को भ्रान्तिवश "चन्द" कह कर जेन्द का सम्बन्ध वैदिक शब्द "छन्द" से न जोड़ने का विचित्र आग्रह किया है ।^१ ईरानी लेखक पूर दाऊद महेदय ने जेन्द की गाथाओं के छन्दों को विशिष्ट करके यह स्वीकार किया है कि ये छन्द भारोपीय जाति के हैं । ऋग्वेद की भाँति जेन्द कविता की निश्चित पंक्तियाँ और निश्चित वर्ण-योजना एवं लयात्मकता यह सिद्ध करती है कि वेद के छन्दों और गाथाओं का मूल-स्रोत एक हो आर्य-जाति के छन्द हैं, जो अनु मानतः

१. लैटिन कविता के छन्द और उनका शास्त्रीय विश्लेषण B.L. Gildersleeve और Gonzalez Lodge द्वारा लिखित Latin Grammar से लिया गया है, (मैकमिलन एण्ड को०, लंदन, १८९१) जिसमें Plessis के छन्दःशास्त्र (Metrique Grecque et Latine, 1889) और Klotz के Altromische metrik, (1890) से प्राचीन लैटिन छन्दों के विषय में सहायता ली गई है । —लेखक

2. The word I conceive, is only a modified form of the sanskrit 'Abhyasia' 'learned by heart' or committed to memory as sacred precept and seem to explain its connexion with Zhand or Chhanda, the scripture of "Zaratusht."

Journal of Royal Asiatic Society, Vol. XVI, Part I, Page 173

1. The Sanskrit word chandas is not identical with the Aryan word 'Zand'. The former in its literal sense signifies, moon, and the latter the name of the character which the Parsee scriptures repre-

वैदिक युग क पूर्व प्रचलित रहे होंगे ।^२ गाथाओं के यश्नों (अङ्गार्यों) का विभाजन भी विषय और उद्देश्य की दृष्टि से न होकर छान्दसिक आयोजन एवं काव्यरचना (Poetical Composition) की दृष्टि से किया गया है ।^३ इससे सिद्ध होता है कि उसके संग्रह के समय छन्दों को विशेष महत्त्व दिया जाता था और छन्दःशास्त्र का पूर्ण विकास हो चुका था । ये गाथाएँ किसी विशुद्ध गद्य-साहित्य का अंश रही होंगी, जिनमें महत्त्वपूर्ण अंश स्मरणीयता की दृष्टि से पद्य में कर दिये होंगे, क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति भारोपीय मूल परिवार की भाषाओं में बहुत प्रचलित है ।^४ श्री दाऊद महोदय ने गाथा के समस्त छन्दों का विश्लेषण करके एक गणनात्मक (statistical) सूची दी है, जिससे सिद्ध होता है, कि ये छन्द वैदिक युग के ही हैं ।^५ इसमें तीसरे चार्ट के छन्द पूर्णतया त्रिष्टुभ् हैं ।

sent, hence I may conclude that the word Zand is not a corruption of the sanskrit word 'Chandas'. Page 55.

'On the origin and the authenticity of the aryan family of languages, the Zand Avesta and the Huzvarash. By Dhanjibhai Framji (Edition of 1861, Union Press, Girgaum Road, Bombay.)

2. It is near relation, however by reason of its metre, to the poetry of the Indo-European race. Like the Rigveda the sacred book of the Brahmins, its stanzas are formed by a certain numbers of lines. In view of the number of the lines and the number of the syllables used in the lines and the rhythm of the poems, there is no reason to doubt that the poetry of the Gathas and the Vedas have one and the same Aryan source. Page 39.

Introduction to the Holy Gathas By Pour Davoud, translated by D. J. Irani

P. D. Marker Avestan Series Vol I, Iran League, Bombay.

1. From the ancient times, the Gathas have been divided into five-parts is not because they are intended to be recited as prayers during the five division of the day. The division is rather made according to the metre and the poetical composition of each Gatha. Page 41.

Introduction to the Holy Gathas, By Pour Davoud, Translated by D. J. Irani

P. D. Marker Avestan series, Vol I, Iran League, Bombay.

2. Like the meaning attached to the word Gatha in Brahmanic Scripture, viz, the Vedas, we must assume that the Avestan Gathas in olden times were a part and parcel of a larger prose work, which unfortunately has not come down to us today. The important portions were condensed and were given a poetic form, so that learning them by heart, people might remember them. This method of putting the special portions in poetic form was common among the communities of Indo-European origin. P. 40

Introduction to the Holy Gathas, By Pour Davoud, Translated by D. J. Irani

P. D. Marker Avestan Series vol. I, Iran league, Bombay.

Aheenvad Gatha—7 Has—Yasna 28—34

1.	Yasna 28	Stanzas 11	Lines 3	Syllables 16	Pause 7, 9
2.	" 29	" 11	" "	" "	" "
3.	" 30	" 11	" "	" "	" "
4.	" 31	" 22	" "	" "	" "
5.	" 32	" 16	" "	" "	" "
6.	" 33	" 14	" "	" "	" "
7.	" 34	" 15	" "	" "	" "

In all 7 Has with 100 stanzas, 300 lines, 2100 words.

Ustavad Gatha—4 Has—Yasna 43—46

1.	Yasna 43	Stanzas 16	Lines 5	Syllables 11	Pause 4, 7
2.	" 44	" 20	" "	" "	" "
3.	" 45	" 11	" "	" "	" "
4.	" 46	" 19	" "	" "	" "

In all 4 Has, 66 stanzas, 330 lines, 1850 words.

Spentomad Gatha—4 Has—Yasna 47—50.

1.	Yasna 47	Stanzas 6	Lines 4	Syllables 11	Pause 4, 7
2.	" 48	" 12	" "	" "	" "
3.	" 49	" 12	" "	" "	" "
4.	" 50	" 11	" "	" "	" "

In all 4 Has, 41 stanzas, 164 lines and 900 words.

Vahusdhasta Gatha—1 Has—Yasna 51

1. Yasna 51	Stanzas 22	Lines 3	Syllables 14	Pause 7, 7
-------------	------------	---------	--------------	------------

In all 66 lines and 540 words.

Vahistoisht Gatha—1 Has—Yasna 53

1. Yasna 53	Stanzas 9	Lines 4	Syllables	Pause 7+5
			For two short	
			lines 12.	
			Syllables for long	
			lines 19.	

In all 36 lines and 260 words.

(Introduction to the Holy Gathas by Pour Davoud, P. 44)

Translated by D. J. Irani, P. D. Marker Avestan Series Vol. I.

पहले चार्ट में १६ वर्ण की तीन पंक्तियों का छन्द है। शक्वरी छन्द में ८ वर्ण के ७ चरण होते हैं, जिसका प्रयोग ऋग्वेद (१०, १३३, १) में हुआ है। इसी के दो चरण मिलाने से अहुन्वद गाथा का चरण बन गया है। अष्ट छन्द में १६, १६, १६, ८, ८, के पाँच चरण होते हैं। इसके प्रथम तीन चरणों से भी अहुन्वद गाथा का छन्द बन जाता है। १४ वर्ण के चार चरणों से भी शक्वरी बनता है। वृत्तों में असम्बन्धा (SSSSS III III SS S) वसन्ततिलका (SSISIIISIISS) अपराजिता (II II IISSIISS)

प्रहरणकलिका (II II IIS II II IS) वासन्ती (SSSSS II II SSSS) लोला (SSS II SSSSS II SS) और नांदीमुख (II II II SSISSSS) में १४ वर्ण होते हैं। इस प्रकार गाथा के १४ वर्ण वाले चरण शक्वरी के प्रस्तार में आ जायेंगे।

इन छन्दों के दो लक्षण, इन्हें वैदिक युग के छन्दों के वर्ग के अन्तर्गत सिद्ध करते हैं, (१) सभी चरणों में निश्चित वर्ण संख्या वैदिक छन्दों के अतिरिक्त कहीं भी बिना लगक्रम के निश्चित विधान के निश्चित वर्ण संख्या के छन्द नहीं प्रयुक्त हुए हैं। (२) उस वर्ग के सभी छन्दों के चरणों की निश्चित संख्या और निश्चित यति स्थान। इन छन्दों के विश्लेषण पर विचार करने से स्पष्ट है कि रचयिताओं के सामने छन्द का निश्चित शास्त्रीय रूप था। तिरपनवें प्रश्न के प्रत्येक छन्द के प्रथम दो चरण १२ (७+५)

वर्णों के और तीसरे चौथे चरण १९ (७ + ७ + ५) वर्णों के हैं, जो मिश्र प्रगाथा (वैदिक अर्थ में) छन्द की सूचना देते हैं, परन्तु इनमें ७ वर्णों की यति (पहले दो में एक सप्तक के बाद) और बाद के दो चरणों में क्रमशः दो सप्तकों में और अन्त में ५ वर्ण, १२ और १९ वर्णों के चरण की मूललय में कोई परिवर्तन नहीं आता ।

इनमें ३, ४, ५ चरणों के छन्द प्रयुक्त हुए हैं । वैदिक युग में भी २, ३, ४, ५, ६, ७, और ८ चरणों के छन्द प्रयुक्त हुए हैं । कहीं-कहीं छन्दों में इससे भी अधिक चरणों का प्रयोग हुआ है । यहाँ तीसरे चार्ट के ग्यारह वर्णों का चार चरणों वाला छन्द त्रिष्टुभ् के समकक्ष है, दूसरे चार्ट का, पाँच पंक्तियों में ११ वर्णों के चरण वाला छन्द, शक्वरी [वर्नन अर्नाल्ड ने ५ चरणों वाले छन्दों के वर्गीकरण में इसे सम्मिलित किया है । (ऋक्० प्रा० में शक्वरी का लक्षण ८ वर्ण वाले ७ चरणों को माना गया है) । पहले चार्ट में १६ वर्णों के तीन चरणों का (या अष्टि १६ वर्ण)] का प्रभेद है, या ऋ० प्रा० के शक्वरी के दो चरणों के योग से निर्मित चरण का छन्द है ।

अरबी, फ़ारसी और उर्दू के छन्द

यद्यपि फ़ारसी भाषा आर्य-परिवार की भाषा है और उसके छन्द वैदिक ही हैं, जो पहलवी में होते हुए विकसित हुए हैं और अरबी सेमोटिक परिवार की भाषा है, तो भी दोनों भाषाओं का छन्दोविधान समान है । इसका कारण दोनों भाषाओं की उच्चारण-पद्धति की समानता और संगीत की एकता है । फ़ारसी छन्दःशास्त्र के आचार्य अब्दुर्रहमान (जन्म ३८१ ई०; मृत्यु ४५१ ई०) शहर बसरा (अरब) के निवासी थे । इनका दूसरा नाम खलील भी है । इन्होंने अरबी और फ़ारसी के काव्यज्ञान के आधार पर १५ बहरों (लयों) का अन्वेषण किया था । बाद में इनमें योग होता रहा । इन्हीं फ़ारसी की अरकान (लयखण्डों) को उर्दू वालों ने ग्रहण किया । उर्दू की ये बहरें हिन्दी के मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत आ जाती हैं^१ ।

१. छन्दःशास्त्र के प्रस्तार के भेदानुसार तो फ़ारसी व उर्दू के छन्द ऐसे नहीं, जो हिन्दी के भेदों से बाहर हों, तथापि प्रत्येक भाषा की शैली अलग-अलग है । हिन्दी के नियम उर्दू में तथा उर्दू के नियम हिन्दी में पूर्णतया घटित नहीं हो सकते । हाँ, ध्वनि का साम्य अवश्य पाया जाता है ।

एवं

पृ० २४०, छन्दः प्रभाकर, आचार्य भानु ।

हिन्दी पिङ्गल की तुलनानुसार उर्दू के प्रायः सब छन्द मात्रिक होते हैं, क्योंकि उनमें एक गुरु के स्थान में दो लघु आ सकते हैं और उनमें भाषा की सफ़ाई भी अच्छी है, परन्तु संस्कृत के “अपि माषं सषं कुर्याच्छन्दोभङ्गान् कारयेत्” के आधारवत् उर्दू में भी बहर के लिहाज से गुरुवर्ण को लघु मान लेते हैं ।

पृ० २४०, वही ।

फ़ारसी और हिन्दी छन्दों की तुलना का सूत्रपात छन्दःशास्त्र के आचार्य श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने किया था। उन्होंने उर्दू के छन्दों पर अलग ग्रन्थ (गुलज़ारे सखुन) की रचना भी की थी। छन्दःप्रभाकर में उन्होंने दोनों भाषाओं के लयखण्डों की तुलना की है, साथ ही साथ मात्रिक छन्दों के उदाहरण के साथ उर्दू अरकान का वज़न भी दिया है।

उर्दू अरकान और हिन्दी-लयखण्डों की तुलना^१

मात्रा	अरकान	हिन्दी लय	उदाहरण	हिन्दीगण
१ १	फ़	ल	I अ	ल
२ २	फ़े	ग	S आ	ग
३ ३	फ़ाअ	नान	SI माल	गल
४ ३	फ़इल्	नना	SI उमा	ल गा
५ ३	फ़अल	ननन	III विमल	नगण
६ ४	फ़ेलुन्	नाना	SS रामा	गग
SI II I I				
७ ४	फ़ेलुन	नानन, नननन	मंजुल, जलधर	भगण, नल
८ ४	फ़यलुन्	ननना	II S कमला	सगण
९ ४	फ़ऊल	ननान	ISI सरोज	जगण
१० ५	फ़ऊलुन्	ननाना	ISS अपर्णा	यगण
११ ५	फ़ायलन्	नानना	SI S माधुरी	रगण
१२ ५	मफ़ऊल	नानान	SSI पीयूष	तगण
१३ ६	मफ़ऊलुन्	नानाना	SSS शर्वाणी	भगण
१४ ६	फ़यलातुन्	नननाना	II SS वगदेवी	सगणग
१५ ६	मफ़ाइलुन्	ननानना	ISI S सरस्वती	जगणग
१६ ६	मुफ़्तअलन्	नाननना	SI IS हेमवती	भगणग
१७ ६	मफ़ाईल	ननानान	ISSI महादेव	यगणग
१८ ६	फ़ायलात्	नाननान	SI SI कामदेव	रगणग
१९ ७	मफ़ाईलुन्	ननानाना	ISSS वरारोह	यगणग
२० ७	मफ़ाअलतन्	ननाननना	SI IS मृगांकमुखी	जगणगल
२१ ७	फ़ायलातुन्	नाननाना	SI SS पुष्पधन्वा	रगणग

१. छन्दःप्रभाकर, पृष्ठ ३४३, के आधार पर। लेखक।

२२	७	मुस्तफ़् अलुन्	नानानना	SSIS	पद्मावती	तगणग
२३	७	मुतफ़ायलुन्	नननानना	IISSIS	अमरावती	सगणलग
२४	७	मफ़ऊलात्	नननानान	IISSI	महदुद्देश्य	सगणगल

इन्हीं लयखण्डों के आधार पर सभी उर्दू छन्दों का निर्माण होता है ।

उर्दू और फ़ारसी के बहरें किस प्रकार संस्कृत और हिन्दी छंदों में बैठ जाती हैं, इसका विवरण नीचे दिया जाता है :—

(१) मुतदारिक—फ़ायलुन् की आठ आवृत्तियाँ ।

उदाहरण—फ़ौज़ असियाँ से घेरा है हर सिम्त से,
तोबा किस तरह पहुँचे गुनहगार तक ।

हिन्दी में चार रगणों (SIS) से इसी वजन पर स्रग्विणी छन्द बनता है,
(रैश्चतुर्भिर्युतः स्रग्विणी सम्मता', वृत्तरत्नाकर) ।

मात्रिक रूपः—रोध की, शोध निज बोध, मिथ्या कथा,
सर्वथा दूर होगी, यहाँ जो व्यथा,
इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा
सिद्धि लह जाय, बह जाय संसार रे^१ ।

श्री शंकराचार्यकृत अच्युताष्टक का एक उदाहरण लीजियेः—

वर्णिक रूपः—कुञ्चितैः कृन्तलैर्भ्रजिमानाननं
रत्नमौलि लसत्कुण्डलं गण्डयोः ।
हारकेयूरकं कंकणप्रोज्ज्वलम्,
किंकिणीमञ्जुलं द्यामलं तं भजे^२ ।

(२) मुतदारिकः—'फ़ऊलुन् फ़ऊलुन् फ़ऊलुन् फ़ऊलुन्' ।

मुझे गुल के हँसने पै आता है रोना,
कि इस तरह हँसने कि खूबी किसी की^३ ।

संस्कृत में इसे भुजंगप्रयात छन्द कहते हैं, 'भुजंगप्रयातं भवेच्चैश्चतुर्भिः' । यह छन्द चार यगणों (ISS) से बनता है । हिन्दी में प्रायः इसका मात्रिक स्वरूप प्रयुक्त होता है, अतः २० मात्राओं के छन्द में पहली, छठी, ग्यारवीं और सोलहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं, क्योंकि यही मात्राएँ वृत्त में भी लघु होती हैं । हिन्दी में केवल दीर्घ के स्थान पर दो लघु रखने का स्वातन्त्र्य लिया जाता हैः—

१. कृ. चन्द्रप्रकाशसिंह, मेघमाला ।

२. शङ्कराचार्य, अच्युताष्टक ।

३. मोलवी सैयद कलीमुल्ला हुसेनी, 'उरूज', पृष्ठ २४ ।

बहिन आज फूली समाती न मन में,
तड़ित आज फूली समाती न धन में,
घटा है न फूली समाती गगन में,
लता आज फूली समाती न बन में।^१

संस्कृत साहित्य में यगणात्मक बारह अक्षरों की लघु का विकास जगती के प्रभेद से हुआ है। उसमें निश्चित यगण का प्रयोग होता है।

ननामीशमीशाननिर्वाणरूपम्
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम् ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीदम्
चिदाकाशमाकाशवासं भजेद्गम् ।^२

फारसी के महाकवि फिर्दौसी ने इसके अन्तिम अक्षर को लघु करके 'शाहनामा' की मसनवी में इसे प्रयुक्त किया है:—

व पोशीद रस्तम सलीहे नवर्द,
बसे अज जहाँ आफरी यादकर्द,
नशिस्त अजबरे कोहये जिदा पील,
हमीशुद चु कश्ती व दरियाय नील।^३

संस्कृत वृत्त में अन्तिम अक्षर लघु होता है, तो भी गुरु मान लिया जाता है, अतः संस्कृत में भुजंगप्रयात ही कहेंगे, पर हिन्दी में इसे शैल छन्द (य य य ज) कहते हैं।

३. रजजः—‘मुस्तफायलुन् मुस्तफायलुन् मुस्तफायलुन् मुस्तफायलुन्’।

हिन्दी में बहर रजज और बहर कामिल का प्रयोग एक सा होता है। कामिल का लक्षण ये है:—

‘मुतफायलुन् मुतफायलुन् मुतफायलुन् मुतफायलुन्’।

कारण यह है कि मुस्तफायलुन् (SIIIS) और मुतफायलुन् (IIISIS) दोनों ही सप्तक समान हैं। हिन्दी में इसे हरिगीतिका छन्द कहते हैं, जो इन बहरों की चार आवृत्तियों से बनता है। (SSIS) की चार निश्चित आवृत्तियों से छन्द की पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं:—

(अ) जिन्दा में भी कूचा तेरा ऐ यार आता है नजर।

बुलबुल कफ़स में है बले गुलज़ार आता है नजर।^४

१—स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, राखी की कुनीतो।

२—गो० तुलसीदास, द्वाष्टक।

३—हकीम अब्दुल कासिम फिर्दौसी, तूती, शाहनामा।

४—मो० संयद कलीमुल्ला हुसैनी, उरुज, पृष्ठ २३।

(ब) हों देखकर लज्जित जिन्हें काश्मीर कुंकम क्यारियाँ ,
थीं ठौर ठौर बिहार करतीं सुन्दरी सुरनारियाँ ।
सब के मुखों पर छा रही थी हर्ष की दिव्यप्रभा ,
मानों असंख्य सुधाकरों की थी वहाँ शोभित सभा ॥^१

४. हजज़ः—मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन् ।

फ़ारसी में यह बहुप्रचलित बहरों में से एक है । यहाँ फ़ारस के कवि हाफ़िज़ शीराज़ी (११वीं शताब्दी) की कविता का उदाहरण दिया जाता हैः—

इलाया ओ यो हस्साकी अदिर कासों व नाविल हा ,
के इश्क़ आसाँ नमूद अव्वल बले उफ़ताद मुश्किल हा ।^२

जिनके नीचे चिह्न लगा है, उनकी एक मात्रा है । फ़ारसी में गुरु को लघु करके पढ़ने का विधान है । दूसरे चरण में द् अ मिलकर एक मात्रा के बराबर हैं । हिन्दी में इसे विधाता छन्द कहते हैं । इसमें (1SSS) सप्तक की चार आवृत्तियाँ होती हैं, अतः पहली, आठवीं, पन्द्रहवीं और बाईसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैः—

नया संसार बनता है, नये आधार जिसके सब ,
खड़ा ललकारता ईमान मेरा क्यों रुकूँगा तब ?
नये युग की सजी वेदी चढ़ा दूँ आज अपना सब ।
मिला दूँ तार मन का क्रान्ति के जलते बमों से अब ॥^३

५. रमलः—‘फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलातुन्’ इसका उर्दू वज़न है—हम ज़फ़र हैं इस्फ़े मफ़तूँ ख़ारो रुसवा ॥ ज़ारो मख़रूँ ।

वह यह मानेया न मानें वह ये जाने या न जानें ।^४

हिन्दी में इसे ‘माधवमालती’ छन्द कहते हैं । इसमें (SSIS) की चार बार आवृत्ति होती है और तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं एवं चौबीसवीं मात्रा लघु होती है । आजकल श्रृंगाररस विशेषतः वियोग में इसका बहुत प्रयोग होता हैः—

सृष्टि के आरम्भ में मैंने उषा के गाल चूमें ,
बाल रवि के भागवाले दीप्त भाल विशाल चूमें ,
प्रथम सन्ध्या के अरुण दृग़ चूमकर मैंने सुलाये ,
तारकावलि से सुसज्जित नव निशा के बाल चूमे ,

१—श्री मेथिलीशरण गुप्त, जयद्रथबध, चतुर्थसर्ग, पृष्ठ ५१ ।

२—हाफ़िज़ शीराज़ी, कुल्लियात शीराज़ी ।

३—अञ्जल, लालचूनर, जनगीत ।

४—मो० संयद क़लीमुल्ला हुसेनी, उरुज, पृ० ३३ ।

वायु के रसमय अघर पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा । १

(६) रमलः—इस छन्द में मफायलुन् की चार बार आवृत्ति होती है। इसे विधाता छन्द के अन्तर्गत रखा जायगा। इसका वजन मफाईलुन् की चतुरावृत्तियों के बराबर है, जिसकी तुलना पीछे की जा चुकी है।

(७) बहर तबीलः—इसका वजन 'फऊलुन् मफाईलुन् फऊलुन् मफाईलुन्' होता है।
न करतू जफाकारी न करतू ये अय्यारी, खुदा सुन सभी में है, खुदा सुन सभी में है २।

यह छन्द हिन्दी में प्रचलित नहीं है, परन्तु हिन्दी छन्दशास्त्र के अनुसार इसका लक्षण ययग (ISSISS) है। संस्कृत में भी ये छन्द प्रचलित नहीं है, परन्तु इसका नाम 'प्रतीची' और 'सूत्रलक्षण' 'ययीगा प्रतीची वै' हो सकता है। इसके मात्रिक रूप का उदाहरण निम्न है :—

विनय ये सुनो माली, सुमन से भरी डाली।

मुझे दो प्रणयसेवी, कहीं में मुदित देखी ॥३

इसके अतिरिक्त कुछ फ़ारसी के वजन हैं, जो हिन्दी छन्दों के बिल्कुल समान हैं, पर, वह फ़ारसी में मिश्रित लय में माने जाते हैं। फ़ारसी और उर्दू में बहुत प्रचलित हैं:—

‘फायलातुन, फायलातुन फायलातुन फायलून’

सुबह दम चूँ कल्लाबन्द आहो दूद आसाये मन

चूँ शफ़क़ दर खून शीनश चश्म शब पैमाये मन, ४

इसे हिन्दी में 'शीतिका' छन्द कहते हैं, जो हरिगीतिका में प्रथम गुरु या २ मात्राओं को कम करने से बनता है :—

तात, पैतृक दाय दो, निजशील सिनलाओ मुझे,

प्रणत हूँ मैं इन पदों में, मार्ग दिशलाओ मुझे,

असत् से सत् में, तिमिर से ज्योति में लाओ मुझे,

मृत्यु से तुम अमृत में हो, पूज्य पहुँचाओ मुझे । ५

(२) 'मफायलुन् मफायलुन् मफायलुन् मफायलुन्' वजन पर शेर का उदाहरण:—

१—बच्चन, मधुकलश, कवि की वासना, पृ० १३।

२—सो० संयव क़लीमुल्ला हुसेनी, उरज, पृ० ३७।

३—लेखक।

४—हफीम अफ़जलुद्दीन खाकानी (११०६—४५ ई०)

५—श्री मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ० १४६।

फ़राज़ खाको ख़िश्त हा दमीदा सबज़ किश्त हा ।

चे किश्त हा बहिश्त हा न देह सद हज़ार हा । १

ठीक इसके समान संस्कृत में पञ्चचामर (प्रमाणिकापदद्वयं वदन्ति पञ्चचामरम्)

छन्द है:—

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुरस्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे ।

कृपाकटाक्षघोरणीनिरुद्धदुर्धरापदिक्वचिद्दिगम्बरे मनोविनोदमेतु वस्तुनि । २

(३) एक शेर 'मफ़ऊल फ़ायलातुन् मफ़ऊल फ़ायलातुन्' वज़न पर है:—

दिल भी रबद जे हस्तम्, साहिब दिलाँ खुदारा ।

दरदा कि राजे पिनहाँ, ख्वाहद खुद आशकारा ॥३

इसे हिन्दी में दिग्पाल छन्द कहते हैं, जिसमें १२ मात्राएं होती हैं और पाँचवीं तथा आठवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं:—

तटिनी तरल तरंगे, तव तीर ले रहीं थीं,

तू गीत गा रहा था, वे साथ दे रहीं थीं । ४

(४) जामी साहब का दूसरा शेर लीजिए, जो 'मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन फ़ऊलुन' के वज़न पर चलता है:—

शबज़ मुतरिब कि दिल खुशबाद बैरा ।

शुनीदं नालये जाँ शोज़ नैरा ॥ ५

हिन्दी में इसे 'सुमेरु' छन्द कहते हैं । इसमें १९ मात्राएं होती हैं और पहली, आठवीं एवं पन्द्रवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं:—

अरे, यह बात है, तो खेद क्या है ?

भरत में और मुझ में भेद क्या है ?

करें वे प्रिय यहाँ निज कर्म-पालन,

करूँगा मैं विपिन में धर्मपालन । ६

५. बहर रमल का एक भेद 'फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन' है:—

साक़िया बरखेज़ व दर्देह जामरा,

खाक बरसर कुन ग़मे अय्याम रा । ७

१—मिरज़ा हुबीब काश्गानी (१८०७—१८५६ ई०)

२—राबण, शिवताण्डवस्तोत्र ।

३—अब्दुल रहमान जामी (१२१४-१२६२ ई०,) कुल्लियात जामी ।

४—श्री गयाप्रसाद शुक्ल, 'सनेही', तोता ।

५—अब्दुल रहमान जामी ।

६—श्री मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ५७ ।

७—अब्दुल रहमान जामी ।

इसे हिन्दी में पीयूषवर्णी छन्द कहते हैं। यह १९ मात्रा का छन्द है, जिसमें (SISS) की दो आवृत्तियों और रगण (SIS) का योग होता है। इसमें तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं।

वेदना ! कैसा करुण उद्गार है,
वेदना ही है अखिल ब्रमाण्ड में,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना ।

यों तो सभी फारसी बहरों को हिन्दी मात्रिक छन्दों में बाँधा जा सकता है, परन्तु जो छन्द हिन्दी में प्राचीन है; उन्हीं को लेकर तुलना की गई है।

उर्दू के प्रचलित मुक्तछन्दों की लय भी हिन्दी के मुक्तछन्दों से मिलती है। यह पहले ही तुलना में बताया जा चुका है कि उर्दू के सारे अरकान हिन्दी के लय-खण्डों के साथ तौले जा सकते हैं। उर्दू में सरदार जाफरी मुक्त छन्द के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने मुक्तछन्द में अधिकांश रगण या फायलुन् (AIS) की आवृत्ति की है। उन्होंने लेखक के विश्लेषण को स्वीकार करने के बाद कहा कि मैं इस छन्द में 'एक दो', 'एक दो', 'एक दो' की आवृत्ति करके बज़न तौलता हूँ, जिसके मानो भी 'रगण' की आवृत्तियाँ हैं। 'खून की लकीर' का एक उदाहरण लीजिये:—

तेरे चे/हरे पै में/ आज यक/नूर सा/ देखता/ हूँ,
जैसे ते/री ज़बी/ पर करो/झीं सितार/े भिमत/ आये है/,
ये अशो/क और अक/वर के अह/दे तु/कू/मत की तन/वीर हर/गिज़ नहीं/ है,
बल्कि ज/म्हूर की/ मिसअलों/ की जिया/ है।
रोटियों/ के लिए/ कितने सू/खे हुए/ हाथ फे/ले हुए/ हैं।
कितने नं/गे बदत/ एक कप/ड़े की सा/तिर खड़े/ हैं,
इनको नफ/रत से इन/की हिका/रत से मत/ देख
ये काफ़ि/र और भिला/री नहीं/ हैं,
तेरे हि/न्दोसती/ के बड़ा/दुर सिपा/ही हैं जो/
इक़ला/व और बगा/वत की पिघ/ली दुई/ आग से/ जल चुके/ हैं।

समस्त कविता के चरणों में रगणात्मक आवृत्ति होती है। देखिए, प्रथम चरण की उच्चारण लिपि ये है:—

तेर चेरे प में आज यक नूर सा देखता हूँ।

जिस चरण के अन्त में पर्वशि आता है, वहाँ पूर्णांक हो जाता है। इस कविता को पढ़ते हुए लय के अनुसार उच्चारण को तोड़ना अवश्य पड़ता है। जिनके नीचे चिह्न लगे हैं, वे लघु उच्चरित होंगे। हिन्दोस्ताँ में 'स' पूरा होगा और (क + औ) तथा (र + औ) मिलकर दो मात्राएँ ही बनाते हैं।

हिन्दी में श्री अनूप शर्मा ने रगणात्मक मुक्तछन्द में 'विराट् संग्राम' की रचना की है। हिन्दी की शुद्ध उच्चारण-पद्धति के कारण उसमें पूर्णतया रगण की आवृत्ति होती है:—

युद्ध हो/ने लगा/, या कि फू/टा महा/ तीव्रज्वा/लामुखी/ भूमि यो/रोप मे/ धूम है/ रंक की/ उत्थिता/ आह का/

अग्नि है/ दीन की/ मूर्तिमा/ना क्षुधा/ !

और ला/वा उठे/ क्लेशितों/ पीड़ितों/ के घनी/भूत प्र/स्वेद के/ पिंड से/,

कूदते/ व्योम में/ फाँदते/ विश्व में/ स्वर्णलं/कापुरी/ को हनू/मान से/ दह्यमा/ना बना/ति हुए/ रोदसी/ ।

था

धुआँ/ सो हुआ/ तोप का/ घूम ही/

आह की/ अग्नि भी/ टैंक द्वा/रा चली/,

दीर्घ ला/वा बने/ व्योम से/ काल के/ खण्ड छू/टे बड़ी/ क्षिप्रता/ से तदा/,

मृत्यु के/ मन्त्र की/ शक्ति से/ सत्य ही/ मुह्यमा/ना बना/ते हुए/ मेदिनी/ ।^१

अनूपजी ने इस रगणात्मक आवृत्ति को 'ताण्डव छन्द' की संज्ञा दी है। जाफरी ने एक दूसरे उदाहरण में अष्टकपर्व (ISISS), का प्रयोग किया है, जिसे उर्दू के हिसाब से 'फऊलफ़े लुन्' की आवृत्ति माननी चाहिए:—

ये सर हमेशा/ कटा किये हैं/

ये दिल हमेशा/ लुटा किये हैं/

ये हाथ गलते/ रहे हैं लोहे/ की हथकड़ी में/

ये पैर सड़ते/ रहे हैं जिन्दाँ/ की बेड़ियों में/

जमीं अमर है/

हवा अमर है/

अमर है पानी/

अमर अवामी/ दिलों की धड़कन/

जो आसमाँ की/ खुली फिजाओं/ को ढूँढती हैं/

अवाम मरते/ नहीं हैं सो जाते हैं जमीं की// सुनहरी मिट्टी/ में मुँह छिपा कर/

वह अपनी माँ की/ सुनहरी छाती/ से सर लगा कर/ बहार के ख्वा/ब देखते हैं/

जमीन से को/पलें निकलती/ हैं और आका/श से सितारे/

हवा से बादल/ गरज से बिजली/
 अवाम की र/ख से बगावत/ की आग जोलों/ से ज़िन्दगानी/
 सलाम लो ए/शिया के नौ/खैज/ सरफ़रोशों/ की हिम्मतों का/
 पुराने बक्तों/ के सूरमाओं/
 नये युगों के/ उपर से क्यों दे/खते हो हमको/
 हम आखिरी ज/ग लड़ रहे हैं/
 तुम्हारे हाथों/ में इस्तिदा थी/
 हमारे हाथों/ में इन्तहा है/ ११

हिन्दी में यह लय मत्तसमक (15155×2 का विस्तार) छन्द की है। इस छन्द की लय मुक्त छन्द में तो नहीं प्रभुक्त हुई, परन्तु निश्चित छन्द के रूप में श्री हरिऔधजी ने इसका प्रयोग किया है।

न गेह में ही/ कुलाङ्गनाएं/
 अपूर्व कलक/ण्ट ता दिखातीं/ ।
 कहीं कहीं अ/न्य गायिका भी/ ,
 बड़ा मधुर गा/न थीं गुनाती/ १२

इन सब तुलनात्मक उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि उच्चारण-पद्धति के साम्य के कारण अरबी, फ़ारसी और उर्दू के छन्द हिन्दी भाषा-छन्दों से पूर्ण साम्य रखते हैं।

इसका मूल कारण यह भी है कि फ़ारसी भाषा भी आर्य-भाषा है और संस्कृत तथा हिन्दी भी आर्य-भाषा के परिवार में हैं। यद्यपि भाषा-विज्ञानियों ने अरबी भाषा का सम्बन्ध फ़ारसी से न मानकर हिब्रू से माना है, पर अरबी ही उच्चारण-पद्धति और छन्दोविधान में फ़ारसी से मौलिक साम्य है। इस दृष्टि से भाषा-विज्ञानियों को अरबी और फ़ारसी के सम्बन्ध का पुनः परीक्षण करना चाहिए। यदि लेखक को हिब्रू भाषा के छन्द सुनने का अवसर मिलता, तो वह अरबी और हिब्रू के छन्दोविधान के मूल तत्वों के साम्य के आधार पर समस्त परिवार का सम्बन्ध आर्य-परिवार से सिद्ध करने का एक प्रयत्न करता। इससे दूसरा निष्कर्ष यह भी निकलता है कि हिन्दी में उर्दू कविता-धारा को पूर्णतः आत्मसात करने की शक्ति है। यदि हिन्दी और उर्दू के कवि छन्द की इस मौलिक एकता का अनुभव कर सकें, तो हिन्दू और मुसलमानों को समीप आने में भी थोड़ा सहारा मिलेगा। मौलिक लयों के प्रयोग के कारण मुक्त छन्दों की भूमि में उर्दू और हिन्दी के कवि विषय-साम्य के साथ छन्द की एक ही भूमि में चल रहे हैं। इस स्थिति को दृढ़ता और स्पष्टता के साथ प्रतिपादित करने के लिए लेखक ने ऐतिहासिक क्रम से तुलना के सूत्र संगृहीत किए हैं। गंगा-यमुना का यह संगम शीघ्र ही कुछ समय की भूमि पार करने के बाद एकीकृत रूप में दिखाई पड़ेगा। इस तुलनात्मक अध्ययन से लेखक ने यही निष्कर्ष निकाला है।

१—सरदार जाफ़री, एशिया जाग उठा, पृष्ठ १२, १३।

२—हरिऔध, बेवेही बतबास, सप्तम सर्ग।

बँगला छन्द के लय-खण्ड

बँगला छन्द में प्रयुक्त होने वाली दो उच्चारण-पद्धतियाँ हैं:—

(१) ब्रजशैली या हिन्दी उच्चारण-शैली । (२) बँगला उच्चारण-शैली ।

जिन छन्दों का आधार मात्रिक छन्द होता है, और उच्चारण हिन्दी का सा ही होता है, उनकी शैली को ब्रजशैली कहते हैं । महाप्रभु वल्लभाचार्य और श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से मध्यकाल में हिन्दी-पदों का बंगभूमि में प्रचार हुआ । इसी शैली में गोविन्ददास और चण्डीदास आदि वैष्णव कवियों ने पदों की रचना की है । रवीन्द्रकृत राष्ट्रगीत का छन्द हिन्दी शैली का ही है और उसका उच्चारण भी हिन्दी के समान है, यद्यपि बँगाली लोग उसे अपने ढंग से पढ़ते हैं ।

ब्रजशैली के छन्दों की मात्रा-गणना ठीक हिन्दी की तरह होती है, जैसे राष्ट्रीय गीत 'जन-मन-गन अधिनायक जय हे, भारत-भाग्य-विधाता' हिन्दी का सार छन्द है और इसमें १६, १२ की यति से २८ मात्राएँ हैं । परन्तु, अक्षर-मात्रिक छन्दों की गणना हिन्दी से बिल्कुल भिन्न है, जिसे समझने में हिन्दीवाले कठिनाई का अनुभव करते हैं । इतना समझ लेना आवश्यक है कि छन्द की दृष्टि से बँगाली लोग पाठ में लघु का गुरु और गुरु का लघु कर देते हैं, अतः यदि हिन्दी के लोग समझने के लिए अक्षर-मात्रिक को मुक्तवर्णिक छन्द की दृष्टि से देखें तो अधिक सुविधा होगी । वर्णिक छन्दों में अक्षरों की गणना घनाक्षरी की भाँति ही होती है । बँगला में मुक्त वर्णिक छन्दों का भी बहुत प्रचार है, परन्तु उन छन्दों की लयें हिन्दी में नहीं हैं । केवल पयार (८+६ वर्ण) छन्द घनाक्षरी के कुछ समीप पड़ता है । फिर भी, वर्णिक मुक्तक होते हुए भी दोनों में बहुत अन्तर है । हिन्दी में भी मुक्तक वर्णिकों के कई प्रयोग किये गये हैं, जिनका आधार घनाक्षरी है, परन्तु उनकी लय बँगला-छन्दों से नहीं मिलती । हाँ, अक्षरगणना का साम्य दिखाना हो तो ४, ६, ८, १०, १२, १६, आदि अक्षरों के चरणों से तुलना की जा सकती है, पर छन्द का प्राण तो लय है, अतः अक्षरगणना के साम्य का विशेष महत्त्व नहीं है ।

बँगला के छन्दशास्त्री भी यह मानते हैं कि गीतसाहित्य के लिए मात्रिक छन्दों का प्रयोग ही सुन्दर होता है, क्योंकि उसमें एक गुरु के स्थान पर दो लघु रखकर ध्वनि-विस्तार का माधुर्य प्राप्त होता है । इसीलिए मध्यकाल से लेकर आज तक यह शैली प्रचलित है, परन्तु, बँगला की दैनिक उच्चारण, रीति इसके विपरीत है । बँगला में दीर्घ ध्वनि सर्वदा संप्रसारित भी नहीं हो सकती । बँगला के उच्चारण में प्रस्वर (Accent) की प्रधानता है, जिसे बँगला में 'झोक' कहते हैं, अतः बँगला में पविक (foot) लय का प्रयोग सरलता से सम्भव हो सका है^१ ।

१ — मात्रावृत्त छन्दे गीतिकवितार उपयोगी ध्वनिविस्तारेर माधुर्य आछे, किन्तु एइ विस्तार प्रणवतार मध्ये बँगला उच्चारण रीतिर सबटेकू तत्त्वधरा पड़े ना । ग्रामरा

श्री प्रबोधचन्द्र सेन ने बंगला छन्दों का वर्गीकरण करते हुए चार पर्वों का निर्देश किया है, १ यद्यपि इनके अतिरिक्त भी अन्य पर्व हैं । ये पर्व चार, पाँच, छः और सात मात्राओं के हैं । इनके अतिरिक्त तीन और आठ मात्रा के भी पर्व होते हैं । इन सभी पर्वों की तुलना हिन्दी पर्वों से की जा सकती है और दोनों भाषाओं की मौलिक लय में साम्य दिखाया जा सकता है, यद्यपि आगे भेद की रेखा भी निश्चित की जायगी ।

त्रैमात्रिक पर्व

वज्र-शैली:—यह छन्द (SI) के आधार पर चलता है । बंगला में इसे 'प्रत्यस्वर' कहते हैं । कभी-कभी दो त्रिकलों के स्थान पर एक ही कल (४+२) का भी प्रयोग हो जाता है, पर त्रिकल प्रधान होने के कारण ऐसे छन्द को त्रिकलात्मक ही मानना चाहिए—

(१) सैन्य / सकल / समय / कुशल, /
निरखि / भीत / अरिदलबला,
कम्पित हय // धरनी तल //,
वासुकि नत // लाजे ।
भूपति अति // वीर्य/वान/
विभव/निवह/ सुरस/ मान/
ऐन्द्र/येन शोभ/मान/
मर्त्य/भुवन / माझे/

देखिके, मात्रावृत्त छन्दे युग्मध्वनि के अवस्थान निर्विशेष सर्वत्राह सम्प्रसारित कहे हुइ मात्रे देउमा ह्ये, ग्रामोदर नित्य उच्चारिता भाषाय युग्मध्वनि सर्वत्राह सम्प्रसारित ह्ये ना । काजेहु नवमात्रावृत्तेओं ध्वनि-विस्तारेर व्वारा माधुर्यसुष्टिर उद्देश्य किछू परिमाने कृत्रिमतार आश्रय निते ह्ये । ता छाड़ा ओइ ध्वनिविस्तारइ भाषार एकमात्र तत्व नय । ग्रामादेर नित्यव्यवहृत भाषाय येमून अवस्था विशेषे ध्वनिविस्तारेर अवकाश थके, तेमूनि थाके भोंक स्थापनेर व्यवस्था । उच्चारणेर समयध्वनि विशेषेर उपर ग्रामरये भोंकेर मध्येइ भाषा असल शक्तिटि निहित थाके । एइ भोंक के हुंगरेजीते बला ह्ये (Accent) बाँड्ला परिभाषाय ग्रामरा बलबे प्रस्वर ।

पृ० १८, छन्दोगुरु रघोन्द्रनाथ, प्रबोधचन्द्रसेन ।

१—प्रतिपर्व चार, पाँच, छय किवा सात मात्रार समावेश होते पारे, एइ हिसाबे मात्रावृत्त छन्द के चार श्रेणीते विभक्त करा जाय ।

पृ०, ५५ वही ।

२—माइकेलमधुसूदन दत्त, पद्मावती नाटक, चतुर्थ अंक ।

(२) शरद/ चन्द्र/ पवन/मन्द/ विपिन/ भरल/ कुसुम/ गन्ध /
फुल्ल/मल्लि/ मालति जुधि// मत्त/ मधुर/ मोरनी ३

यह लय-संगीत के बहुत अनुकूल है । हिन्दी के मध्यकालीन कवियों ने भी इस छन्द का बहुशः प्रयोग किया है:—

आजु/ नाग/री कि/शोर/
भाव/ती वि/चित्र/ जोर/
कहा/ कहौं/ अंग/ अंग/ परम/ माधु/री
करत/ केलि/ कंठ/ मेलि/
बाहु/ दंड/ गंड/ गंड/
परस/ सरस/ रास/ लास/ मंड/ली जुरी
श्याम/ सुन्द/री वि/हार/
बाँसु/री मृ/दंग/ तार/
मधुर/ घोष/ नूपु/रादि/ किकि/नीचु री
देखत हरि// वंश/आलि/
निर्तनी सु/धांग/चालि/
वारि/ फेर/ देत/ प्राण/ देह/ सों दुरी /१

आधुनिक खड़ी बोली के प्रयोग के दो उदाहरण इसी प्रयोग में दिये जाते हैं:—

स्तब्ध/ अंध/कार/ सघन/
मन्द/ गन्ध/ भार/ पवन/
ध्यान/ लग्न/ नैश/ गगन/
मूँदे पल// नीलोत्पल //२

बँगला शैली या अक्षरमात्रिक (इसमें तीन-तीन अक्षरों का एक लय खण्ड प्रवाहित होता है) प्रयोग निम्न है:—

नूपुरे/र मत/ बाजेछे/ चरने/ चरने/
एमून/ करिया/ केमने/ काटिबें/ माधवी/ रीति-/
नयन/ धाराय/ पथ से/ हाराय/
चाय से/ पिछन/ पाने/
चलिते/ चलिते/ परन/ चलेना/
व्ययार/ विषम/ टाने ३ ।

३—रबीन्द्रनाथ, रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, छन्द ।

१—हितहरिवंश, श्री हित चौरासी ।

२—निराला, गीतिका ।

३—रबीन्द्रनाथ, रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, छन्द

हिन्दी में तीन अक्षरों की आवृत्ति नहीं प्रचलित है, और यदि प्रयोग होता है। तो त्रिकल गणात्मक रूप धारण करता है।

चतुर्मासिक पर्व

व्रजशैली:—इसमें चतुष्क की आवृत्ति होती है। हिन्दी में चौपाई छन्द इसी के अन्तर्गत आता है। जहाँ दो त्रिकल और द्विकल मिलकर आठ माथाओं की लय बनाते हैं, वहाँ चतुष्क की दो आवृत्तियाँ मान ली जाती हैं:—

(१) नील सिन्धु जल/ धीत चरन तल ।

अनिल विकम्पित/ श्यामल उज्ज्वल ।

अम्बर चुम्बित/ भाल हिमालय/

शुभ्रतुषार कि/रीटिनी २ ।

(२) पतन अभ्युदय / बन्धुर पन्था,/ युग युग धावित/ यात्री

तुम चिर सारथि,/ तब रथ चक्रे,/ मुखरित पथ दिन/ रात्री

दारुण//विप्लव / माझे, तब शंखध्वनि/ बाजे

संकट दुःख/ आता

जन मन गन अधि/नायक जय हे/, भारत भाग्य विधाता ३ ।

हिन्दी चतुर्मासिक पर्व के प्रयोग में सर्वाधिक समृद्ध भाषा है।

८ (छवि), १२, १४ (मानव, सखी, हाकिल), १६ (पादाकुलक, पद्मति अरिल्ल, डिल्ला, पञ्चटिका, मत्तसमक, निश्लोक, चित्रा, चौपाई आदि), २० (योग), २४ (रोलो), २६ (सरसी), २८ (सार), ३० (तादंक) और ३२ माथाओं के छन्द (समान सर्वैया, मत्त सर्वैया) अधिकांश (कोष्ठित छंद) चौकलों के आधार पर प्रवाहित होते हैं। कहीं कहीं दो त्रिकल और एक द्विकल मिलकर दो चौकल बनते हैं। कुछ चतुर्मासिक पर्वों के उदाहरण लीजिए :—

१२ मात्राएँ—तुम थीं/ भारत/ महिमा/,

आज ध्वंस युग// प्रतिमा/,

तुम में, क्या उर/ गरिमा ?/

केवल तन की/ लघिमा /^३ ।

१४ मात्राएँ:—लक्ष्मण,/ तुम हो/ तपस्पृही,

मैं वन/ में भी/ रहा गू/ही ।

१—रवीन्द्रनाथ, कल्पना, भारतलक्ष्मी ।

२—रवीन्द्रनाथ, गीतवितान, द्वि० सं०, प्रथम खण्ड, पृ० २५४ ।

३—पन्त, स्वर्णधूलि, मानसी ।

बनवा/सी, हे/ निमों/ही,
हुए वस्तुतः// तुम दो/ ही ।^४

१६ मात्राएँ:—(१) स्वयं सुसज्जित// करके/ क्षण मे/
प्रियतम/ को, प्रा/णों के/ पण में/
हमीं भेज देती हैं/// रण में/
क्षात्रधर्म के// नाते/^५ ।

सखि, वे मुझ से// कह कर जाते ^१ ।
(२) श्री गुरु/पद नख/ मनिगण/ जोती ।
सुमिरत/ दिव्य दृष्टि हिय// होती/ ।
दलन मोह तम// सो सुप्रकास ।
बड़े भाग्य उर// आवइ/ जासू ।/

२० मात्राएँ:—धूप छाँह रंग/ तिर अंचल में / अगणित//,
करते/ थे मा/नस को/ रंग तरंगित//,
प्राणों/ की झं/कृत तं/त्री कर/ में धर/ ,
बरसा/ती उर/ में प्राणों के// मधुस्वर^२ ।

२४ मात्राएँ:—यह सारस्वत// देश तुम्हारा// तुम हो/ रानी/
मुझको/ अपना/ अस्त्र समझ//कर//ती मन/मानी/
यह छल/ चलने/ में अब/ पंगु हुआ सा//समझो/
मुझको/ भी अब/ मुक्त जाल से/ अपने/समझो/^३ ।

२८ मात्राएँ:—प्रतिक्षण/ नूतन/ वेष बनाकर// रंगविरंग निराला/
रवि के/ सम्मुख/ थिरक रही है// नभ में/ वारिद/माला/
नीचे/ नील समुद्र मनोहर/// ऊपर/ नील गगन है ।
घन पर/ बैठ बीच में// विचरूँ/ यही चाहता/मन है ^४ ।

३० मात्राएँ:—धीरे/ धीरे/ हिम-आच्छादन/ हटने/ लगा धरातल// से,
जगीं बनस्पतियाँ अलसाईं///मुख धोतीं शीतल जल/// से ^५ ।

४—गुप्त, साकेत, चतुर्थसर्ग ।

५—गुप्त, यशोधरा ।

१—गुप्त, यशोधरा ।

२—पन्त, स्वर्णकिरण ।

३—प्रसाद, कामायनी, संघर्ष ।

४ - रामनरेश त्रिपाठी, पथिक ।

५—प्रसाद, कामायनी ।

३२ मात्राएँ:—मधुमय/ वसंत/ जीवन/ बनके/, वह अंतरिक्ष// की लहरों में/
कब आये थे// तुम चुपके से// रजनी/ के पिछले पहरों में^१।

बँगाली शैली:—(१) धरनीर/ अस्मिनीर/ मोचनेर/ लले,
देवतार/ अवतार/ वसुधार/ तले^२।
शोनो// सखी/ आज राते/ कारागार/
मोचनार/ मोह पार/ भूरछार/^३।

(२) निरजन/
निदपुर/
निकेतन/
मृत्यूर/
वायु हाय/
मुरझाय/
चेईनाइ/
सिन्धुर/^४

मृत्युरथ और सिन्धुर में 'पूर्णक' है, अतः पर्वान का प्रयोग हुआ है, घनाक्षरी के आधार पर चतुर्वर्णिक प्रयोग हिन्दी में भी हुआ है:—

यह स्वर/ डूबा नहीं/, डूबा नहीं/,
दूरी के आनन्त सिन्धु/ जल में,
यह स्वर/ ऊबा नहीं/, ऊबा नहीं/,
री के दिगन्त मरु/स्थल में
व्रण्य//वह/ कालतीर्थ/कालातीत/,
लोला जहाँ/ नारायण/नर में,
सत्यमेव/ जयते अहिंस गीत/
गूँजा है जहाँ से शुद्ध/स्वर में^५।

पञ्चमात्रिक पर्व (Pentamoric Foot)

व्रजशैली:—इस छन्द का प्रयोग रगण (SIS) के आधार पर हुआ है। संस्कृत में

१—प्रसाद, कामायनी।

२—रवीन्द्रनाथ, रवीन्द्र रचनावली भाग, २१, छन्द।

३—मोहितलाल मजूमदार, बँगला कवितार छन्द, चतुर्थ अध्याय।

४—सत्येन्द्रनाथ वत्सकृत, वाङ्मय कवितार छन्द से उद्धृत।

५—सियारामशरण गुप्त, बापू ३।

चार रगणों से सग्विणी छन्द ('कीर्तितैषा चतुरङ्गिका सग्विणी' छन्दोमञ्जरी) बनता है । इसका मात्रिक विस्तार २० मात्रा हिन्दी में अरुण छन्द कहलाता है । बंगालियों ने जय देव के निम्न प्रयोग से प्रेरणा ली है:—

मामहह/ विधुरयति/ मधुर मधु/ यामिनी/
कापि हरि/ मनुभवति/ कृत सुकृत/ कामिनी/
अहह कल/ यामि//वल/ यादि मणि/ भूषणम्/
हरि विरह/ दहन वहनेन बहु/ दूषणम्/१

रवि ठाकुर ने इस पञ्चक के आधार पर 'फूल शर' की रचना की है:—

अनिल अति/ वहिल मृदु/झरिल सित/ कौमुदी/
विगत रवि/ ताप यत/ सांझे—
स्निग्ध कम/ परश लभि/ आजि मुख/ अम्बुधि/
उछ्वसित/ शान्त मन/ सांझे ।^२

हिन्दी गीतों में इस लय का पर्याप्त प्रयोग हुआ है ।

मुँद गये दिवस के/ विवश//लोचन नलिन ।
रख रही/ कौन पग/ मन्द अति/ मन्द गिन^१
लाज तम/ संवृता/
नयन, मुख/तनुलता,
जग रही/ तारिका ।
दन्त मु/क्ता-किरण/ ।^३

गोस्वामी जी ने इसी पर्व का प्रयोग 'विनय-पत्रिका' में ढंडकों में किया है:—

ताण्डवित/ नृत्य पर/, डमरु डिं/डिम प्रवर/, अशुभ इव/ भाति कल्याण राशी ।
महाकल/पांत ब्र/ह्मांड मं/डल दवन/, भवन कै/ लास आ/सीन काशी ॥ ४

अक्षर-मात्रा शैली

पाँच अक्षरों का एक पर्व मान कर दो-तीन या अधिक आवृत्तियों से छन्द का निर्माण होता है और अन्त में आवृत्ति के पश्चात् लयखंड भी रक्खा जा सकता है । यद्यपि बंगाली छन्द:शास्त्रियों ने इस पर्व के आन्तरिक स्वरक्रम का विश्लेषण नहीं किया है, पर

१—जयदेव, गीत गोविन्द ।

२—रवीन्द्र नाथ, फूलशर, निदाघे ।

३—क० चन्द्र प्रकाश सिंह, मेघमाला ।

४—गोस्वामी तुलसीदास, विनय-पत्रिका, शंभु-स्तुति ।

लेखक के विश्लेषण के अनुसार यह खंड तीन और दो अक्षरों के योग से बनता है तथा पंचम अक्षर गुरु होता है, यथा:—

अरुणमयी/ तरुणी ऊषा/
जागिये दिले/ गान
पूरव मेघे/ कनक मुखी/
वारेक शुधू/ मारिक डेंकि, /
अमनि येनो/ जगत छेये/
विकस उठे, प्रात ।^१

नीचे के उदाहरण में अन्त्यानुप्रास में लयखंड का योग है:—

भ्रमर कहे/ 'होथाय बेला/, होथाय आछे/, नलिनी,
उदरे काछे/ बेलिवो नाकी/, आजि ओ याहा/ वलिनी ।^२

हिन्दी में यह अक्षर पर्व प्रचलित नहीं, परन्तु मराठी में इसका प्रचार है। इसे 'आन्दोलन' छन्द कहते हैं:—

देव ध्या कोणी ; देव ध्या कोणी ।
आयता आला ; घर पुसोनी ॥
देव न लगे ; देव न लगे ।
सांठ वणेचे ; रुघले जागे ॥
दुबला तुका ; हा भावे निणे ।
उधारा देव ; घेतला रिणें ॥ ३

ष ण् मा त्रि क प र्व—(Hexamoric Foot)

यह पर्व बँगला गीत कविता का सर्व प्रधान वाहन है। आजकल इसके समान किसी दूसरे पर्व का प्रयोग नहीं होता है। गोविन्ददास ने इस छन्द का प्रयोग किया है, परन्तु बँगला प्रकृति के अनुकूल नहीं पड़ा। अनेक स्थानों पर संस्कृत रीति से ह्रस्व दीर्घ उच्चारण पद्धति को अपनाया गया है। पहले पहल रवि ठाकुर ने इसे बँगला उच्चारण-रीति के अनुसार ढाला।^१ उन्होंने 'मानसी' की 'मूल भाड़ा' कविता में इसका पहला प्रयोग किया था। अक्षर मात्रिक का एक उदाहरण दिया जाता है—

१—रवीन्द्र, प्रभात संगीत, साध ।

२—रवीन्द्र, शैशव संगीत, फूलबाला ।

३—तुकाराम, तुकाराम संग्रह, पृ० ३५८ ।

१—केनना श्रोति होखे बाङ्ला गीति कवितार सर्व प्रधान वाहन, आधुनिक बाङ्ला साहित्ये षण्मात्रिक छन्दे यतो बेशि संख्यक श्रो बिचित्र रकमेर गीत-कविता रचित

३ ३ ३ ३
 मुखर नूपुर / वाजिछे सुदूर / अकाशे,
 १११ २१ १११ २१
 अलक गंध / उडिछे / मन्द / वातासे,
 १११ २१ १११ २१
 मधुर नृत्ये / निखिल चित्ते / विकासे,
 ११ २२
 कत मञ्जुल / रागिनी ।^२

प्रत्नरीत :—(५१) :—षण्मात्रिक पर्व का एक और उदाहरण लीजिये, मात्रा
 गणना व्रज-शैली में है—

जनगनपथ / तब जय रथ / चक्र मुखर / आजि,
 स्पन्दित करि / दिक् दिगन्त / उठिल शंख / बाजि,
 दिन आगत / ऐ
 भारत तबू / कई ?
 दैन्य जीर्ण / कक्ष तार / मलिन शीर्ण / आशा ।
 त्राश रुद्ध / चित्त तार / नाहि नाहि / भाषा ॥
 कोटि मौन / कंठ पूर्ण / बानी कर / दान द्वे,
 जाग्रत भगवान है ।^१

हिन्दी में कई कवियों ने इसका प्रयोग किया है, परन्तु यह प्रयोग विरल ही है ।
 एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

दीप्त आरती !
 अम्ब भारती !
 उज्ज्वल छवि / गन्धभार ।
 प्रात किरण / का सिंगार ।
 नव वसंत / कान्ति से प्रदीप्त आरती ।^२

हयेंछे, तेमून बोध करि आर कोनो छन्देइ हयनि । वस्तुत रवीन्द्र नाथइ
 सर्वप्रथम ऐ छन्देर स्वरूप ओ मर्यादा उपलब्धि करेन एवं तिन एक बाँडलार स्वाभाविक
 उच्चारणरीतिर उपरे प्रतिष्ठत करे बाड्ला छन्द भाण्डारेर ऐश्वर्य वृद्धि करेछेन । छन्दोगुप्त
 रवीन्द्रनाथ, पृ० ७२, ७३ । श्री प्रबोधचन्द्र सेन ।

२—रवीन्द्र, चित्रा, प्रिया ।

१—रवीन्द्र गीत वितान, प्रथम खंड, पृ० २५६ ।

२—चन्द्राकर, बारहसेनी कालेज-पत्रिका, १९५२ ।

इस पर्व का उदाहरण 'प्राकृत पेंडुगल' में दिया गया है—

कोई जनई । दप्प भणइ । हीर सुकइ । पेक्सिट ।^३

सप्तमात्रिक पर्व—(Heptamoric Foot)

श्री प्रबोधचन्द्र सेन ने कहा है कि जयदेव के गीत-गोविन्द में इसका प्रयोग नहीं हुआ है और वस्तुतः समग्र संस्कृत साहित्य में इस पर्व के छन्द का दृष्टान्त नहीं है, परन्तु उनका कथन उचित नहीं है । गीत गोविन्द का ही उदाहरण लीजिये—

किं करिष्यति / किं वदिष्यति / सा चिरं विर / हेण । ७, ७, ७, ३ (रूपमाला)

किं धनेन जनेन किं मम / किं सुखेन ग्रहेण ॥ ७, ७, ७, ३

चिन्त्यामित/दाननं कुटिल भ्रुकोप भ/रेण । ७, ७, ७, ३ (रूपमाला)

शोणपद्म मि/दोपरिभ्रम/ता कुलभ्रम/रेण ॥^१ ७, ७, ७, ३ „

प्राकृतपेंडुगलम् के उदाहरण को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

गह गअहि दुक्किय तरनि लुक्किय तुरअ तुरअहि जुज्झिआ ।

रह रहहि मील्लिअ धरति पीलिअ अप्पपर नहि बूज्झिआ ॥

बल मिल्लिअ आह्वेअ पत्ति जाइउ कम्प गिरिवर सीहए ।

उच्छलइ साअर दीन काअर वइह वट्ठिअ दीहरा ।^२

भक्ति काल में गोविंददास ने इस पर्व का प्रयोग किया है—

नन्दनन्दनचन्दचन्दन गन्धनिन्दित अंग ।

जलद सुन्दर कम्बु कन्धर निन्दि सिन्धुर भंग ॥

३—प्राकृत पेंडुगलम्, प्रथम परिच्छेद, छन्द १९९ ।

४—षण्मात्रिक पर्व र मतो सप्तमात्रिक पर्व जयदेवेर गीत गोविन्दे व्यवहृत ह्यनि । वस्तुतः समग्र संस्कृतसाहित्ये सप्त मात्रपर्विक छन्देर दृष्टान्तनइ वललेइ हय । आभि एकटिमात्र संस्कृत रचनाय ओ छन्देर आभास पेयेछि, सेटि होच्चे महाभारतेर घृतराष्ट्र-विलाप एकटि नमूना देखाचिछि—

यदा औषं / देवराजं / प्रवृष्टं; शरैर्विध्यैः / वारितं चा/ जूर्जनं ।

अग्निं तथा/तपितं खा/ण्डवे च । तदानाशं/से विजयाय/सञ्जय ।

(आदि पर्व, अध्याय ९, श्लोक १५३)

(यह ११ वर्णों का त्रिष्टुभ छन्द है, जिससे इन्द्र-वज्रा विकसित हुआ है । इसे मात्रिक नहीं मानना चाहिए । इसके अतिरिक्त इसके सप्तक पर्व एक से नहीं हैं । प्रस्तुत लेखक उनकी विश्लेषण-शक्ति की प्रशंसा न करके, परिश्रम की प्रशंसा करना ही अभोष्ट समझता है —लेखक ।)

१—जयदेव, गीत-गोविंद, प्रोषितपतिका—वर्णन ।

२—प्राकृत पेंडुगलम्, प्रथम परिच्छेद, पृ० १६३ ।

कंज लोचन कलुष मोचन श्रवण रोचन भास ।

अमल कोमल चरण किसलय निलय गोविन्ददास ॥^१

हिन्दी में इसे रूपमाला छन्द कहते हैं, जिसमें सप्तक (SISS) की तीन आवृत्तियों और त्रिकल (SI) पर्व खंड का योग होता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध-चरित' में 'हंसरक्षा' का वर्णन इसी छन्द में किया है । अष्ट-छाप के कवियों ने इसे पदों में प्रयुक्त किया है । यहाँ 'कामायनी' का एक उदाहरण दिया जाता है:—

गिर रहीं पल/कें, झुकी थी/ नासिका की/ नोक,
भ्रू-लता थी/ कान तक चढ़/ती रही वे/रोक ।
स्पर्श करने/ लगी लज्जा / ललित कर्ण क/पोल,
खिला पुलक क/दंब सा था/ भरा गद्गद्/ बोल ।^२

हिन्दी के पीयूषवर्षी मधुमालती, माधव मालती, उर्मिला (SISSSISSSI), सुमेरु, हरिगीतिका आदि छन्द सप्तक पर्वों के आधार पर ही चलते हैं ।

पीयूषवर्षी:—कल्पना में/ है कसकती/ वेदना, (SISSSISSSI)

अश्रु में जी/ता सिसकता/ गान है,
शून्य आहों/ में सुरीले/ छन्द हैं,
मधुर लय का/ भी-कहीं अव/सान है ।^३

मधुमालती:—गीत के अन्तिम चरण से/, (SISSSISS)

गरम रव ल/कार निकले,
जल उठी रा/नी अचानक/
अंग से अं/गार निकले ।^४

माधव मालती:—आज बास/न्ती पवन प्रमुदित करेगी / गात मेरा/, (SISS × ४)

गन्ध फूलों / की करेगी / लुब्ध होकर / साथ मेरा/,
आज अलकों / में बनेगा / रजनि//तम उप/हार मेरा /,
तारिकाएँ / आ करेंगी / ज्योति से श्रृं/गार मेरा ।^५

उर्मिला:—क्या यही सा/केत है जग/दीश ! (SISSSISSSI)

थी जिसे अल/का झुकाती / शीश ।
क्या हुए वे / नित्य के आ/नन्द ?
शान्ति या अव/सन्नता ये / मन्द ?^६

१—गोविन्ददास, पदावली, गौर-लीला ।

२—प्रसाद, कामायनी, बासना ।

३—पन्त, पल्लव, भ्रांसु ।

४—श्याम नारायण पाण्डेय, जोहर ।

५—देवराज, प्रणय-गीत ।

६—गुप्त, साकेत, ७ सर्ग ।

सुमेरुः—अयोध्या के / अजिर को व्योम जानो, (ISSISSISSISS)
उदित उसमें / हुए सुर वैद्य मानो,
कमल दल से / बिछाते भूमितल में,
गये दोनों / विमाता के / महल में ।^१

हरिगीतिकाः—जय पूर्ण पुरुषोत्तम, जनादन, जगन्नाथ, जगद्गते/, (SSISX)
जय जय विभो/, अच्युत हरे/, मंगलमते/, मायापते/ ।^२

बँगला वर्णिक सप्तक

कमल परिमल/ लये शीतल जल/	७, ७ वर्ण
पवने टल टल/ उछले कूले—/	७, ५ ”
वसन्त राजा आनि/ हये रागिनी बानी/	७, ७ ”
करिला राजधानी/ अशोक मूले //	७, ५ ”
कुसुमे पूनपून / भ्रमर गुग गुन/	७, ७ ”
मदन दिलगुन/ धनुक हूले—/	७, ५ ”
यतेक उपवन/ कुसुमे सुशोभन/	७, ७ ”
मधु मुदित मन/ भारत भूले । ^३	७, ५ ”

हिन्दी में यह छन्द प्रचलित नहीं है, यद्यपि घनाक्षरी के अन्तिम सात अक्षरों के सप्तक को लय का पर्व माना जा सकता है :—

तेरी शुभ कामना/ मंगल विधायनी/ ।	७, ७ वर्ण
देवि ! वरवाणी ये/ श्रेयस प्रदायिनी ।	”
तेरे चरणों में मैं/ विनत सदा ही हूँ/ ,	”
तेरी दया दृष्टि तो/ सतत मुदा ही हूँ/ । ^४	”

मराठी में सप्ताक्षर पर्व के आधार पर कई छन्द प्रचलित हैं । एक उदाहरण पर्याप्त होगाः—

‘ काय सांगी तू जगा	७ वर्ण
अन्तरीचे गूजगा ?	”
मोलें हाता ये आना	”
मोलें प्राप्त हो आना,	”
द्वैत संग सांडूनी	”
राहे तूचि मांडूनी । ^५	”

१—गुप्त साकेत, ३ सर्ग ।

२—गुप्त, जयप्रथम, ६ सर्ग ।

३—भारत चन्द्र, अन्नदा मंगल, अन्नपूर्णा अभिषेक ।

४—लेखक ।

५—केशव स्वामी भागवतगरकर, पदसंग्रह, १, २०७ ।

अष्टक पर्व (Octomeric Foot)

ब्रज-शैली

इस पर्व को दो खंडों में करके चतुर्मात्रिक का निर्माण होता है, अतः प्रायः वही छन्द इस पर्व में आते हैं, जिनका उदाहरण चतुर्मात्रिक में दिया गया है। १६, २०, २४, २८ और ३२ मात्राओं तक समप्रवाही सभी छन्द इस पर्व में आ जाते हैं। हिन्दी के चौपाई, पादाकुलक, योग, रोला, विष्णुपद, ताटेंक और सवाई आदि छन्द इसी पर्व के आधार पर निर्मित होते हैं, जिनकी विस्तृत तुलना चतुर्मात्रिक में की जा चुकी है। यहाँ पर एक उदाहरण पर्याप्त होगा:—

नील सिन्धु जल/धौत चरण तल/।

अनिल विकम्पित/श्याम अञ्चल/।^१

अक्षर पर्व

इस पर्व का इतिहास संसार में समस्त छन्दों से प्राचीन है। ऋग्वेद का प्रथम गायत्री छन्द इसी अष्टक पर्व^२ में है।

अग्निमीडे पुरोहितं,

यज्ञस्य देवमृत्विजं।

होतारं रत्नधातमम्।^३

अनुष्टुप् छन्द भी इसी पर्व में है।^४ संस्कृत युग में इस पर्व ने एक निश्चित लय ग्रहण कर ली।^५ इस पर्व के प्रस्तार ने विभिन्न उत्तर भारतीय भाषाओं में विभिन्न

१—रवीन्द्र, कल्पना, भारत-लक्ष्मी।

२—ऋषिछन्दांसि गायत्री, सा चतुर्विंशत्यक्षरा।

अष्टाक्षरास्त्रयः पादाश्चत्वारो वा षडक्षरा।

(ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १६, मं० ६)

३—ऋग्वेद, प्रथम मंडल, प्रथम मन्त्र।

४—(अ) द्वारा त्रिशदक्षरानुष्टुप्, चत्वारोष्टाक्षराः समाः।

(ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १६, मं० २७)

(ब) अनुष्टुप् गायत्रीः (पिंगलछन्दः सूत्रम्, अ० ३, २३)

(स) चतुष्पाद इत्यनुवर्तते। गायत्रीरष्टाक्षरैः पादैश्चतुष्पादाच्छन्दः

‘अनुष्टुप्’ संज्ञा भवति (हलायुध भट्ट)

५—पञ्चमंलघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।

षष्ठं गुरुविजानीयात् एतत्पद्यस्य//लक्षणम्। (श्रुतबोध)।

स्वरूप ग्रहण कर लिया। हिन्दी में इस पर्व ने नवीन लय धारण करके घनाक्षरी के रूप में प्रवेश किया और बँगला, मराठी तथा गुजराती में भी उसने नवीन रूपों में विकास ग्रहण करके अपने अमरत्व एवं चिरन्तनता को प्रतिष्ठित किया। यह पर्व वैदिक युग से लेकर प्रमुख भारतीय आर्य भाषाओं में अब तक विद्यमान है, अतः यह पर्व हमारा 'राष्ट्रीय पर्व' है। निराला जी ने परिमल की भूमिका में इसीलिये घनाक्षरी छन्द को 'जातीय छन्द' कहा है और 'पल्लव और उसकी भूमिका' में घनाक्षरी छन्द पर 'औरसजात पुत्र' न 'होने के आक्षेप का उत्तर देते हुए' उसे 'राष्ट्रीय छन्द' कहा है।^१

एक अष्टक पर्व छन्द का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

मने पड़े बारबार/दृन्दावन अभिसार/।

श्यामल तमाल तले/नील जमुनार जले/।^२

हिन्दी में इस पर्व का प्रयोग घनाक्षरी लय में होता है—

(१) प्रेम सन्धि विग्रह के/पात्र प्रिय कान्ता कान्त/।

देश अहा शान्त कान्त/काल बस वासरान्त/।^३

(२) यह प्रणतों का पंक/ताश कर देते सदा/,

हो रहे हैं यद्यपि म/हावर से पंकीभूत/।

सम्यक अतुलता नि/वास करती है यहीं/,

यद्यपि किये हैं तुला/कोटि द्वन्द अंकीभूत/।

देते अष्ट-सिद्धि नव/निधि हैं प्रशंसकों को/,

तो भी करते हैं कवि/यों की गति रंकीभूत/।

यद्यपि कलंक हर/ते हैं चारों वणों का भी/,

हो रहा सुवर्ण तो भी/ पद का कलंकीभूत/।^४

यह देव घनाक्षरी है। सामान्य घनाक्षरी में तीन अष्टकों के बाद एक सप्तक पव जाता है।

१..... यह छन्द चिरकाल से इस जाति के कंठ का हार हो रहा है। यदि हिन्दी का जातीय छन्द चुना जाय, तो वह यही होगा। निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २२।

कविता छन्द चूँकि हिन्दी का जातीय छन्द है, इसलिये जातीय 'मक्त छन्द' की सुधि भी कवित छन्द की गति के अनुकूल हुई है।

निराला, प्रबन्धपद्म, पृ० १९।

२— 'बाङ्ला कवितार छन्द,' से उद्धृत छन्द।

३— गुप्त, महष, पृ० २८।

४— अनुप, शर्माणी, चरणार्चन, पृ० १५१।

इसके अतिरिक्त बैंगला में संयुक्त पर्वों की भी आयोजना हुई है। इसके मूल में चार मात्रा के पर्व का उपादान है। इसके युग्म से अष्टमात्रा पर्व बनता है, जो गंभीर भाव में प्रयुक्त होता है। चतुर्मात्रिक के आधे पर्व से अर्द्ध पर्व बनता है, अतः चतुर्मात्रिक और अर्द्ध पर्व के योग से सार्ध पर्व (६ अक्षर) बनता है। कहीं ये पर्व स्पष्ट मिले प्रतीत होते हैं और कहीं भिन्न यथा :—

ए दुर्भाग्य/देश हतो/, हे मंगल/मय,
दूर करे/दाओ तुमि/सर्व तुच्छ/भय,
मस्तक तूलिते दाओ//अनन्त आकाशे,
उदार आलोक माझे//उन्मुक्त वातासे।^१

पर्व की इसी आन्तरिक वृत्ति को समझ कर मधुसूदनदत्त ने प्रवहमान पयार की रचना की थी :—

सम्मुख समरे पड़ि/वीर चूड़ामणि/ (८, ६)
वीरबाहु चलि येन/गेला यमपुरे/
अकाले, कहो, हे देवि/, अमृत भाषिनि/,
कोन वीरवरे रवि/सेनापति बड़े/,
पाठइला रने पुनः/रक्षःकुलनिधि/
राघवारि ?^२

हिन्दी में चौदह अक्षरों का छंद प्रचलित नहीं है। कुछ पुराने कवियों ने इसका प्रयोग किया है :—

मेरो भलो कियो राम/आपनी भलाई/ । (८, ६) वर्ण
हों तौ साईं द्रोही//पै से/वक हित साईं ॥
राम सों बड़ो है कौन/मो सों कौन छोटी/।
राम सों खरो है कौन/मो सों कौन खोटी/॥^३

हिन्दी में इसके समकक्ष घनाक्षरी के पन्द्रह (८, ७) वर्णों का चरण मान कर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने वर्णिक छन्द का प्रयोग किया है :—

वर्षों तक प्रभु ने त/पस्या कर अन्त में/ ८+७ वर्ण
सारे विघ्न पार किये/, मार को हरा दिया/।
अप्सरायें उनको/भला क्या भुला सकतीं ? ७+८ ,,
जिनकी यशोधरा सी/साध्वी यहाँ बैठी है/ ?^४ ८+७ ,,

१—रवीन्द्र, नैवेद्य, पृ० ४६ ।

२—साइकेल मधुसूदन दत्त, मेघनाद-वध ।

३—गोस्वामी तुलसीदास, विनय-पत्रिका, पद ७२ ।

४—गुप्त, यशोधरा ।

इस छन्द का भी प्रयोग गोस्वामी जी ने विनय-पत्रिका में किया है:—

राम जपु, राम जपु/राम जपु बावरे/ ।	८, ७ वर्ण
घोर भव नीर-निधि/नाम निज नावरे ॥	"
एक ही साधन सब/रिद्धि-सिद्धि साध रे/ ।	"
ग्रसे कलि रोग जोग/संजम समाधि रे/ ।	"
भलो जो है, पोच जो है/, दाहिनी जो, वाम रे/ ।	"
राम नाम ही सों अंत/सब ही को काम रे/ । ^१	"

बँगला छन्द की इसी वृत्ति को समुझ कर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मुक्त छन्दों की रचना की, जिनमें अर्द्धपर्व (२ अक्षर) से लेकर २२ अक्षरों तक समवर्णों के चरण रक्खे गये हैं—

मरिमरि से आनन्द/थेमे येत यदि/	८, ६ वर्ण
एइनदी/	४ "
हारात तरंग वेग/	८ "
एइ मेघ/	४ "
मूछिया फेलिते तार/सोनार लिखन/,	(८, ६) १४ "
तोमार चिकन/	६ "
चिकुरेर छायाखानी/विश्व होते यदि/ भिलाइत	(८ + ६ + ४) १८ "
तवे/	२ "
एक दिन कवे/	६ "
चंचल पवने/ लीलायित/	(६ + ४) १० "
मर्मर मुखर छाया/ माधवी वनेर/	(८ + ६) १४ "
हत स्वप्नेर/ ।	६ "
यार भाषा/बूझिते पारिनि,	(४ + ६) १० "
अर्ध राते देखा दीवे/वारे वारे तारि मुख/निद्राहीन चोखे/	(८ + ८ + ६) २२ "
रजनी गन्धारे गन्धे/ तारार आलोके/ । ^२	(८ + ६) १४ "

हिन्दी में वर्णिक छन्दों में सम के साथ विषम वर्णों का भी प्रयोग होता है, क्योंकि जहाँ अष्टक आधार होता है, वहाँ सम वर्ण प्रवाहित होते हैं, परन्तु जहाँ चरणान्त सप्तक वर्ण (घनाक्षरी के अन्तिम सात अक्षर) का प्रयोग होता है, वहाँ विषम वर्ण आते हैं। इस प्रकार हिन्दी में वर्णिक मुक्तक में सम और विषम दोनों प्रकार के अक्षर-चरणों के प्रयोग की सुविधा है, जो बँगला में प्राप्त नहीं है:—

हट कर जाते थे प्रबुद्ध शूर	१२ वर्ण
दूर दूर	४ वर्ण

१— गोस्वामी तुलसीदास, विनय पत्रिका, पृष्ठ ६६ ।

२— रवीन्द्र, बलाका, पृष्ठ ४२ ।

दूसरे ही मग से,	७ वर्ण
सन्तत सजग से,	७ वर्ण
जानते थे, यह है कपट खोह,	१२ वर्ण
बाहर विहीन ओह ।	८ वर्ण
थे सुद्धर तुम हे उदार धुनी,	१२ वर्ण
तुमने पुकार सुनी,	८ वर्ण
वन्दिनी स्वतंत्रता है, क्रूरमुखी कारा में,	१५ वर्ण
नित्य गति-शीला प्राणधारा में,	११ वर्ण
आकर अड़ी है जलशून्य मरुस्थलता,	१५ वर्ण
सत्य ही तरलता,	७ वर्ण
शृङ्गधारित्री में अवलुण्ठित है,	१२ वर्ण
शृंखलित कंठगत कुण्ठित है ।	१२ वर्ण
तोड़ सब तुच्छ स्वार्थ,	८ वर्ण
हे सिद्धार्थ,	४ वर्ण
छोड़ तुम नेह-गेह-धन को,	११ वर्ण
छूट पड़े नूतन महाभिनिष्क्रमण को । ^१	१५ वर्ण

बँगला की ब्रजशैली में मात्रिक मुक्तकों का प्रयोग नहीं हुआ है, हिन्दी में वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के मुक्त छन्द प्रचलित हैं । इन दोनों प्रयोगों की तुलना से सिद्ध होता है कि बँगला और हिन्दी में क्रमशः प्यार और घनाक्षरी के लयाधार पर विभिन्न संख्या के वर्णों का प्रयोग एक साथ हो सकता है ।

इस अध्ययन से यह भी सिद्ध होता है कि लयाधार भिन्न होते हुए भी बँगला और हिन्दी के वर्णिक मुक्त छन्द अपनी प्रगति में एक ही प्रकार के नियमों से परिचालित होते हैं ।

मराठी छन्द

मराठी में भी हिन्दी के समान चार प्रकार के छन्दों का प्रयोग होता है :—

- (१) वृत्त ।
- (२) जाति ।
- (३) छन्द ।
- (४) मुक्त छन्द ।

वृत्त वर्ग के छन्दों में, अक्षर-संख्या और गणात्मक विधान में पूर्णतया संस्कृत के नियमों का पालन किया गया है । इन प्रयोगों में प्रायः अधिक प्रचलित और सर्वमान्य छन्दों को ही

ग्रहण किया गया है। वृत्त-विधान इतना निश्चित होता है कि उसमें नवीनता लाना कठिन है, जब तक वृत्त का गण-विधान ही नया न कर दिया जाय। संभवतः, भारत की आधुनिक भाषाओं की वृत्ति गणात्मक संयोजन के अनुकूल नहीं रह गयी है, इसीलिये वृत्तों के प्रयोग में प्रत्येक आधुनिक आर्य-भाषा को प्राचीन संस्कृत वृत्तों को ही स्वीकार करना पड़ता है फलतः वृत्त की दिशा में नवीन प्रयोग और विकास नहीं हो पाता है। दूसरी बात यह भी है कि वृत्तों का प्रस्तार इतना बहुसंख्यक है कि छुटपुट नवीन प्रयोगों को भी छन्दःशास्त्री अपनी विद्वत्ता के आग्रह से उसे प्रस्तार का कोई भेद मान कर पुराना कह देते हैं और यदि संभव हो सका, तो किसी न किसी लक्षण ग्रन्थ से उसका नाम और लक्षण भी खोज कर बता देते हैं, फलतः वृत्त के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करने के लिए कवियों को प्रोत्साहन भी नहीं मिलता। फिर भी, यह मानना ही पड़ेगा कि प्रस्तार की दृष्टि से भले ही नये वृत्त प्राचीन नियमों में बँध जायें, पर ऐतिहासिक दृष्टि से उनको नवीन ही कहा जायगा, परन्तु मराठी में ऐसी भी नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होती है। सूचना के लिये यह बता देना आवश्यक है कि मराठी का उच्चारण खड़ा होने के कारण भारत की सभी भाषाओं से अधिक वृत्तों का प्रयोग होता है, हिन्दी में तो केवल अब तक पाँच ग्रंथ ही वृत्तों में लिखे गये हैं, प्रियप्रवास (हरिऔध), सिद्धार्थ और वद्धमान (अनूप शर्मा), पत्रावली (मैथिलीशरण गुप्त), गिरीन्द्र-नन्दिनी (दिवाकर शास्त्री, अप्रकाशित)। द्विवेदी युग में तो स्फुट कवितायें भी वृत्तों में होती थीं, पर अब ऐसे प्रयोग बिरले ही दिखाई देने हैं।

जाति या मात्रिक छन्दों के लयाधार भी हिन्दी की लयों से पूर्ण साम्य रखते हैं। बहुत से हिन्दी के छन्द मराठी में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं, जिनके नाम भिन्न हैं। इस साम्य से यह सिद्ध नहीं करना है कि मराठी ने हिन्दी से ही छन्द उधार लिये हैं, यह तो संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश की पैतृक सम्पत्ति है, जिसका उपयोग दोनों भाषाओं ने किया है, परन्तु छन्दों के तुलनात्मक अध्ययन से यह अवश्य सिद्ध हो जायगा कि दोनों भाषाओं के छन्दों की आत्मा में अब भी कितना साम्य और साम्य है। दोनों भाषाओं ने बहुत से प्राचीन और नवीन छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु इन समस्त विधानों में दोनों भाषाओं ने एक ही प्रकार के लयाधारों का आश्रय लिया है।

नीचे मूल लयों के साम्य-निर्देश के लिये कुछ छन्दों का विवरण दिया जाता है :—

वनहरणी—यह छन्द ३२ मात्राओं का होता है, जिसे हिन्दी में मत्तसवाई कहते हैं:—

सुन्दर खाशी सुबक ठेङ्गणी स्थूल न, कृशहि न, वय चौदाची,

नयन मनोहर वनहरिणी चे, नाक सरळ जशि कळि चाफ्याची ।^१

हरभगनी या स्वर्गगा—यह तीस मात्रा का छन्द होता है, जिसमें १६ मात्रा पर यति होती है। हिन्दी में इसे ताटक छन्द कहते हैं:—

हरिची भगिनी म्हणे सुभद्रा, रुक्मिणि बहिनी दया करा,

दादांना तुम्हि कलनुनि-कलनुनि, अर्जुनजीचा शोध करा ।^२

१. केशव सुत, पदसंग्रह, १, ३६२।

२. काशि कवि, पदसंग्रह, ३, १७।

प्रियलोचना—यह २९ मात्राओं (१६, १३, अंत SIS) का छन्द होता है। यह छन्द मराठी का पुराना छन्द है, इसीलिये हिन्दी में इस छन्द का नाम 'मरहठा माधवी' ^१ है। पटवर्द्धन ने गीत-गोविन्द की पंक्ति—

'त्वदधरचुम्बनलज्जितकज्जल उज्ज्वलय प्रियलोचने' के आधार पर उसका नाम प्रियलोचना रक्खा है:—

प्रियतनया मम केकय नन्दनि, वास न दे सखि, काननी,
कुवलय पेशल तो शिशु, यो तव, अल्पतरी करुणा मनीं । ^२

ललितलवंग या साकी—यह २८ मात्राओं (१६, १२, अंत SS) का छन्द है। हिन्दी में इसे सार, दोह्र अथवा नरेन्द्रललित पद कहते हैं। पटवर्द्धन जी ने जयदेव के गीत 'ललितलवंगलतापरिशीलन, कोमलमलयसमीरे' के आधार पर 'ललित लवंग' नाम रक्खा है :—

गमत नसे ज्या गावीं तेथिल, वाट कशास पुसावी ?

सुखे मिलो खम्बायत अथवा, भगवीं ही ने सावीं ? ^३

चन्द्रकान्त या पतित पावना—यह २६, मात्राओं (१६ १०, अंत S) का छन्द है:—

तीनी साज्जा सखे मिलाल्या, देखीं बचन तुला,—

आज पासुनी जिवें अधिक तू, माझ्या हृदयाला । ^४

हिन्दी में इसे विष्णुपद (१६, १० मात्रा, अंत S, सोरह दस कल अंत गही भल, सबतें विष्णुपदे) कहते हैं।

दोहा:—मराठी में दोहा भिन्न रूप में प्रयुक्त हुआ है, पर मूल लय बही है, यथा:—(१४, १० मात्रा का दोहा)

स्वहृदय फाहुनि निजनखरीं, चिवट तमाचे दोर,

कादुनि गोफण वलितों ही, सत्वाचा भी चोर ।

(श्री केशवसुत)

परन्तु, हिन्दी के ढंग पर १३, ११ मात्रा के दोहे भी निर्मित हुए हैं:—

महाराष्ट्र भाषें सही, दोहा रीति नवीण ।

रची मयूरेश्वर हिला, मनी धरील कवीच ॥

(मोरोपन्त)

मांगे ऐसे दोनवर, कैकेयी विषरूप ।

समजूनि तिचा लोभ भर, भी सत्यव्रत भूप ॥

दोहारामायण, (मोरोपन्त)

१—छन्दःप्रभाकर, पृ० ७१, भातु ।

२—वि० न० भिडे ।

३—अमृतराय, कविता-संग्रह, १३१ ।

४—भास्कर रामचन्द्र तांबे, समग्र कविता, ३६ ।

दोहे का अपवाद लक्षण सर्वत्र प्रचलित है । जायसी और तुलसी ने भी १२, ११ मात्राओं के दोहों का प्रयोग किया है । जायसी ने तो १६, ११ मात्राओं तक को दोहे में प्रयुक्त किया है ।

कपिपति बेगि बोलाए, आए जयप जूथ ।

नाना बरन अतुल बल, वानर भालु बरुथ ।

सुन्दरकाण्ड (तुलसी)

प्राकृतपैङ्गलम्^१ के रचयिता और 'छन्दोनुशासन'^२ का आचार्य हेमचन्द दोहे का लक्षण (१३, ११) मात्राएँ मानते हैं, पर 'वृत्तजातिसमुच्चय'^३ के रचयिता विरहांक दोहे का लक्षण (१४, १२) मात्राएँ मानते हैं ।

अनल ज्वाला:—(५ + ५ + ५)

शहामृगाच्या कोशासमतनु निस्तुल गोरी,

केश सुगंधित काले काले जशि कस्तूरी,

चुनडि केशरी खुले, केशरी तशीच चोली,

यज्ञवेदितें अनलज्वाला की लपेटली ।

(वामन नारायण देशपाण्डे)

हिन्दी में इसे रोला छन्द कहते हैं । मध्यकाल में इसकी ११वीं मात्रा लघु करने पर अधिक ध्यान दिया जाता था, पर आधुनिक युग में इस नियम पर कम ध्यान रखा जाता है, अतः इस त्र्यष्टक को रोला ही कहना चाहिए । संस्कृत और हिन्दी के कुछ आचार्य ग्यारहवीं मात्रा का लघु होना आवश्यक भी नहीं मानते हैं, इस कारण भी ऊपर का छन्द रोला ही है ।^४

१—तेरह मत्ता पदम पञ्च, पुणु एग्यारह वेह ।

पुणु तेरह एग्यारहहि, वोहा लखण एह, । प्राकृत पैङ्गलम्, १।७८ ।

२—हेमचन्द द्वारा उदाहरणः—

पिञ्चट्ट पहारिण इषिकणवि, सहि बोह्या पडति ।

सनदश्रो असवारभट्ट, अन्तुतुरंगु न भति । छन्दोऽनुशासन ।

३—तिण्णितुरंगा णेउरश्रो, विण्पाइक्का कण्णु ।

डुवह अपच्छद्वे वि तह वव लखणउ ण अण्णु । वृत्तजातिसमुच्चय, ४।२७ ।

१—(अ) रोलायां चतुर्विंशतिमात्रा प्रतिचरणदेया इत्यावश्यकं । तत्रप्रकारद्वयेन संभवति लघुद्वययुक्तकादश गुरुवानेन, यथेच्छं लघुगुरुवानेन वा ।

('प्राकृतपैङ्गलम्' की टीका' बंशीधर मिश्र)

(ब) बारह गुरु जहँ होय सुकवि सुकवेव जु आछे ।

घटें सुवीरघ एकु बड़े द्विकला सो पाछे ॥

सकल कला चौबीस होहि गुरु अंतहि आबे ।

विगल मति यों कहै छन्द रोला सुकहावे ॥ दशविचार, 'सुकदेव' ।

पादाकुलक :—(प + प)

मणिगणमुकुटीं दिनकरमेला ।

उशना सुरगुरु सुघटित वेला ।

कौस्तुभपदकीं तेज विराजे ।

मण्डित भालीं मृगमद साजे ॥ (उत्तरकाण्ड, मुक्तेश्वर-रामायण)

हिन्दी के पादा कुलक और इसमें कोई अन्तर नहीं है ।

बल्लभा:—(SSIS/SSIS/SSIS/SSIS)

वरसी सभोती है धुकें/ लाटांबरी/ लाटा/ किती।

तव कुन्तली वस्त्रावरी कणिका हिर्यांचा फेकिती !

वेणीतल्या पुष्पांवरी जलमौक्तिकें झालीं जमा,

मुखरंगलें श्रमविह्वले, धरि सिक्त चम्पक विभ्रमा ।

(गोदल, उषा, ४९)

स्पष्ट ही यह हिन्दी का हरिगीतिका छन्द है । 'प्राकृतपैगलम्' के अनुसार भी इसे हरिगीतिका ही कहेंगे^१ ।

कालगंगा:—(SISS/SISS/SISS/SIS)

एकला हा/ जीवजोंवर/ फिरतहोता/ या जर्गी ।

अन्धतेने कालनेई, जाततिकड़े सहजचीं ।

कालगंगा ओढिसृष्टि काष्ठवत् शून्याप्रती,

प्रीति मयतव दृष्टिने मज विलगकेलें त्यातुनीं । (देशपाण्डे कृत, निर्माल्यमाला)।

यह हिन्दी का गीतिका छन्द है । यथा:—(असत से सत में, तिमिर से ज्योति में लाओ मुझे) । (यशोधरा) ।

मध्यरजनी:—(SISS/ SISS/ SISS/ SISS) ।

जाहूली मम मध्यरजनी, झोंपतों मी गाढ़ शयनीं ।

जाग तू भर दिवस तव ये, तीव तापें ताप सखये,

मित्र मैत्री जोड़ समर्थें, विसर मज दे ठाव न मनीं ।

(स) रोला छन्द की ग्यारह मात्राओं पर विरति होना आवश्यक नहीं है, यदि हो, तो अच्छी बात है ।

श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १६८१, पृ० ८१ ।

१— गण चारि पंचकल ठबिज्जसु (पश्च) वीश ठाम्हि छक्कलो ।

पश्च पश्चहि अंतहि गुरु करिज्जसु वण्णणेन सुसब्बलो ।

वह चारि वक्कइ वह दुमाणहु सत्त ठाइस पाअओ ।

हरिगीअ छन्द पसिद्ध जाणहु पिगलेण पअसिओ ।

प्राकृतपैगलम् (१, १९१) ।

यह हिन्दी का माधवमालती (दे०, तू० अक्षाय, २० माया) छन्द है, यथा:—
'कह रहा जग वासनामय हो रहा उबहार मेरा' । बचन ।

परिलीना:—(भू + भू + भू + SS) (भूङ्गावर्त्तनी या पण्डक) :—

घडि घडि घडि/ चरण तुझे/ आठवती/ रामा// (६ + ६ + ६ + ४ मात्राएं) ।
हीन दीन/ आसतुझे/ पूर्णकाम/ आम्हां । (केशवस्वामी)

हिन्दी का यह कुण्डलछन्द है, यथा:—(तू दयालु दीन हो तु, दागि हों भिखारी,
बिनय पत्रिका) । अंथन,

मैं भी कृत/ कृत्य आज/ धीर वत्स/, जा// तू ।
स्वाधिकार भागी बन, भूरि भूरि भा तू ।
सत्प्रकाश और अमृत, एक साथ पा तू ।
बुद्धशरण, धर्मशरण, संघशरण, जा तू । (यशोधरा)

दासी:—(भू + भू + भू + भू)

डोले हे/ जुलमि गडे/ रोखुनि मन/ पाहुँन का ।
जादुगिरी/ त्यांत पुरी/, येथ उभे/ राहुन का ।

भास्कर रामचन्द्र ताम्बे, 'समग्रकविता' ।

हिन्दी में इसे सारस छन्द कहते हैं । यथा:—

मधु क्षरन्ति/, सिन्धुनाम/, मधुमय/रा/वा ललाम/ ।
अग्निदेव/ता प्रणाम/, अग्निदेव/ता प्रणाम/ ।

अग्निदेवता, प्रतीक, जुलाई, १९५२ ।

बरमंगला:—(SIS/ SIS/ SIS/ SIS)

या भवि/ष्याचिया/ दिव्य का/रागिरा/

कोण रोधील ? दे कोणकर सागरा ?

समग्रकविता, ताम्बे ।

इसे सृग्विणी छन्द कहते हैं । संस्कृत सृग्विणी (SIS × ४) मराठी और हिन्दी दोनों में प्रचलित है:—

कुज को/ टीर में/ भानुजा/ तीर पै/,
मंजु झू/ ले पड़े/ रेशमी/ दाम के//
राग हिंडोल मल्लार के गावतीं,
वारतीं कोटि//शोभा//रती-दाम के ।
'दत्त' झूले झुलावे सहेली सबे,
पैग बादी रहे होश//ना वाम//के ।
हा गिरी ! गिरी !! हा//मरी ! री//अरी !!
बोलिलागीं गले राधिका क्याम के ।

(द्विजदत्त द्विजेन्द्र, बिसर्वांनी)

ऊपर की सृष्टिणी सबैया पद्धति (गंगाधरवृत्त) में है, अतः कवि ने मात्रिक स्वातन्त्र्य नहीं लिया है । मात्रिकसृष्टिणी का उदाहरण निम्न है:—

रोध की/ शोध निज/ बोध मिथ/याकथा/,

सर्वथा दूर होगी, यहाँ जो व्यथा,

इष्ट अति मिष्ट होता नहीं अन्यथा,

सिद्धि लह जाय, बह जाय संसार रे ।

(मेघमाला, ६१)

इसी प्रकार बहुत से छन्दों में पूर्णतया साम्य दिखाया जा सकता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी और मराठी के प्रचलित समस्त छन्द समान ही हैं । दोनों भाषाओं के प्रचलित छन्द भिन्न हैं । उच्चारण-पद्धति एक होने के कारण, और संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंस की परम्परा एक होने के कारण छन्दःशास्त्र की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की लयों में साम्य दिखाया जा सका है ।

छन्द

जो पद्य अक्षर-गणना पर चलते हैं, मराठी में वे पद्य छन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं^१ । हिन्दी में भी वर्णिक छन्द सबैया और घनाक्षरी को ही छन्द कहने की जन साधारण में चाल है । मराठी में अभंग, ओपी, घनाक्षरी आदि की रचना छन्दों में होती है और अँगरेजी चाल पर बने संगीत-पद्य भी छन्द की ही कोटि में आते हैं ।^२

मराठी में ओवी छन्द वर्णिक के साथ नियम मुक्त है । ऐसा छन्द हिन्दी में नहीं है । आचार्य भानु जी ने ज्ञानदेव ओवी (८, ८, ८, ६ वर्ण), मुक्तेश्वर ओवी (१०, १०, ६, ७ वर्ण) एकनाथ ओवी (९, ९, ९, ८ वर्ण), श्रीधर ओवी (१०, ८, १०, ८ वर्ण) और रामदासी ओवी (८, ९, १०, ४ वर्ण) का उदाहरण दिया है । इन छन्दों के प्रथम तीन चरणों में तुक होता है । श्री पटवर्धन जी ताम्बे की तीन ओवी क्रमशः (४, ८, ८, ८ वर्ण) (६, ८, ६, ८ वर्ण) (७, ८, ७, ८ वर्ण) और दातेशंकर गणेश की लोक कथा से (६, ८, ८, ४ वर्ण), (६, ६, ६, ४), (७, ७, ७, ४) एवं (८, ८, ८, ४ वर्ण) लक्षणों की ओवियों के उदाहरण दिए हैं । यहाँ कुछ ऐसे छन्द दिए जाते हैं, जिनके समानवर्ती छन्द हिन्दी में प्राप्य हैं:—

वनहरिणी:—(प + प + प + प) = १६ अक्षर (४, ४, ४, ४) का चरण ।

आट पाट नगरांत नान्दे राजाची ग राणी ।

नाव मैनाई तिथेचें रूप गोड फुलावाणी ॥

१—.....लगक्रमाचा प्रश्न उद्भवत नाही । म्हणून छन्दास लगत्व भेदातीत अक्षर संख्याक पद्य म्हणतात । छन्दोरचना, पृ० ५१३ ।

२—मराठीं तील अभंग, ओवी, घनाक्षरी इत्यादिकांची रचना छान्दस आहे ।

ख्रिस्तो उपासना संगीतात 'इंग्रजी चालीवर' म्हणून जी पद्य दिली आहेत ते वस्तुतः छन्दो रूप आहेत । पृ० ५१३, वही ।

नाही नोव, याचा पत्ता, कुशा शील न माहीत ।
चौदा चौकड्याचें राज्य तिच्या होते पदरात ।

विष्णु मिनाजी कोलतेकृत लब्धाकी ।

ऊपर के दो चरणों के तुल्य हिन्दी में १६ अक्षर के चरण का विधान नहीं है, पर अन्तिम दो चरण जिनके अन्त में SA है, देवनागरी के अन्तिम १६ वर्णों के आधार पर प्रयोग प्राप्य हैं:—

रखते हुए भी सब दृष्टियों से स्वाधिकार ।
यह पद लेने का न मैंने था किया विचार ॥
जाना अब, मान की नहीं धूना की दृष्टि आल ।
बच निकली हो वह जैसे आज प्रातः काल ॥

(नहुष, गुप्त जी)

हरिभगिनी:— (प + प + प + गण) = १५ अक्षर ।
चाल बाई चाल माझी, चाल साई चाल ग ।
कोटाले हे पाय मऊ मलमल लाल ग ।
द्वलाले पायनुझे, गोरे गोरे हात ग ।
चाल चाल, भिऊ नको, मोत्या माऊ हात ग ।

सी. अपर्णा देशपाण्डे, आमा, एप्रिल, ३४ ।

हिन्दी में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मेघनाथ-वन के अनुवाद में और 'सिद्धराज' अतुक्कान्त रूप में १५ अक्षर छन्द का प्रयोग किया है । 'जयभारत' के कुछ अंशों में भी अभी उन्होंने इस छन्द का प्रयोग किया है । 'नहुष' से सान्त्वानुवाक उदाहरण यहाँ दिया जाता है:—

ऊलती तरंगों पर झूलती सी निकली,
दो दो करी कुम्भी यहाँ झूलती सी निकली ।
क्या शक्तव मेरा जो मिली न शक्ती भामिनी ?
बाहर से मेरी सखी भीतर की स्वामिनी ।

(नहुष)

लवंगलता छन्द:— (प + प + प + गुण) या (४ + ४ + ४ + २) = १४ अक्षरों का चरण:—

ये ई गा तू येई गा तू पण्डरीच्या राया ।
तुजवीण शीण वाटे, क्षीण झाली काया ।
याति हीन, मति-हीन, कम हीन माझे ।
दीननाथ दीनबन्धु नाम तुम्हा साजे ।

तुकाराम, पदसंग्रह, (१८१) ।

बंगला में ठीक इसके तुल्य 'पयार' छन्द प्रचलित है । आधुनिक हिन्दी में इसका नहीं के बराबर प्रयोग हुआ है, अतः 'विनयपत्रिका' से उदाहरण दिया जाता है:—

लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं । १४ वर्ण
 एतो बड़ो अपराध भौ न मन बावौं । ”
 पाथ माथे चढ़े तून तुलसी ज्यों नीचो । ”
 बोरत न बारि ताहि जानि आपु सीचो । (विनयपत्रिका, ७२)

मुक्त—छन्द

मूल लय-खण्डों के आधार पर मराठी में मात्रिक और वर्णिक मुक्तछन्दों का प्रयोग आधुनिक युग में विशेष रूप से हुआ है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

(१) पद्मावर्तनी (अष्टक) के आधार पर:—

शेवटलाऽ/	६ मात्राएँ
सूर विराला/मञ्जुल वाणा/	८ + ८ मा०
वन वायूने/दूर पड़विला/ ।	”
स्तब्ध जाहलें/जिकड़े तिकड़े/	”
× × ×	
जणु/जलाशयामधि/सुन्दर मासे/	२ + ८ + ८ मा०
वरती आले/	८ ”
रवि किरणामधि/ अहा चमकले/	८ + ८ ”
खोल पलाले/ ।	८ ”
घड़/घड़ले नागे/ मम हृदयीं/ ?	२ + ८ + ८ मा०
अशी निर्दये/के विमुग्धता/ ?	८ + ८ मात्राएँ (यक्षकन्या, वागीश्वरी, पृ० ६२)

(२) अग्न्यावर्तिनी या सप्तक (SISS) के आधार पर:—

अन्तरीचें/ दिव्यशक्ती/ सर्वगामी/ तेजवित् — ७ + ७ + ७ + ५ मा०
 सञ्चार तूझा/ तूजगाची/ कोटि//भास्कर/ वत् प्रभाऽ/ २ + ७ + ७ + ७ + ५ मा०
 हृदयमानस/ ज्या प्रकाशें/ दिव्य जीवित/ भूवरी — ७ + ७ + ७ + ५ मा०
 स्वर/गा तले उप/भोगि तीऽ/ २ + ७ + ५ मा०

(आत्माराम रावजी देशपाण्डे)

(३) भृङ्गावर्तनी, या षण्मात्रिक (SISI) या (४ + २) के आधार पर:—

मङ्गलमय/ सुप्रभात/	६ + ६ मा०
ऊठ SI	३ ”
नीज अजुनि/ नयनाम्बर/	६ + ६ ”
मल्ल म्हुणुनि/ रजनिवदन/	६ + ६ ”
देशी अं/गास तूहि/	६ + ६ ”
आलों खे/का ? SS/	६ + २ म० (भ० श्री० पण्डित)

नवक, अष्टक, सप्तक, षष्ठक और पञ्चक के आधार पर हिन्दी में भी बहुशः मात्रिक मुक्त छन्दों की रचना होती है। इसका विस्तृत विवरण नीचे अध्याय के मात्रिक मुक्त छन्दों के विवेचन में दिया गया है।

वर्णिक मुक्त छन्द

पाँच या छः वर्णों के पर्व बनाकर ऐसे छन्दों की रचना हुई है। कभी-कभी पाँच और छः अक्षर के पर्व एक साथ भी आ जाते हैं :—

भग्न मूर्ति आणि/ भग्न मन्दिर/	६, ५ वर्ण
समोरच आहे/ तिचें पडके/	६, ५ ”
अवघे चारच/पापाण स्तम्भ/	६, ५ ”
आहेत उभे/	५ ”
कमी ५, ६ वर्णों के पर्व बिना क्रम मिलते हैं:—	
पोरकी पोरकी/ दीन वाणी अथा/	६, ६ वर्ण
कर बसलून/ टाहो फोडते/	६, ५ ”
अव्यक्तांतून/	५ ”
लागतो किनाडू/ रड सूरत/	६, ६ ”
भय सुनक/ कर्कश कर्णा/	५, ५ ”

य० द० भावे, साहित्य, अक्टूबर १९४९

हिन्दी में वर्णिक मुक्त छन्दों का आधार घनाक्षरी छन्द है, अतः ८ या ७ वर्णों (अथवा इनका योग १५ वर्ण) का चरण प्रयुक्त होता है। सप्तक और अष्टक में चौकल जोड़ कर ११ और १२ वर्णों के भी चरण प्रयुक्त होते हैं, पर ऐसी लय मराठी में नहीं प्रयुक्त होती।

तामिल छन्द

दक्षिण की भाषाओं में भी वृत्त और मात्रिक छन्दों का प्रचार है। वृत्तों में तो हिन्दी और तामिल में निश्चित रूप से साम्य है ही, साथ ही मात्रिक छन्दों का रूप भी हिन्दी से पूणतः मिलता है। तामिल गीत का उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

पोनाम नाम/ओनाई ^१	८, ४ मात्राएँ
चेरिमो नी सह/जा पोरिमोनी/	८, ८ ”
नवजीवित सरणि/ पुगवान लोके/	८, ८ ”

१—गीत के उच्चारण की मात्राएँ खड़ी बोनी के समान न होकर लोकगीतों के समान हैं।

केडुना सोदरा/ (टेक) ८ मात्राएँ

पोर अली नडूविल/ निन जयगानम्/ ८, ८ ,,

पुञ्जरि तुकी/निल्पू ।.....(चेरिमोनी सहजा०) ८, ४ मात्राएँ

अवकाशत्तिनं/ अलयुं वगं/ ८, ८ ,,

रणमायी रणमायी/रणमायी नीते/ ८, ८ ,,

निन जयगानं/किल्पू (नवजीवित०) ८, ४ ,,

मानवरखिलं/उएहं सुदिनं/ ८, ८ ,,

वरवाई तोड़ा/नाड्य चेरिमोनी० ८, ४ ,,

जननादत्तिन/युगमाय नीलय/ ८, ८ ,,

अणयू अणयू/अणयूवेगं/ ८, ८ ,,

रणमायी तोड़ा/नी वा ८, ४ ,,

(साप्ताहिक, तोड़ालाड़ी, जुलाई १३, १९५२)

(गुणविलास प्रेस, त्रिचूर)

(अनुवाद:—हम एक होकर चलें । भाइयो, क्या आप आवेंगे ? क्या आप मिलेंगे ? हमें लोक की नवजीवन सरणि में प्रवेश करना है । रोते भाइयों, हम एक होकर चलें ।

रण के दल में तुम्हारा जयगान होगा । तुम्हारी मुसकान निरन्तर बरसेगी । अपने अधिकार के लिए सर्वत्र श्रमकरो । युद्ध का समय, हाँ, युद्ध का समय आ गया है । तुम्हारे जयगान में सुन रहा हूँ । इस सुदिन में अखिल मानवों को उठाओ । मित्र ! कल भविष्य आ जायगा । तुम्हारे जननाद का समय साथ-साथ आ गया है । आओ, आओ, शीघ्र आओ । यह युद्ध है । मित्र, तुम आओ ।)

लेखक को द्रविड़ परिवार की भाषाओं के काव्य और छन्दःशास्त्र के अध्ययन का अवसर नहीं मिला है । पर उसका विश्वास है कि भारत की साहित्य-भाषाओं में एक ही छान्दसिक अन्तर रक्तधारा प्रवाहित हो रही है । यह भारत की अखण्ड अन्तरात्मा का अनाहत जयनाद है । विभिन्न अङ्ग स्वरूप प्रान्तीय भाषाओं में एक ही वाणी व्याप्त है । किं बहुना, समस्त विश्व साहित्य ही, जैसे प्रकृति की अज्ञात प्रेरणा से साम्यमूलक छन्दो-विधान का आयोजन करके मानवता की एकता का जयघोष कर रहा है । जिस प्रकार समस्त मानवों के स्थायी भाव एक से हैं, उसी प्रकार उनकी तरंगों से झंकृत हुए छन्द अपने साम्य-निर्देश से जैसे यह कह रहे हैं कि हम सभी मनुष्य के भावों से ही जन्में हैं, मनुष्य के कण्ठ से ही निकले हैं । हमारे संसार में अनेक भेद-विस्तार हैं, फिर भी हम एक हैं ।

संस्कृत वृत्त

गायत्री आदि वैदिक छन्दों के अनुक्रमिक लघु-गुरु-आयोजन को वृत्त कहते हैं।^१ छन्दोमंजरी और वृत्त रत्नाकरमें 'अक्षर संख्या' और 'वर्ण' गणना मात्रका निर्देश है,^२ परंतु टीकाकारों ने इस परिभाषा को लघु-गुरु-क्रम-योग से पूरा कर दिया है। आचार्य भानु जी ने माना है, 'यदि छन्द के चारों चरणों में क्रम और वर्ण संख्या बराबर हो, तो उसे वर्णिक

१— वृत्त । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यमाणस्तद्वृत्तं वेदितव्यम् ।

गायत्र्यादीच्छन्वसि, वृत्तं इति 'वृत्तम्' ।

'पिगलछन्दःसूत्रम्', पञ्चमोऽध्यायः,

आचार्यं हलायुधभट्टकृतं, संजीवनी टीका ।

२—(अ) पद्यं चतुष्पदं, तच्छ वृत्तं जातिरिति त्रिधा ।

वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिमात्राकृता भवेत् ।

.....तच्छ पद्यं, वृत्तं वृत्तनामात्मकं.....अक्षरसंख्यातं वर्णपरिगणितं वृत्त नामध्येयं भवेत् ।.....एक मात्रा लघु वर्णः द्विमात्रो गुरुरिति ज्ञेयः । तथाचः—

एक मात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनमहंमात्रकम् ॥

छन्दोमञ्जरी, प्रथम स्तवक, ४, प्रभा टीका,

पं० हरिवन्त शास्त्री ।

(ब) पिङ्गलाविभिराचार्यैः यदुक्तं लौकिकं त्रिधा ।

मात्रावर्ण विभेदेन छन्दस्तद्विह कथ्यते ॥

यत्लौकिकं छन्दो मात्रावर्ण-विभेदेन, इदं मात्राच्छन्दः आर्यादि, इदं वर्णच्छन्दः सामान्यादि, इतिभेदेन ।.....लौकिकशब्देन धेववेदागानधिकारिणाम् त्रैवर्णिकानामप्यस्मिन् ग्रन्थेऽधिकार इति दर्शयति । वर्णग्रहणेन च 'मात्राच्छन्दो गणछन्दः' इति कश्चिदुक्तो द्वेषा विभागः पराकृतः । तादृशविभागे ह्येकाक्षराणां श्रयादीनामसंग्रहापत्तेः । वर्णच्छन्दस्त्वेन विभागे च गणछन्दासामपि संग्रहादिति भावः अन्ये तु गणमात्राक्षरच्छन्दस्त्वेन त्रैविध्यमाहुः ।

यदुक्तम्—

आदौ तावद्गणछन्दो मात्राच्छन्दस्ततः परम् ।

तृतीयमक्षरच्छन्दश्छन्दस्त्रेधा तु लौकिकम् ।

वृत्तरत्नाकर, प्रथमोऽध्यायः, ४ भट्टीयव्याख्या ।

वृत्त कहते हैं' ।^१ डा० भगीरथ मिश्र ने इसी परिभाषा को ग्राफ-अंकित करके अधिक स्पष्ट किया है ।^२ माधवराव पटवर्धन जी ने अक्षर संख्या में 'लगक्रम निश्चय' कह कर वृत्त की परिभाषा दी है ।^३

वृत्त के तीन भेद हैं (१) सम (२) अर्द्धसम (३) और विषम ।

जिस वृत्त के चारों वर्णों में समान लक्षण हों, उसे समवृत्त कहते हैं । जिस वृत्त के प्रथम-तृतीय एवं द्वितीय-चतुर्थ चरण में समान लक्षण हों, उसे अर्द्धसम वृत्त कहते हैं । जिसके सभी चरणों में भिन्न लक्षण हों, उसे विषम छन्द कहते हैं ।^४ वृत्त में चार

१ — क्रम अरु संख्यावरण की, चहुँ चरणनि सम जोय ।

सोई वर्णिक वृत्त है, भाखत सब कवि लोय ॥

आचार्य भानु, छन्द प्रभाकर, पृ० ६ ।

२ — दिवस का अवसान ससीप था,	UUU—UU—UU—U—
गगन था कुछ लोहित हो चला,	UUU—UU—UU—U—
तरुशिखा पर थी अवराजती,	UUU—UU—UU—U—
कमिलिनी कुल बल्लभ की छटा ।	UUU—UU—UU—U—

डा० भगीरथ मिश्र,

हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ०, ४१५ ।

३ — वृत्तांत अक्षरांच्या संख्ये च बन्धन असते इतकें च नहवेतर त्यांचा लगक्रम निश्चित असतो । या प्रकारास अक्षरवृत्त वा वर्णवृत्त म्हणात, पण यास केवल वृत्त म्हणात ।

श्री माधवराव पटवर्धन, छन्दोरचना, पृ० २६ ।

४ — (अ) पादचतुष्टये तुल्यलक्षणसमं, अतुल्यलक्षणं विषमं, अर्द्धसमं प्रथमतृतीयोः तृतीयचतुर्थयोः ।

साहित्यदर्पण, अ० १४, श्लोक ४३ की अभिनव गुप्त कृत टीका ।

(ब) सममर्द्धं समं विषमञ्च । २, अ० ५, पि० छ० सू० ।

समं सर्वावयवत्वात् समं । यस्य चत्वारः पादाः एकलक्षणयुक्तस्तत् 'समं' वृत्तम् । तदाद्धं समे यस्य तत् 'अर्द्धसमम्' । सर्वावयवभ्योऽद्धाभ्याञ्चविगतं समं यस्य तद्विषमम् । हलायुध टीका ।

(स) सममर्द्धसमं वृत्तं, विषमंचेतितत्त्रिधा ।

समं समचतुष्पादं, भवत्यर्द्धसमं पुनः । ५ ।

आदिस्तृतीयवत् यस्य पादस्तुर्यो द्वितीयवत् ।

भिन्नचिह्नचतुष्पादं विषमं परिकीर्तितम् । ६ ।

आचार्य गंगादास, छन्दोमञ्जरी, प्रथमस्तवक ।

रण माने जाते हैं ।^१

वृत्तों की यह अक्षर-गणना लघु-गुरु-वर्णों के आधार पर होती है । लघु और गुरु मात्राओं के दो भेद हैं । किसी अक्षर के उच्चारण में व्यतीत होने वाले समय से उस अक्षर की मात्रा का बोध होता है । दीर्घ मात्रा वाले अक्षर के उच्चारण में लघु मात्रा के अक्षर उच्चारण की अपेक्षा दुगुना समय लगता है । यह मात्रा काल-सापेक्ष होती है, निश्चित नहीं । इसका कारण यह है कि एक ही काल में कम और अधिक मात्राओं का उच्चारण जा सकता है । यह एक और दो मात्राओं का संयोग जलगन्त संगीतात्मक है । यूनान प्राचीन चिन्तक पैथागोरस ने संगीत में यह खोज की थी कि संगीतात्मक तीव्रता के दुगुने से संगीतात्मक क्रम अखंड रहता है ।

लघु और गुरु की परिभाषा देने में खड़ी बोली में वह कठिनाई नहीं है, जो बँगला दे भाषाओं में है, क्योंकि खड़ी बोली का उच्चारण संस्कृत के तुल्य है, परन्तु इसके करण शास्त्र के स्वीकृत मानों को आधार मानना सर्वाधिक सुविधाकर है । व्यंजन, अन्तःस्थ ऊष्म की आधी मात्रा होती है । इनमें जब 'अ' का योग होता है, तो एक मात्रा हो जाती । लघु स्वरों की एक मात्रा और दीर्घ स्वरों, संयुक्त स्वरों तथा उनसे युक्त व्यंजनों की मात्राएँ होती हैं । संगीत में और वैदिक पाठ में तीन मात्राओं का भी उच्चारण मान्य है, प्लुत कहते हैं ।^२

आचार्य भानु जी ने काल को मात्रा मान कर परिभाषा सदीप कर दी है । मात्रा

(व) सममर्द्धसमं वृत्तं विषमञ्च तथा परम् । १३ ।

अङ्गप्रयोः यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः ।

तच्छब्दशास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते । १४ ।

प्रथमाङ्गिप्रसमोयस्य तृतीयोच्चरणो भवेत् ।

द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं तवर्द्धममुच्यते । १५ ।

यस्यपाव चतुष्केऽपि लक्ष्मभिन्नं परस्परम् ।

तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रं विशारदाः । १६ ।

आचार्य केदार भट्ट, वृत्तरत्नाकर, प्रथम अध्याय ।

१—एवं नानार्थसंयुक्तैः पावेर्वर्णविभूषितैः ।

चतुर्भिस्तु भवेद्वृत्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत् । ४२ ।

आचार्य बिश्वनाथ, साहित्य-वर्णन, अध्याय १४ ।

२—एकमात्रा भवेदध्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।

त्रिमात्रस्तु प्लुतज्ञेयो, व्यंजनचार्द्धमात्रकम् ।

छन्दोमञ्जरी, प्रथम स्तवक, ४ ।

की व्याप्ति काल में होती है, परन्तु काल को मात्रा मानना ठीक नहीं है ।^१ स्पष्ट उच्चारण की अल्पतम तीव्रता को मात्रा की इकाई मानना चाहिए ।

मात्रा गिनने के प्रमुख नियम निम्न हैं ।^२

१—दीर्घ स्व, संयुक्त स्वर और इनकी मात्राओं (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, का, की, कू, के, कै, को, कौ) से युक्त व्यंजन दीर्घ होते हैं ।

२—संयुक्त अक्षर के पूर्व का लघु वर्ण दीर्घ होता है कभी-कभी शब्द के अन्तिम दो अक्षर लघु होने पर अन्तिम अक्षर हल् की भाँति उच्चरित होता है और उसके पूर्व लघु की दो मात्राएँ हो जाती हैं परन्तु हल् उच्चरित अक्षर को अकारान्त मानने में भी क्रियात्मक अन्तर नहीं पड़ता ।)

(१) वर्ण के उच्चारण में जो समय व्यतीत होता है, उसे मात्रा कहते हैं । (जो काल लघु वर्ण के उच्चारण में लगता है, उसकी एक मात्रा मानी जाती है और यह काल उतना ही होता है, जितना एक चुटकी बजाने में लगता है । जो काल गुरु वर्ण के उच्चारण में व्यतीत होता है, उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं, क्योंकि लघु वर्ण में दुगुना समय लगता है) ।

छन्दःप्रभाकर, पृ० ३ ।

(२) कः—गुरुदीर्घप्लुतं चैव संयोगपरमेव च ।

सानुस्वारं विसर्गञ्च तथान्त्यं लघुवचित् ।

साहित्यदर्पण, अ० १४, श्लो० ६० ।

खः—संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसमिग्रम् ।

विज्ञेयमक्षरं गुरुः पदान्तस्थं विकल्पेन । श्रुतबोध, २ ।]

गः—सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घयुक्तपरश्च यः ।

वा पादान्ते त्वसौ वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लृजु ।

वृत्त—रत्नाकर, अ० १, ९ ।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गो च गुरुर्भवेत् ।

वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ।

छन्दोमन्जरी, प्रथमस्तवक, ११ ।

(सानुस्वारः अनुस्वारसहितः स्वरः (अ, इ, उ, ऋ, लृ) गुरुर्भवेत् । दीर्घः (आ, ई, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ,) विसर्गो विसर्गसहितः संयोगपूर्वकः संयुक्तात् पूर्वो वर्णः, पादान्तगो-
चरणस्यान्तिमो लघुवर्णो वा विकल्पेन गुरुर्भवेत् । वेत्यस्य व्यवस्थित्वात् वृत्तेषु लघुर्वा गुरुर्भ-
वेत्, जातिषु लघुर्गुरुश्च वा गुरु भवत इति ज्ञेयम् । अनुस्वरस्योपलक्षणवा चित्वादर्शे व्यंजन
सद्भावेऽपि लघुगुरुः स्यात् । (प्रभा टीका) ।

३—अनुस्वार और विसर्ग से युक्त व्यंजन दीर्घ होता है ।

४ वृत्त के नियमों के अनुसार चरण का अन्तिम अक्षर छरव होने पर भी लयात्मक स्वराघात के कारण विकल्प से दीर्घ मान लिया जाता है ।

अपवादः—१. संयुताक्षर के पूर्व अक्षर पर यदि स्वराघात न पड़ता हो, तो प्रथम लघु अक्षर लघु ही रहेगाः—

वह तुम्हारे और तुम उसके लिये । (साकेत)

ठहर, बाल गोपाल कन्हैया । राहुल, राजा भैया ॥ (यशोधरा)

२. हिन्दी में प्रायः दूसरे शब्द का आरंभिक लृ अक्षर पिछले शब्द के अन्तिम लघु अक्षर को प्रभावित नहीं करता :—

“प्रेम से उस प्रेयसी ने तब कहा”

में प्रेयसी के पहले का अक्षर ‘स’ लघु ही है । समास-पद, या मात्रा की आवश्यकता किंवा वृत्तों में संस्कृत पद्धति के उच्चारण में, पिछले शब्द का लघु अक्षर दीर्घ होता है, यथाः—“पौर कन्याएं प्रसूनस्तूप कर” में ‘न’ गुरु हो गया है ।

३—छन्द विन्दु के प्रयोग से अक्षर लघु से दीर्घ नहीं होता है, क्योंकि वह लघु मात्रा है ।

४—व्यवहार में यदि दीर्घ मात्रा का लघु उच्चारण हो, तो मात्रा गुरु न होकर लघु ही होती है :—चड़कना, ओहि, मोहि, जेहि, तेहि, के प्रथम अक्षर लघु ही हैं । कभी-कभी सामान्यतया दीर्घ उच्चरित होने वाले वर्ण छन्द की लय के कारण लघु की भाँति उच्चरित किये जाते हैंः—

जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने,

वही सूत तोड़े लिये जा रहे हैं । (निराला, बेला)

यहाँ छन्द के कारण प्रथम पंक्ति के दोनों ‘के’ लघु हो गये हैं । छन्द की लय के अनुसार गुरु को लघु करने का विधान संस्कृत में ही है ।^१ ‘अपि//मापं मपं कुर्यात्’, छन्दोभंगं न कारयेत्’ ।

(१) पावावाविह वर्णस्य संयोगः क्रम-संज्ञकः ।

पुरः स्थितेन तेन स्यात्तलघुताऽपि कंचिद् गुरोः ।

वृत्तरत्नाकर, प्र० प्र०, १० ।

यथाः—तरुणं शर्षपशाकं, नवोदनं पिच्छिलानि च बधीनि ।

अल्पव्ययेन सुन्दरि ! ग्रामजनो मिष्टमदनाति ।

‘ग्राम’ के ‘ग्र’ के कारण ‘सुन्दरि’ की ‘रि’ दीर्घ नहीं हुई, क्योंकि वहाँ यति आती है ।

मात्रा चिह्न

वाणी-भूषण के अनुसार गुरु के लिये गजदन्तकार चिह्न (S) और लघु के लिये शृङ्खला रेखाकार चिह्न (।) होना चाहिये ।^१ प्राचीन काल में गुरु के लिये (H) और लघु के लिये (—) चिह्न का भी प्रयोग होता था । मराठी में पटवर्द्धन जी ने गुरु के लिये (—) और लघु के लिये (U) चिह्न रखा है । यह चिह्नाङ्कन प्रणाली ग्रीक, लैटिन और अंग्रेजी की है ।

वर्णिक गण

तीन अक्षरों के संयुक्त 'त्रिक' को गण कहते हैं । प्रस्तार-भेद से तीन वर्णों के क्रम-भेद से आठ रूप हो सकते हैं । इन आठ त्रिकों या गणों को एक एक नाम दे दिया गया है । वृत्तों के लक्षण देने में ये सूत्र बड़ी सहायता पहुँचाते हैं । अतः इनकी रचना लाघवार्थ,^२ हुई है । आदर्शवादी आस्तिक आचार्य इन गणों की उत्पत्ति ब्रह्म से मानते हैं । केदार भट्ट ने इन गणों को वाङ्मय में उसी प्रकार व्याप्त माना है, जिस प्रकार विष्णु त्रिलोक में व्याप्त हैं ।^३

तीन अक्षरों का प्रस्तार निम्न है :—

चिह्न	गणसंज्ञा
SSS	मगण
ISI	यगण
SIS	रगण
IIS	सगण
SSI	तगण
ISI	जगण
SII	भगण
III	नगण

-
- (१) गुरुस्तु द्विकलो ज्ञ यो गजदन्तसमाकृतिः ।
लघुस्तदन्यः शृङ्खोऽसावेकमात्रः प्रकीर्तितः । (वाणीभूषण) ।
- (२) ह्येते ह्यष्टौ त्रिका नाम्ना विज्ञेयाः ब्रह्मसंभवाः ।
लाघवार्थं पुनरमी छन्दोमानमवेक्ष्य च ।
साहित्यदर्पण, १४ अ०, ८७ ।
- (३) म्यरस्तजभनगेलान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः ।
समस्तवाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना ।

वृत्तारत्नाकर, प्र० अ०, ६ ।

वृत्तों के लक्षण में प्रायः समस्त संस्कृत छन्दःशास्त्रियों ने गणों का उपयोग किया है^१ अन्यथा लघु-गुरु-क्रम की सूची देने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। वृत्तों का गण क्रम तो निश्चित होता है, पर मात्रिक छन्द आर्य और भक्तिकालीन मात्रिक छन्दों के आरम्भ में भी गणों का विशेष ध्यान रखा जाता था। आधुनिक युग में कवि लोग 'नवीनता की धुन' और 'रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह' के लिये इन बातों का ध्यान नहीं रखते। छन्द या ग्रन्थ के आदि में मगण, नगण, भगण और गगण शुभ हैं; तथा जगण, सगण, रगण और तगण अशुभ हैं। छन्दःशास्त्र के विद्यार्थी की हैसियत से लेखक का यह मत है कि इस विधि-निषेध का वैज्ञानिक आधार है। अष्टक पर्व के आधार पर चलने वाले छन्दों में जगण, रगण, तगण, अकिल रूप में प्रयुक्त होने पर लयव्याघातक सिद्ध होते हैं। सप्तक पर्व से प्रारम्भ होने वाले कुछ छन्दों के आदि में जगण और सगण नहीं आ सकते। पञ्चमात्रिक छन्दों के आरम्भ में रगण के अतिरिक्त इन अशुभों में किसी का प्रयोग नहीं हो सकता। चौकल के बारे में भी वही कहा जा सकता है, जो अष्टक के बारे में कहा गया है, अतः इस दृष्टिकोण को पूर्णतः रूढ़ और अंधविश्वासी नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत लेखक केवल सगणात्मक आरम्भ को अशुभ नहीं मानता है क्योंकि लय की दृष्टि से वह बहुत कम छन्दों को आरम्भ में बाधा पहुँचा सकता है, अधिकांश छन्दों में सहायता ही प्रदान करता है।

आचार्य नारायण भट्ट ने 'वृत्तरत्नाकर' की टीका में गणों के शुभाशुभ विवेचन के

१—(अ) गुरुपूर्वो भकारः स्यात् सकारस्य गुरुत्रयम् ।

जकारो गुरुमध्यस्तु सकारान्तः गुरुस्तथा । ८५ ।

लघुमध्यस्तरेफः स्यात्, तकारान्तो लघुस्तथा ।

लघुपूर्वो यकारस्तु नकारस्तु लघुत्रयम् । ८६ ।

साहित्यदर्पण, अ० १४ ।

(ब) सर्व गुणो मुखान्तर्लो यरावन्तगलो सती ।

मध्याद्यो ज्भौ त्रिलो नोष्टो भवत्यत्र गणास्त्रिका ।

वृत्तरत्नाकर, प्र० स्त०, ७ ।

(स) आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम् ।

यरता लाघवं यान्ति मनो तु गुरुलाघवम् ।

ध्रुवबोध, ३ ।

(द) "यमाताराजभानसलगम्" सूत्र में सभी गणों का लक्षण है। जिस गण का लक्षण जानना हो, सूत्र में उसका वर्ण और आग के दो वर्णों को मिलाकर गण का स्वरूप निर्मित किया जाता है।—लेखक ।

साथ देवता, फल और मित्रामित्र का विशद विवरण दिया है, जिसका अनुकरण पश्चाद्वर्ती पंडितों ने किया है ।^१

गण	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
रूप	SSS	ISS	SIS	S	SSI	ISI	SII	III
देवता	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	गगन	सूर्य	चन्द्र	नाक
फल	श्री	वृद्धि	विनाश	भ्रमण	धन-नाश	रोग	सुयश	आयु
मित्रामित्र संज्ञा	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

यदि काव्य के आरम्भ में अशुभकारी गण आ जाय, तो दूसरे शुद्ध गण से उसका परिहार भी हो सकता है । गणमैत्री का विचार विम्ब है ।^२

मित्र + मित्रगण	=	धन प्राप्ति, समृद्धि ।
मित्र + भृत्य	=	जयादि शुभ ।
मित्र + उदासीन	=	निष्फल, शून्य ।
मित्र + शत्रु	=	बन्धु-पीड़ा ।
भृत्य + मित्र	=	सर्व कार्य-सिद्धि ।

- १ — मोभूमिस्त्रिगुरु श्रियंदिशति । यो वृद्धि जलं चादिलो ।
 रोगिनर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोन्त्यगः ।
 तो व्योमान्तलघुर्धनापहरण जोऽर्कः रुजः मध्यगो ।
 भश्चन्द्रो यश उज्ज्वलं मुखगुरुर्नोनाकमायुस्त्रिलः ॥

एवम्

- (२) मित्रान्मित्रं विधत्ते प्रचुरधनमथो मित्रतो भृत्यसंज्ञः ।
 स्वयं मित्रादुदासो न किमपि च फलं मित्रतः शत्रुसंज्ञः ।

भृत्य + भृत्य	=	सर्व-लाभ ।
भृत्य + उदासीन	=	धननाश ।
भृत्य + शत्रु	=	शोक ।
उदासीन + मित्र	=	अल्पकार्य सिद्धि ।
उदास + भृत्य	=	सभी वश हों ।
उदास + उदास	=	न शुभ, न अशुभ ।
उदास + शत्रु	=	स्वजन वैर ।
शत्रु + मित्र	=	शून्य ।
शत्रु + भृत्य	=	गृहिणीनाश ।
शत्रु + उदासीन	=	स्वकुल क्षय ।
शत्रु + शत्रु	=	काव्यनायक नाश ।

श्री सरस जी ने कुछ परिवर्तन के साथ इस नग्नमेत्री को स्वीकार किया है। शायद पद्य के बंधन ने थोड़ा फेरफार करने के लिये बाध्य किया हो ।^१

बन्धोःपीडामथो स्याद्यवि खलु नियतं भृत्यतो मित्रसंज्ञः ।
 सर्वं कार्यं च भृत्याद् भूतगण इह चेदायतिः सर्वलोकं ।
 भृत्याच्चेत्स्यादुदासो धनविगमयो भृत्यतः शत्रुसंज्ञः ।
 शोकं कुर्यादुदासाद्यवि भवति तदा मित्रसंज्ञोऽल्पकार्यम् ।
 तस्माद् भृत्यः प्रभुत्वं तत इह सततं स्यादुदासो विनाशम् ।
 शत्रोमित्रं च शून्यं यवि भवति ततो भृत्यसंज्ञो गृहिण्याः
 नाशं तस्मादुदासो धनहरमधिकं दुःखवारिष्टशोभम् ।
 शत्रोः शत्रुर्भवेच्चेत् द्विगणसुसहितो नायकस्यैव नाशं ।
 देशोद्भासं विधत्ते कथयति च फलं पिङ्गलो नागराजः ।

वृत्तरत्नाकर, प्रथमस्त०, ७,
 नारायण भट्टीय टीका ।

१—सगण नगण मित्र हूँ कै सिद्धि फल देत, भगण यगण दास हानि पहुँचावते।
 रगण सगण रिपु होत शोकप्रद फल, तगण जगण ये उदास कहलावते।
 मित्रगण सिद्धि, दास-दास मिलि हानि करे, अफल उदास शुभकाजं विनसावते।
 सुकवि सरस ऐसी गण की विवेचना है, छन्दन की आदि में सुगण कवि लावते।
 मित्र और दास मिलि विजय करावत हैं, मित्र श्री उदास आय हानि उपजावते।
 मित्र और शत्रुगण मिलि मित्र नाश करे, दास और मित्र काज-सिद्धि करावते।
 दास श्री उदास मिलि पीड़ा उजावति हैं, दास और शत्रुगण मिलि कै हरावते।

गणों की भाँति काव्य के प्रारंभ में शुभ अक्षरों के भी रखने का विधान है । ऋ, ङ, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह और संयुक्ताक्षरों को छोड़ कर शेष अक्षर शुभ होते हैं ।^१ देव वाचक या मंगल वाचक शब्दों के प्रयोग से काव्य के आदि में अशुभगण या अक्षर का दोष समाप्त हो जाता है ।^२ काव्य के आदि में दुःखदारिद्र्य वाचक और अमङ्गल शब्दों का प्रयोग वर्जित है । यह विवेक भारतीय साहित्यकारों के रुचिपरिष्कार और संस्कृति का परिचायक है । ऋ, ड, ञ, टवर्ग, ह, का उच्चारण कर्ण कटु है । पवर्ग में ओट्य होने के कारण सहसा विवृत् उच्चारण में असुविधा होती है । र, ल, ष, जिह्वाग्र के कारण और 'व', में ओठ के योग के कारण आदि उच्चारण में असुविधा होती है । जिन अक्षरों का उच्चारण विवृत् और कंठ्य या तालु है, वे चरणादि में अनुकूल पड़ते हैं । जिन अक्षरों में जिह्वाग्र और युगुलोष्ठस्पर्श का प्रयोग न हो, उन्हें काव्य के आदि में

दास औ उदास मिलि पीड़ा उपजावति हैं, दास और शत्रुगण मिलि के हरावते । मिले जो उदास अरु मित्र, तौ है रंच फल, आइकं उदास, दास दुःख पहुँचावते । मिलत है जो पे छन्द आदि में उदास शत्रुगण दुःखकारी परिणाम नित जानिये । शत्रु और मित्रगण मिलि देत शून्यफल, शुभ और दास से प्रिया को नाश मानिये । मिलते हैं शुभ औ उदास जो पे आदि माँहि, शंका उपजावति है ऐसो ही प्रमानिये । भाषत 'सरस' कवि छन्दन की आदि माँहि, दोय दोय गणन में यों विचार आनिये ।
'सरस पिङ्गल' श्री सरस जी ।

१—(क) अवर्णात्सम्पत्तिर्भवति मुदिवर्णाद्धिनशता

न्युवर्णादख्यातिः सरभसमृवर्णाद्धिरहितात् ।

तथा ह्यैचः सीख्यं ड, ङ, ण रहितादक्षरगणात् ।

पदादौ विन्यासाद् भ र ब ह ल, हा हा विरहितात् ॥

(ख) कः खो गो घश्च लक्ष्मीं वितरति, वियशो डस्तथाचः सुखं छः, प्रीति, जो मित्रलाभं, भयमरणकरौ भू जौ, ट ठौ खेद दुःखे । डः शोभां, ठो विशोभां, भ्रमणमय च णस्तः सुखं, थश्च युद्धं, बोधः सीख्यं, मुदंतः, सुखभयमरणक्लेशदुःखं पवर्गः ॥ यो लक्ष्मीं रश्चदाहं ध्यसनमथ लावौ, शः, सुखं षश्च खेदं, सः सीख्यं हश्च खेदं, विलयमपि च ज्ञः क्षः समर्द्ध करोति । संयुक्तं चेह नस्यात् सुखमरणपटुर्वर्णविन्यासयोगः । पद्यादौ गद्यकत्रे वचसि च सकले प्राकृतादौ समोऽयम् । भासह ।
(नारायण भट्ट की टीका) दूत्तरत्नाकर प्रथम अध्याय,

२—देवता वाचकाः शब्दाः ये च भद्रादिवाचकाः ।

ते सर्वे नैव निन्धाः स्युः लिपितो गणतोऽपि वा ॥ भासह ॥

प्रयुक्त करना चाहिये, प्रस्तुत लेखक का ऐसा मत है। वर्ग के सन्तुष्ट अक्षर महाप्राण होने के साथ अमधुर और भद्दे लगते हैं, अतः यदि 'घ' को भी प्राग्भ में स्थान न दिया जाय, तो अच्छा होगा।

आचार्य भानु जी ने उ, प, को शुभ सूची में गिनाया है। उन्होंने ५ अक्षरों को दग्धाक्षर माना है, जिनका दोष परिहार मंगलवर्ती शब्द से संभव है।

इन नियमों का ध्यान केवल प्रबंध काव्यों में ही नहीं रखना चाहिये, वरन् मुक्तक गीतों में भी इनका पालन अभीष्ट है। आजकल तो विशेषतः नरसम्भ किया जाता है, अतः इन बातों पर ध्यान देना और भी आवश्यक है। इन नियमों की अवहेलना का परिणाम खेलकर कवि लोग प्राचीन नियमों पर विश्वास करने लगे हैं। पंडित श्याम नारायण पांडेय ने लेखक से बात करते हुए यह स्वीकार किया है कि "जौहर" शीर्षक में दग्धाक्षरों के प्रयोग के कारण और असावधानी से चिंताओं के विशाल वर्णन से उनकी पत्नी, तथा अन्य सम्बन्धी महिलाओं का 'जौहर' हो गया। सुनते हैं, 'साकेत' के सप्तम सर्ग में 'राम नाम सत्य है' के प्रयोग के कारण श्री गुप्त जी के सुपुत्र का स्वर्गवास हो गया था। अक्षर की महत्ता मानने वाले भारत के साहित्यियों का यह विवेचन अंधविश्वास और रूढ़ि से भी कम मलिन नहीं हुआ है। प्रश्न यह है कि आजकल इसका निर्व्राह किया जाय या न किया जाय।^१ उत्तर यही है कि यदि साध्य हो, तो अनुगमन किया जाय, अन्यथा काव्य को हानि पहुँचा कर काव्य-शास्त्र या छन्द-शास्त्र के नियमों को नहीं माना जा सकता।

वृत्त-विवेचन

संस्कृत में प्रायः समवृत्त छन्द को ही वृत्त कहने की प्रथा है।^२ संस्कृत में चार चरणों

१—शुभाक्षर — क, ख, ग, घ, ङ, छ, ज, झ, ञ, ट, थ, द, ध, न, य, श, क्ष।

अशुभाक्षरः—ड, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, त, थ, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह। इन १९ अक्षरों में भी कवियों ने पाँच अक्षर मुख्य चुन लिए हैं अर्थात् ऋ, ह, र, भ, ष, को आदि में रखने से छन्द की रोचकता न्यून हो जाती है।

दोर्जे भूलिन छन्द के, आदि ऋ, ह, र, भ, ष, को य।

दग्धाक्षर के दोष ते, छन्द दोषयुत होय ॥

इनके दोष-परिहार का भी विधान है, यथा :—

मंगल सुर-वाचक शब्द, गुरु होवें पुनि आदि।

दग्धाक्षर को दोष नहिं अरु गण दोषहुं वादि ॥

छन्दःप्रभाकर, पृ० ८।

२—अङ्घ्रयोः यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः।

तच्छन्दः शास्त्रस्त्वज्ञाः समं वृत्ता प्रचक्षते वृत्तरत्नाकर, प्रथम स्तवक, १४।

के वृत्तों की प्रथा रही है, पर दो चरणों के भी वृत्त होते हैं, जैसे शिखा और खजा वृत्त में निश्चित अक्षर-संख्या के साथ गण-विभाग या लघु-गुरु का क्रम भी पूर्ण निश्चित होता है। फिर भी, यह गण-विधान भी गौण ही है, प्रधान लय है। कई छन्दों का गणविधान एक सा रहता है, पर उन छन्दों की यति भिन्न स्थान पर होती है और लय में भेद होता है, यथा :—

(१) मणिगुणनिकर (॥ ॥ ॥ ॥ / ॥ ॥ ॥ S), पि० छ० (७/ १३) ।

(२) शशिकला (॥ ॥ ॥ ॥ / ॥ ॥ ॥ / S) छन्दोऽनुशासन (२/ २४४) ।

(३) स्रक् (॥ ॥ ॥ / ॥ ॥ ॥ / ॥ S) छन्दोऽनुशासन (२/ २४५) ।

ऊपर के तीनों छंदों के आरम्भ में १४ लघु अक्षर हैं, पर लय सबकी भिन्न है। पूर्णतः अभिन्न गणविधान के चरणों में भी यति बदलने और शब्द-गुम्फन-परिवर्तन करने से नवीन छन्द का स्वरूप बन जाता है। सुदृढ़ गण-योजना के बीच भी विभिन्न संख्या के अक्षरों पर शब्द की समाप्ति और समास के द्वारा संस्कृत के कवि प्रत्येक चरण में नवीनता को जन्म देते चलते थे, अतः सैंकड़ों पद्यों में लगातार एक ही वृत्त का प्रयोग होने पर भी एकरसता का आक्षेप कभी नहीं किया जा सका। ऊपर के उदाहरणों में क्रमशः अष्टक, सप्तक, षष्ठक का प्रयोग हुआ है, जिनकी लयें परस्पर भिन्न हैं। इससे गण-विधान में यति का महत्त्व सिद्ध होता है। वैदिक परम्परा से प्रभावित होने के कारण संस्कृत में विषम वृत्तों का भी प्रयोग हुआ, पर बहुत कम। 'सौन्दरनन्द' के तीसरे सर्ग में, किरात के बारहवें तथा शिशुपालवध के पन्द्रहवें सर्ग में उद्गता विषमवृत्त का प्रयोग हुआ है।^१ यह पद्य पूर्णतया विषम छन्द न होकर वृत्त ही है, क्योंकि संस्कृत में अनुष्टुभ् के अतिरिक्त किसी मुक्त वर्णिक छन्द

३—शिखिगुणितदशलघुरचितमपगतलघुगुलमपरिमदमखिलम् ।

सगुरुशकलयुगलकमपिसुपरिघटितललितपदवितति भवति शिखा । ३६ ।

(जिसवृत्त के पूर्वार्द्ध में २८ लघु तथा अन्त में एक गुरु होवे तथा उत्तरार्द्ध में तीस लघु और एक गुरु होव, उसे शिखा कहते हैं अर्थात् तीन (अग्नि) से दस गुना और फिर एक न्यून (३ × १० = ३०, ३० — १ = २९) अक्षर पूर्व चरण में और ३१ अक्षर उत्तरार्द्ध में ।

विनिमयविनिहितशकलकलितपदवितति विरचितगुणनिचया ।

श्रुतिसुखकृदियमपिजगति जिजशिर उपगतवति सति भवति खजा । ४० ।

वृत्तरत्नाकर, द्वि० अ० ।

(जिस वृत्त में, शिखा छन्द के पूर्वार्द्ध और परार्ध का विनिमय (आदान प्रदान) कर दिया जाता है, यानी शिखा का पूर्वार्ध परार्ध हो तथा परार्ध पूर्वार्ध हो, तो उन कर्ण-मनोहर लगने वाले ललित पदों से विभूषित छन्द को 'खजा' कहते हैं) ।

१—उपविश्य तत्र कृतबुद्धिरचलधृतिरद्विराजवत् ।

मारबलमजयदुःप्रमथो बृद्धपदं शिवमहार्यमव्ययम् ।

सौन्दरनन्द, सर्ग ३, ७ ।

इन वर्गों के छन्दों में क्रमशः चार अक्षर बढ़ते हैं या प्रत्येक चरण में एक अक्षर बढ़ जाता है, अर्थात् पीछे वाले वर्ग से आगे वाले वर्ग के चरण में एक अक्षर बढ़ता चलता है। यदि छब्बीस से अधिक अक्षर चरण में होते हैं, तो उसे आचार्य भरत मालावृत की संज्ञा प्रदान करते हैं।^१

जितने अक्षर एक चरण में होते हैं, उसके चौगुने अक्षर पूरे छन्द में होते हैं। यदि अमुक संख्या के चरण वाले छन्द का प्रस्तार-भेद या जाति-भेद जानना हो, तो दो को उतनी बार वर्गमूलक गुणा कर दीजिये।^२ २६ से अधिक चरण वाले छन्दों को दंडक कहते

उक्ताऽत्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठाऽन्या सुपूर्विका ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च । १६।
त्रिष्टुप् च जगती चैव तथाऽतिजगती मता ।
शक्वरी सातिपूर्वा स्यादष्टयत्यष्टौ ततः स्मृते । २०।
धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः ।
विकृतिः संकृतिश्चैव तथाऽतिकृतिरुत्कृतिः । २१।
वृत्तरत्नाकर, प्रथमोऽध्यायः ।

१—एकाक्षरं भवेदुक्तमत्युक्तं द्व्यक्षरं भवेत् ।
मध्यत्र्यक्षरमित्याहुः प्रतिष्ठा चतुरक्षरा । ४६।
सुप्रतिष्ठा भवेत् पञ्च षड्गायत्री भवेदिहि ।
सप्ताक्षरा भवेदुष्णिगष्टौ चानुष्टुविण्यते । ४७।
नवाक्षरा तु बृहती पङ्क्तिश्चैव दशाक्षरा ।
एकदशाक्षरा त्रिष्टुप् जगती द्वादशाक्षरा । ४८।
त्रयोदशातिजगती शक्वरी तु चतुर्विंश ।
दशपञ्चातिशक्वरी अष्टिः स्यात्षोडशाक्षरा । ४९।
तथा सप्तदशात्यष्टिः धृतिरष्टादशाक्षरा ।
एकोनविंशतिधृतिः कृतिः विंशतिरेव च । ५०।
प्रकृतिश्चैकविंशत्याः द्वाविंशत्याकृतिस्तथा ।
विकृतिः स्यात् त्रयोविंशा चतुर्विंशापि संकृतिः । ५१।
पञ्चविंशत्यभिकृतिः षड्विंशत्यक्षरोत्कृतिः,
अतोऽधिकक्षरं छन्दोमालावृत्तमिति स्मृतम् । ५२।

नाट्यशास्त्र, चतुर्विंशोऽध्यायः, छन्दोविधानम्

२—२ (संख्या) बीच गणित का सूत्र है। यह सूत्र इसलिए लागू होता है, क्योंकि प्रत्येक आगे के छन्द प्रस्तार में भेद दुगुने हो जाते हैं। एक अक्षर का प्रस्तार भेद २, दो अक्षरों का प्रस्तार भेद २ × २, तीन अक्षरों का प्रस्तार भेद २ × २ × २ इत्यादि—लेखक।

का शायद ही प्रयोग हुआ हो, हाँ, महाभारत के प्राचीन मूल श्लोकों में बहुत से ऐसे छन्द मिलते हैं, जिनमें वृत्तत्व का आभास मात्र है ।^१

संस्कृत वृत्तों का वर्गीकरण वैदिक वर्गों के अन्तर्गत किया गया है और उन वर्गों को वैदिक संज्ञाएँ भी प्रदान की गयी हैं । वृत्त में एक अक्षर से लेकर छब्बीस अक्षरों तक के छन्द होते हैं । प्रत्येक अक्षर संख्या के वृत्तों के भिन्न वर्ग नाम हैं :-

१ अक्षरका चरण, उक्त, २ वर्णों का अत्युक्ता, ३ वर्णों का मध्या, ४ वर्णका प्रतिष्ठा, ५ सुप्रतिष्ठा, ६ गायत्री, ७ का उष्णिक्, ८ का अनुष्टुभ् ९ का बृहती, १० का पंक्ति, ११ का त्रिष्टुभ्, १२ का जगती, १३ का अतिजगती, १४ का शक्वरी, १५ का अतिशक्वरी, १६ का अत्यष्टि, १७ का अत्यष्टि, १८ का घृति, १९ का अतिघृति, २० का कृति, २१ का प्रकृति, २२ का आकृति, २३ का विकृति, २४ का संकृति, २५ का अभिकृति और २६ अक्षर का चरणः उत्कृति ।^२

लक्षणः— सजसादिमे सलघुकौच, तसजगुरुकैरथोद्गता ।

अङ्घ्रिघ्नगतभनजला गयुताः, सजसाजगौ चरणमेकतः पठेत् ।

वृत्तरत्नाकर, पंचमोऽध्याय, ६ ।

१—यदाश्रीषं सत्कृतां सत्स्यराज्ञा, । S S S S । S S । S S
सुतां दत्तामुत्तरामर्जुनेन, । S S S S । S S । S S
तौ चार्जुनः प्रत्यग्रहणत् सुतार्थे S S । S S । S S । S S
तदानांशंसे विजयाय सज्जय । । S S S S । । S S । S S

आदि पर्व, प्रथम अध्याय, १७४ ।

२—आरभ्यैकाक्षरात् पादावेकैकाक्षरवधितः

पादैरुक्थ्यादिसंज्ञस्याच्छन्दः षड्विंशति गतम् । १५१ ।

उक्थ्याऽत्युक्थ्या तथा मध्या प्रतिष्ठाऽन्या सुपूर्विकाम् ।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती षड्विंशतरेव च । १५६ ।

त्रिष्टुप् च जगती चैव तथातिजगती सता ।

शक्वरी साति पूर्वा स्यादष्ट्यष्ट्यष्टी तथा स्मृते । १७१ ।

घृतिश्चातिघृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः ।

विकृतिः संस्कृतिश्चैव तथातिकृतिरुत्कृतिः । १८१ ।

छन्दोमञ्जरी प्रथम स्तवक ।

आरभ्यैकाक्षरात्पादावेकैकाक्षरवधितः ।

पृथक् छन्दो भवेत्पादैर्यवत् षड्विंशति गतम् । १७१ ।

इन वर्गों के छन्दों में क्रमशः चार अक्षर बढ़ते हैं या प्रत्येक चरण में एक अक्षर बढ़ जाता है, अर्थात् पीछे वाले वर्ग से आगे वाले वर्ग के चरण में एक अक्षर बढ़ता चलता है। यदि छब्बीस से अधिक अक्षर चरण में होते हैं, तो उसे आचार्य भरत मालावृत्त की संज्ञा प्रदान करते हैं।^१

जितने अक्षर एक चरण में होते हैं, उसके चौगुने अक्षर पूरे छन्द में होते हैं। यदि अमुक संख्या के चरण वाले छन्द का प्रस्तार-भेद या जाति-भेद जानना हो, तो दो को उतनी बार वर्गमूलक गुणा कर दीजिये।^२ २६ से अधिक चरण वाले छन्दों को दंडक कहते

उक्ताऽत्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठाऽन्या सुपूर्विका।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च।१६।

त्रिष्टुप् च जगती चैव तथाऽतिजगती मता।

शक्वरी सातिपूर्वा स्यादष्ट्यत्यष्टी ततः स्मृते।२०।

धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः।

विकृतिः संस्कृतिश्चैव तथाऽतिकृतिस्तकृतिः।२१।

वृत्तरत्नाकर, प्रथमोऽध्यायः।

१—एकाक्षरं भवेदुक्तमत्युक्तं द्व्यक्षरं भवेत्।

मध्यत्र्यक्षरमित्याहुः प्रतिष्ठा चतुरक्षरा।४६।

सुप्रतिष्ठा भवेत् पञ्च षड्गायत्री भवेद्विहि।

सप्तक्षरा भवेदुष्णिगण्डौ चानुष्टुविष्यते।४७।

नवाक्षरा तु बृहती पवितश्चैव दशाक्षरा।

एकदशाक्षरा त्रिष्टुप् जगती द्वादशाक्षरा।४८।

त्रयोदशातिजगती शक्वरी तु चतुर्विंश।

दशपञ्चातिशक्वर्या अष्टिः स्यात्षोडशाक्षरा।४९।

तथा सप्तदशात्यष्टिः धृतिरष्टादशाक्षरा।

एकोनविंशतिधृतिः कृतिः विंशतिरेव च।५०।

प्रकृतिश्चैकविंशत्याः द्वाविंशत्याकृतिस्तथा।

विकृतिः स्यात् त्रयोविंशा चतुर्विंशापि संकृतिः।५१।

पञ्चविंशत्यभिकृतिः षड्विंशत्यक्षरोत्कृतिः,

अतोधिकक्षरं छन्दोमालावृत्तमिति स्मृतम्।५२।

नाट्यशास्त्र, चतुर्दशोऽध्यायः, छन्दोविधानम्

२—२ स (संख्या) बीच गणित का सूत्र है। यह सूत्र इसलिए लागू होता है, क्योंकि प्रत्येक आगे के छन्द प्रस्तार में भेद दुगुने हो जाते हैं। एक अक्षर का प्रस्तार भेद २, दो अक्षरों का प्रस्तार भेद 2×2 , तीन अक्षरों का प्रस्तार भेद $2 \times 2 \times 2$ इत्यादि—लेखक।

हैं।^१ २७ अक्षरों के बाद प्रायः रगणों का योग होता है, जैसे चंडवृष्टिप्रपात (२ नगण + ७ रगण),^२ अर्द्ध दंडक (२ नगण + ८ रगण), अर्णवदंडक (२ नगण + ९ रगण), व्याल (२ नगण + १० रगण), जीमूत (२ नगण + ११ रगण), लीलाक (२ नगण + १२ रगण), उद्दाम (२ नगण + १३ रगण) और शंखी (२ नगण + १४ रगण) ।

कुछ लोगों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिये लम्बे लम्बे चरणों का निर्माण किया है, जैसे बराहमिहिर ने वृहत्संहिता में १०२ अक्षरों का चरण निर्मित किया है। आचार्य नारायण भट्ट ने भी ९९९ अक्षरों तक के चरण का दंडक माना है।^३

एक से छब्बीस अक्षर पर्यन्त सम छन्दों के प्रस्तार की संख्या का योग = $२^१ + २^३ + २^४ + २^६ + २^७ + २^८ + २^९ + २^{१०} + २^{११} + २^{१२} + २^{१३} + २^{१४} + २^{१५} + २^{१६} + २^{१७} + २^{१८} + २^{१९} + २^{२०} + २^{२१} + २^{२२} + २^{२३} + २^{२४} + २^{२५} + २^{२६}$ होता है। लेकिन, अक्षर प्रस्तार से प्रत्येक भेद में लय का जन्म नहीं होता। आजतक कुल लगभग १००० वृत्त प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें प्रचलित बहुत थोड़े हैं।

वृत्तों के दो वर्ग किये गये हैं। प्रथम प्रकार के वृत्त, जिनमें गण विशेष का आवर्तन होता है और दूसरे प्रकार के वे वृत्त, जिनके चरणों में विभिन्न गणों का आयोजन होता है। श्री माधवराव पटवर्धन ने इन्हें 'आवर्तनी वृत्त' और 'अनावर्तनी वृत्त' नाम दिया है।^४ श्री सुधीन्द्र जी ने इन्हें 'समगणात्मक' और 'असमगणात्मक' नाम दिया है और यह भी

१—तदूर्ध्वं चंडवृष्ट्यादिदण्डकाः परिकीर्तिताः ।

शेषं गाथा त्रिभिः षड्भिश्चरणैश्चोपलक्षिताः । १८। वृत्तनाकर, प्र० अ० ।

२—त्रिभुवनसुखहेतवेधातृमुख्यामरप्रार्थना सार्थनादर्थि चिन्तामणे !

दशरथकुतयागसौभाग्यतस्तत्तनूजन्मनास्थापितश्रौतमार्गगल !

आचार्य नारायण भट्ट रचित ।

३—एकोनसहस्राक्षरपर्यन्ता दण्डाकांश्रयः प्रोक्ताः ।

वर्णत्रिकगणवृद्ध्या न द्वितयाद्या महामतिभिः ।

वृत्तनाकर, तृतीय अध्याय, ११३ टीका ।

४—ज्या वृत्तांतील आन्दोलन अक्षर रचने करून सहज प्रतीत होत नाही, ज्यांना तालान्त बसवायला थोडे फार परिश्रम पडतात, परन्तु ज्यां पै की अनेक वृत्तांचा चाली परस्परया चालत आल्याकारणाने, सुकर वाटतात अशा वृत्तानां 'अनावर्तनी' म्हटले आहे। त्यांचे विवेचन 'आवर्तनी' वृत्तांच्या आधी केले आहे। कित्येक वृत्ते अशा आहेत की ती सहज आवर्तनी होऊ शकतात।

अक्षररचना, पृ० ६५ (प्रकाशित, १९३७) ।

नहीं है कि 'यह मेरा अपना नामकरण है' ^१। परन्तु साथ ही साथ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह वर्गीकरण केदार भट्ट, गंगादास, हेमचन्द्र और पिंगल से भी पुराना है। वृत्त-रत्नाकर, छन्दोमञ्जरी और छन्दःसूत्र के वृत्त-लक्षणों को देखकर इस तथ्य के लिये शंका का स्थान नहीं रहता।

अनावर्तक छन्दों में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवंशा, वंशस्थ, रुचिरा, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, स्वागता, प्रमिताक्षरा, द्रुतिविलम्बित, वसन्ततिलका, शालिनी, मालिनी, मन्द-कान्ता, स्रग्धरा, शार्दूल-विक्रीडित, हरिणी, शिखरिणी, सुवदना और पृथ्वी ही अधिक प्रचलित रहे हैं ।

आवर्तक छन्दों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) त्रिमात्रिक वर्ग (२) चतुर्मात्रिक वर्ग और (३) पञ्चमात्रिक वर्ग । छः, सात और आठ मात्रा के आवर्तक अप्राप्त हैं । हरिगीतिका (सप्तमात्रिक आवर्तन) आदि छन्दों ने अपभ्रंशकाल में ही मात्रिक रूप धारण कर लिया था, अतः ऐसे छन्दों को यहाँ नहीं सम्मिलित किया गया ।

त्रिमात्रिक वर्गः—प्रमाणिका (15151515), पंच चामर (15151515/15151515), मल्लिका (51515151), चंचला (51515151/51515151)।

इनके अतिरिक्त मेरे मत से सरल (III III III III/ III III III) छन्द भी बन सकता है, यद्यपि इसका कभी न प्रयोग हुआ है और न नाम तथा लक्षण दिया गया है।

चतुर्मात्रिक वर्गः—तोटक (॥S॥S॥S॥S), विद्युन्माला (SS SS SS SS),
दोषक (S॥ S॥ S॥ S॥), जलोद्धतगति (।S।SS/।S।SS), जलधरमाला (SSSS॥ ॥
SSSS), सौरभ (S॥ ।S। ॥S ॥S), सुरसरि (SS ॥ ॥ S॥ ॥S), मत्तगयन्द या इंदव
(S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ SS) ।

पंचमात्रिक वर्गः—भुजंगप्रयात (१९९ १९९ १९९), स्रग्विणी (९१९ ९१९ ९१९ ९१९), सारंग (९९१ ९९१ ९९१ ९९१), मन्दारमाला (९९१९९१९९१/९९१९९१९१) ।

अनावर्तक छन्दों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। ये छन्द भाव के आन्दोलन के अनुसार निकले हैं। विकास की दृष्टि से प्राचीन छन्दःशास्त्रियों ने वैदिक छन्दों से इनका

१—इस लंबी सूची में भी वो वर्ग और बन सकते हैं। एक वे हैं, जो एक ही गण की आवृत्ति से बनते हैं, जैसे तोटक, मोतियदास और सर्वैया जातीय छम्ब । दूसरे वे हैं, जो अनेक गणों के समिधन से बनते हैं जैसे द्रुनविलम्बित, मंदाकान्ता आदि ।

अतः उन्हें हम क्रमशः (१) समगणात्मक और (२) असमगणात्मक वर्णिक छान्व
कहेंगे। यह मेरा अपना नामकरण है।

हिन्दी कविता में युगांतर, पृ०, ४१६ ।

(प्रकाशित, १९५०)

सम्बन्ध सिद्ध किया है, परन्तु विकास की समस्त स्थितियों को कोई विद्वान् नहीं दिखा सका और यह सम्बन्ध सूत्र अधिक कल्पनाधृत ही रहा। हाँ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी, वंशस्थ और इन्द्रवंशा की विकासस्थितियाँ तो दिखाई गयी हैं, जिनका विवरण इन छन्दों के लक्षणों के साथ दिया जायगा। इन आवर्तक छन्दों में कुछ खंड-लयों का आधार है, जैसा कि आगे के वृत्तवर्गीकरण से सिद्ध होगा। इन खंड-लयों का जन्म निश्चित रूप से वैदिक युग के बाद हुआ है। यों खोजने के लिये वेद-युग से एक दो उदाहरण तो खोजे जा सकते हैं, पर इसका स्वतंत्र विकास मानना ही समीचीन है। इन लयखंडों ने भावान्दोलन से जन्म लेने के पश्चात् क्रमशः प्रयोग के द्वारा अपना रूप निश्चित किया होगा।

समस्त प्रचलित वृत्तों को देखने से पता चलता है कि कई कई वृत्त एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते हैं। एक वृत्त में जरा सा हेरफेर कर देने से दूसरा वृत्त बन जाता है। कुछ वृत्तों में आंशिक साम्य रहता है, अर्थात् एक छन्द का एक लयांश दूसरे के किसी लयांश से बिल्कुल मिलता है। इन लयों के मूल में मात्राओं से परिमाण या वजन ने भी बहुत काम किया है। वजन के आधार पर कहीं कहीं गुरु के स्थान पर दो लघु आ गये, तो वृत्त के लक्षण के अनुसार नया नाम देना पड़ा जैसे गुरु के स्थान पर दो लघु आ जाने से इन्द्रवंशा (SSSS|S|S|S), रथोद्धता (S|S||S|S|S), स्वागता (S|S||S|S|S), वसन्ततिलका (SS|S-||S|S|S) शार्दूलविक्रीडित (SSS|S|S||S/SS|S|S), और स्रग्धरा (SSSS|S/||| ||| S/ S|SS|S) से क्रमशः सुदन्त (||S|SS||S|S|S), प्रियंवदा (||S||,S|S|S), द्रुतपदा (||S|||S||S|S), ऋषभ (||S|S| ||S||S|S), मत्तेभक्रीडित (||SS||S|S| ||S/SS|S|S), और महास्रग्धरा (||SSS|S/|| ||| S/ S|SS|S) बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्तिम गुरु के स्थान पर (|S) कर देने से इन्द्रवज्रा (SS|SS|S|S) उपेन्द्रवज्रा (|S| SS ||S|S), स्वागता (S|S|:S|S|S), और वसन्ततिलका (SS|S| ||S|S|S) से इन्द्रवंशा (SS:S|S|S|S), वंशस्थ (|S|SS||S|S|S) और मृदंग (SS|S| ||S|S|S) बन जाते हैं। इसी प्रकार अल्प परिवर्तन से नवीन छन्द बनने की लम्बी सूची दी जा सकती है।

संस्कृत वृत्तों के कुछ आधारभूत लयें हैं, जिनका योग-विनियोग छन्दों में चला करता है। उनमें कुछ ये हैं :—

१. SSSS
२. ISSSSS
३. ||| ||S
४. S|SS|S
५. ||S|S
६. ||S|S
७. |S|S और S|S|
८. ||SS

९. ||| ||| S
 १०. |S| |S|S
 ११. SS ||| S या SS| SS
 १२. || SSS
 १३. अष्टक समेद S|| SS; || || SS; S|| || S; |S| SS; S|S|S; || || || ||;
 |SS|S; ||S ||S
 १४. |SSS; SSS|; S|SS
 १५. |SS; S|S; SS|; ||| ||;

संस्कृत वृत्तों के नामकरण अधिकांश उनकी वृत्ति या गुण से सम्बद्ध हैं। कोमल छन्दों का स्त्रीलिंग और कठोर छन्दों का नाम पुल्लिंग में रखा गया है। इसके अपवाद भी कम नहीं हैं। कुछ बहुत प्रचलित प्राचीन छन्दों के अतिरिक्त छन्दों के नामकरण में प्रायः सभी आचार्यों ने थोड़ी बहुत स्वतंत्रता ली है। इसका कारण यह भी है कि कभी कभी आचार्यों के सामने समस्त पूर्ववर्ती ग्रन्थ नहीं रहे हैं या उन्हें यह आभास हुआ कि यह प्रयोग नया है और उन्होंने उसका स्वेच्छा से छन्द की वृत्ति, विशेष घटना या शब्द से सम्बद्ध नाम रख दिया। पिङ्गलछन्दःसूत्र के प्रसिद्ध छन्द प्रमाणिका, विद्युन्माला, दुतविलम्बित, भुजंग-प्रयात, सग्विणी, मालिनी, हरिणी, मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी और कुसुमलतावेल्लिता को नाट्य शास्त्र में मत्तच्छेष्टित, विद्युत्लेखा, हरिणीप्लुता, अप्रमेया, पद्मिनी, नान्दीमुख, वृषभललिता, श्रीधरा, विलम्बित गति और चित्रलेखा नाम दिये गये हैं। भिन्न छन्दों का एक नाम और एक छन्द के भिन्न नामों के उदाहरण भी कम नहीं मिलते। पिङ्गल ने जिसे कनकप्रभा नाम दिया है, केदारभट्ट ने उसे मंजुभाषिणी।

नवीन मात्रिक छन्दों के नामकरण के अभाव में प्रस्तुत लेखक ने उनका नामकरण संस्कार किया है। संभव है, उनमें से कुछ छन्द मध्यकाल में प्रयुक्त हुए हों और उनका नामकरण भी हुआ हो, पर वे छन्द अप्रचलित ही रह गये हों।

छन्द

आधुनिक हिन्दी में वृत्तों के प्रयोग के पहले छन्दों पर विचार कर लेना आवश्यक है, क्योंकि छन्द का प्रयोग वृत्त से पुराना है। वैदिक युग में छन्द और संस्कृत में वृत्तों का प्रयोग हुआ है। वैदिक युग के छन्द केवल अक्षर-संख्या पर निर्भर हैं, उनमें गणों का विधान नहीं है। यद्यपि परवर्ती काल में ये छन्द गणात्मक रूप में विकसित होकर साहित्य के क्षेत्र में प्रयुक्त हुए, परन्तु गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् छन्दों की जन-साहित्य में धारा बहती ही रही। वैदिक अनुष्टुप् (अष्टाक्षर निर्मित) ने तो संस्कृत साहित्य पर भी अनन्य प्रभुत्व जमाया, पर शेष छन्द जनरूप में प्रचलित रहे और जब जन भाषाओं को साहित्य का रूप दिया गया, तब ये प्राचीन छन्द, जो जनता की ही जिह्वा पर थे, साहित्यिक रूप धारण करके आये।

अतः यह अनुमान ठीक नहीं कि वर्णिक छन्द हिन्दी में अचानक किसी कवि ने आविष्कृत कर दिये। डा० मनोज ने सेनकवि (१५६० सं०) को घनाक्षरी का पहला लेखक माना है।^१ इसके पहले भी भारत की विभिन्न भाषाओं में मुक्तक वर्णिक छन्द प्रचलित थे। मराठी कवि भीष्माचार्य ने 'मार्ग प्रभाकर' में, शाके १५०० (सं० १६६५) में, वर्णिक छन्द ओवी का बड़ा प्रौढ़ प्रयोग किया था।^२ वर्णिक मुक्त छन्द बंगला में प्रचुर मात्रा में और गुजराती में आंशिक रूप में पाये जाते हैं। इसीलिये प्रस्तुत लेखक यह नहीं मानता कि वर्णिक छन्द का आविष्कार मध्यकाल में किसी कवि ने किया। वर्णिक छन्दों की यह परंपरा वैदिक युग से चली आ रही है, जो समस्त आर्य-भाषाओं में विभिन्न रूपों में विकसित हुई।

घनाक्षरी छन्द का संबंधसूत्र वैदिक अनुष्टुप् से है, जो लय की विभिन्न अवस्थाओं में विकसित होकर भी अपनी अक्षर-संख्या को अधुण रख सका। उसका अन्तिम सप्तक उष्णिक् (७ अक्षर) का ही रूप है। वैदिक युग का केवल अनुष्टुप् छन्द ही ऐसा है, जो ऋग्वेदकाल से लेकर आज तक भारत की भाषाओं में विभिन्न रूपों में परिव्याप्त है। श्रीसुमित्रानन्दन पन्त ने घनाक्षरी को हिन्दी का अपना छन्द न मानकर तथ्य की अनभिज्ञता का परिचय दिया है,^३ वस्तुतः मुक्तक वर्णिक छन्द हिन्दी की पतृक संपत्ति है।

हिन्दी में सर्वैया छन्दों ने भी पूर्णतया मुक्तकवर्णिक छन्दों का रूप धारण कर लिया, मध्यकाल में ये छन्द वृत्त के रूप में थे। ब्रजभाषा में तो गुरु को लघु पढ़ कर सर्वैयाछन्द की गणात्मकता की आंशिक रक्षा की गयी, पर खड़ी बोली में उसका प्रयोग शुद्ध मुक्त वर्णिक रूप में होने लगा है। सनेही स्कूल के कवि—विशेषतः अनूप शर्मा गुरु को लघु करके

१— डा० मनोज की खोज में प्रथम घनाक्षरी लेखक किसी सेनकवि का नाम तथा उसका छन्द प्राप्त हुआ है, लेकिन उसका अनुमान है कि सेन कवि के पहले भी इस छन्द की रचना अवश्य होती होगी, क्योंकि सेन कवि का छन्द प्रौढ़ प्रतीत होता है। सेन कवि का रचनाकाल सं० १५६० वि० है। अतः पृथ्वीराज-रासो (जो १२ वीं शताब्दि में बना) के बाद ही इस छन्द का अवतार हुआ होगा। सेन कवि अवश्य कोई संगीतज्ञ या मार्दगिक होंगे, क्योंकि घनाक्षरी छन्द ध्रुपद ताल पर बहुत अच्छा बैठता है। भूमिका, पृ० ३, शर्वाणी।

२—महानुभाव लोकांत शके १५०० च्या मागे पुढें भीष्माचार्य नामक ग्रंथकाराने आपल्या मार्गप्रभाकर नामक ग्रंथाच्या सानखंडांत श्रीनीचें पुढील प्रमाणे बान्धलेंले लक्षण विद्वनाथ काशीनाथ राजवाडे यानीं आपल्या मराठी छन्द या पुस्तकते उद्धृत केले आहे—
“गायत्री छन्दापासौनि धृतिपर्यन्त। ग्रन्थ बोवियाचें तीन चरण जतावें निश्चित। ‘प्रतिष्ठे-पासौनि जगती’ पर्यन्त चौथा चरण।”

छन्दोरचना, पृ० ५१४।

३—कवित्त छन्द मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का औरस जात नहीं, पोष्यपुत्र न जाने, यह हिन्दी में कैसे और कहाँ से आ गया। अक्षर मात्रिक बंगला छन्द में मिलते

कभी भी सबैया का पाठ नहीं करते। वृत्तात्मक क्षीणकाय सबैयों ने हिन्दी में बूढ़ मांसल स्वरूप धारण करके मुक्तक वर्णिक छन्द की स्थिति प्राप्त कर ली है। छन्दोमंजरी में मदिरा (७ भ + ग) का वर्णन किया है। किरिट (८ भ) का वर्णन 'प्राकृतपेंगलम्', 'छन्दोऽनुशासन' और 'छन्दोमंजरी' में आया है।^१ दुर्मिल का लक्षण 'प्राकृत-पेंगलम्' और 'छन्दोमंजरी' में दिया गया है।^२ 'मतगयंद' का लक्षण 'वृत्तरत्नाकर' में दिया गया है।^३ इन प्रमाणों से इन छन्दों की प्राचीनता सिद्ध होती है।

घनाक्षरी

यह मुक्तक वर्णिक छन्द है।^४ कुछ विद्वानों ने मुक्तक का एक अलग भेद माना है, पर इसे वर्णिक छन्द का भेद मानना वैज्ञानिक है। इसके दूसरे नाम कवित्त और

हैं, हिन्दी के उच्चारण-संगीत की वे रक्षा नहीं कर सकते। कवित्त को हम संलापोचित (Colloquial) छन्द कह सकते हैं, सम्भव है पुराने समय में भाट लोग इस छन्द में राजा महाराजाओं की प्रशंसा करते हों और इसमें रचना सौकर्य पाकर, तत्कालीन कवियों ने धीरे-धीरे इसे साहित्यिक बना दिया। पर कवित्त छन्द हिन्दी के इस स्वर और लिपि के सामंजस्य को छीन लेता है। उसमें यति के नियमों के पालनपूर्वक, चाहे आप इकतीस गुरु अक्षर रख दें, चाहे लघु, एक ही बात है, छन्द की रचना में अन्तर नहीं आता। इसका कारण यह है कि कवित्त में प्रत्येक अक्षर को, चाहे वह लघु हो या गुरु, एक ही मात्राकाल मिलता है, जिससे छन्दबद्ध शब्द एक दूसरे को भ्रंश करते हुए, परस्पर टकराते हुए, उच्चारित होते हैं, हिन्दी का स्वाभाविक संगीत नष्ट हो जाता है।^५ कवित्त में परकीय, मात्रिक छन्द में स्वकीय, हिन्दी का अपना उच्चारण मिलता है।

पल्लव, प्रवेश, पृ० २६।

१—प्रा० प्र० २।२१०, छन्दोऽनुशासन (२।३७६), छन्दोमंजरी (२।२२१)।

२—प्रा० पं० २।२०८, छन्दोमंजरी (२।२२२)।

३—वृत्तरत्नाकर निर्णयसागर प्रेस, 'भैरवसप्तभिरत्र कृता गुरुणा गुरुणा च मयूरगतिः स्यात्'।

४—अक्षर की गिनती यदा, कहूँ-कहूँ लघु गुरु नेम।

वर्णवृत्त में ताहि कहि, मुक्तक कहें सप्रेम। (आचार्य भिखारीदास)
मुक्तक उसे कहते हैं, जिसके प्रत्येक पाद में केवल अक्षरों की संख्या का ही प्रमाण रहता है अथवा कहीं कहीं गुरु-लघु का नियम होता है। इसे मुक्तक इसलिये कहते हैं, कि यह गणों के बंधन से मुक्त है अथवा कविजनों को मात्रा और गणों के बंधन से मुक्त करने वाला है।

छन्द-प्रभाकर, पृ०, २१४ आचार्य भानु।

मनहरण है। यह छन्द मुक्तक स्फुट-रचना के अधिक अनुकूल है। प्रबंध काव्य की धारा में यह छन्द व्याघात उपस्थित करता है। इस छन्द की प्रकृति अपने में स्वाधीन और पूर्ण होने की है। अनूप जी ने 'सुमनांजलि' में घनाक्षरी छन्द में लम्बी कविताएं लिखी हैं, पर इन प्रयोगों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि इस छन्द में प्रबन्ध का संगुम्फन नहीं है। जहाँ कहीं एक भाव दो कवित्तों में दिया जाता है, वहाँ छन्द और भाव दोनों ही बिगड़ जाते हैं। इन छन्द में, सभी प्रमुख रसों में सफल होने की क्षमता है। इसका नियम ८, ८, ८, ७ वर्णों का संयोग है। कभी-कभी लिपि के अनुसार ८, ८, ७, ८ या ७, ९, ७, ८ आदि क्रम-यति प्रतीत होती है, पर वस्तुतः लय के अनुसार ८, ८, ८, ७ पर ही यति होती है।^१ आचार्य भानु जी ने इसके अन्त में गुरु होने का नियम माना है।^२ इसके अतिरिक्त कवित्त में सम-विषम-अक्षर-मैत्री का नियम भी अनिवार्य है। सम-सम-अक्षरों का योग ललित होता है, पर यदि विषम वर्ण-संख्या (१, ३, ५, ७) का शब्द आ जाय, तो तुरन्त विषम वर्ण-संख्या के शब्द का प्रयोग करके सम (विषम + विषम = सम) कर लेना चाहिये। आठ अक्षरों के प्रयोग में सम योग (नारायण ! नारायण !), विषम विषम सम-योग (कितने विचार सूत्र) तो मान्य है, पर सम विषम विषम-योग (अति सुन्दर कमल) और विषम सम विषम-योग (कंज में केलि ललित) के प्रयोग अमान्य हैं।^३ डा० रसाल अक्षर-

१—कवित्त रचने का साधारण नियम यह है कि (८, ८, ८, ७) वर्णों का प्रयोग होता है। यथासंभव इन्हीं में पाद पूर्ण होते जायें। यदि न हो सके, तो १६ और १५ पर अवश्य ही पद पूर्ण हों। कहीं-कहीं पदयोजना ऐसी आ पड़ती है कि इस नियम के हिसाब से उसमें कुछ अन्तर देख पड़ता है यथा (८, ८, ७, ८) वा (७, ९, ७, ८), परन्तु लय के अनुसार मिलान करके देखिये, तो यथार्थ में मूल सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि एक की विषमता दूसरे में लुप्त हो जाती है और फिर (८, ८, ८, ७) ही सिद्ध होते हैं।

छन्दः प्रभाकर, पृ० २१५।

२—आठों जाम जोग राग, गुरु पद अनुराग, भक्तिरस ध्याय संत मन हर लेते हैं। पिंगलार्थ (८ + जाम ८ + योग + ८ राग + ६ + ग) अर्थात् ३१ वर्ण का मनहरवृत्त होता है। आठ और याम का योग = १६ और भक्ति (६) + रस (६) = १५ पर यति होती है। इसमें अन्त का वर्ण गुरु होता है, शेष के लिए गुरुलघु का नियम नहीं है।

पृ० २१४, छन्दः प्रभाकर।

३—आठ, आठ आठ पुनि, सात वरनन सजि,

अंत एक गुरु पद, अवसहि धरिकें।

सम सम सम सम, विषम विषम सम,

सम विषमहु बोय, प्रति आठ करिकें।

मैत्री के अतिरिक्त मात्रा-मैत्री भी मानते हैं।^१ लेखक की दृष्टि से मात्राओं का भी सममूलक नियम ही चलता है, केवल अष्टक के आदि या अन्त में विषम मात्रा मान्य होती है, मध्य में सममूलक मात्रा-मैत्री आवश्यक है। जहाँ इस नियम का पालन नहीं होता, वहाँ शिथिलता आ जाती है। कवित्त के अन्त में संपूर्ण शब्द में मगण (SSS) नहीं आना चाहिये, यदि हो, तो अन्तिम गुरु पहले के दो गुरुओं से अलग होना चाहिये। प्रायः इस अवस्था में अन्तिम अक्षर क्रिया या कारक की विभक्ति के रूप में आता है। मनहरण छन्द के अन्त में मगण (SSS) और रगण (SSS) का प्रयोग मान्य है, यगण (SSS), जगण (SSS), भगण (SSS), नगण (SSS) का अविकल प्रयोग अमान्य है। रूप घनाक्षरी के अन्त में तगण या जगण आता है। आधुनिक युग में ब्रज-भाषा में इसका प्रयोग रत्नाकर, सत्य नारायण 'कविरत्न', रसाल, सरस, हर दयालु सिंह, त्रिभुवन नाथ सिंह 'सरोज', और माधव-मधुप' के रचयिता माधव चरण द्विवेदी 'माधव' ने किया है। खड़ी बोली में श्री गोपालशरण सिंह, अनूप शर्मा, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर और शिशु जी ने घनाक्षरी का प्रयोग किया है। इन सबों में अनूप शर्मा अनन्य घनाक्षरी-सिद्ध कवि हैं। इस छन्द के पढ़ने की विभिन्न शैलियाँ विकसित हुई हैं, जिनमें सनेही, हितैषी, अनूप, शिशु, सरोज चौधरी, नवीन त्रिवेदी, चतुर्भंज शर्मा, उमादत्त 'दत्त', माधव द्विवेदी और निशंक की घनाक्षरी पढ़ने की अलग अलग शैलियाँ हैं। यहीं 'शर्वाणी' के 'महिषवध' से एक उदाहरण दिया जाता है :—

दोय विषमनि बीच, सम पद रखिए ना ,

राखे लय नष्ट होत, अतिहि बिगिरि कै ।

हरि पद परिकै जु, सुमति सुधरि कै सो ,

रचिये कवित्त इमि, गुरुहि सुमिरि कै ।

छन्दः प्रभाकर, पृ० २१६ ।

१—इस छन्द की रचना के विषय में छन्दःशास्त्र कोई भी व्यापक नियम नहीं देता। हाँ, इतना अवश्य कहता है कि यह वर्णिक वृत्त है, इसमें ८, ८, ८ और ७ के क्रम से १६ और १५ पर यति या विराम देते हुये ३१ वर्ण रखे जाते हैं और इसकी गति पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है, किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होता है कि यह केवल वर्णिक वृत्त ही नहीं है, वरन् मात्राओं तथा गुरुलघुमूलक गणों के प्रभाव से भी प्रभावित होता है। इस छन्द की रचना भिन्न-भिन्न कवियों ने भिन्न-भिन्न रूपों में की है।

उद्भवशतक, प्राक्कथन, डा० रसाल, पृ० ६५ ।

वाम पद की है बार/बार बलिहारी, अम्ब/ !	(८ + ८)	वर्ण
देख जिसे हो गया/छपाकर भी छत्ता सा/ ।	(७ + ८)=(८ + ७)	„
फैली अनवद्य सद्य-/जात सी नखों की ज्योति/,	(८ + ८)	„
कर सुरसरि का/प्रभाव गतसत्ता सा/ ॥	(७ + ८)=(८ + ७)	„
एक ही प्रहार में/उदर-गत भेजा हुआ/,	(७ + ९)=(८ + ८)	„
कम्पित कलेजा हुआ/चलदल पत्ता सा/ ।	(८ + ७)	„
खींच लिया प्राण रक्त/सार सा असार कर/,	(८ + ८)	„
फेंक दिया महिष/महावर के लत्ता सा/ ।	(७ + ८)=(८ + ७)	„

अनूप शर्मा

घनाक्षरी के अन्तिम चरण में प्राण केन्द्र होता है, अतः भानु जी ने घनाक्षरी को दो बार पढ़ने का नियम माना है ।^१

रूप घनाक्षरी :—इस छन्द में ८, ८, ८, ८, के क्रम से ३२ वर्ण होते हैं, अन्त में ५ होता है । अन्तिम लघु के पहले दो गुरु व्यावृत्त और तीन गुरु सुमधुर होते हैं । अन्त में संपूर्ण जगण (१५) निष्कण्ट है । इस स्थिति में जगण के पूर्व गुरु वर्ण होना चाहिए :—

स्वच्छतर अम्बर में/छन कर आ रहा था/,	(८ + ८)	वर्ण
स्वादु मधु-गन्ध से/सुवासित समीर सोम/ ।	(७ + ६)=(८ + ८)	„
त्यागी प्रेम याग के/व्रती वे कृती जायापती/ ,	(७ + ६)=(८ + ८)	„
पान करते थे गल/बाँह दिये, आपा होम/ ।	(८ + ८)	„
क्षुद्र कास कुश से/लगाकर समुद्र तक/,	(७ + ६)=(८ + ८)	„
मेदिनी में किसका था/मुदित न रोम रोम/ !	(८ + ८)	„
समुदित चन्द्र किरणों का चौर ढारता था/,	(८ + ८)	„
आरती उतारता था/दिव्य दीपवाला व्योम/ ^२ ।	(८ + ८)	„

जलहरण :—यदि ३२ अक्षरों के चरण के अन्त में दो लघु हों, तो उसे जलहरण छन्द कहते हैं :—

अधर तरंग-भंगि/मा को भजते ही रहे/,	(८ + ८)	वर्ण
होती रहीं कंपमान/कुंचित भ्रुवें विशद/ ।	(८ + ८)	„

१—प्रत्येक सवैया और कविता को दुहराकर पढ़ना उचित है, क्योंकि उसका संपूर्ण आशय चतुर्थ पद वा चतुर्थ पद के उत्तरार्द्ध में आश्रित रहता है । जब तक चतुर्थ पद पढ़ने का समय आता है, तब तक पहले तीन चरणों का सम्बन्ध ठीक स्मरण नहीं रहता, परन्तु दुहराने से सब आशय भलीभाँति समझ में आ जाता है ।

छन्दः प्रभाकर, पृ० २१७

२—साकेत, पृ० ३३६, श्री मैथिली शरण गुप्त ।

रोम शक्ति संचित/उदंचित बने हैं रहे/,	(७+६)=(८+८) ,,
फैला रहा रक्षितम/मुखारविद पै भी मद/।	(७+६)=(८+८) ,,
रह गया कर का/त्रिशूल भी तना का तना/,	(७+६)=(८+८) ,,
वसुधा-विलोडित/विलोक के जया का नद/।	(७+६)=(८+८) ,,
बैठा बरिबंड महि/षा सुर के मुंड पर/,	(८+८) ,,
प्रबल प्रचंड अच/लेश-नन्दिनी का पद/। ^१	(८+८) ,,

घनाक्षरी के अन्य भेदों—जनहरण (३० ल+ग), कलाधर (15 × १५+ग), डमरू (३२ ल), कृपाशा (३० ल+५) और देव घनाक्षरी (३३ वर्ण, अन्त में नगण) का प्रयोग खड़ी बोली में नहीं हुआ है, पर अनेक नवीन भेदों की आयोजना हुई है। गुप्त जी ने मेघनादवध (हिन्दी अनुवाद), सिद्धराज, जयभारत में अतुकान्त और नहुष में तुकान्त रूप से घनाक्षरी के अन्तिम १५ वर्णों का चरण मानकर नवीन आयोजना की है। श्री अनूप शर्मा 'गांधी चरित' में इसी छन्द का प्रयोग कर रहे हैं।

मैथिली छन्दः—घनाक्षरी के द्वितीय अर्द्धचरण (८+७ वर्ण, अंत SSS या 11S या SIS) के लयाधार पर निर्मित छन्द का, श्री मैथिलीशरण गुप्त ने बहुशः प्रयोग किया है, अतः छन्द की संज्ञा उन्हीं के नाम पर दी गई है, यद्यपि सूर और तुलसी ने अपने पदों में इस छन्द का प्रयोग किया है।

राम तुम मानव हो/ ईश्वर नहीं हो क्या ?	(८+७)	वर्ण
विश्व में रमे हुए/नहीं सभी कहीं हो क्या ?	(७+८)	"
तब मैं निरीश्वर हूँ/, ईश्वर क्षमा करे ;	(८+७)	"
तुम न रमो, तो मन/तुम में रमा करे। ^२	(८+७)	"

गुप्त जी ने 'नहुष' खण्ड काव्य में इस छन्द का प्रयोग युग्मकों के रूप में किया है। यह छन्द प्रबन्धधारा के अनुकूल पड़ता है, जब कि घनाक्षरी छन्द प्रतिकूल पड़ता हैः—

ऊलती तरंगों पर/झूलती सी निकली/,	(८+७)	वर्ण
दो-दो करी/कुंभी यहाँ/झूलती सी निकली/,	(८+७)	"
क्या शक्तव मेरा जो मि/ली न शची भामिनी/,	(८+७)	"
बाहर की मेरी सखी/ भीतर की स्वामिनी/,	(८+७)	"
आह ! कंसी तेजस्विनी/, आभिजात्य अमला/,	(८+७)	"
निकली सुनीर से यों/, क्षीर से ज्यों कमला/। ^३	(८+७)	"

१—शर्वाणी, पृ० २२४, अनूप शर्मा।

२—साकेत, पृ० ६, गुप्त।

३—नहुष, पृ० २५—२६, गुप्त।

अर्चना : रूप घनाक्षरी के द्वितीय अद्वचरण (८, ८ वर्ण, अंत SSI या ISI) के लयाधार को इकाई मानकर प्रस्तुत लेखक ने भी कुछ प्रयोग किए हैं :—

हे प्रजापते ! त्रिलोक/ में है एक तू अनन्य/, ८+८ वर्ण, अंत SI
 विश्वजीवचेतना-विधातः ! सृष्टि-कर्म धन्य !/ (७+९=८+८) वर्ण
 पूर्ण हों निखिल काम/नाएँ मन की ललाम/, (८+८) ,,
 वैभव धनेश का सा/ इन्द्र का सा भोगधाम/। (८+८) ,,
 (ऋग्वेद, मं० १०, सू० १२१, छन्द १० का अनुवाद)

श्री सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' में २३ (१२, ११) वर्ण का छन्द प्रयुक्त किया है। घनाक्षरी के सप्तक और अष्टक में चतुरक्षरी जोड़ कर यह छन्द बनाया जाता है। उसके छन्द में १२ अक्षरों के बाद यति आती है। समझने के लिये इसका रूप १२ (८+४) और ११ (४+७) वर्ण के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। अन्त घनाक्षरी के तुल्य होता है।

शरण छन्द :—

जिसकी अलभ्य एक विन्दु सुधा/, १२ वर्ण
 जाने किस दूर के जगत से/, ११ ,,
 जाग्रत करेगी सदा प्राण धुधा/, १२ ,,
 प्राण में प्रलुब्ध अनागत के/, ११ ,,
 आज वह विभु का अजस्र दान/, १२ ,,
 प्राप्त है विना प्रयास हमको/, ११ ,,
 होता नहीं रंच परिमाप-मान / १२ ,,
 वह है दिवा-विभास हमको/ ! ११ ,,
 (बापू, ४)

इस छन्द में चार चरण तो हैं, पर अन्त्यानुप्रास घनाक्षरी के तुल्य चतुष्क में न होकर मात्रिक छन्दों की भाँति युग्मकों में है। 'बापू' में ११ और १२ वर्णों के चरण को बिना क्रम के भी प्रयुक्त किया गया है :—

आगे की शताब्दियों गवाक्ष खोल /, १२ वर्ण
 विलग भविष्य के निकेतन में/, १२ ,,
 आगे झुक विस्मितदृगी अलोल/, १२ ,,
 ध्यान निज लाकर श्रवण में/, ११ ,,
 कुछ सुनती हैं बड़ी दूर वहाँ, १२ ,,
 कुछ गुनती हैं,—'बड़ी दूर कहाँ १२ ,,
 बोल रहा कौन वह जन है / ? ११ ,,
 खोल रहा अन्तर कपाट यहाँ/। १२ ,,

(बापू, ३)

श्री रामकुमार वर्मा ने पदान्तर अन्त्यानुप्रास देकर मैथिली छन्द की रचना की है:—

मीरा ! पद-वन्दन तुम्हारा बार बार है,	१५ वर्ण
वन्दना की स्वामिनी ! मुझे दो वह रागिनी,	"
जिसके स्वरों में कृष्ण गोकुल-गोपाल हो,	"
नाच उठे होके अनुरागी, अनुरागिनी !	"

(मीरास्मृति ग्रन्थ)

पयार—: यह छन्द १४ (८ + ६) वर्णों के चरण के आधार पर बनता है। बँगला में यह सर्वाधिक प्रचलित छन्द है। बँगला के संपर्क में आकर भारतेन्दु और हरिऔध ने कुछ असफल प्रयोग किये हैं। यह छन्द हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है:—

मतिमान सरोवर/ मंजुल मराल/,	(८ + ६) वर्ण
संभावित समुदाय/ सभासद वृन्द/।	"
भाव कमनीय कंज/ परम प्रेमिका/,	"
नव-नव रस लुब्ध/ भावुक मिलिन्द/। ^१	"

(पद्य-प्रसून, हरिऔध)

घनाक्षरी के अन्तिम सप्तक (७ वर्ण, अन्त SSS; JS; IIS) के आधार पर कुछ अन्य अभिनन्दनीय प्रयोग भी हुए हैं:—

दान ज्ञान-पथ का,	७ वर्ण
स्नेह भगीरथ का,	"
पूज्य पितृ-जप से,	"
आपके सुपत से,	"
ये उपाधि आई है।	"
आपको बधाई है ॥	"

(श्री रामनारायण शुक्ल)

१—नीचे बँगला पयार का उदाहरण रवि बाबू के एक गीत से दिया जाता है:—

ए दुर्भाग्य देश हते/, हे मंगलमय/,	(८ + ६) वर्ण
दूर करे दाओ तुमि/सर्व तुच्छ भय/,	"
मस्तक तूलिते दाओ/अनन्त आकाशे/,	"
उदार आलोक माओ/उन्मूक्त वातासे/।	"

(नैवेद्य, ४८)

सवैया-छन्द

यह लिखा जा चुका है कि खड़ी बोली में सवैया छन्द ने वृत्त रूप छोड़कर पूर्ण-तया मुक्तक रूप धारण कर लिया है। वर्तमान प्रयोगों में केवल सगण (॥S) के आधार पर एक आरोहमूलक ध्वनि चलती है। सगण में प्रायः दूसरे लघु वर्ण को दीर्घ करने की स्वतंत्रता ली गयी है। कहीं-कहीं पहला लघु अक्षर भी दीर्घ किया गया है, केवल चरण के आरंभ में यह संभव नहीं है। अहि (६ भ + मगण), मन्दारमाला (७ त + ग), मदिरा (७ भ + ग), वागीश्वरी (७ य + लग), सर्वगामी (७ त + SS), सुमुखी (७ ज + IS), मत्तगर्गद (७ भ + SS), चकोर (भ ७ + ग/ल), सुन्दरी (८ स + ग), अरविद (८ स + ल), लवंगलता (८ ज + ल), सुख (८ स + ल/ल), गंगौदक या गंगाधर (८ र), दुर्मिल (८ सगण), आभार (८ त), मुक्तहरा (८ जगण), वाम (७ ज + य), महानाग (८ य), रसात (७ भ + र), किरीट (८ भ) आदि सवैया छन्द के प्रभेद हैं।

मत्तगर्गद :— इसमें २३ वर्ण होते हैं, आधार ७ भ + SS है। खड़ी बोली में इस छन्द के बीच यति का स्थान निश्चित नहीं। प्रायः एक श्वास में चरण का पाठ होता है, बहुत से कवि १० अक्षरों के बाद पहिले की भाँति अब भी यति रखते हैं :—

भाल में अंकित देखी सुधा, जिनके, उनको विष घूँटते देखा।

भूल में लोटना था जिनको, उनको सुख संपति लूटते देखा।

जो जकड़े विषयों से रहे, उनका भवबंधन छूटते देखा।

फूलते औ फलते तरु के, फल को गिर दूटते फूटते देखा।

(सुनाल, १ अनूप शर्मा)

दुर्मिल :— यह २४ अक्षरों का छन्द है, जिनका आधार गणात्मक दुर्मिल (८ सगण) है। इस छन्द में १२ अक्षरों के बाद यति होती है और प्रायः सगण के दूसरे लघु को गुरु करने का स्वातन्त्र्य लिया जाता है, जैसे कि नीचे चिह्नांकित अक्षर हैं :—

अति उज्ज्वल चाँदनी-हो छिटकी, घन हों न कहीं पर दामिनी हो।

नवयौवन हो रस रंग भरा, सुख साज सोहाग की यामिनी हो।

सुमनावलि सज्जित मँजु महा, तरणी अति मंथर-गामिनी हो।

कशमीर हो, ग्रीष्म हो, डल हो, सुरा हो, संग, सुन्दर कामिनी हो^१।

(सुनाल, ९७, अनूप शर्मा)।

१—शुद्ध वृत्त का उदाहरण नीचे दिया जाता है, पर यह हिन्दी की वृत्ति के अधिक निकट नहीं है :—

सुन्दरी :— यह २५ अक्षरों का छन्द है । प्राचीन रूप (८ स + ग) है । आजकल लघु अक्षरों को गुरु करने का स्वातन्त्र्य लिया जाता है, अतः इसका रूप मुक्तक हो गया है । यति का स्थान पूर्णतया निश्चित नहीं रहा, पहले १२ अक्षरों के बाद यति होती थी, कहीं-कहीं अब भी इसका अनुगमन होता है :—

यह होगा महारण राग के साथ, युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा,
नर-संस्कृति की रणछिन्न लता पर शान्ति-सुधा-फल दिव्य फलेगा,
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पंथ की, मानव ऊपर और चलेगा,
मनु के यह 'पुत्र निराश न हों', नवधर्म प्रदीप अवश्य जलेगा ।

(कुरुक्षेत्र, पंचम सर्ग)

मुक्तहरा :— इस छन्द में आठ जगण होते हैं । प्रस्तुत प्रयोग में वृत्त के दृढ़ बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने और मुक्तक वर्णिक वर्ग के समीप लाने के लिए लघु के स्थान पर गुरु वर्ण-प्रयोग की स्वतन्त्रता ली गयी है । इसका सरल लक्षण यह है कि मत्तगयंद सवैया के चरण के आदि और अन्त में क्रमशः एक-एक लघु अक्षर जोड़ दिया जाता है । इस सवैया में ग्यारह वर्णों के बाद यति आती है । यह छन्द श्रृंगार और करुण रस के अनुकूल है ।

अतीव हैं स्वल्प विधान यहाँ, प्रणयी गृह-काज सँवारिये, देवि !
स्वपाणि के कोमल स्पर्श के मन्त्र से शीश का भार उतारिये, देवि ;
सुदर्शने ! चित्त अधीर हुआ, निराधार सा आप विचारिये, देवि !
वियोग के कष्ट अनेक मुझे, कृपया अब क्षीघ्र पधारिये, देवि !

(लेखक)

दुर्मिल के अन्त में (१५) का योग या अरसात (७ भ + र) के पहले दो लघु जोड़ कर दिनकर जी ने नवीन सवैया का प्रयोग किया है, जिसकी यति अनिश्चित है :—

कुछ के अपमान के साथ पितामह ! विश्व-विनाशक युद्ध को तौलिये ।
इनमें से विघातक पातक कौन बड़ा है रहस्य विचार के खोलिये ।
मुझ दीन, विपन्न को देख, दयाद्रं हो, देव ! नहीं निज सत्य से डोलिये ।
नर नाश का दायी था कौन ? सुयोधन या कि युधिष्ठिर का दल ? बोलिये ।

(कुरुक्षेत्र, पंचम सर्ग)

सखि, नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा तरता तरता ।
अब तारक—मौखिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता ।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी, चलता उनको धरता धरता,
गड़ जाँय न कण्टक भूतल के, कर डाल रहा डरता डरता !

(साकेत, नवम सर्ग, पृ० २०७, गुप्त)

सर्वैया-वर्ग में इसी प्रकार सगण और भगण के आधार पर अन्य नवीन प्रयोग किये जा सकते हैं ।

अनुष्टुप् या अनुष्टुभ्

अनुष्टुप् छन्द गायत्री से भी पुराना है ।^१ ऋक् प्रातिशाख्य में अनुष्टुभ् का लक्षण 'आठ अक्षर के चार खंडों से मिलाकर ३२ अक्षर का छन्द कहा गया है ।^२ श्रुतिबोध में अष्टकों का पंचम अक्षर सर्वत्र लघु; दूसरे और चौथे अष्टक का सातवाँ अक्षर लघु; छठा सर्वत्र गुरु तथा पहले और तीसरे अष्टक का सप्तम अक्षर दीर्घ माना गया है ।^३ वराहमिहिर पाँचवाँ अक्षर सर्वत्र लघु और दूसरे चौथे अष्टक का सातवाँ अक्षर लघु मानते हैं ।^४ आचार्य भानु जी ने भी ज्यों का त्यों यही मत स्वीकार किया है ।^५ आचार्य नारायण भट्ट ने प्रथम

1. Gayatri on the whole appears to be latter than Anustubh and the lyric metres. This is first suggested by the form of stanza; for the whole balance of the Indo-European structure of metres is based upon duality and the stanza of three verses seems to be a reduction from the normal stanza of four. Page 171, Ch. 11.

Vedic Metre-In its Historical Development.

By E. Vernon Arnold.

१— द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप्, चत्वारोऽष्टाक्षराः समाः ।

ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १६, मंत्र १७ ।

२— श्लोके षष्ठं गुरुर्जयं सर्वत्र लघुपंचमम् ।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः । १०।

| SS | | S |

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।

| SS | | S |

षष्ठं गुरुर्विज्ञानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् । ११ । श्रुतबोध ।

३— पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।

यद्वच्छ्लोकाक्षरं तद्वत्लघुतां याति दुःस्थितैः ।

बृहत्संहिता (१०३, ५७)

४— जामे पंच ल षड् गुरु, सप्तौला सम पाद को ।

श्लोक अनुष्टुप् सोई, नेम ना जहँ आन को ॥

पंचमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।

गुरुः षष्ठन्तु पादानामन्येष्वनियमी मतः ॥

छन्दःप्रभाकर, पृ० १२८, आचार्य भानु ।

और तृतीय अष्टक में, पहले अक्षर के बाद नगण और सगण का निषेध तथा चार वर्णों के बाद यगण का विधान किया है, एवं दूसरे और चौथे अष्टक में पहले अक्षर के बाद रगण का निषेध किया है।^{१५} श्री माधवराव पटवर्धन ने विषम चरणों के अंत में (S || S), (S |||), (||| S) और (|| ||) का, एवं सम चरणों के आरंभ में (SS |S) तथा (|S |S) का निषेध किया है।^{१६} उन्होंने भी विषम चरणों के अन्त में (|SSS) एवं सम चरणों के अन्त में (|S |S) का अक्षरक्रम माना है।^२

वर्नन अनलिट ने अनुष्टुप् के लघुक्रम के बारे में कहा है कि विषम अष्टक (प्रथम, तृतीय चरण) का अन्त और अष्टक (द्वितीय एवं चतुर्थ चरण) अष्टक का प्रारंभ अधिकांश में (|SSS) होता है।^३

इसी अनुष्टुप् छन्द का विकास आर्यभाषाओं के विभिन्न वर्णिक छन्दों के रूप में हुआ है जैसा कि बंगाली और मराठी छन्दों का विवरण देते हुए कहा जा चुका है। हिन्दी में, इसी के विकसित रूप घनाक्षरी और उसके प्रभेदों का विवरण दिया जा चुका है। आधुनिक युग में अनुष्टुप् के प्रयोग विरल ही हुए हैं, नीचे एक उदाहरण दिया जाता है:—

५—वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेयोऽनुष्टुभि ह्यातम् । २१।

द्वि० अ०, वृत्तरत्नाकर ।

आद्यादक्षरादूर्ध्वं नसौ नगणसगणौ न स्याताम्,

मगणादिर्यथेच्छं स्यात्, अब्धेश्चतुर्थादक्षरादूर्ध्वं-यो यगणः

स्याद्यादि, तदा वक्त्रं नाम ह्यातम् । तच्चानुष्टुभिह्यातमुक्तमाचार्यैरिति ।

समयोऽप्यपादयोः प्रथमादक्षरादूर्ध्वं रगणोऽपि न कार्य इति सम्प्रदायः ।

(नारायण भट्ट टीका)

१—म्हणजे विषम चरणारम्भोः (S || S), (S |||), (|| S) आणि (|| ||), हे चार गण वर्ज्य होत । (SS |S) आणि (|S |S) हे दोन गण विषम चरणारम्भो वर्ज्य न सून सम चरणारम्भो वर्ज्य दिसतात । पृ० १०७, छन्दोरचना ।

२—परन्तु दोन श्लोकां चा अर्थ एवं ठांच होतो की विषम चरणांतीं (| S S S) हा अक्षरक्रम असावा आणि समचरणांतीं (| S | S) हा अक्षरक्रम असावा । पृ० १०५ छन्दोरचना ।

3—The Epic Anustubh stanzas consists of two pairs of diameter verses in each of which the cadence of the first verse and the opening of the second approximate to the rhythm $\underline{\quad} _ _ \underline{\quad}$

Vedic Metre, By E. Vernon Arnold,

लंका में प्रिय की वार्ता/, सुनके आंजनेय से/, (८ + ८) वर्ष

तुष्ट सीता हमें रखें/, प्रेम के साथ श्रेय से/॥ (८ + ८)
पत्रावली, मङ्गलाचरण, गुप्त ।

वृत्त

आधुनिक युग में वृत्त प्रयोग का आरंभ द्विवेदीकाल से हुआ है । मध्यकाल में भी आचार्य केशवदास जैसे संस्कृतज्ञ कवियों ने वृत्त का प्रचुर प्रयोग किया था, और वह भी हिन्दी की तुकान्त शैली में । रीतिकाल में कवित्त-सर्वयों के सामने यह धारा दब गयी थी । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने खड़ी-बोली-काव्य के अभ्युत्थान में हिन्दी कविता का सम्बन्ध, फिर संस्कृतकी विशाल वृत्त-परंपरा से स्थापित किया । इस परम्परा की स्थापनाके लिये स्वयं उन्होंने बहुत से संस्कृत काव्यों का अनुवाद किया^१ और मौलिक कवितायें लिखीं ।^२ इन कविताओं में द्विवेदी जी ने लगभग समस्त प्रचलित वृत्तों (द्रुतविलंबित, वंशस्थ उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, और स्रग्धारा आदि) को प्रयुक्त करके समकालीन कवियों के लिये नया आदर्श उपस्थित किया । वृत्तों का इतना विस्तृत प्रयोग द्विवेदी जी के पहले हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया था, अतः द्विवेदी जी को ही इस परंपरा के शिलारोहण और आरम्भक-निर्माण का श्रेय है । 'देवी-स्तुति' में आद्योपान्त १०० वसन्ततिलका छन्दों की रचना, उनकी शक्ति और प्रतिभा का परिचय देती है । व्रजभाषा के प्रचुर प्रयोग के बाद उन्होंने 'हे कविते !'^३ शीर्षक कविता में पहली बार खड़ी बोली का प्रयोग किया ।

१—(अ) 'महिम्न-स्तोत्र' (गणधरराज पुष्पदन्ताचार्य के 'महिम्न स्तोत्र' का पद्यानुवाद, रचना-काल १८८५ ई०, प्रकाशन १५ जनवरी, १७६१)

(ब) 'विहार-वाटिका' (गीतगोविंद का छायाानुवाद, १५ जनवरी १८६०)

(स) ऋतुतरंगिणी (कालिदास के 'ऋतुसंहार' का छायाानुवाद, १ फरवरी १८६१)

(द) श्री गंगालहरी (जगन्नाथ पंडितराजकृत पीयूषलहरी का अनुवाद, १ जुलाई १८६१)

२—देवी-स्तुति-शतक (मौलिक), (२२ जनवरी, १८६२)

काव्यमंजूषा की कविताएँ—'शिवाष्टकम्, प्रभातवर्णनम्, अयोध्याधिपस्य प्रशस्ति, कान्यकुब्जलीलामृतम् सूर्यग्रहणम्, मेघमालां प्रति चन्द्रोक्तिः, कथमहं नास्तिकः ।

३—खड़ी बोली में वंशस्थ (जतौ तुवंशस्थमुदीरितंजरौ), ४६, तृ० अ०, वृत्तरत्नाकर)

"सुरम्यरूपे ! रसराशिरंजिते !"

विचित्र वर्णाभरणे ! कहाँ गई ?

अलौकिकानन्दविधायिनी महा—

कवीन्द्रकान्ते ! कविते ! अहो कहाँ ?

इस काल के अन्य कवियों ने जैसे चन्द्रशेखरधर मिश्र, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', लाला सीता-राम, कन्हैयालाल पोद्दार, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पांडेय, और गिरधर शर्मा ने हिन्दी के ढंग पर सान्त्यानुप्रास कविताएँ लिखीं। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रिय-प्रवास' में संस्कृत वृत्तों को अन्त्य-मुक्त रूप में प्रयुक्त किया। अन्त्यानुप्रास-मुक्त काव्य के क्षेत्र में यह हिन्दी में सबसे बड़ा प्रयोग था। इस परम्परा के सबसे बड़े कवि श्री अनूप शर्मा हैं जिन्होंने दो प्रबंध काव्यों (सिद्धार्थ, और वर्द्धमान) की रचना अन्त्यमुक्त वर्णिकवृत्तों में की है। उन्होंने वंशस्थ छन्द का सबसे अधिक प्रयोग किया है। वर्द्धमान में लगभग आद्योपान्त २००० वंशस्थ छन्दों का प्रयोग हुआ है, केवल सर्गान्त में ही कुछ अन्य छंद आते हैं। अन्त्यमुक्त छन्द का विवेचन पहले अध्याय में हो चुका है, अतः उसका इतिहास और उसके विषय में विभिन्न धारणाएँ देना आवृत्तिमात्र है। यहाँ पर वर्ण-संख्या के क्रम से छन्दों के लक्षण और उदाहरण दिये जाते हैं।

हिन्दी में त्रिष्टुप् (एकादशाक्षर) से लघुतर वृत्तों का प्रयोग नहीं हुआ है, अतः उक्ता (एक अक्षर), अत्युक्ता (दो अक्षर), मध्या (तीन अक्षर), प्रतिष्ठा (४ अक्षर), सुप्रतिष्ठा (५ अक्षर), गायत्री (६ अक्षर), उष्णिक् (७ अक्षर), अनुष्टुप् (८ अक्षर), वृहती (९ अक्षर), और पंक्ति (१० अक्षर) वर्ग के समस्त वृत्तों को बिना विवेचन के ही छोड़ा जा रहा है।

इन्द्रवज्रा^१

यह छन्द वैदिक 'त्रिष्टुभ्' का ही विकसित रूप है।^२ इसी छन्द में ऋग्वेद

१—(अ) स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। (त, त, ज, ग, ग,) द्वितीय स्तवक, छन्दोमंजरी।

(ब) स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। २८। तृ० अ०, वृत्तरत्नाकर।

(स) यस्यां त्रिष्टुप्तमक्षरं स्यात्, ह्रस्वं सुबुद्धे ! नवमं च तद्वत् ॥
भक्तया समुद्भावितकीर्त्यकीर्ति ! तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः ॥

(२१-स्तवबोध)।

(द) जौ जौ गुरु चेद्भवतोन्द्रवज्रा, पिपलछन्दःसूत्रम्, ६ अ०, १५।

(य) (SS।SS/।S।SS) इन्द्रवज्रा, छन्दोरचना, पृ० १११।

(फ) नवमं सप्तमं षष्ठं तृतीयं च भवेत्लघु।

एकादशेऽक्षरे पादे इन्द्रवज्रेति सा यथा। ४२। पंचदशोऽध्याय, नाट्यशास्त्र।

(ग) इन्द्रवज्रा ततौ जगौ। अग्निपुराण, अध्याय ३३४, ५।

२—चतुश्चत्वारिंशत्त्रिष्टुभ्क्षराणि चतुष्पदा,

एकादशाक्षरैः पादैर्द्वाचेत्तुद्वादशाक्षरौ।

ऋक्प्रातिशाख्य, पाताल १६, ४२ मं०।

का लगभग दो तिहाई (२४००० छन्द) भाग है। इस छन्द के विकास की जितनी स्पष्ट स्थितियाँ दिखाई जा सकती हैं, उतनी किसी भी संस्कृत वृत्त की नहीं। संस्कृत का सबसे प्राचीन वृत्त इसी को मानना चाहिये, क्योंकि वेदों में ही इस छंद ने वृत्त का रूप धारण करना प्रारंभ कर दिया था। वैदिक युग में पहले चार अक्षरों के बाद यति आती थी, उसके बाद परवर्ती काल में पाँच अक्षरों के बाद आने लगी जो अब तक प्रचलित है।^१ त्रिष्टुप् वर्ग में यह छंद प्रधान है, इसके सामने अन्य छंद तिरोभूत हो गये। त्रिष्टुप् ने धीरे-धीरे लगात्मक (15) वृत्ति धारण की, पहले इसका स्वरूप SSSS/ISS/ISS था। श्वास लेने की सुविधा के लिये यति के बाद लघु वर्ण आता था, फिर बाद में स्वर-परिवर्तन के लिये लघु-गुरु का क्रम छंदों के दोनों भागों में विकसित होने लगा और अन्त में समस्त छंद लगात्मक हो गया।^२ इस छन्द के पहले अक्षर के प्रयोग में तो अपवाद चलता रहा, परन्तु दूसरे और चौथे वर्ण धीरे-धीरे निश्चित रूप से गुरु हो गये।^३ पाँच अक्षरों के बाद यति हो गयी, तो फिर स्वाराारोह के लिये उसके बाद लघु अक्षर आना आवश्यक हो गया। इस छन्द का लय-निपात अनुष्टुप् सा है, अतः नवां अक्षर लघु होता है और उसके पहले लगात्मक स्वर-संधान के लिये गुरु आना आवश्यक था, अतः आठवें अक्षर की लघुता समाप्त हो गयी।^४ इस प्रकार वैदिक युग में ही इस छन्द ने वृत्त का

1. The caesura is the dominant feature of the trimetre verse and its position decisively affects there rythm both of the opening and of the break. The casesura is a natural pause, corresponding to the taking of the breath in recitation and occurs regularly in all part of rigveda, either as an early caesura, that is, a pause after its fourth syllable, or as a late caesura, that is a pause after the fifth syllable, verse of these two types are easy where combined in the same stanza . Page 205.

Vedic Metre, By E. Vernon Arnold.

2. In almost all metres a general iambic rhythm may be noticed in the sense that the even syllables, namely the second, fourth, and so on are more aften long than short. Hence it has been supposed that Vedic metre has arisen historically fromsome combination of iambic feet, such as is found in so many Greek metres. Page 9.

The Principal metre, Vedic metre, By E. Vernon Arnold.

3. The opening first syllable is indifferent. The second and the fourth syllables are preferably long but often short. Page 37.

The Principal Metre, Vedic Metre, By E. Vernon Arnold.

4. The cadence of trimetre verse shew the same general rhythm as that of diametre verse. Thus the ninth syllable, and in Jagti verse, the eleventh are regularly short, the eight and the tenth or regularly long but either

रूप धारण कर लिया, जिसका नाम परवर्ती काल में इन्द्रवज्रा हुआ। इसका प्रयोग उपनिषदों के अतिरिक्त महाभारत और रामायण में बड़े प्रौढ़ रूप में हुआ है। नीचे टिप्पणी में कठोपनिषद् का एक उदाहरण दिया गया है, देखिये इन्द्रवज्रा के कितने समीप है, केवल अन्तिम चरण के अपवाद को छोड़कर वह इन्द्रवज्रा के उपजातिभेद के अन्तर्गत आता है।^१ संस्कृत में इस छन्द का इतना प्रचार हुआ कि अश्वघोष से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक सभी ने इसका प्रयोग किया है। हिन्दी में इसका प्रयोग अन्त्ययुक्त और अन्त्यमुक्त दोनों रूपों में हुआ है :—

संग्राम में जो तुम काम आते, (SS| SS/ ||SSSS)

तो लोक में निश्चल नाम पाते ।

मैं भी सती होकर धन्य होती,

न क्षत्रिया होकर आज रोती । (सीसोदिया का पत्र, पत्रावली, गुप्त)

उपेन्द्रवज्रा ठीक इन्द्रवज्रा के तुल्य है, केवल इसमें पहला अक्षर लघु कर दिया जाता है। इन दोनों छन्दों की लय एक ही है और वे एक ही छन्द से विकसित हुए हैं, इसीलिये अर्नाल्ड भारतीय छन्दःशास्त्रियों से मतवैभिन्य दिखाते हुए कहते हैं कि इन्हें एक ही छन्द के अन्तर्गत मानना चाहिये।^२ छन्द का लक्षण 'जगण तगण जगण गुरु गुरु' है।^३ यथा :—

or both are occasionally short. We are however, able to trace of progressive tendency to eliminate the employment of short syllables in the eight and the tenth places (Jagti).

Vedic Metre, Page 47. By E. V. Arnold.

१—अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मस्य जन्तोर्निहितोगुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।

कठोपनिषद्, अ० १, बल्ली २, २० ।

2. The Indian theory of classical Sanskrit metre unnecessarily distinguishes two forms of this verses according to the quantity of the initial syllable and it fails to take adequate account of the caesura, which is the most important feature in the verse, at any rate as used in Rigveda, still the term Indravajra will be convenient for the scheme just given if we may modify the traditional meaning by regarding the quantity of the initial syllable as indifferent, and the late caesura as essential. Page 184.

Vedic Metre, By E. Vernon Arnold.

३—(अ) उपेन्द्रवज्रा तु जतौ जगौ गः, बृहत्संहिता ११ अ०, १०३.

(ब) यदीन्द्रवज्राचरणेषु पूर्वं, भवन्ति वर्णा लघुतायुतश्च ।

अमन्दमभ्यासरते ! तदानीमुपेन्द्रवज्रा कथिताः कवीन्द्रैः । २२, श्रुतबोध ।

(स) उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । २६, तृतीय अध्याय, वृत्तरत्नाकर ।

(द) उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा । (इन्द्रवज्रा में प्रथम लघु करके बनता है) ।

छन्दोर्मजरी, २ स्तवक, २ श्लोक ।

मिलाप था दूर अभी धनी का,
विलाप ही था बस का बनी का ।
अपूर्व आलाप वही हमारा,
यथा विपंची दिर दार दारा ।

(साकेत, नवम सर्ग) ।

उपजाति :—इस छन्द में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरण सम्मिलित होते हैं :—^१

हे भामिनीओ, कुलकामिनीओ !
ये चूडियाँ हैं परदेशियों की ,
कलंक भारी पहिनो इन्हें जो ,
छोड़ो जरा तो मन में लजाओ ।

(सरस्वती, नवम्बर १९०६)

शालिनी :—इसमें मगण तगण-तगण और दो गुरु होते हैं और चार वर्णों के बाद यति होती है ।^२ (SSSS/S|SS|SS) यथा:—

क्या-क्या होगा/साथ, मैं क्या बताऊँ ?
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और बीणा ,
चौथी मैं हूँ पाँचवीं तू प्रवीणा । (साकेत, नवम सर्ग)

भुजंगी :—इस छन्द में ३ यगण और लघु गुरु का योग होता है ।^३

(|SS|SS|SS|S), यथा:—

सदा देश की कीर्ति गाते रहें ।
बड़ा ज्ञाति को मोद पाते रहें ।
पढ़ें पूर्वजों की कथा ध्यान दे ,
चढ़ें शीघ्र ऊँचे उन्हें मान दे । पद्यप्रदीप, उत्थान ।

‘स्वर्गीय संगीत’ में गुप्त जी ने इसी छन्द का विशेष प्रयोग किया है ।

इन्दिरा :—न, र, र, ल, ग : (||S|SS|S|S) क्रम से इन्दिरा बनता है :—^४

१—उपेन्द्रवज्रा अरु इन्द्रवज्रा, दोऊ जहाँ है उपजाति जानौ ।

छन्दःप्रभाकर, पृ० १३६ ।

२—(अ) मात्तो गौ चेत् शालिनी वेदलोकः । बृहत्संहिता (३०-१०३) ।

(ब) मात्तो गौ चेत् शालिनी वेदलोकः । छन्दोमंजरी, २ स्त०, ५ ।

(स) शालिन्युक्ता म्त्तो तगौ गौऽन्विलोकः । वृत्तरत्नाकर, तृ० अ०, ३४ ।

३—य तीनों लगा के भुजंगी रचौ । छन्दः प्रभाकर, पृ० १३६ ।

४—(अ) न र र लोग थी इन्दिरा कहा । छन्दः प्रभाकर, पृ० १४७ ।

(ब) न र र लैर्गुराविन्दिरा मता । ११, द्वि०, स्त०, छन्दोमंजरी ।

प्रियतमे, तपो-अष्ट में ? भला !

मत छुओ मुझे, लौट मैं चला ।

तुम सुखी रहो, हे विरागिनी,

बस विदा मुझे पुण्य-भागिनी । (साकेत, नवम सर्ग)

जगती वर्ग

इस वर्ग के वृत्तों का विकास जगती छन्द से माना जाता है, परन्तु वंशस्थ और इन्द्रवंश के रूप को छोड़कर किसी छन्द के भी विकास का पूरा पता नहीं चलता है ।

वंशस्थ :-- इसमें जगण, तगण, जगण और रगण का योग होता है ।^१

(ISIS/ISISIS) यथा :—

प्रसन्न होगी/जननी विलोक के,

नवावधू के वदनारविन्द को,

निवेश में कार्य सहायिका मिली,

महान होगी वह हृष्टमानसा । (वर्द्धमान, १२ सर्ग)

इस छन्द का अधिकांश प्रयोग अनुकान्त है, इसमें पांच वर्णों के बाद यति आती है ।

‘वर्द्धमान’ में इस छन्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । ‘प्रिय प्रवास’ के नवम, एकादश एवं षोडश सर्ग में इस छन्द का विशेष प्रयोग हुआ है ।

दुतिविलम्बितः— इसमें न भ भ र (IISISISIS) का योग होता है,^२ यथा :—

मन रमा रमणी रमणीयता,

मिल गईं यदि ये विधि-योग से ।

१—(अ) वदन्ति वंशस्थबिलं जतौ जरी । २, द्वि०, स्त०, छन्दोमंजरी ।

(ब) जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । ४६, तू० अ०, वृत्तरत्नाकर ।

(स) उपेन्द्रवज्रा चरणेषु सन्ति च दुपान्त्यवर्णा लघवः कृता यदा ।

विचारचातुर्य-विबृद्ध-चैतने ! वदन्ति वंशस्थबिलं बुधास्तदा ।

श्रुतबोध ३३ ।

(द) तुजान वंशस्थ बिलं जता जरा, छन्दःप्रभाकर, पृ० १५२ ।

(य) द्वितीयमन्त्र्यं दशमं चतुर्थं पंचमाष्टमे ।

गुरुणि द्वादशे पादे वंशस्थ जगती तुसा । नाट्यशास्त्र, १५, अ०, ६५ ।

२—(अ) दुतिविलंबितमाह नभौ भरौ । वृत्त-रत्नाकर, ३, ४६ ।

(ब) दुतिविलंबितमाह नभौ भरौ । छन्दोमंजरी, २ स्त० १० ।

(स) अग्रि प्रियंवद ! यत्र चतुर्थकं, गुरु च सप्तमकं दशमं तथा ।

विरतिजं च तथैव विचक्षणैर्दुतिविलम्बितमित्युपदिश्यते । श्रुतबोध, १० ।

(द) भवेद् द्रुतविलम्बिता नभौ भरौ । अग्निपुराण, अ० ३३४, १० ।

पर, जिसे न मिली कविता सुधा,
रसिकता सिकता सम है उसे।

‘विधिविडम्बना’, रामचरित उपाध्याय।

‘प्रिय-प्रवास’ के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, अष्टम, नवम, दशम, द्वादश, और पञ्चदश सर्ग में इस छन्द का विशेष प्रयोग हुआ है। ‘सिद्धार्थ’ के वंश-वर्णन और बाल-वर्णन में तथा ‘वर्द्धमान’ के सगन्ति और यत्रतत्र सर्गमध्य में भी इस छन्द का सरल प्रयोग हुआ है।

भुजंग-प्रयात :—इसमें चार यगणों (|SS|SS|SS|SS) का योग होता है। यह छन्द वीर और शृंगार दो विरोधी रसों में समान रूप से सफल होता है :—

बनाती रसोई सभी को खिलाती।
इसी काम में आज मैं तृप्ति पाती ॥
रहा किन्तु मेरे लिये एक रोना।
खिलाऊँ किसे मैं अलोना सलोना ॥’

(साकेत, नवम सर्ग)

श्री कामता प्रसाद गुरु ने ‘जन्मभूमि’ कविता में इस छन्द का प्रयोग किया है। ‘सिद्धार्थ’ के बालवर्णन में भी इसका प्रयोग हुआ है, जो रसानुकूल नहीं है। यह छन्द वीर रस के अनुकूल है और विशेष स्थिति में शृंगार में भी सफलता प्राप्त कर सकता है।

इंद्रवंशा :—में तगण, तगण, जगण और रगण (SS|SS|S|S|S) का योग होता

१—(अ) भुजंगप्रयात भवेच्छेक्षतुभिः । वृतरत्नाकर, ३ अ० ५ ।

(ब) भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः । छन्दोमंजरी, दिव स्त०, ५५ ।

(स) आद्यं चतुर्थं दशमं सप्तमं च यदा लघु ।

पादे तु जागते यस्या अप्रमेया तु सा यथा ॥ नाट्य शास्त्र १५, ७२ ।

(भुजंगप्रयात को अप्रमेय नाम दिया गया है) ।

(द) यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं चेत्येवाक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम् ।

गुरोःपादसंवाहनासक्तबुद्धे ! तदुक्तं कवीन्द्रैः भुजंगप्रयातम् ।

भुतबोध, २६ ।

हैं ।^१ यह छन्द इन्द्रवज्रा के अन्तिम अक्षर के स्थान पर लघु-गुरु जोड़ने से बनता है :—

आते यहाँ ना निहारने हमें,

उद्धारने या सखि तारने हमें ?

या जानने को किस भाँति जी रहे ?

तो जान लें वे, हम अश्रु पी रहे ! (साकेत, ९ सर्ग)

इस छन्द का हिन्दी या संस्कृत में कहीं भी प्रचुर प्रयोग नहीं हुआ है ।

तोटक :—इसमें चार सगण होते हैं ।^२ (IISIISIIS) यथा :—

नव तूल धुने कण से घन ये ।

नगराज सजे निज आँगन ये ॥

नभ-दुग्धमयी-सरिता-छवि ये ।

लख नन्दित आज हुआ कवि ये ॥ (लेखक)

छग्विणी :—इसमें चार रगण होते हैं ।^३ (SISIISISIS) यथा:—

१—(अ) तच्चेन्द्रवंशा प्रथमेऽक्षरे गुरौ । छन्दोमंजरी, २ स्त० ३ ।

(वंशस्थ का प्रथम अक्षर गुरु करने से बनता है) ।

(अ) स्यादिन्द्र वंशा ततजैःसंयुतैः । वृत्तरत्नाकर, तु० अ०, ४७ ।

(स) तो जरी इन्द्रवंशा । अग्निपुराण, ३३४ अ० ९ ।

(द) यस्यां सदासादितमानसन्तते वंशस्थपादागुरुपूर्ववर्णकाः ।

सद्बुद्धिलक्ष्म्युल्लसितोरुकल्पने ! तामिन्द्रवंशां कवयः प्रचक्षते ।

श्रुतबोध, ३४ ।

(य) ताविन्द्रवंशा जरसंहतौ मतः । बृहत्संहिता १०३, ११८ उत्पल टीका ।

२—(अ) वदतोटकमन्विसकारयुतम् । छन्दोमंजरी, २ स्त० ६ ।

(ब) इहतोटकमन्वुषितैः प्रथितम् । वृत्तरत्नाकर, तु० अ०, ४८ ।

(स) सतृतीयकषण्ठमनिन्द्यते, नवमं विरति प्रभवं गुरुचेत् ।

गुरुसेवनसाधितशुद्धमते, ननुतोटक वृत्तमिदं कथितं ।

श्रुतबोध, २८ ।

३—(अ) कीर्तितैषा चतुरैरङ्गिका छग्विणी । छन्दोमंजरी, २ स्त०, ७ ।

(ब) रैश्चतुर्भिर्युता छग्विणी सम्मता । वृत्तरत्नाकर, तु० अ०, ५६ ।

(स) शस्त्रिकाः सागराख्या निविष्टा यदा ।

स्यात् त्रिके च त्रिके युक्तरूपा यतिः ।

सन्निविष्टाजगत्यास्ततस्सा ।

बुधैर्नामितश्चापि संकीर्त्यते पद्मिनी ।

नाट्य-शास्त्र, १५ अ०, ७५ ।

भूचरों खेचरों को मिटाती हुई,
रौरवी अग्नि - वीणा बजाती हुई।
एक भारी चिता सी धरा - धाम में,
बह्नि जाज्वल्यमाना जलाती हुई।

(विराट संग्राम, अनूप)

भरत ने 'पद्मिनी' और 'प्राकृतपेंगलकार' ने इसका 'लक्ष्मीधर' नाम दिया है।
हिन्दी में अतिजगती वर्ण में तेरह अक्षरों का कोई वृत्त नहीं प्रयुक्त हुआ है।

शङ्खरी वर्ग

वसन्ततिलका :—इसमें तगण, भगण, जगण, जगण और गुरु गुरु होता है।
(SSISI IISIISS) यह छन्द शृंगार रस के अधिक अनुकूल है, यथा :—

ज्योतिर्मयी विकसिता हसिता लता को,
लालित्य साथ लिपटी तरु से दिखा के,
थे भाखते पतिरता अबलम्बिता का,
कैसा प्रमोदमय जीवन है दिखाता। (प्रिय-प्रवास, सर्ग १४)

'वृत्तजाति समुच्चय' (विरहांक कृत) में इसे 'सिंहोन्नता' नाम दिया गया है।
'प्रिय-प्रवास', 'सिद्धार्थ', और 'पत्रावली' में इस छन्द का प्रयोग हुआ है।

अनन्द :—यह छन्द लघु-गुरु (I S) की सात आवृत्तियों से निर्मित होता है।
पञ्चचामर वृत्त के अन्तिम दो वर्ण न्यून करने से यह छन्द बन जाता है। इसमें आठ
वर्णों के बाद यति आती है। यह छन्द पञ्चचामर की अपेक्षा अधिक कोमल और
गीतात्मक है। इसकी लय शृंगार रस और उत्साहपूर्ण उत्साह भाव के अनुकूल है।
इसका लक्षण निम्न है :—

जरौ जरौ लगावनन्द छन्द सर्जना। (लेखक)

१—(अ) उक्ता वसन्ततिलका तभजाःजगौ गः। वृत्तरत्नाकर, ३ अ०, ७६।

(ब) जेयं वसन्ततिलका तभजा जगौ गः। छन्दोमंजरी, २ स्त०, २।

(स) आद्यं द्वितीयमपि चेद्गुरुतच्चतुर्थं,

यन्नाष्टमं चदशमान्त्यमुपात्त्यमन्त्यम्।

अष्टाभिरार्य ! सुमते ! वियतिश्चः षड्भिः,

प्राज्ञा यसंतिलका किलतां वदन्ति। श्रुतबोध, ३७।

(द) त्मौ जो वसन्ततिलकं गुरुकद्वयं चेत्। बृहत्संहिता, १०३; ३३, १।

(य) वसंततिलका त्मौ जो गौ। अग्निपुराण, ३३४ अ०, १७।

नवीन शान्ति की प्रभा विकर्ण हो गई ।
प्रवृत्ति हिसका स्वयं विदीर्ण हो गई ॥
अणूद्जनीन शक्ति भी पराजिता हुई ।
अखण्ड भ्रातृ भावना विराजिता हुई ॥ (लेखक)

अतिशक्वरी वर्ग (१५ वर्ण)

इस वर्ग में केवल मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है, जो नगण, नगण, भगण, यगण, यगण (॥ ॥ ॥ SS/SISSISS) के योग से बनता है और जिसमें आठ अक्षरों पर यति होती है । यह छन्द शृंगार और करुण रस के अनुकूल है, यथा :—

वर वदन विलोके/फुल्ल अम्भोज ऐसा ।

करतलगत होता/व्योम का चन्द्रमा था ॥

मृदु रव जिसका है/रक्त सूखी नसों का ।

वह मधुमयकारी/मानसों का कहाँ है ?

(प्रिय-प्रवास, ७ सर्ग)

प्रिय-प्रवास, सिद्धार्थ और जनक-विलाप (सनेही) में इस छन्द का प्रयोग हुआ है । लेखक के मत से आदि में दो नगण रखने से गति मंद चलती है, जो करुण रस के लिये उपयुक्त है और सम अक्षर एवं (॥, ॥, ISS) प्रारंभ क्रम से गति क्षिप्र हो जाती है ।

चामरः—आचार्य जयकीर्ति ने इसका नाम उत्सव (छन्दोऽनुशासन, ३, ३०); आचार्य हेमचन्द्र ने स्तूराक (छन्दोऽनुशासन, २; २५४) और श्री पटवर्द्धन जी ने 'देवराज' माना है । आचार्य शंकर ने काल भैरवाष्टक में इस छन्द का प्रयोग किया है । यह छन्द पञ्चचामर के आद्यक्षर को न्यून करने से बनता है, अतः इसका लक्षण निम्न होगा:—

चामरे वदन्ति पञ्चचामरे लघूनता लेखक) ।

२—(अ) ननमययपुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । छन्दोमंजरी, २ स्त०, ४ ।

(ब) न न म यययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । छन्दोमंजरी, २ स्त०, ४ ।

(स) वसुमुनि विरतिश्चेत् मालिनी नौ मयीयः । बृहत्संहिता: १०३ । २४ ।

(द) मणिगुणनिकरासौ मालिनी नौ मयी यः । अग्निपुराण, ३३४ अ०, १८ ।

(य) आदौ षट्दशमंचैव लघुचैव त्रयोदशं ।

यत्रातिशक्वरेपादे ज्ञेया नान्दीमुखी तु सा ।

नाट्य शास्त्र १५, अ० १३ ।

(आचार्य भरत ने 'मालिनी' का नाम 'नान्दीमुखी' दिया है)

हो गया स्वतंत्र देश भाव भी स्वतन्त्र हों ।
व्यक्ति की स्वतंत्रता-प्रसूत मूल मन्त्र हों ॥
कर्म-योग-सिद्धि एक मानवीय धर्म हो ।
लोक-प्रेम, भोग-दान, विश्व-श्रेय-मर्म हो ॥ (लेखक)

अष्टि वर्ग (१६ वर्ण)

इस वर्ग में केवल पंचचामर (ISISIS/ISISIS) (जगण रगण जगण रगण जगण गुरु) का प्रयोग हुआ है । इसमें आठ अक्षर के बाद यति होती है ।^१ यह छन्द वीर रस और अन्य गतिशील प्रक्रिया को व्यक्त करने में बहुत सक्षम है, यथा :—

क्षुधातं रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी !
तथा दधीचि ने दिया सहर्षं अस्थिजाल भी ।
अनित्य देह के लिये अनादि जीव क्या मरे ।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ।

(मनुष्यता, मैथिलीशरण गुप्त)

रावणकृत 'शिवतांडवस्तोत्रम्' में यही वृत्त है ।^२ प्रसाद जी का प्रसिद्ध गीत 'हिमाद्रितुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' इसी छन्द में है । श्री दिनकर ने इसके मात्रिक रूप का प्रयोग किया है, 'लहू में तैर तैर के नहा रहीं जवानियाँ ।'

प्राकृतपेंगल में इसे 'णराच' (२।१६८), 'सद्वृत्तमुक्तावली' में (निरंजन माधव कृत) में चामरी, और छन्दोरचना में 'कलिदनंदिनी' नाम दिया गया है ।

चंचला—यह वृत्त गुरुलघु (S) की आठ आवृत्तियों से बनता है । प्रायः सात वर्णों

१—(अ) 'अवेहि पंचचामरं जरी जरीजगौलघुश्च' । छन्दोमंजरीके अनुसार पंचचामर (IS IS IS IS / IS IS IS IS) इस वृत्त को कहते हैं और वृत्तरत्नाकर के अनुसार (IS IS ॥ IS IS IS) इस वृत्त को कहते हैं—जभौ जरी बरंति पंचचामरम् । हो सकता है प्रचीन प्रतियों में भूल से 'जरी जरी' के स्थान पर 'जभौ जरी' हो गया है, क्योंकि इसका उदाहरण अप्राप्य है ।

(ब) जु रोजु रोजु गोप-तीय द्वार पंचचामरं (जरजरजग)

छन्दःप्रभाकर, पृ० १७७ ।

२—धराधरेन्द्रनन्दिनी विलासबन्धुबन्धुर—

स्फुरद्दिगन्तस्तत्तिप्रमोदमानमानसे ।

कृपाकटाक्षघोरिणीनिरुद्धदुर्धरापदि—

क्वचिद्दिगम्बरे मनोविनोदमेतु वस्तुनि ।

(शिवतांडववस्तोत्रम्)

के बाद यति आती है । चामर के अन्त में लघु जोड़ने से यह छन्द बनता है । आह्लादमूलक भावों—विशेषतः बाल-विनोदों को व्यक्त करने में यह छन्द सक्षम है । इसका लक्षण निम्न है:—

चामरे लयोगसप्तवर्णभिन्नचञ्चला च । (लेखक)

गा रही कहीं पिकी रसाल कुञ्ज में समोद ।

पुष्पिता नवीन मञ्जरी कहीं करे विनोद ॥

मित्र पुष्पवाण संग आज आ गया वसन्त ।

रम्य रूप देख के प्रसन्न हो गये दिगन्त ॥ (लेखक)

अत्यष्टि वर्ग (१७ वर्ण)

इस वर्ग में मन्दाक्रान्ता सर्वाधिक प्रसिद्ध है ।^१ इसमें मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरुओं का योग (SSSS/ III IIS/SISSIS) होता है । इस छन्द का विशद और सर्वश्रेष्ठ प्रयोग कालिदास ने मेघदूत में किया है । संभवतः उन्होंने 'सौन्दरनन्द' के छन्द (सप्तम सर्ग, अन्तिम छन्द) से प्रेरणा ली है, जिसके प्रारंभ में चार के स्थान पर पाँच गुरु हैं और शेष लय मन्दाक्रान्ता^२ के समान है । इस अनुकरण पर इसी छन्द में

१—(अ) मन्दाक्रान्ता/ मभनततगा/गः समुद्रतुल्योके/—

बृहत्संहिता (१०३, ९)

(ब) मन्दाक्रान्ता जलधिषडङ्गैर्भो नतो ताद् गुरु चेत् । वृत्तरत्नाकर, ३ अ०, ६७ ।

(स) मन्दाक्रान्ता/म्बुधिरसनगे/मो भनौ तौ ग युग्मम् ।

छन्दोमञ्जरी, द्वि० स्त० ४ ।

(द) चत्वार्यादौ च दशमं गुरु यत्रत्रयोदशं,

चतुर्दशतथान्त्ये द्वे, चैकादशमथापि च ।

यदा सप्तदशे पादे, शेषाणि च लघून्यथ,

भवन्ति यस्मिन् सा ज्ञेया, श्रीधरा नामतो यथा ।

नाट्यशास्त्र, १०७, १०८, १५ अ० ।

(मन्दाक्रान्ता का 'श्रीधरा' नाम दिया गया है ।)

२—तस्मादिभक्षार्थ/ ममगुरुरितो/ यावदेवप्रयात—

स्थयत्वा काषायं/ गृहमहमितस्/तावदेवप्रयास्ये ।

पूज्यं लिंगं हि/ स्थलितमनसो/ विभ्रतः क्लिष्टबुद्धे—

नामुन्नाथं स्या/दुपहतमते/नपिद्यं जीवलोकः/ ।

(सौन्दरनन्द, सप्तम सर्ग, ५२)

आनन्दोत्थं/ नयनसलिलं/ यत्र नान्येतिमित्तैः ।

नान्यस्तापः कुसुमशरजा/दिष्टसंयोगसाध्यात्/ ।

नाप्यन्यस्मात्/ प्रणयकलहा/द्विप्रयोगोपपत्तिः/

चित्तेशानां/ न च खलु घयो/ योवनादन्यदस्ति/ । (उत्तरमेघ, ४)

बहुत से 'दूतकाव्य' लिखे गये। इस छन्द की यति ४, ६, ७, वर्ण पर आती है। यह छन्द विप्रलम्भ शृंगार के बहुत अनुकूल है। प्रियप्रवास का एक उदाहरण दिया जाता है :—

कालिंदी सी/ कलित सरिता/ दर्शनीया निकुंज/,
प्यारा वृन्दा/ विपिन विटपी/ चाए न्यारी लताएँ/,
शोभावाले/ विहग जिसने/ हैं दिए हा/ उसी ने/,
कैसे माधो/ रहित ब्रज की/ मेदिनी को बनाया/॥

(प्रिय-प्रवास, १५ सर्ग, ३९)

प्रिय-प्रवास और सिद्धार्थ में इस छन्द का अतुकान्त रूप में विशेष प्रयोग हुआ है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'शिवाजी को पत्र' में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग अन्त्ययुक्त रूप में किया है। साकेत से एक सान्त्य उदाहरण दिया जाता है :—

दो वंशों में/ प्रकट करके/ पावनी लोक-लीला/,
सौ पुत्रों से/ अधिक जिनकी/ पुत्रियाँ पुण्यशीला/,
त्यागी भी हैं/ शरण जिनके/ जो अनासक्त गेहो/,
राजा-योगी/ जय जनक वे/ पुण्य - देही - विदेही/

(साकेत, नवम सर्ग)

शिखरिणी :—यह छन्द यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और गुरु (JSSSSS/ III II S/IIIS) के योग से बनता है।^१ इसमें क्रम से ६, ६, ५ अक्षरों पर यति होती है। प्राचीन सभी आचार्य ६, ११ पर यति मानते हैं। यह छन्द शृंगार, वीर और शान्त आदि विभिन्न रसों में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण :—

यही आकांक्षा है/, जब तक रहूँ/ देहरथ में/, (६, ६, ५) वर्ण
किसी भी बाधा से/ विचलित न होऊँ स्वपथ में/। (६, ११ वर्ण)
जिसे आत्मा चाहे/ सतत उसका/ साधन कहूँ/,
उसी की चिन्ता में/ रहकर सदा/ चिन्तित रहूँ/।

(प्रतापसिंह का पत्र, पत्रावली)

१ — (अ) रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागा शिखरिणी । छन्दोमंजरी, २ स्त०, १ ।

(ब) " " " वृत्तरत्नाकर, तृ० अ०, ६३ ।

(स) यमोन्सौ भोलगवन्ता रसहरविरामा शिखरिणी ।

(वृहत्संहिता: १०३। ८)

(द) यदापूर्वो ह्रस्वः सुविमलमते ! षष्ठकपरा—

स्ततोवर्णाः पंच प्रकृतिसुकुमाराः प्ररचिताः ।

अपोज्ये चोपान्त्यास्तदनुलघवो यत्र विहिता,

रसैश्छद्रैर्यस्यां भवति विरतिः सा शिखरिणी । (श्रुतिबोध, ४०)

पृथ्वी छन्दः—यह वृत्त जगण, सगण, जगण, सगण, यगण और लघु गुरु के योग से बनता है। इस वृत्त में आठ अक्षर के बाद यति आती है। भरत ने नाट्य शास्त्र^१ में इस छन्द का नाम 'विलंबित-गति' दिया है। आचार्य हेमचन्द्र ने छन्दोनुशासन में इस छन्द को 'वृन्दारक' संज्ञा प्रदान की है।^२ इस छन्द का उदाहरण निम्न है :— (ISI IIS ISI IIS ISS IS)

निहार सखि, सारिका/ कुछ कहे बिना शान्त सी/
दिये श्रवण है यहीं/ इधर में हुई आन्त सी/
इसे पिशुन जान तू/, सुन सुभाषिणी है बनी/
'धरो' खगि, किसे धरूँ/? धृति लिये गये हैं धनी /।^३

धृति-वर्ग

धृति वर्ग के छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है।

अतिधृति वर्ग (१६ वर्ण)

इस वर्ग का सर्वाधिक प्रसिद्ध छन्द शार्दूलविक्रीडित^४ है, जिसमें मगण, सगण, जगण,

१—भरत नाट्यशास्त्र, १६ अ०, ८४ श्लोक।

२—जसौ जसौ यिलगा वृन्दारक।

आचार्य हेमचन्द्र, छन्दोऽनुशासन, अध्याय २, श्लो० ३६५।

३—(अ) जुसाजि सिय लै गई, जगतमातु पृथ्वी सुता।

(ज, स, ज, स, य, ल, ग)

आचार्य भानु, छन्दःप्रभाकर, पृ० १८३।

(ब) जसौजसयलावसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

बुत्तरत्नाकर, तृतीयोऽध्यायः, ९४।

(स) जसौजसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तवक, अत्यष्टि, २।

४—(अ) मसौ जसौ तौ गुरुकं च सूर्यतुरगैः शार्दूलविक्रीडितम्।

बृहत्संहिता (१०३।४)

(ब) सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः, शार्दूलविक्रीडितम्। छन्दोमंजरी, द्वि० स्त०, ३।

(स) सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः, शार्दूलविक्रीडितम्। बुत्तरत्नाकर, तृ० अ० १०१/

(द) आद्याश्चेद् गुरुवस्त्रयः शुभमते ! षष्ठस्तथाचाष्टमो।

नन्वेकादशतस्त्रयस्तदनुचेदष्टादशाष्टौ ततः।

मातर्ण्डैर्मुनिभिश्च यत्र नियतौ विश्रामभावो भवेत्।

तद्वृत्तं प्रवदन्ति काव्यरसिकाः शार्दूलविक्रीडितम्।

(श्रुतबोध, ४२)

(य) मसजासतताश्चगः। शार्दूलविक्रीडितं//स्यात् आदित्यमूनयोः यतिः।

अग्निपुराण, ३३४, अ० २३।

सगरा, तगण गुरु (SSSIISSIISSIS) का योग होता है । यह छन्द शृंगार और वीर जैसे विरोधी रसों में वृत्ति-परिवर्तन से समानतया सफल होता है । इसमें १२ वर्णों के बाद यति होती है, यथा :—

आया शाश्वत वार जो प्रथित है/, हिसानिशा नाश में/ ।

सो वारेश उगा कि जो न अघ//का/, है लेश भी छोड़ता/ ,

प्राणी संसृति के समुत्थित चले/, जो धर्म पाथेय ले/ ।

यात्रा जीवन की सभी कर रहे/ आवालवृद्धावला/ । वर्द्धमान, सर्ग १७

प्रिय-प्रवास और सिद्धार्थ में इस छन्द का विशेष प्रयोग हुआ है ।

कृति वर्ग

कृति वर्ग (२० वर्ण) के छन्दों का प्रयोग खड़ी बोली में नहीं हुआ है ।

प्रकृति वर्ग (२१ अक्षर)

स्रग्धरा :—यह छन्द मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, और यगण (SSSSISIIIISSIISSIS) के योग से बनता है । इस छन्द में प्रति सात अक्षरों के बाद यति आती है । खड़ी बोली में प्रयुक्त बड़े वृत्तों में सबसे बड़ा यही छन्द है (सबैया के भेदों को छोड़कर) । यह छन्द वीर और रौद्र रस तथा अन्य उदात्त भावों के अधिक अनुकूल है ।

(फ) अन्त्यं सप्तदशं/चैव, षोडशं सचतुर्दशं ।

त्रयोदशं/द्वादशंच षष्ठमष्टमेव च ॥

त्रीण्यादौ//च गुरुणि//स्थुर्यस्मिन् त्वेकोनविंशके ।

पादे//लघूनि//शेषाणि शार्दूलविक्रीडितं//तत् ॥

नाट्यशास्त्र १५ अ०, १२० ।

१—(अ) अम्नैर्यानां त्रयेण त्रिसुनियतियुता स्रग्धराकीर्तितेयम् ।

(म, र, भ, न, य, य, य) छन्दोमंजरी, द्वि० स्व०, प्रकृति वर्ग, १ ।

(ब) ,, ,, वृत्तरत्नाकर, तृ० अ०, १०४ ।

(स) औ भौ याश्चत्रयः स्युः स्वरमुनितुरगैः स्रग्धरा स्याद्विरामैः ।

बृहत्संहिता, १०३, ५/

(द) चत्वारो यत्र वर्णा प्रथममलघवः षष्ठकः सप्तमोऽपि,

द्वौ तद्वत्षोडशाद्यावति विमलमते ! षोडशान्त्यो//तथान्त्यौ ।

वृत्ते यत्राभिरन्त्यं मुनिमुनिमुनिभिर्वश्यते चेद्विरामो,

विद्वद्बन्धुः कवीन्द्रः सुचरित । कथिता स्रग्धरा सा प्रसिद्धा ।

भूतबोध, ४३ ।

उदाहरण :— घेरे क्या व्योम में है/ अविरत रहती/ सोम को मेघमाला/
होता है अन्त में क्या/ वह प्रकट नहीं/ और भी कान्तिवाला ?
हैं सच्ची धीरता का/ समय बस यही/ हे महा धैर्यशाली ।
क्या विद्युद्बहिनका भी/ कुछ कर सकती/ वृष्टिधाराप्रणाली ?
(पृथ्वीराज का पत्र, पत्रावली)

वैतालीय छन्दः— यह अर्द्धसम//वृत्त है । इसके प्रथम और तृतीय चरण में सगण, सगण जगण और गुरु होते हैं तथा दूसरे और चौथे चरण में सगण, भगण, रगण एवं लघु गुरु होते हैं । यह छन्द करुण रस के लिये अत्यन्त उपयुक्त है । कालिदास ने रघुवंश के “अज-विलाप” (अष्टम सर्ग) में इसी छंद का प्रयोग किया है । रघुवंश के टीकाकार मल्लिनाथ ने इस छंद का नाम वैतालीय दिया है, परन्तु वृत्तरत्नाकर, छन्दोरचना और छन्दःप्रभाकर ने इस नाम से भिन्न लक्षण के छंद दिये गये हैं । आचार्य जयकीर्ति इसे ‘विबोधिता’^१ और आचार्य हेमचन्द्र ‘प्रबोधिता’^२ संज्ञा देते हैं । इसका एक नाम ‘वियोगिनी’ भी है । श्री मैथिली शरण गुप्त ने साकेत के दशम सर्ग में आद्योपान्त इसे छंद का विशद प्रयोग किया है :—

चिरकाल रसाल ही रहा ,
जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा ,
जय हो उस कालिदास की ,
कविता केलि कला-विलास की ।

आनन्दिनी :— आचार्य जयकीर्ति ने छन्दोऽनुशासन में इन्द्रवंशा और वंशस्थ के योग से निर्मित अर्द्धसम वृत्त को ‘नन्दिनी’^३ नाम देते हैं । गुप्त जी द्वारा रचित प्रस्तुत अर्द्धसमवृत्त इन्द्रवंशा और इन्द्रवज्रा के योग से निर्मित है । छन्दो ग्रन्थों में पूर्णतः ऐसा प्रयोग अप्राप्य है, अतः नन्दिनी वृत्त के समीप होने के कारण इसे आनन्दिनी संज्ञा दी जाती है ।

लेते गये क्यों न तुम्हें कपोत, व,
गाते सदा जो गुण थे तुम्हारे ?
लाते तुम्हीं हा ! प्रिय-पत्र-पोत वे,
दुःखान्धि में जो बनते सहारे । (साकेत, नवम सर्ग)

१—ससजा गुरुसंयुतास्ततः; सभरालगौ च विबोधिता भवेत् । छन्दोऽनुशासन, ३, १५, जयकीर्ति ।

२—साज्जाः सभ्रल्गाः प्रबोधिता । छन्दोऽनुशासन, ३, १४, आचार्य हेमचन्द्र ।

३—तो जौ तथा पद्मनिवर्जतो जरी; स्वयंभुदेवेशमते तु नन्दिनी/छन्दोऽनुशासन, ३, २२, आचार्य जयकीर्ति ।

आकृति, विकृति, संस्कृति, अतिकृति, वर्ग के आवर्तक वृत्तों के विकसित छन्द सवैयों के रूप में प्रचलित हैं, जिनका विश्लेषण मुक्त वर्णिक छन्दों के वर्ग में पीछे दिया जा चुका है ।

वृत्त-प्रयोग की आलोचना और नवीनता

आधुनिक हिन्दी के समस्त वृत्त प्रयोगों की गुणदोषमूलक विवेचना भी करना आवश्यक है । यद्यपि वृत्तों में गणात्मक वर्ण-योजना के कारण नवीनता की अधिक गुंजायश नहीं है, फिर भी हिन्दी भाषा की प्रकृति संस्कृत से भिन्न होने के कारण कुछ परिवर्तन भी हुए हैं ।

१—प्रथमतः वृत्त की प्रकृति सम्पूर्ण चरण को अखंडता के सूत्र में बाँधने की है, अतः स्वभाव से ही सामासिक शब्दयोजना उसके अनुकूल पड़ती है और हिन्दी भाषा की प्रकृति विश्लेषणात्मक है, जिससे वृत्त की अखंड गंभीर झंकार पर आघात लगता है, इसीलिये वृत्त के उन प्रयोगों में अधिक सफलता मिली है, जिनमें सामासिकता का उपयोग हुआ है । जो प्रयोग हिन्दी भाषा की सरल प्रकृति के अनुसार किये गये हैं, उनमें असम्बद्ध वर्णयोजना के कारण यति का स्थान अवांछित रूप से परिवर्तित हो गया है, जैसे :—

(क) सारी राष्ट्रीयता का शिव शिव फिर तो हो चुका सर्वनाश ।^१

(ख) हाँ, निस्संदेह देगा अकबर हमसे आपको मान दान ।^२

यह सगंधारा छन्द है, इसमें ७, ७, ७, अक्षरों के बाद यति होनी चाहिये, पर यदि पाठक चाहे तो 'राष्ट्रीयता' और 'निस्संदेह' पर रुक सकता है । छन्द की झंकार पाठक को निश्चित स्थान पर रुकने को बाध्य नहीं कर पाती । बड़े छन्दों में लय-विश्रृंखलता का दोष प्रायः आ जाता है, जब कि छोटे छंदों में हिन्दी की प्रकृति बाधित नहीं होती ।

२—हिन्दी के उच्चारण के अनुसार शब्दों के अन्तर्गत संयुक्ताक्षर के पूर्व लघु अक्षर दीर्घ हो जाता है, पर संयुक्ताक्षर का प्रभाव पिछले शब्द पर नहीं पड़ता । पर, कभी-कभी वृत्त की गणविवशता के कारण बिना समास के ही, अगले शब्द के संयुक्ताक्षर का प्रभाव पिछले शब्द के अंतिम अक्षर पर डाल कर पढ़ना पड़ता है, जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है, यथा :—

अहो पृथ्वीराज ! प्रियवर कृपापत्र पहुँचा ।^३

संस्कृत में नियमतः वृत्त का अंतिम लघु अक्षर गुरु मान लिया जाता है, पर, हिन्दी की प्रकृति में ऐसा उच्चारण बहुत ही अखरता है :—

(क) सुसाथी हैं मेरे विदित कुलदेव ग्रहपति ।^४

१—और २—मैथिलीशरण गुप्त, पत्रावली, पृ० ४ ।

३—और ४—गुप्त, पत्रावली, पृ० ८ ।

(ख) वह मैं इस वंश की वधू,

यह सम्बन्ध अहा महामधु ।^१

वृत्त की विवशता के कारण यहाँ पर 'ग्रहपति' के 'ति' और 'महामधु' के 'धु' को गुरु मानकर पढ़ना पड़ता है ।

साथ ही साथ ऐसे भी प्रयोग हुए हैं, जिनमें छन्द के अनुसार किसी गुरु वर्ण को लघु रखने की आवश्यकता है, तो संयुक्ताक्षर के उच्चारण का समाप्त करके दीर्घ को लघु करना पड़ जाता है । हिन्दी की प्रकृति के अनुसार शब्द के अन्तर्गत संयुक्ताक्षर के पूर्व लघु अक्षर को अवश्य दीर्घ रूप में उच्चरित होना चाहिये, पर गणविवशता के कारण अन्यथा प्रयोग भी हुए हैं :—

‘प्रकृति को सुप्रसुप्त विलोक के ।^२

वृत्त की विवशता ने श्रेष्ठ कवियों को भी व्याकरण, समास क्षीर उच्चारण की अशुद्धियाँ करने के लिये बाध्य किया है । यहाँ पर कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे :—

(१) समासदोष :—सुत-सुफलक समागत हैं हुए ।^३

(२) व्याकरण दोष :—‘फूलों पत्तों सकल पर हैं वारि बूँदें दिखातीं ।’^४

(३) उच्चारण दोष :—(अ) वों ही आये ब्रज-अधिप के सामने शोकमग्न ।^५

(ब) ऊधो सीपी सदृश न कभी भाग फूटे किसी का ।

मीती ऐसा रतन अपना आह कोई न खोवे ।^६

(स) मुरलि थी कर में मधुवर्षिणी ।^७

‘सुत सुफलक’ में षष्ठी तत्पुरुष का विपर्यय हो गया है और समास-पद्धति फारसी के समान हो गयी है । ‘पर’ अधिकरण कारक ‘पत्तों’ संज्ञा के बाद न आकर ‘सकल’ विशेषण के पश्चात् आया है । कविता में कारक को संज्ञा से अलग रखने का अधिकार कभी भी ‘कवि अधिकार’ (पोयटिक लाइसेंस) में नहीं दिया जा सकता । ‘वों’, ‘सदृश’, ‘रतन’ और ‘मुरलि’ के शुद्ध रूप का प्रयोग होना चाहिये ।

इन समस्त कठिनाइयों के होते हुए भी हिन्दी प्रयोग की वृत्त-वर्ग को कुछ अपनी देन भी है । गुप्त जी ने इन्द्रवज्रा, वसंततिलका और शिखरिणी का, हरिऔधजी ने द्रुतविलंबित,

१—गुप्त, साकेत, दशम सर्ग, पृ० २५१ ।

२—हरिऔध, प्रियप्रवास, सर्ग ३, छन्द २ ।

३—हरिऔध, प्रियप्रवास, सर्ग २, छन्द १४ ।

४— ” ” सर्ग ५, छन्द ५ ।

५—६—” ” सर्ग १०, छन्द ७ ।

७— ” ” सर्ग १, छन्द २४ ।

मालिनी, मंदाक्रान्ता और शार्दूलविक्रीडित तथा अनूप जी ने द्रुतविलंबित और विशेषतः वंशस्थ का प्रशंसनीय प्रयोग किया है ।

यतिपरिवर्तन — कई छन्दों में यति का नवीन विधान भी हुआ है । वंशस्थ वृत्त की प्रारम्भिक लय उवेन्द्रवज्रा सी है, अतः स्वाभाविक रूप से ५ वर्णों के बाद यति आनी चाहिये, परन्तु संस्कृत के किसी आचार्य ने वंशस्थ वृत्त की यति का निर्देश नहीं किया है ।^१ हिन्दी के प्रयोगों में वंशस्थ वृत्त में कहीं चार और कहीं पाँच वर्णों के बाद यति आ जाती है, यथा—

- | | |
|--|--------------------------|
| (क.) तड़ाग थे, स्वच्छ तड़ाग हों यथा, | (चार वर्णों के बाद यति) |
| सरोज थे, फुल्ल सरोज हों यथा, | ” |
| शशांक था, मंजु शशांक हो यथा, | ” |
| प्रसन्नतापूर्ण शरत्-स्वभाव था । ^२ | ” |
| (ख) अधौतवस्त्रा, अमिता अशंसिता, | (पाँच वर्णों के बाद यति) |
| अशौच-देहा, अभगा, अमानिता, | ” |
| अदर्शनीया, अनलंकृता, अभा, | ” |
| अभागिनी थी, अबला अमानुषी । ^३ | ” |

यहाँ पहले उदाहरण में चार वर्णों के बाद और दूसरे उदाहरण में पाँच वर्णों के बाद यति आती है । लय के साथ-साथ भाव और भाषा का प्रयोग भी यति को प्रभावित करता है, इन उदाहरणों को देखकर ऐसा निष्कर्ष निकलता है ।

शिखरिणी वृत्त में प्राचीन आचार्यों ने ६ और ११ वर्णों पर यति मानी है ।^४ हिन्दी में प्रायः ६, ६, ५ वर्णों के बाद यति का प्रयोग होता है :—

धुधा से बेटा का/ वह तड़पना में/ निरख के,
न हे पृथ्वीराज/ स्थिर रह सका/ धैर्य रख के ।
मुझे आत्मा की भी/ सुध बुध न हा/ रंचक रही ।
क्षमा कीजे मेरी/ यह अवलता/—केवल यही ।^५

इन्द्रवज्रा और उपजाति छन्द में नियमतः ५ वर्णों के बाद यति आनी चाहिये, परन्तु कुछ प्रयोगों में चार वर्णों के बाद यति आयी है और बहुत से प्रयोग बिना यति के हुए हैं :—

१. देखिये, पृष्ठ १७७, प्रस्तुत ग्रन्थ, जगतीवर्ग ।

२. अनूप शर्मा, वर्द्धमान, पृष्ठ १०४ ।

३. अनूप शर्मा, वर्द्धमान, पृष्ठ ४८६ ।

४. देखिये, पृष्ठ, १८३, अत्यष्टि वर्ग, प्रस्तुत ग्रन्थ ।

५. मैथिलीशरण गूत, पत्रावली, पृष्ठ १० ।

में भी सती होकर धन्य होती , (चार वर्णों के बाद यति)
न क्षत्रिया होकर आज रोती ।^१

यदि चरणों में पाँचवें और छठे वर्ण अथवा चौथे, पाँचवें और छठे वर्ण एक ही शब्द के अन्तर्गत आते हैं, तो समस्त चरण यति-मुक्त हो जाता है :—

(क) न युद्ध का सिंधु तरा गया जो ,

(ख) मनुष्य विश्वास अलीक ही है ।^२

गुप्त जी ने अर्द्धसम वृत्त वैतालीय में प्रथम चरण का द्वितीय से और तृतीय चरण का चतुर्थ से तुकान्त स्थापित किया है । हिन्दी में अर्द्धसम के सम सम या विषय विषय चरणों में ही तुकान्त आता है, अतः तुकान्त की दृष्टि से साकेत के दशम सर्ग का वैतालीय प्रयोग नवीन है, जिसका उदाहरण पीछे दिया जा चुका है ।^३

बड़े वृत्तों में अतुकान्त होते हुए भी पदान्तरप्रवाही प्रयोग नहीं हुए हैं, पर छोटे वृत्तों में चार चरणों तक पदान्तरप्रवाही प्रयोग बहुत से हुए हैं :—

(क) वंशस्थ :—

अरण्य, केदार, निकुञ्ज, वापिका ,
नगेश, तारेश, दिनेश, आदि से ,
अवाप्त आनन्द समस्त भूमि से ,
मिला तुम्हारे अभिराम प्रेम में ।^४

दुतविलंबित :—

ध्वनिमयी करके गिरि कन्दरा ,
कलित कानन केलिनिकुञ्ज को ,
बज उठी मुरली इस काल ही ,
तरणिजा-तट-राजित कुंज में ।^५

इन दोनों वृत्तों में एक ही एक क्रिया है, जिनके कारण चारों चरणों को मिलाकर वाक्य पूरा होता है । संस्कृत में दस छंदों तक पदान्तरप्रवाही प्रयोग मिलते हैं, जिसका विवरण 'भावच्छंद' शीर्षक में दिया जा चुका है ।^६

१. गुप्त, पत्रावली, पृष्ठ २१ ।

२. " " " " ।

३. देखिये, पृष्ठ, १८६, प्रस्तुत ग्रंथ ।

४. अनूप//शर्मा, वर्द्धमान, पृ० १५८ ।

५. हरिऔध, प्रियप्रवास, पृ० २ ।

६. देखिये, पृष्ठ ३७, प्रस्तुत ग्रंथ ।

हिन्दी भाषा में छोटे-छोटे वृत्त अधिक सफलता प्राप्त करते हैं, फिर भी संस्कृत शब्दावली और सामासिक पद्धति की अभीष्ट अपेक्षा रहती ही है । यह मानना ही पड़ता है कि वृत्तों में पुराने 'क्लासिकल' विषय ही अधिक सफल होते हैं । आधुनिक समस्याओं और विषयों का चित्रण करने में वृत्तों को सफलता मिलना कठिन है । फिर भी, लेखक का मत है कि यदि किसी गण विशेष को लेकर आवर्तनमूलक पदान्तरप्रवाही प्रयोग किये जायें, तो वृत्तों में भी प्रगतिवादी विषयों का अंकन किया जा सकता है—जैसे अनूप शर्मा ने 'विराट् संग्राम' कविता में रगण की आवृत्ति की है ।

आगामी युग में वृत्तों के प्रयोग और विकास की विशेष संभावना नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि आज का साहित्यकार 'क्लासिकल' साहित्य से विमुख होकर जनपदीय साहित्य से अपनी अभिरुचि का संस्कार करके आधुनिकता के गौरव से मंडित होता दीख पड़ता है और जन-संस्कार अधिकांशतः मात्रिक गतिविधान को ही अपनाय हुए हैं, अतः मात्रिक छन्दों के विस्तृत प्रयोग की ही संभावना अधिक है ।

तृतीय अध्याय

आधुनिक काव्य में मात्रिक छन्द

आधुनिक खड़ी बोली काव्य में मात्रिक छन्दों के सुविस्तृत एवं अभिनन्दनीय प्रयोग हुए हैं। इस युग में भी हिन्दी में वर्णिक और मात्रिक छन्दों की दो धाराएँ प्रचलित रही हैं, पर मात्रिक छन्दों का विस्तृत प्रयोग देखकर यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि खड़ी बोली मात्रिक छन्दों के अधिक अनुकूल है। आधुनिक युग में हिन्दी-काव्य मात्रिक छन्दों से जितना समृद्ध और संपन्न हो गया है, उतना पूर्ववर्ती कालों में कभी नहीं रहा। इसका कारण यह है कि प्राचीन हिन्दी में प्रयुक्त अधिकांश छन्दों का प्रयोग तो खड़ी बोली में हुआ ही है, साथ ही साथ आधुनिक कवियों ने प्राचीन प्रचलित लयों के आधार पर विविध प्रकार के नवीन छन्दों का भी निर्माण किया है। इस नवीनता और प्राचीनता की समृद्धि के योग से छन्द-समूह इतना विशाल हो गया है कि आज निखिल आर्य-भाषाओं में हिन्दी भाषा, मात्रिक छन्दों में सर्वाधिक समृद्ध है। विविधता की दृष्टि से भारतवर्ष में आधुनिक युग के पहले इतने विस्तृत रूप से छन्दों का आयोजन कभी नहीं हुआ, यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है।

आधुनिक हिन्दी-कविता में, प्रयुक्त समस्त मात्रिक छन्दों को इस अध्याय में मात्राओं के क्रम से आयोजित और विश्लिष्ट किया गया है। साथ ही साथ उन छन्दों की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले समान लय के छन्दों से तुलना भी की गयी है। द्वितीय अध्याय में सैद्धान्तिक दृष्टि से आर्य-भाषाओं की तुलनात्मक विवेचना की गयी है, इस अध्याय में उन निष्कर्षों के प्रतिपादनार्थ समान उद्धरणों के द्वारा अन्य भाषाओं के छन्दों के साम्य और वैभिन्न्य की स्थिति को अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। यह विवेचन छन्द के मर्म को समझने में एक नवीन दृष्टि प्रदान करता है। सम छन्दों के वर्ग में अनेकानेक नवीनता-पूर्ण प्रयोग हुए हैं, परन्तु इस बात की चेष्टा की गयी है कि औचित्य की सीमा तक सब छन्दों को प्राचीन प्रचलित नाम ही दिये जायें। यदि प्राचीन छन्द से आधुनिक प्रयोग की यति में थोड़ी भिन्नता हुई, तो भी उसे प्राचीन नाम ही देकर प्रयोगगत समस्त नवीनताओं का निर्देश किया गया है। बहुत से नवीन छन्दों का नामकरण संस्कार भी किया गया है और छन्द के नाम को वर्णित विषय, कवितागत किसी शब्द अथवा कवि के नाम से सम्बद्ध करने की चेष्टा की गयी है तथा छन्दों में आधुनिक दृष्टिकोण से लयाधारों का भी निर्देश किया गया है। इन लयाधारों या मूल लयों में पंचक (पाँच मात्राएँ), षष्ठक (६ मात्राएँ), सप्तक (सात मात्राएँ) और अष्टक (आठ मात्राएँ) प्रमुख हैं। यह नवीन दृष्टिकोण

विभिन्न मात्रिक छन्दों की आन्तरिक चेतना में साम्य अथवा पारिवारिक सम्बन्ध समझने में एक स्पष्ट दृष्टि प्रदान करता है। इस दृष्टि से नवीन छन्दो-योजना में भी इस अध्ययन से सहायता मिलने की संभावना है क्योंकि इन्हीं लयाधारों के साहाय्य से नवीन छन्द निर्मित किये गये हैं।

अर्द्धसम छन्दों का वर्ग भी पहले की अपेक्षा कई गुना समृद्ध हो गया है। आधुनिक युग में प्राचीन अर्द्धसम छन्द तो प्रयुक्त हुए ही हैं, इनके साथ ही साथ बड़े मात्रिक सम छन्दों को यति के स्थान से विभाजित करके एक चरण से दो चरणों का निर्माण किया गया है, यथा, सरसी छन्द (१६, ११ मात्राएँ), सार छन्द (१६, १२ मात्राएँ), ताटक छन्द (१६, १४ मात्राएँ), वीर छन्द (१६, १५ मात्राएँ आदि। अर्द्धसम छन्दों के विस्तार में आधुनिक लिपि-पद्धति ने विशेष योग दिया है, जिससे एक ही चरण से स्पष्ट रूप से दो चरण बना लिये गये हैं।

इस अध्याय में तीसरा वर्ग मिश्र छन्द या यौगिक छन्दों का है। ऐसे छन्दों में दो निश्चित छन्दों के चरणों का निश्चित स्थान पर योग हुआ है। लेखक ने छप्पय और कुंडली तथा अमृतध्वनि आदि प्राचीन छन्दों को विषम छन्द न मान कर मिश्र छन्द ही माना है। मिश्र छन्द में दो निश्चित लयों के योग से निश्चित संख्या के चरण आते हैं और इन दो भिन्न छन्दों के सहयोग से छन्द की एक नयी इकाई बन जाती है।

इसके पश्चात् मात्रिक छन्दों में सर्वाधिक वैभवपूर्ण और सर्वथा नवीन वर्ग 'नवविकर्षाधार' या 'नवीन मात्रिक छन्द' का है। इस वर्ग में कवियों ने पूर्ण स्वातंत्र्य लेकर भी पूर्ण आत्म-संयम का परिचय दिया है। इस वर्ग के छन्द प्राचीन प्रचलित लयों के आधार पर ही बनते हैं, परन्तु कवि स्वेच्छा से उन लयाधारों के कितने ही विस्तार को प्रयुक्त करने का अधिकारी रहता है। वह इस वर्ग के छन्दों के निर्माण में कितनी ही संख्या की, छन्द-संगीत के अनुकूल मात्राएँ रख सकता है। इस प्रकार कवि विभिन्न मात्राओं के चरणों के योग से एक इकाई बना लेता है और आगामी छन्दों में पूर्व-निश्चित मात्राक्रमों के चरणों को आवृत्ति रूप में रखता है। इन छन्दों को विषम छन्द भी कहा जा सकता है, परन्तु भेद केवल इतना है कि विषम छन्द में सर्वत्र भिन्न चरण रखने का अधिकार होता है और इस वर्ग के छन्दों में निश्चित इकाई के चरणों को पूर्व-निश्चित क्रम के अनुसार ही रखना पड़ता है। इस वर्ग के छन्दों के बारे में यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि विभिन्न चरणों का लयाधार एक ही होता है, क्योंकि विभिन्न लयों का चरण-संयोग प्रवाह में व्याघात उत्पन्न करता है। ऐसे प्रयोगों के निदर्शन से कवि के अनन्त अधिकार का स्पष्ट परिचय मिलता है, फलतः, इस वर्ग में अभी बहुत से नवीन प्रयोगों की संभावना है।

अध्याय के अन्तिम खंड में छन्दक (टेक) और उसके साथ प्रयुक्त छन्द-चरणों का पारस्परिक लय-संबंध दिखाया गया है। छन्दक का लय-निपात अनिवार्यतः प्रयुक्त छन्द के लयनिपात से मिलना चाहिये। इस साम्य में कौन-कौन से सिद्धान्त काम करते हैं, इसका

भी विश्लेषण किया गया है। छन्दक के पश्चात् भिन्न लय का छन्द भी प्रयुक्त हो सकता है, परन्तु छन्द का जो चरण छन्दक के अन्त्यानुप्रास से लयनिपात में साम्य स्थापित करता है, उसकी लय में छन्दक की लय का ऐक्य होना अनिवार्य है।

इन विभिन्न वर्गों के छन्दों में तुक का प्रयोग अत्यन्त गरिमामय और वैभवपूर्ण है। इस युग में जहाँ अनुकान्त और विषम छन्दों में अन्त्यानुप्रास को आवश्यकतानुसार अस्वीकृत किया गया है, वहाँ इस अध्याय के समस्त वर्गों के छन्दों में तुकान्त को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया है। बहुत से छन्दों में तुकान्त की नवीन क्रम से योजनाएँ भी की गयी हैं। प्राचीन नियमों को देखते हुए ऐसे तुकान्त-आयोजन सर्वथा नवीन हैं।

हिन्दी छन्दों की मात्रिक परम्परा और उसका आधुनिक युग में विकास

आधुनिक युग में कविता के प्रयोगों को देख कर यह धारणा स्थिर होती है कि मात्राधार हिन्दी की सहज स्वाभाविक वृत्ति के सर्वाधिक समीप है। लोक-गीतों में, जो मात्राधार अधिक मांसल, और कोमल हो गया है, वही साहित्य में सोने की तौल की तरह प्रयुक्त होता है, अतः खड़ी बोली कविता को संस्कृत उच्चारण के मानों को स्वीकार करने में ही अधिक सुविधा रही है।

हिन्दी के आदिम युग से आज तक मात्रिक छन्दों का प्राधान्य देखकर और संस्कृत वृत्तों से उनकी भिन्नता का अनुभव कर, लोग सामान्यतः यह धारणा बना लेते हैं कि मात्रिक छन्द हिन्दी में सहसा उत्पन्न हो गया है। अपभ्रंश साहित्य के प्रचारित होने पर यह धारणा बनी कि मात्रिक छन्द अपभ्रंश से आये हैं, लेकिन कोई भी संस्कृत-कविता का ज्ञाता इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं होगा। उस का कारण यह है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों साहित्यों में मात्रा छन्दों का बहुशः प्रयोग हुआ है, कुछ समय पूर्व लेखक की यह धारणा थी कि संस्कृत छन्दों से इन मात्रिकों का विकास हुआ है। संस्कृत में कुछ ऐसे वृत्त हैं, जो मात्रिक लय के अनुकूल पड़ते हैं, उन्हीं छन्दों से मात्रिक छन्दों का स्वरूप विकसित हुआ है। पर, अब यह धारणा बनी है कि मात्रिक परम्परा वैदिक युग से ही चली आ रही है। वैदिक युग के छन्दों के पाठ में केवल अक्षर-गणना के विधान के अतिरिक्त स्वरों का भी प्रयोग किया जाता है, अन्यथा केवल अक्षर-संख्या लय को जन्म देने में असफल हो जाती। वैदिक छन्द-पाठकारों और उन छन्दों के लिपिकारों ने उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का प्रयोग तो किया, परन्तु वैदिक युग के छन्दः शास्त्रियों और परवर्ती युग के आचार्यों ने वैदिक छन्दों पर विचार करते हुये मात्रामैत्री का विवेचन नहीं किया और फलतः एतद्विषयक कोई सिद्धान्त भी निश्चित नहीं किया गया।

वस्तुतः मात्रा का सम्बन्ध ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण से है। मनुष्य सामान्यतः बिना विशेष आयास के दो ही प्रकार के उच्चारणों का अभ्यासी रहा है। उच्चारण

के इन दो भेदों ने ही छन्द की लय के निर्माण में सहयोग दिया है, क्योंकि गाने के समय भी अभ्यस्त उच्चारण-पद्धति से इतर पद्धति मनुष्य कैसे प्रयुक्त कर सकता था। मूल छन्दों की लयों के तुलनात्मक अध्ययन में यह दिखाया जा चुका है कि भारोपीय और द्रविड़ परिवार की भाषाओं के छन्दों में यही दोनों मान-दंड (लघु, दीर्घ) मूलतः कार्य कर रहे हैं। उन का लय-क्रमायोजन ऐसा ही है। इन्हीं मौलिक उच्चारण-पद्धतियों के आधार पर विभिन्न भाषाओं के छन्दों का निर्माण होता है। जिस भाषा में जितनी उच्चारण-पद्धतियाँ होंगी, उतने ही प्रकार के छन्द निर्मित किये जा सकते हैं। यद्यपि वैदिक छन्दपाठ में त्रिमात्रिक प्लुत भी प्रयुक्त होता था, पर सामान्य गीत और वार्त्तालाप में संस्कारों के कारण दो से अधिक उच्चारण-पद्धतियों की कल्पना नहीं की जा सकती, तो भी छंदःशास्त्र संयुक्ताक्षर में शून्यमात्रा का भी विवेचन करता है। उच्चारण में उस का स्थान एक मात्रा के बराबर है, जब उसके पहले ह्रस्व अक्षर होता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ववैदिक युग में इन्हीं विशिष्ट उच्चारण-पद्धतियों के आधार पर आर्य लोग अपने गीतों की रचना करते थे। उनके उच्चारण-स्वर अवश्य ही खड़ी बोली के मात्रिक छन्दों की मात्राओं की तरह नपे तुले नहीं होंगे, अन्यथा भिन्न-भिन्न स्वर-अक्षरों के साथ संख्यावत् मंत्री स्थापित न हो पाती और उससे अक्षर-संख्या-मूलक छन्दों का विकास न हो पाता। यहाँ पर वाद्यतः यह तथ्य आत्म-विरोधी लगेगा, क्योंकि पीछे वृत्तों से मात्रिकों के विकसित होने की बात कही गई है। वस्तुतः अक्षर और मात्रा भाषा के आदिकाल से ही इतने अभिन्न और एकाकार हैं कि उन्हें विशुद्ध भिन्न रूप में प्रयुक्त ही नहीं किया जा सकता। छन्द की पाठ-पद्धति में जिस वर्ग के नियम प्रधान होते हैं, छन्दःशास्त्री उस छन्द को उसी वर्ग में रख देता है। वैदिक अक्षर छंद किसी जन-परम्परा के साहित्यिक रूप हैं, क्योंकि बिना बुद्धि के चेतन प्रयास के १०४ अक्षरों तक के विविध छन्द निर्मित हों और उन में अक्षरगणना समान हो, ऐसा संभव नहीं। जन-गीतों के चरण तो बहुत छोटे होते हैं, उनसे गायत्री, अनुष्टुप् और अधिक से अधिक त्रिष्टुप् और जगती का विकास संभव था। यह जन-गीतों की प्राकृत परम्परा वैदिक युग में भी प्रचलित थी। वैदिक छन्दों की सुप्रयुक्त, अभ्यस्त और बहुशः आवृत्त लयों को वृत्त का रूप मिल गया। इन वृत्तों के विकास में भी जन-गीतों ने योग दिया। वृत्तों के आवर्तक वर्ग से मात्रिक छन्दों का विकास हुआ। इस का प्रमाण यही है कि अधिकांश मात्रिक छन्द आवर्तक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि वर्णिकों और मात्रिकों में पहला भेद तब स्पष्ट रूप से स्थापित हुआ, जब वैदिक छन्द वर्ग विशेष की साहित्य-सम्पत्ति बन गये और जनता से उनका सम्पर्क छूट गया। उस समय भी जनता में छान्दसिक संस्कार वैदिक ही थे, अतः जिस लय में वर्ण पर स्वराघात देकर या उदात्त उच्चारण से छन्द पूरा किया जाता था, जनता ने उस स्थान पर एक मात्रा का योग करके उस लय को पूरा किया। सिद्धान्ततः यह कहा जा सकता है कि गणित शास्त्र के अनुसार ऊँचाई का स्थान चौड़ाई ने ले लिया, फलतः लय का घनफल पूर्ववत् ही रहा। इसी सिद्धान्त के आधार पर

समस्त भाषाओं में दीर्घ उच्चारण के स्थान पर दो लघु रखने का विधान है । ह्रस्व-दीर्घ की निश्चित व्यवस्था वाले छन्दों में यद्यपि ऐसे प्रयोगों को अपवाद कहा जाता है, पर इससे लय में कोई विशेष अन्तर नहीं आता । धीरे-धीरे उस जनपदीय पद्धति का अलग स्वरूप विकसित होने लगा, जिसमें सम मात्रा-मूलक प्रवाह ही स्वस्थ और प्रौढ़ रूप में आगे बढ़ सका । यह जान लेना आवश्यक है कि संसार का कोई छन्द ध्वनिमैत्री से रहित नहीं हो सकता । मात्रामैत्री का यह स्वाभाविक लक्षण है कि वह सम संख्या की शब्द-मात्राओं के योग से प्रवाहित होता है । विषम मात्रिक शब्द में विषम मात्रिक शब्द जोड़ने से सम प्रवाह आ जाता है, इसीलिये मात्रिक छन्दों की यह विशेषता है कि जब तक मात्रिक समता चलती है तभी तक प्रवाह चलता है । यदि छन्द के बीच में विषमता आयेगी, तो छन्द अवश्यमेव यति ग्रहण करेगा, क्योंकि विषमता के कारण प्रवाह अखंड नहीं रह सकता, जैसा कि दोहा आदि छन्दों में होता है ।

संस्कृत वृत्तों के साथ-साथ मात्रा-मूलक स्वरूप किस प्रकार प्रचलित था, इसके उदाहरण पालि साहित्य में पाये जाते हैं । 'धम्मपद' के 'यमक वग्गो' के अन्तिम अंश में इन्द्रवज्रा का प्रयोग हुआ है, परन्तु उसमें इतने अपवाद प्रविष्ट हो गये हैं कि कोई कोई छन्द मात्रिक पद्धति से पढ़ा जा सकता है ।^१

पीछे कहा जा चुका है कि आवर्तक वृत्तों के समयुग में ही जन-परम्परा ने मात्रिकों का विकास कर लिया था । जातक ग्रन्थ ईसा से कई शताब्दी पूर्व का है, उसमें भी चौपाई जैसा छन्द प्राप्त होता है । निम्न उदाहरण को किसी प्रकार परवर्ती काल का नहीं माना जा सकता :—

१—मात्रिक पद्धित के समीपः इध मो/दति पे/च्च मोद/ति, ४, ४, ६ मात्राएँ

कतपञ्जों उभ/यत्थ मोदति, ४, ४, ३, ५ ,,

सो मो/दति सो/पमोद/ति, ४, ४, ३, ३ ,,

दिस्वा/कम्मवि/सुद्धिमत्तनो । ४, ४, ३, ५ ,,

(१।१६। यमकवग्गो, धम्मपद)

इसी के आगे बीसवें श्लोक के प्रथम दो चरणों में एक-एक अपवाद है और अन्तिम दो चरण विशुद्ध इन्द्रवज्रा के हैंः—

अप्पम्मि चे सहितं मा समानो ,

धम्मस्स होति अन्तुधम्मचारी ।

रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं ,

सम्मपपजानो सुविमुक्त चित्तो ।

१, २०, यमकवग्गो, धम्मपद ।

सिनिद्ध नील मुदु कुञ्चित केसो ।	१६ मात्राएँ
सुरिय निम्मल तलाभि ललाटो ।	१६ मात्राएँ
युत्त तुंग मुदकायत नासो ।	१६ मात्राएँ
रोस जाल विततो नरसीहो ।	१६ मात्राएँ

उस युग के छन्दों में इन्द्रवज्रा, इन्द्रवंशा, उपेन्द्रवज्रा आदि के सम्मिश्रण के साथ वृत्तों में गुरु के स्थान पर दो लघु रखने और लयानुसार लघु को दीर्घ कर लेने की स्वतंत्रता छन्दों के प्रयोग में जन-परम्परा के योग की स्पष्ट सूचना देती है ।^१

अपभ्रंश युग में मात्रिक छन्दों की परम्परा इतनी प्रौढ़ हो गई थी कि मात्रा छन्दों में आद्योपान्त महाकाव्यों की रचना की गयी थी । समस्त सिद्ध और जैन साहित्य जिसकी रचना नवीं शताब्दी के बाद हुई, मात्रिक छन्दों ही लिखा गया । चौरासी सिद्धों और जैनाचार्यों की कृतियों में भी मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है । उस समय तक मात्रिक छन्दों का इतना प्रचार हो गया था कि संस्कृत के कवि गोवर्धनाचार्य^२ (आर्या-सप्तशती) और जयदेव (गीतगोविन्द, ११ वीं शताब्दी) ने वृत्तों को छोड़ कर मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया ।

वीरगाथाकाल में भी प्रधानता मात्रिक छन्दों की ही रही । भक्तिकाल के समस्त पद, साखी, भजन और प्रबन्ध मात्रिक छन्दों में मिलते हैं । केवल कवितावली, विनय-पत्रिका और सूर-सागर के कुछ पद वर्णिक आधार पर निर्मित हैं । रीतिकाल में कवित्त सवैया वर्णिक छन्दों का प्राधान्य हुआ, तो भी बिहारी, मतिराम जैसे कवि दोहों में कविता करते रहे । काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में मात्रिक छन्दों के बहुत उदाहरण मिलते हैं । छन्दः शास्त्र के ग्रन्थों में मात्रिक छन्दों का प्रधानता के साथ विवेचन किया गया । भारतेन्दु-युग में पदों और जनप्रिय कविताओं में मात्रिकों का ही प्रयोग हुआ । द्विवेदी-काल में वृत्त-शैली केवल साहित्यिक प्रयोग मात्र थी । उस समय में भी दो चार पुस्तकों को छोड़कर समस्त

१—रूपेसु सहेसु अर्थ रसेसु,
गन्धेसु फास्तेसु च रक्ख इन्द्रियं ।
एतेहि द्वारा विवता अरविक्खता,
हनन्ति गामां व परस हरीनो ।

सिलानिदेशो, विसुद्धिमग बुद्धगोषकृत ।

Edited by C. A. F. Rhys Davids, M. A., D. Litt, P. 37.

२—मा स्पृश मामिति सकृपितमिव भणितं व्यञ्जिता न, च ब्रीडा ।

आलिङ्गितया सस्मितमुक्तमनाचार कि कुरुषे । ४२८ ।

आर्यासप्तशती ।

रचना मात्रिक छन्दों में ही हुई। इस युग में प्राचीन मात्रिक छन्दों को नवीन रूप देकर ग्रहण किया गया, जिसका संकेत छन्द-लक्षणों के साथ इसी अध्याय में किया जायगा। इस युग में प्राचीन छन्दों को लेकर भी प्राचीन छन्दों के नियम को अनिवार्यतः नहीं माना गया है, कवि सुविधानुसार यति, गति और आकार में परिवर्तन-परिवर्द्धन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त करता रहा। इसके अतिरिक्त कुछ वृत्तों को मात्रिक रूप देकर प्रचारित किया गया। कुछ कवियों ने प्राचीन मात्रिक लयों के आधार पर स्वेच्छा से नवीन छन्दों की रचना की और सुविधानुसार उन का क्रम निश्चित कर लिया। यह नवीनता गीतों और स्फुट कविताओं में अधिक दिखाई पड़ती है, प्रबन्ध काव्यों में तो अधिकांश निश्चित छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन क्रम से आयोजित छन्द, जिन में कई छन्दों का मिश्रण है, विषम छन्दों के अन्तर्गत माने गये हैं, यद्यपि ये विषम छन्द निश्चित छन्दों के रूप में प्रयुक्त हुये हैं। विषम छन्द के दो भेद हैं—(१) निश्चित विषम छन्द और (२) मुक्त छन्द। निश्चित विषम छन्द में कवि छन्द के क्रमायोजन का जो स्वरूप स्वेच्छा से निर्धारित करता है, आगे ठीक उसी छन्द की, उसी क्रमचरण से आवृत्ति करता है। ऐसे छन्दों की विभिन्न लयें तो पूर्व छन्दों में मिल जाती हैं, परन्तु छन्द का रूप नया होता है।^१ आधुनिक युग में कुछ समछन्दों

१—(अ) हृदय के पलकों में गतिहीन
स्वप्न संसृति सी तुम साकार,
बाल भावुकता बीच नवीन
परी [सी धरती] रूप अपार,
भूलती उर में आज, किशोरि !
तुम्हारी मधुर मूर्ति छविमान,
लाज में लिपटी उषा समान,
प्रिये, प्राणों की प्राण ।

(भाव पत्नी के प्रति, गुञ्जन, पन्त)

यद्यपि इस विकर्ष में शृंगार छन्द चलता है, पर अन्तिम चरण के असमान होने के कारण इसे शास्त्रीय दृष्टि से सम या अर्द्धसम छन्द न कह कर विषम ही कहना पड़ेगा।

(ब) छोड़ द्रुमों की मृदुछाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से अग जग को ।

(मोह, पल्लव, पन्त)

यह छन्द हाकलि के दो चरणों, ताटक के एक चरण और हाकलि के एक चरण के योग से बना है। इस छन्द को भी विषम माना जायगा।

को अर्द्धसम रूप में प्रयुक्त किया गया है। जिन लम्बे छन्दों के बीच में यति पड़ती है, सुविधानुसार कवियों ने यति के अंश को एक चरण मान कर दूसरी पंक्ति में लिखना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे सम छन्दों को अर्द्धसम वर्ग में रख दिया गया है, यद्यपि लय की दृष्टि से इन के सम रूप और अर्द्धसम रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ऐसे छन्दों में रूपमाला (१४, १०), सरसी (१६, ११), सार (१६, १२), ताटक (१६, १४) और मत्तसवाई (१६, १६) आदि बड़े बड़े छन्द आते हैं। इस युग में कई छन्दों के मेल से निर्मित निश्चित 'मिश्र छन्दों' का प्रयोग किया गया है। प्राचीन काल में मिश्र-छन्दों को (छप्पय = रोला + उल्लोला, कुंडली = दोहा + रोला, अमृतध्वनि = दोहा + व्यष्टक) ही विषम छन्द कहने की प्रथा रही है। प्रस्तुत निबन्ध में ऐसे छन्दों को मिश्र छन्द मान लिया है, जिनमें निश्चित दो अलग अलग छन्द एक में ग्रथित मिलते हैं।

भारतेन्दु जी ने यद्यपि कविता के क्षेत्र में पद, सवैया और घनाक्षरियों का ही प्रयोग किया, पर भारतेन्दु-ग्रन्थावली के स्फुट उदाहरण विस्तृत मात्रिक छन्दों के प्रयोग को स्पष्ट कर देते हैं। उन्होंने दोहा, सोरठा, चौपाई के अतिरिक्त पद्वि (१६ मात्रा, अंतऽ।) प्लवंगम (१०, ११ मात्रा), भानु (२१ मात्रा, अंतऽ।) छप्पय, रूपमाला, दोहक (१२, ११ अंतऽ।), भुजंगप्रयाता, रोला, हरिगीतिका, वीर, सरसी, (१६, ११, और हाकलि (१४ मात्रा, अंतऽ) आदि छन्दों का प्रयोग किया।^१ रीतिकाल में इन छन्दों के प्रचलन के अभाव में इस दिशा में इसे नया पुनरुत्थान मानना चाहिये। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने उर्दू की बहारों को भी अपनाया। हिन्दी और उर्दू दोनों ही खड़ी बोली की दो शैलियों के रूप में प्रयुक्त होती आ रही थीं, अतः उर्दू की पूर्व-परम्परा का प्रभाव हिन्दी पर पड़ना अस्वाभाविक न था। दूसरे अध्याय में सिद्ध किया जा चुका है कि उर्दू की अधिकांश बहरे हिन्दी छन्दःशास्त्र के सिद्धान्तों से लक्षणबद्ध हो जाती हैं, अतः उन छन्दों को स्वीकार करना तो वाञ्छनीय था, परन्तु उर्दू पद्य की उच्चारण शैली खड़ी बोली कविता को खींच कर व्रज-भाषा उच्चारण-शैली की ओर ले जाने वाली थी। उर्दू की बहरे हिन्दी के स्वतंत्र उच्चारण की रक्षा नहीं कर सकतीं, क्योंकि छन्द का प्रभाव भाषा की प्रकृति पर पड़ता है। छन्द के हिसाब से भाषा के सजाने में छन्द के अनुरूप शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे सवैया में 'कात्यायनी', 'शर्वाणी', और 'रुद्राणी', शब्दों के स्थान पर उमा, गौरी, काली, हेमवती, ईश्वरी, शिवा और भवानी का प्रयोग संभव है। उर्दू बहरों के वजन में उर्दू शब्दावली अधिक अनुकूल पड़ती^२ है जैसा कि हिन्दी के कुछ प्रयोगों से

१— विशेष विवरण के लिए नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००७ के भारतेन्दु-अंक में लेखक का 'भारतेन्दु के छन्द' लेख देखिये।

२— गिराया है जमीं हो कर, छड़ाया आसमाँ होकर,
निकाला, दुश्मने जाँ, और बुलाया मेहरवाँ होकर। बेला, पृ० ६२, निराला।

पता चलता है । हिन्दी के अधिकांश कवियों ने उर्दू की बहरों में उर्दू की उच्चारण-पद्धति और शब्दावली को अपना लिया है । शब्दों के साथ फारसी की विपरीत सामासिक पद्धति जैसे तत्पुरुष समास के समकक्ष 'गुलज़ारे सखुन', 'दर्दे-ज़िगर' का प्रयोग हुआ । इससे भाषा की प्रकृति बिगड़ जाती है ।

शब्दों के साथ उर्दू मुहाविरों तथा अन्य उर्दू की अभिव्यञ्जना-पद्धतियों का भी हिन्दी में आगमन हुआ । 'सितारे सितारे टूटा जा रहा है' (बेला) जैसे प्रयोग हिन्दी शैली में नहीं शोभा देते । इस चरण का छन्द भुजंगप्रयात है, पर शैली उर्दू की कर दी गई है ।

'चढ़ी आँखें जहाँ की उतार लायेंगी' (बेला) 'निराशा के डोरे सिये जा रहे हैं' (बेला) की अशुद्ध उच्चारण-मूलक मुहावरेदानी हिन्दी के अनुकूल नहीं है, यद्यपि मुहावरे ही भाषा की जान होते हैं । इन सभी कारणों से उर्दू की छन्द-पद्धति से बचना आवश्यक था, अन्यथा भाषा और संस्कृति का स्तर गिरता है । यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि उर्दू के प्रचलित शब्दों के अपनाने का लेखक ने विरोध नहीं किया है ।

द्विवेदी युग के पूर्व आचार्य भानु जी का 'छन्दःप्रभाकर' भी जून १८६४ में प्रकाशित हुआ था, जिस में समस्त प्राचीन छन्दःपरम्परा का समाहार और विश्लेषण दिया हुआ है । हिन्दी के बहुत से कवियों को इस सर्वसुलभ ग्रन्थ ने एक नवीन दृष्टि प्रदान की । यद्यपि किसी तत्कालीन कवि ने इस ऋण को स्पष्ट रूप में स्वीकार नहीं किया है, परन्तु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इस निष्कर्ष के मूल्य को अमान्य नहीं ठहराया जा सकता । द्विवेदी युग के आदर्शवाद की विशुद्धता, दिव्यता, मर्यादा, नैतिकता और वीरपूजा एवं जागरूक आर्यत्व की भावना ने उर्दू की बहरों की अपेक्षा हिन्दी मात्रिक छन्दों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया । महर्षि दयानन्द सरस्वती की सांस्कृतिक क्रान्ति से समाज की मनोवैज्ञानिक भूमिका बनी थी, उस ने ही द्विवेदी काल की साहित्य-धारा का वह स्वरूप देने में सहायता पहुँचाई, जिसे हम आज देख रहे हैं । हिन्दू और मुसलमानों की धर्म-चेतना ने जिस प्रकार उर्दू के माध्यम से अभारतीय आदर्श, संस्कृति, अभिव्यञ्जना और काव्य-शैली को जन्म दिया, उसी प्रकार क्रमिक आघात से हिन्दी को विशुद्ध भारतीयतावादी बनने का निषेधात्मक रूप से बल भी प्रदान किया । इस ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक भूमिका में उर्दू की बहरें अपने मूल रूप में नहीं अपनाई जा सकीं । उन का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा, परन्तु हिन्दी में अपने ही मात्रिक छन्द विशेषतः अपनाये गये । द्विवेदी युग की भावधारा में विकसित होने वाले श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कांग्रेस की राष्ट्रीयता का समर्थन करते हुए भी भारतीयता का ही प्रतिपादन किया । यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि द्विवेदी युग के समस्त कवियों में श्री गुप्त जी ही मात्रिक छन्दों का प्रयोग करने वाले कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं । मात्रिक छन्दों के

इतने विविध प्रयोग उस समय के किसी कवि की कृतियों में नहीं मिलते। उन के द्वारा प्रयुक्त छन्दों का आज इतना प्रचार हो गया है कि सामान्य पाठक के लिए यह समझना कठिन है कि उस समय गुप्त जी को मात्रिक छन्दों को सिद्ध करने के लिए कितनी साधना करनी पड़ी होगी। उन्होंने मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिकार और सफलता के साथ किया है। वे संस्कृत वृत्तों में सफल नहीं हुए। वृत्त-प्रयोग में प्रतिभा के बल पर वे एक विद्यार्थी की भाँति अभ्यास करते दिखाई देते हैं। हाँ, मुक्तवर्णिक में (१५ अक्षर, घनाक्षरी अर्द्धांश के आधार पर) जिसे लेखक ने उन्हीं के नाम पर 'मैथिली' छन्द कहा है, उन्हें अनन्य सफलता मिली है। यह भी सत्य है कि घनाक्षरी और सबैया के शरीर को पकड़ कर भी, वे उस की समग्रता में निहित अनन्त शक्ति का उपयोग नहीं कर सके, परन्तु 'मैथिली' छन्द का आयोजन रचना घनाक्षरी छन्द से प्राप्त पराजित विजय का शिलालेख है। मात्रिक छन्दों में उन्होंने पीयूषवर्ण, सार, तादंक, चान्द्रायण, सुमेरु (१२ + ७, अंत ५५), राम (९ + ८ अंत ५५), हाकलि, सही, प्लवंगम, चौपाई, मधुमालती (७ + ७) उर्मिला (७ + ७ + ३, (५५५) आधार), गीति (१२, १८, १२, १८), दोहा, सोरठा, आर्या (१२, १८, १२, १५ मात्रा), आर्यागीति (१२, २०, १२, २०), विष्णुपद, मरहठामाधवी और उल्लाला का प्रयोग किया है, इसके अतिरिक्त प्राचीन ल्यों पर नवीन विकर्षाधार भी निश्चित किए हैं, जिन्हें मिश्र और विषम छन्द के वर्ग में विशिष्ट किया जायगा। श्री सियारामशरण गुप्त के निश्चित छन्द इसी गणना के अन्तर्गत आ जाते हैं। उन्होंने अनुकान्त और मुक्त छन्दों में अपनी छन्द-प्रतिभा का विशेष परिचय दिया है। प्रसाद जी ने तादंक, वीर, धीर (१६, १५, १६, १५ मात्रा, अर्द्धसम रूप) शृंगार, मत्त सबैया (१६, १६ सम), पाद मंथर (१६, १६, १६, १६, अर्द्धसम रूप), पादाकुलक (१६ सम), रूपमाला, सार, रोला, मानव (१४, १४, आँसू का छन्द), चान्द्रायण, गीतिका, हरिगीतिका, राधिका, सोरठा, प्लवंगम, सरसी, पीयूषवर्ण, गोपीशृंगार (गोपी + शृंगार), दोहा, योग, चौपाई, घनाक्षरी (अतिविरल प्रयोग) और बरवै छन्द का प्रयोग किया। इस के अतिरिक्त मिश्र और विषम छन्द हैं। इस सूची में नाटकों में प्रयुक्त छन्द भी मिला लिए गए हैं। हरिऔध जी ने रोला, दोहा, रसशृंगार (१६, १६, १६, १६, अर्द्धसम रूप, शृंगार), तिलोकी (२१ मात्रा ८ + ८ + ५), तादंक, पादाकुलक (अर्द्धसम रूप में पाद मंथर), मत्तसमक (५५५ × २), चौपदे (१५ मात्रा शृंगार की अन्तिम मात्रा घटा कर), सखी (१४ मात्रा, या मानव), रूपमाला (पद में प्रयुक्त), सार (पदों में) और वंदेही-वनवास में प्रयुक्त) घनाक्षरी, सबैया, चन्द्र (१०, ७ मात्रा, आदि रगणात्मक, अंत सम), दिग्पाल और शृंगार छन्द का प्रयोग किया है। छन्दःशास्त्र की दृष्टि से नवीन होते हुए भी प्रयोग की दृष्टि से उन की बहरें हिन्दी को एक देन हैं। चौपदों के प्रयोग का श्रेय हरिऔध जी को ही प्राप्त है। बहरों में १७, १६ और २८ मात्राओं का प्रयोग हुआ है। दिनकर जी ने पीयूषवर्णी, घनाक्षरी, उर्मिला (१७ मात्रा ७, ७, ३) गीतिका, सार, वीर, विधातानुज (५५५५ × ३ + ५५५), राधिका, सरसी, सबैया (कुक्षेत्र), हरिगीतिका, शृंगार, तादंक, रसशृंगार, रोला, मत्तसवाई, रूपमाला, शक्तिपूजा (२४ मात्रा,

अंत), रास (८ + ८ + ६), पद्धरिसवाई (१६, १६), पद्धरि, योग (२० मात्रा) पञ्चचामर, हरिगीतिका, सुमेरु ($1555 \times 2 + 155$), सारसरसी (मिश्रछन्द) छन्दों का प्रयोग किया है ।

छन्द के विभिन्न तत्त्व

आधुनिक छन्दों के वर्गीकरण और विश्लेषण के पहले छन्द के विभिन्न तत्त्वों के विकास पर ऐतिहासिक क्रम से विचार करना आवश्यक है । छन्द की लय में यति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । यति के अन्तर से छन्द की लय में एक आमूल नवीनता आ जाती है, अतः विभिन्न युगों की यति सम्बन्धी भावना का आधुनिक यति की धारणा और उसके प्रयोग का तुलनात्मक विवेचन भी अपेक्षित है ।

अन्त्यानुप्रास भी छन्द का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभिन्न अंग है । पिछले डेढ़ हजार वर्षों से संसार की भाषाओं में अन्त्यानुप्रास का धीरे धीरे विकास और प्रचार हुआ है । आधुनिक युग में (यह आधुनिकता अलग अलग देशों और भाषाओं में अलग अलग समयों में आई है) अन्त्यानुप्रास से फिर मुक्ति पाने का बड़ा सफल प्रयास किया गया है । इस अन्त्यानुप्रास-मुक्ति से छन्द के विशाल इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण युग का आरंभ हो रहा है, अतः अन्त्यानुप्रास का भी ऐतिहासिक क्रम से विवेचन आवश्यक है । किन् किन् ऐतिहासिक परिस्थितियों और दार्शनिक विचार-धाराओं के फल-स्वरूप आधुनिक युग के कवियों में यह अन्त्यानुप्रास-मुक्ति की भावना आई, यह सूचना भी अन्त्यानुप्रास की इस महत्त्वपूर्ण घटना को स्पष्ट रूप से समझने में सहायक होगी । यहाँ पर अन्त्यानुप्रास के इतिहास और विवेचन के साथ ही 'अन्त्यानुप्रास-मुक्ति' का भी विवेचन किया गया है, क्योंकि एक ही स्थल पर युगान्तर को स्पष्ट करना अधिक प्रभावात्मक और वैज्ञानिक है, अन्यथा अन्त्यानुप्रास-मुक्ति का विवेचन चौथे अध्याय के 'पदान्तर-प्रवाही' के साथ प्रस्तुत किया जाता ।

यति

छन्दपाठ में जिह्वा के अभीष्ट विश्राम को यति कहते हैं । इसके अन्य पर्याय विच्छेद या विराम भी हैं ।^१ पिंगलनाग मुनि ने विच्छेद को यति माना है ।^२ इसी का समर्थन

१—यतिर्जिह्वेष्टविश्रामं स्थानं कविभिरुच्यते ।

सा विच्छेद विरामाद्यः पदेर्वाच्या निजेच्छया ॥ छन्दोमंजरी, प्रथम स्तवक, १२ ।

२—यतिर्विच्छेदः । १ । अ० ६, पिंगल छन्दःसूत्रम् ।

विच्छिद्यते विभज्यते पदपाठोऽस्मिन्निति विच्छेदो विश्रामस्थानं,

स च यतिरुच्यते ।

(हलायुध भट्ट)

आचार्य केदार भट ने किया है ।^१ स्वयंभुव, कुछ ऐसे आचार्यों का भी नाम लेते हैं, जो यति के महत्त्व को नहीं स्वीकार करते ।^२

यति दो प्रकार की होती है । (१) पूर्णक यति (२) लयात्मक यति । चरण के अन्त में पूर्णक यति होती है और मध्य में लयात्मक यति । लयात्मक यति के द्वारा ही चरण छन्दित एवं सुगठित होता है ।^३ जहाँ पर यति होती है, वहाँ पर पद की ^४ समाप्ति होनी चाहिए ।^५ पूर्णक यति तो सभी छन्दों में होती है, परन्तु लयात्मक यति का विभिन्न छन्दों में विभिन्न नियम है । पादान्त में तो सर्वत्र यति होती है और किन्हीं छन्दों में

१ यतिविच्छेद संज्ञितः ।

वृत्तरत्नाकर, प्रथम अध्याय, १२० ।

२—जयदेवः पिंगला सक्क अस्मि दोच्चि अ जई समिच्छन्ति ।

माण्डव्य, भरत, कासव, सेवल, पमुहा ण इच्छन्ति । स्वयंभुवच्छन्द (११४४) ।

(जयदेव और पिंगल यति को मानते हैं, परन्तु माण्डव्य, भरत, काश्यप और सेवल यति नहीं मानते हैं ।)

३ केवल परिमाण अनुसारे ये छन्दभाग घटे, ताहाइ एक एकटि पद, एवं ताहारजन्य चरन मध्ये ये यति पड़े ताहाओ चरन-गठन-मूलक, Metrical Pause होइया सके ओ, ताहा द्वारइ Rhythimical Pause वा छन्दघटित यतिरकाजओ, होइया थाके, अर्थात् ताहारइताले चरनगुलि छन्दित होइया थाके । पृ० ३५, बाङ्ला कवितार छन्द ।

४—सुप्तिङन्तं पदम् । (पाणिनि) ।

५—(अ) पदभेदेन पादानां विभागोऽभिधीयते तु ।

ऋक्प्रतिशाख्य, पा० १७, १५ ।

बिना शब्द विभाजन के पद विभाजन होना चाहिए ।

(ब) सलगपणे आणि लयानुरोधाने वाच्योत असतांना जो न्यूनाधिक विराम काही ठिकाणी ध्यावाच लागतो त्याला यति म्हणतात । यति स्थानी पद्याचा विच्छेद होतो, तुकडा पडतो, म्हणून यतिस्थानी शब्द समाप्ति, निदान पद समाप्ति तरी ह्यादी । तसे न झाल्यास जो कर्णकटु दोष होतो त्याला यतिभङ्ग म्हणतात ।

पृ० ६३, छन्दोरचना, माधव राव पटवर्द्धन ।

(स) A break in the line as metrically read or heard which is almost always coincident with the end of a word, and very frequently but not always or so often (as in the former case) coincides with a stop in punctuation, Page 289.

Historical Manual of English Prosody. Satntsbury.

आधे श्लोक में भी यति होती है ।^१ स्वराघात पूर्ण शब्दों के उच्चारण में भी यति हो जाती है । कविकल्पलता में यह उदार सिद्धांत स्वीकृत है कि जहाँ जहाँ भी मधुरता के निमित्त यति हो सकती हो, वहाँ यति रहे, परन्तु वह यति रसज्ञ सुधियों को उद्बेग-कारिणी नहीं होनी चाहिये ।^२

ऋक्-प्रातिशाख्य में विभिन्न छन्दों की यतियों का सुन्दर विश्लेषण है^३ :—

(१) तीन चरणों के छन्द में कभी कभी चरणों के बाद और कभी १ चरण के बाद यति होनी चाहिये ।

(२) चार चरणों के छन्द में मध्य और अन्त में यति होती है । कभी ३ चरणों और कभी १ चरण के बाद भी यति होती है ।

(३) पंक्ति के ५ चरणों में कभी (२, २, १) कभी (२, ३,) कभी (३, २) चरणों के क्रम से यति आती है ।

(४) षट्पदों में (२, २, २) क्रम से ऋग्वेद में (१, २, ३, १०); कभी (३, ३) क्रम से (ऋ, ८, ४१, ३) और कभी (२, ४) चरणों के क्रम से (ऋक् ८, ४७, १५) यति आती है ।

(५) ७ चरणों के छन्द में (३, २, २) क्रम से; (२, ५) क्रम से, या (३, ४) क्रम से यति आती है ।

(६) ८ चरणों के छन्द में (३, २, ३) चरणों के बाद यति आती है । (आदि)

१—यतिः सर्वत्रपादान्ते, श्लोकार्धे तु विशेषतः ।

समुद्रादि पदान्ते च, व्यक्ताव्यक्ता विभक्तके ।

वृत्तरत्नाकर, प्रथमोऽध्याय, श्लो० १२, नारायण भट्ट की व्याख्या में उद्धृत ।

२—एवं यथा यथोद्बेगः, सुधियं नोपजायते ।

तथा तथा मधुरता, निमित्तं यतिरिष्यते । कविकल्पलता ।

३—द्वाभ्यामवस्येस्त्रिपदासु पूर्वं, पादेन पश्चात् क्वचिदन्यथैतत् ।

मध्येऽवसानं तु चतुष्पदानां, त्रिभिः समस्तैरवरैः परैर्वा । २२॥

पंक्त्या द्विशो वा तत उत्तरेण, त्रिभिः परैर्वा विपरीतमेतत् ।

द्विशस्त्रिशो वा परतश्चतुर्भिः, स्यात्षट्पदानामवसानमेतत् । २३॥

स्त्रिभिस्तु पूर्वं तत् उत्तरं स्याद्, द्विशस्त्रिशो वा यदि वा समस्तम् ।

द्वाभ्यां पुनः सप्तपदावसानं, द्वाभ्यां च मध्येऽष्टपदासु विद्यात् । २४॥

ऋक् प्रातिशाख्य, पाताल १८ ।

वैदिक युग में अनुष्टुप् एवं त्रिष्टुप् वर्ग बहुत प्रचलित थे। अनुष्टुप् में तो ८ अक्षरों के बाद सर्वस्वीकृत यति थी, पर वर्नन अनालिङ के अनुसार त्रिष्टुप् में भी पहले ४ वर्णों के बाद और परवर्ती युग में ५ वर्णों के बाद यति का प्रयोग होता था।^१ इससे सिद्ध होता है कि वैदिक युग में भी पूर्णक यति के अतिरिक्त माध्यमिक लय का भी प्रयोग किया जाता था। अन्तर्यति का यह विकास संस्कृत साहित्य के युग में विशेष रूप से हुआ, क्योंकि यह छान्दसिक कला का परिपुष्ट युग था। अनुष्टुप् में ८ अक्षरों के बाद, इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि त्रिष्टुप् वर्ग में पाँच वर्णों के बाद यति प्रचलित थी। इन छन्दों में गलों (S) की व्यवस्था से स्वतः अन्तर्यति आ जाती है, अतः किसी छन्दःशास्त्री ने उन छोटे प्रचलित छन्दों की अन्तर्यति का विशेष निर्देश नहीं किया। बड़े छन्दों में सुविधा के लिए विश्लेषणोपरान्त अन्तर्यतियों का बहुशः निर्देश किया गया है। छन्दो-मञ्जरी, वृत्तरत्नाकर और श्रुत-बोध आदि संस्कृत के छन्दःशास्त्र-ग्रन्थों में परिभाषा (लक्षण) के साथ ही अन्तर्यति का निर्देश है। इस के लिए थोड़े से उदाहरण पर्याप्त होंगे।^२

हिन्दी के आदिकाल और मध्यकाल में निश्चित छन्दों का ही प्रयोग होने से छन्दयति सर्वत्र होती थी, और शास्त्रानुसार लययति का भी अधिकांश में प्रयोग होता

1—The caesura is the dominant feature of trimetre verse, and its position decisively affects the rhythm both of the opening and of break. The caesure is a natural pause corresponding to the taking of the breath in recitation and occurs regularly in all parts of Rigveda, either as an early caesure, that is, a pause after the fourth syllable. Verse of the two types are every-where combined in the same stanza. p. 205.

Vedic Metre—in its historical development.

By E. Vernon Arnold.

२—(४,७) वर्ण पर अन्तर्यतिः—मात्तौगौचेच्छालिनी वेदलोकः।

(५,७) वाणाश्चैच्छिन्ना वैश्वदेवी ममौयौ।

(४,१२) सो भः स्मौचेत् जलधरमाला दध्यन्त्यैः।

(३,१०) अयाज्ञाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम्।

(४,६) वेदेरन्ध्रैस्तौ यसगा मत्तमयूरः।

(४,७) नसमरसलागः षड्वेदेर्हयैः हरिणी मता।

(४,६,७) मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मौ भनौतौ ग युग्मय।

छन्दोमञ्जरी, द्वि० स्तवक।

था, केवल कुछ अपवाद ही मिलते हैं। प्राचीन काल में एक भाव या अर्थ के कई चरणों से बनने वाले 'भावच्छन्द' ^१ में भी छन्दयति का ही प्रयोग होता था, यथा—

बंदऊँ गुरु-पद-पदुम-परागा । सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥
अमिय मूरिमय चूरन चारु । समन सकल भव-रुज-परिवारु ॥
सुकृति शंभुतन विमल विभूती । मंजुल मंगल मोद-प्रसूती ॥
जन-मन मंजु मुकुर-मल-हरनी । किएँ तिलक गुनगन बस करनी ^२ ॥

इस सम्पूर्ण 'भावच्छन्द' में प्रथम चरण प्रधान वाक्य है, और शेष सभी चरण विशेषण वाक्य हैं, जिनका विशेष्य 'पराग' है। पिछले चर चरणों में 'पराग' पुल्लिङ्ग के साथ 'स्त्रीलिङ्ग' विशेषण होने में आपत्ति हो, तो पाँचवाँ चरण समान वाक्य मान लिया जाय और शेष तीन चरण 'विभूति' के अधीन विशेषण वाक्य। यहाँ कवि ने ऐसे वाक्यांश रक्खे हैं, जो छन्द के पूर्ण चरण के समान हैं, अतः अन्तर्यति की आवश्यकता नहीं पड़ी।

प्राचीन काल में बड़े छन्दों में ही अन्तर्यति का प्रयोग होता था, जैसे कवित्त, सवैया, झूलना आदि में। घनाक्षरियों में अन्तर्यति के दोष भी बहुत मिलते हैं, परन्तु कवि छन्द की धारा ऐसी संतुलित एवं प्रबल रखता था कि छन्दोभंग का सहसा आभास भी नहीं मिलता केवल शास्त्रीय दृष्टि से उसे छन्दोभंग या अधम यति कह सकते हैं। इस प्रकार के यति-भंग दोष संस्कृत में भी बहुत मिलते हैं। ^३ कहीं कहीं सुपरिचित छन्द में मात्राएँ कम कर देने

१—एक निश्चित लयाधार के आश्रित जितने भी चरणों में एक भाव पूर्ण हो उसे 'भावच्छन्द' कहते हैं। देखिए, भावच्छन्द, प्रथम अध्याय, प्रस्तुत ग्रन्थ।

२—गो० तुलसीदास, बालकांड।

(अ) विकट अपार भवपथ के चले को श्रम, हरन करन विजना से ब्रह्म ध्वाइये ।
यहिलोक परलोक सुफल करने कोकनद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइये ।
अलिकुल कलित कपोल, ध्यान ललित, अनंद रूप सरित में भूषण अन्हाइये ।
पापतरुभंजन, विघनगढ़गंजन जगत मन रंजन द्विरदमुख गाइये । २।
(शिवराज भूषण)

(ब) धाई खोरि खोरि तैं, बधाई पिय आवन की, सुनि कोरि कोरि सुख भावनि भरति है ।
मोरि मोरि वदन निहारत बिहार भूमि, घोरि घोरि आनंद घरी सी उधरति है ।
'देव' कर जोरि जोरि बंदतसुरनि, गुरु-लोगन के लोरि लोरि पायनि परति है ।
तोरि तोरि माल पुरे मोतिन की चौक निवछावरि को छोरि छोरि भूषन धरति है ।
देव, शब्द रसायन, चतुर्थप्रकाश।

से यतिभंग दोष आ जाता है ।^१ अतः छन्दःशास्त्रियों ने शब्द के विकृत रूप या अशुद्ध उच्चारण को तो स्वीकार कर लिया है, पर छन्दोभंग को नहीं स्वीकार किया है ।^२

आधुनिक युग में चरण के अन्त की छन्दयति सभी को मान्य है, क्योंकि बिना इस यति के चरण पूर्ण ही नहीं हो सकता । यहाँ तक कि पदान्तरप्रवाही अनुकान्त 'भावच्छन्दों' में अर्थ और भाव के अनुकूल अर्द्धविराम और विराम आदि का प्रयोग भी होता है और पूर्णक यति का स्थान अचिह्नित ही रहता है, तथापि वहाँ पर पूर्णक यति अवश्य रहती है । मुक्त छन्द में भी पूर्णक यति का प्रयोग होता है । इस युग में अन्त्ययति में अधिक स्वाधिकार का उपयोग किया गया है । पुराने छन्दों के प्रयोग में पुराने अन्त्ययति के नियमों का प्रतिबन्ध नहीं माना गया है । भावानुकूल अथवा इच्छानुकूल छन्दों के दूसरे स्थानों पर भी यति दी गई है और कभी कभी लम्बे चरणों में भी अन्त्ययति रखी ही नहीं गई है । अन्त्ययति का उपयोग केवल छन्द को संतुलित करना, भाव को स्पष्ट करना और पाठक को विश्राम देना है, अतः अन्त्ययति के प्रयोग का, कवि को पूर्ण स्वातन्त्र्य है ।^३

१—लच्छन-धाम राम-प्रिय, सकल जगत-आधार । (१२, ११ मात्राएँ)

गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमान नाम उदार ॥ (अयोध्याकांड)

२—अपि माषं मषं कुर्यात् छन्दोभङ्गं न कारयेत् ।

(क) उषा 'ज्योत्स्ना' सा, यौवन स्मित मधुप सदृश निश्चिन्त विहार ।'

(ख) 'ज्योत्स्ना' पुलकित ठहरती ही नहीं दह आँख । (कामायनी)

(दोनों चरणों में ज्योत्स्ना का उच्चारण 'ज्योत्सना' (५ मात्राएँ) द्वारा छन्द पूरा किया गया है ।)

(ग) 'पंजाब सिंधु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बंगा,' (१८, १२ मात्राएँ)

में संगीत का सहारा ले कर पहली दो मात्राओं के आधिक्य का दोष परिहृत कर दिया जाता है ।)

3.—(a) However to principle, which was underlying in system of yati, was to give some convenience to the reader. In case of big metres in rectyation the yati is given to support the rhythm of metre and not its description. The other purpose of yati was also to help up in clarifying the meaning of verse. If rhythm of metre is not destroyed in changing the place of yati, it should not be considered as defeat, as it suits the convenience of poets. P. 120.

Contribution of Hindi Poets to Prosody, Unpublished.

Dr. J. N. Singh

वर्तमान युग में अधिकांश कवि अन्तर्यति को चिह्नित नहीं करते^१ । सम्प्रति, विराम के चिह्न अर्थ के आधार पर दिये जाते हैं, लय-यति के अनुसार नहीं । एक ही कवि एक ही छन्द के भिन्न चरणों में विशिष्ट स्थानों पर यति देता है, परन्तु कहीं-कहीं बिना यति के चरण लिखने में उसे कोई संकोच नहीं होता, जैसे, 'ग्राम्या' में 'खिड़की से' कविता में रोला छन्द का प्रयोग हुआ है, परन्तु ११ वीं मात्रा के पश्चात् यति थोड़े ही स्थानों पर है । इसके विपरीत श्री मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत के द्वादश सगन्तिर्गत रोला छन्द में प्रायः सर्वत्र ११ मात्राओं के पश्चात् यति रक्खी है, केवल कुछ स्थान ऐसे हैं, जहाँ ग्यारहवीं मात्रा लघु (S) क्रम से) न होकर दीर्घ (IS क्रम से) है । पं० रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक के सार छन्द (१६, १२ मात्रा) में १६ मात्राओं के बाद लय-यति रक्खी है, किन्तु कहीं-कहीं अन्तर्यति को शब्द के बीच में डालकर २८ मात्राओं के पश्चात् यति दी गई है, प्राचीन आचार्य इसे यतिभंग मानते थे, पर, इस युग के छन्दःशास्त्री इसे मनोहारी विविधता (Variation) कहते हैं:—

उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरन सी वामा ।

कवि के स्वप्न समान, विश्व के विस्मय सी अभिरामा ॥

सिंधु-गोद में लय से पहले तरंगिता सरिता सी ।

जाकर चकित हुई तट पर प्रियतम दर्शन की प्यासी ॥^२

इस युग में अन्तर्यति न देने का अधिकार कवियों ने प्राप्त कर लिया है, परन्तु बड़े छंद—जैसे ताटक (१६, १४), वीर (१६, १५) या मत्तसवैया (१६, १६) में अन्तर्यति का अभाव छन्दःसाधना के अकौशल को प्रकट करता है:—

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता,

तेरे हैं कितने नाम ।^३

बड़े छंदों में संज्ञा (या सर्वनाम) के कारक-प्रत्यय, संयुक्त अव्यय अथवा कारक और अव्यय के संयोग के बीच में भी यति पड़ने से यतिभंग दोष प्रतीत होने लगता है :—

'अरे, पिता के प्रतिनिधि तू ने/ भी सुख दुख तो दिया बना'^४ ।

1—It is not necessary that every line should have pause; and the place of the pause, when it exists, is practically 'ad libitum' at most, if not in all lines, while there may be more pauses than one. Page 289.

Historical Manual of English Prosody.

By George Saintsbury.

२. रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, पृ० १३ ।

३. प्रसाद, कामायनी, चिन्ता, पृ० ६ ।

४. प्रसाद, कामायनी, स्वप्न, पृ० १७९ ।

कहीं-कहीं भावके तीव्र आवेग में अन्तर्यति को समाप्त कर देने से व्यंजना अधिक आजोमय और प्रौढ़ भी हो जाती हैं:—

अन्तरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी ।^१

भाव और विचार के अनुसार शास्त्र-निश्चित स्थानों के अतिरिक्त भी अन्तर्यतियों का प्रयोग किया जा सकता है:—

(अ) नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन ।^२

(ब) अरे, वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित मृदु उर पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृगपात,
पास जब आ न सकोगी, प्राण,
मधुरता में सी मरी अजान,
लाज की छुई-मुई सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण^३ ।

कहीं कहीं पाठ के ढंग से भी नवीन अन्तर्यतियाँ आ जाती हैं:—

(स) ऐसे गिरि, ऐसे बन, ऐसी नदी, ऐसे कूल,
ऐसा जल, ऐसे थल, ऐसे फल, ऐसे फूल,
ऐसे खग, ऐसे मृग, होंगे अम्ब, क्या वहाँ ?
करते निवास होंगे एकाकी पिता जहाँ ?^४

कभी कभी अर्थ की सम्पूर्णता या नवीन भावोदय के कारण कवि छन्दों के पाठ में भावाभिव्यंजना की कुशलता के लिए आवश्यकतानुसार नवीन अन्तर्यतियों की आयोजना कर देता है:—

(द) ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत्
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका - छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन (यतिभंग)
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान - पतन,

१. प्रसाद, कामायनी, स्वप्न, पृ० ८५ ।

२. प्रसाद, कामायनी, स्वप्न, पृ० ३ ।

३. पन्त, गुञ्जन, भावी पत्नी के प्रति, पृ० ४३ ।

४. गुप्त, यशोधरा, पृ० १०५ ।

काँपते हुए किसलय,—झरते पराग समुदय,
गाते खग नव जीवन-परिचय, तरु मलय-वलय,
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।^१

मात्रिक छन्दों में मानव (१४ मात्राएँ), हाकिल (१४ मात्राएँ), चौपाई (१५ मात्राएँ), चौपाई (१६ मात्राएँ), पादाकुलकुल (१६ मात्राएँ), पद्धरि (१६ मात्राएँ), उर्मिला (१७ मात्राएँ), पीयूषवर्षा (१६ मात्राएँ), योग (२० मात्राएँ), प्लवंगम (२१ मात्राएँ) आदि छोटे छन्द प्रायः बिना अन्तर्यति के प्रवाहित होते हैं और राधिका (२२ मात्राएँ), रोला (२४ मात्राएँ) आदि मध्यवर्ग के छन्दों में सुविधानुसार कवि अन्तर्यति रख सकता है और नहीं भी रख सकता है, परन्तु गीतिका (२६ मात्राएँ), हरिगीतिका (२८ मात्राएँ), विष्णु-पद (१६, १० मात्राएँ), सरसी (१६, ११ मात्राएँ), सार (१६, १२ मात्राएँ), ताटंक (१६, १४ मात्राएँ), वीर (१६, १५ मात्राएँ), एवं मत्तसवाई (१४, १६ मात्राएँ) आदि बड़े छन्दों में अन्तर्यति आवश्यक है। कवि यदि बड़े छन्दों में यति नहीं भी रखता, तो भी, अभ्यास और सुविधा के अनुसार जिह्वा यथेष्ट स्थान पर विराम ले ही लेती है।

संस्कृत वृत्तों में छोटे छन्द बिना अन्तर्यति के भी प्रयुक्त होते हैं, अथवा संस्कृत-छन्दः-शास्त्र के नियम के अनुसार यति-मुक्त होते हैं, परन्तु मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, खग्वरा, शिखरिणी जैसे बड़े-बड़े छन्दों में सहज ही जिह्वा विराम लेती है, चाहे कवि ने वहाँ यति न रखी हो। विशाल वृत्त में जिह्वा यतिभंग कर के भी विश्राम लेती है, यथा:—

होते हैं देवर श्री/नत, हत बहनें/ छोड़ती हैं उसासँ ^२।

घनाक्षरी में ८ या ७ वर्णों के बाद परस्परानुसार यति होनी चाहिये, पर भाषा और भाव के अनुसार अन्तर्यति में कवि विशेष अधिकार का प्रयोग करता है, क्योंकि इससे भावव्यञ्जना अधिक स्पष्ट हो जाती है।

भावानुकूल पाठ-यति:—(१) प्रेम सरसी है/, करुणा की शुभ्र यामिनी है/,
भृङ्ग मन मेरा है/, पदारविन्द तेरा है ^३।

(२) अम्ब ! तू अनन्त शक्ति/, दुर्ग-नाशिनी है, चण्डि !,
सर्वमंगला है/, विभवा है/, विश्वकारिणी।

१. निराला, अपरा, राम की शक्ति-पूजा।

२. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० १६७।

३. अनूप, शर्वाणी, पृ० ४५।

रक्त-बीज-ह्लासिनी है, / चंड-मुंड-त्रासिनी है, /
 विन्ध्यगिरि-वासिनी है, / संसृति-प्रचारिणी ।
 धूम्रमदिनी है / योधनावृतकपदिनी है, /
 छविछदिनी है, / कवि-प्रतिभा-प्रसारिणी ।
 निपट अधीन दीन-विपति-विदारिणी है, /
 शक्ति-धारिणी है, / भक्ति-विपिन-विहारिणी ३ ।

यहां लय की धारा तो (८, ८, ८, ७) क्रम से ही चलती है, पर भाषा और भाव की योजना से चिह्नित नवीन अन्तर्यतियाँ छन्द-पाठ में सहायता कर रही हैं ।

३. श्रीयुत मदन वर्मा सदन सुकर्मों का ,
 शौर्य में भी, वीर्य में भी, इन्द्र है महोबे का ।
 संगर-विनोद, राग-रंग-मोद, दोनों में
 एक सा कुशल है, कृती जो गुण-गौरवी ४ ।

१५ वर्णों पर आधारित यह अतुकान्त छन्द लय के अनुसार ८, ७ वर्णों पर विराम लेता है, पर अर्थ की दृष्टि से नवीन अन्तर्यतियों का आयोजन कर लिया गया है । दूसरे चरण का यमक अष्टक को दो यतियों में विभक्त कर के वेग उत्पन्न करता है और तीसरे चरण में अनुप्रास-साम्य स्वराघातपूर्वक पाठ के लिए प्रेरित करता है, फलतः नवीन अन्तर्यति आ जाती है ।

४. वर्णिक मुक्तच्छन्दों में अन्तर्यतियों के लिए विशेष स्थान नहीं रहता, क्योंकि यति के ही पश्चात् नवीन चरण का आरम्भ कर दिया जाता है:—

आते हैं दुरन्त दोल भूमिचार,
 स्थल के तरंगोत्ताल,
 उच्छृंखल काल नृत्य-गति में,
 मुक्त अनियति में,
 पीछे कहीं दौड़ दौड़ पड़ते,
 हाँफ से उखड़ते,

१. अनूप, शर्वाणी, पृ० १ ।

२. गुप्त, सिद्धराज, पृ० ११७ ।

खस खस पड़ते समुन्नत महीध्र शृंग,
अचला के अंक में लिपटते,
कर के प्रवाह भंग,
नित्य मार्ग में से नित्य नीर-नद हटते/।^१

उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है कि लय-यति के साथ आधुनिक युग में 'अर्थयति' का भी विशेष स्थान है। लय की धारा अखंड रूप में चलती है, अतः उस की यति (विराम) में पूर्ण स्थिरता नहीं आती, पर, 'अर्थयति' निश्चित रूप से स्वल्प काल के लिए गति को स्थिर विराम देती है। ऐसी अर्थयति से पाठ में ही सुविधा नहीं होती, भावव्यंजना में भी योग मिलता है। यति छन्द का अन्तस्संगठन एवं अनुशासन है, अतः यति के कुशल अथवा अकुशल प्रयोग पर भी छन्द की बहुत कुछ सफलता या असफलता निर्भर है।

अन्त्यानुप्रास या तुक

छन्दोयति या चरणान्त में निश्चित क्रम से स्वरव्यंजनमूलक ध्वनिसमूह के साम्य-संयोग को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। सामान्य भाषा में इसे तुक या काफ़िया कहते हैं। संस्कृत-साहित्य एवं शास्त्र में अनुप्रास, शब्दालंकार के विभिन्न भेदों के साथ प्रचलित रहा है। अनुप्रास का अर्थ है बारम्बार (प्रकर्षश्चाव्यवधानेन न्यासः स एव च सहृदयहृदयानुरञ्जकः) वर्णों का न्यास। ये "स्वरव्यञ्जनसंदोह"^१, "वर्णसाम्य"^२ अथवा "शब्दसाम्य"^४ को विभिन्न आचार्यों ने अनुप्रास की संज्ञा दी है। चरणान्त में किए जाने वाले अनुप्रास अलंकार के प्रयोग को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। संस्कृत कविता ने अपनी शोभावृद्धि के लिए जिसे "शरीरज" अलंकार के रूप में सयत्न धारण किया था, वही सात्विक अलंकार अपनी पंतुक अभिजात परम्परा के कारण हिन्दी कुमारी के 'अयत्नज' एवं 'स्वभावज' अलंकार के रूप में परिणत हो गया है।^५

संस्कृत के ह्रस्वदीर्घजन्य उच्चरित मात्रा-विधान एवं समास-सघनता में वृत्त की

१. श्री सियारामशरण गुप्त, बापू, ५ वीं कविता।

२. 'स्वरव्यंजनसंदोहव्यूह', चन्द्रालोक, मयूख ५, श्लोक २।

३. वर्णसाम्यमनुप्रासः। काव्यप्रकाश।

४. अनुप्रासः शब्दसाम्यं स्वैषम्योऽपि स्वरस्य यत्। साहित्य-रूपं, परिच्छेद १०, श्लोक ३।

५. यौवने सत्वजाः स्त्रीजामलङ्कारास्तु विंशतिः।

लयमाधुरी को अन्त्यानुप्रास की आवश्यकता नहीं पड़ी। वृत्त की गम्भीर लयबारा में शब्दावृत्ति की निश्चित योजना नहीं करनी पड़ती, हाँ, वहाँ अनुप्रास अलंकार के रूप में अवश्य गृहीत हुआ है। संस्कृत के इस 'हिल्लोलाकार मालोपमा' में प्रवाहित होने वाले छन्द-संगीत की गरिमा पन्त जी के शब्दों में सुचारुरूपेण व्यक्त हुई है।^१ छेकानुप्रास की गरिमा को संस्कृत-कवियों ने बहुत पहले ही अनुभूत किया था।^२ स्तोत्र-साहित्य में अन्त्यानुप्रासमूलक कविताएँ भी बहुत मिलती हैं।^३ जब से मात्रा-छन्दों का प्रयोग आरम्भ हुआ, तभी से अन्त्यानुप्रास के प्रयोग की आवश्यकता पड़ी। सुकुमार ललिका सी मात्राछन्द की सुन्दरी बिना अन्त्यानुप्रास का सहारा लिए अपनी सम्पूर्ण उच्चता से उत्तिष्ठित ही नहीं हो सकती। उस विद्योरी को दो चरण चलने के लिए भी हस्तसंगुम्फित सहेली चाहिए। वह बंटुके ढंग से अकेली नहीं चल सकती।

भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः । २० ।

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।

श्रौदार्यं धैर्यमभ्येते सप्त भावाः श्रयत्नजाः । २१ ।

लीला विलासो विच्छृत्तिविभ्रमः किलकिञ्चितम् ।

प्रोढायितं कृष्टमितं दिव्योको ललितं तथा । २२ ।

विहृतं चेति विज्ञेया दशभावाः स्वभावजाः । २३ । दशरूपक, प्रकाश २ ।

१. छन्द का भाषा के उच्चारण, उसके संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत का संगीत समास-संधि की अधिकता, शब्द और विभक्तियों की अभिन्नता के कारण शृंखलाकार, मेखलाकार हो गया है, उसमें दीर्घ श्वास की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द एक दूसरे का हाथ पकड़े, कंधे से कंधा मिलाकर नालाकार धूमते, एक के बिना जैसे दूसरा रह नहीं सकता, एक शब्द का उच्चारण करते ही सारा वाक्य मुँह से स्वयं बाहर निकल आना चाहता, एक कोना पकड़ कर हिला देने से सारा चरण जंजीर की तरह हिलने लगता है। शब्दों की इस अभिन्न मैत्री, इस अन्योन्याश्रय ही के कारण संस्कृत में वर्णवृत्तों का प्रादुर्भाव हुआ, उसका राग ऐसा सान्द्र तथा सम्बद्ध है कि संस्कृत के शब्दों में अन्त्यानुप्रास की आवश्यकता नहीं रहती, उसके लिए स्थान ही नहीं मिलता। वर्णिक छन्दों में जो एक नृपोचित गरिमा मिलती है, वह तुक के संकेतों तथा नियमों के अधीन होकर चलना अस्वीकार करती है, वह ऐरावत की तरह अपने ही गौरव में भूमती हुई जाती, तुक का अंकुश उसकी मान-मर्यादा के प्रतिकूल है।

पन्त, पल्लव, प्रवेश, पृ० २१, २२ ।

२. नताङ्गीमातङ्गी रचिरगतिभङ्गी भगवती ।

वृताङ्गी सारङ्गी रचिरनयनाङ्गीकृतशिवा ।

(आनन्दलहरी)

३. जैसे शंकराचार्य कृत 'शिवाष्टक' ।

‘प्राकृतपैंगलम्’ के उदाहरण सान्त्यानुप्रास मात्रा छन्दों में हैं^१। यह कृति चौद-हवीं शताब्दी की है, क्योंकि इसमें हम्मीर का नाम आता है, जिनका शासन काल टाड के ‘राजस्थान-इतिहास’ के अनुसार सन् १३०२ है। इस के पहले लक्ष्मणसेन के (ग्यारवीं शताब्दी) के समकालीन जयदेव ने अपने गीतों की रचना सान्त्यानुप्रास की हैं^२। इन के पहले की मात्रा-रचनाओं में (जैसे गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती) में अन्त्यानुप्रास का विधान नहीं है। अपभ्रंशकाल में इस का निरपवाद रूप से प्रयोग होने लगा। जन-कवि नाथों और सिद्धों के युग में अन्त्यानुप्रास की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। तब से हिन्दी में अन्त्यानुप्रासमयी काव्य-परम्परा चली आ रही है। ‘जेन्दावेस्ता’ के बाद फारसी में और ग्रीक साहित्य युग के बाद योरोप की सभी भाषाओं में अन्त्यानुप्रास का प्रचार हुआ। वर्तमान काल की सभी भाषाओं के काव्य में अन्त्यानुप्रास का विकास हो चुका है। कालक्रम से मनुष्य की संगीत-प्रियता के साथ अन्त्यानुप्रास की महिमा का विस्तार होता रहा है।

अन्त्यानुप्रास की विशेषताएँ और उपयोग :—

(१) स्वरमधुरिमा में आनन्ददायिनी शक्ति होती है, अतः अन्त्यानुप्रास में एक ही क्रम से स्वर-व्यंजन-समूह की मधुरिमा कंठ, कर्ण और प्राणों को भाव से अधिक संगीत का आनन्द प्रदान करती है।

(२) अन्त्यानुप्रास पद्य को गद्यात्मक होने से बचाता है, और पदों को संगुम्फित होने में सहायता करता है। इस से छन्द में सन्तुलन एवं सौष्ठव आता है, और दोनों पंक्तियों

१. पशु भरु दर मरु धरणि तरणि रह धूलिअ भंषिअ ।

कमठ पिटु तरपरिअ मेरु मंदर सिर कंषिअ ॥

कोइ चलिअ हम्मीर वीर गअजूह सँजुते ।

किवउ कटु हाकंद मुच्छि मँच्छइ के पुत्ते ॥ ६२ ॥

प्राकृतपैङ्गलम्, प्रथम परिच्छेद ।

(पदभरेण दलमलिता धरणी तरणिरथो धूलिभिराच्छादते । कमठ-पृष्ठं चलितम् । मेरुमंदरशिर कम्पते । कोपेन चलितो वीरहम्मीरो गजरथसंयुक्तः कष्टेनकृत आक्रन्दो मूर्छयित्वा म्लेच्छ-कुपुत्रम् ।)

२. हरिरिह मुग्धबधूनिकरे ।

विलासिनि ! विलसति केलिपरे ॥

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।

मधुकरनिकरकरवितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥ गीतगोविन्दम् ॥

में सुदृढ़ अनुबन्धन हो जाता है। सामान्य पाठक या श्रोता इसी आधार पर चरणान्त का निश्चय करता है। इसीलिये अनुकांत छन्द, भावार्थ-मर्मज्ञ व्यक्तियों के अनुकूल पड़ते हैं। सामान्य व्यक्ति में अर्थ की अपेक्षा सहजवृत्ति के कारण संगीत की ग्रहणशीलता अधिक होती है, अतः भाव अनवगत होने पर भी संगीत रमणीयता के कारण वह कविता का रस ग्रहण करता है। अन्त्यानुप्रास चरण और छन्द की इकाई को स्पष्ट एवं निश्चित करता चलता है।

(३) पाठक को आवृत्ति काल में जो श्रम होता है, उस का फल अत्यानुप्रास के रूप में मिल जाता है। अन्त्यानुप्रास के बाद नयी स्वर-साधना, नये वेग एवं नये प्रस्थान का उल्लास प्राप्त होता है और समस्त पूर्ण वलान्ति विदूरित हो जाती है। जैसे किसी पथिक को यदि लम्बी यात्रा में धर्मशाला या होटल में विश्राम मिल जाता है, तो भविष्य के लिए नवीन स्फूर्ति दायक शक्ति का संचय हो जाता है। उसी प्रकार अन्त्यानुप्रास के योग से पाठक का कंठ विश्राम लेकर भविष्य के लिए तत्परता प्रकट करता है^१।

(४) जिस कवि के हृदय में शब्द-संगीत एवं भाव का प्रगाढ़ सम्मिलन हो जाता है, उसकी लेखनी से अत्यन्त अन्त्यानुप्रास प्रस्फुटित होते जाते हैं। इस विधान से कवि की उद्देलित भावधारा में एक संयम आ जाता है, फलतः उसके रस कला एवं संगीत का धरातल एकसा रहता है। संयम के अभाव में तीव्रभाव एक साथ व्यक्त हो जाते हैं और आगामी सामान्य भाव अपेक्षाकृत दुर्बल होकर नीरसता उत्पन्न करते हैं।

गीत में भावानुभूति के साथ संगीत भी महत्त्वपूर्ण होता है, अतः उसमें अन्त्यानुप्रास सर्वथा अनिवार्य है। इसी प्रकार मुश्किल या स्फुट लघु छन्द अनुकान्त रूप में शोभा नहीं पा सकते। छोटे सुकुमार छन्द इस अलंकार से ही शोभा पाते

१. मिलड़ कवितार ताल, मान, लय, यति, विरति सबइ नियमित करे। पद्य के गद्यात्मकता होइते रक्षा करे, कविर लेखनी के विराम देयश्रो संयत करे, आवृत्तिकाले पाठकेर कंठस्वर के उठानामार साहाय्य करे, स्नेहाक्त करिया ताहार वाग्यत्न के श्रबोध चलिबार वेगमान करे। मिल रचनार गतिक्लिष्टता हरन करे, सुरके बारम्बार नवीभूत करिया देये, ध्वनिक्लान्त वर्णेर क्लान्ति आपनोदन करिया नव नव उत्तेजना देये, दीर्घ छन्दरे पथे 'मिल' गुलि येन मिलनेर पान्थनिवास। पृ० १२६, ।

साहित्येप्रसङ्ग, श्री कालिदास राय ।

2. The batches of two almost necessarily require rhythm

है, इसके अभाव में उनका रूप-सौष्ठव नहीं निखर पाता। अनुकान्त पंक्तियाँ प्रबन्ध काव्य में ही शोभा पाती हैं, क्योंकि वहाँ भाव और कथा की धारा अखंड रहती है और विस्तृत, विशद एवं विशाल चित्रों का अंकन होता है। स्वच्छन्द छन्द में लिखे हुए स्वानुभूति प्रधान गीत में किसी न किसी क्रम से अन्त्यानुप्रास देना ही पड़ता है।^१

(५) सहज स्मरणीयता भी अन्त्यानुप्रास की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अन्त्यानुप्रास के सहारे छन्द की एक इकाई बन जाती है। इसके आवर्तन में अगले चरण स्वयं उठते चले आते हैं, क्योंकि उन में परस्पर सम्बन्ध होता है। अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता में, जहाँ तक एक भाव चलता है, वहाँ तक कविता एक साथ स्मृति में आ जाती है, आगे के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। सामान्य जनता के प्रिय गीत अन्त्ययुक्त ही होते हैं। इस लक्षण से युक्त देख कर जनता को उसकी आधिकारिकता पर विश्वास उत्पन्न होता है और वह उसे कंठहार बना लेती है^२। फलतः, अन्त्यानुप्रास के कारण छन्द को अमरत्व प्राप्त करने में सहायता

to indicate and isolate them, especially if the individual lines are of the same length.

Historical Manual of English Prosody. P. 26.

By George Saintsbury.

१. एक बार बस और नाच तू श्यामा ।

सामान सभी तैयार,

कितने ही हैं, असुर, चाहिए कितने तुझको हार,

कर मेखला मुँड मालाओं से बन मन अभिरामा,

एक बार बस और नाच तू श्यामा !

भैरव भेरी तेरी भँभा ।

तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुम से पंजा,

अट्टहास, उल्लास, नृत्य का होगा जब आनन्द,

बिद्व की इस बीणा के टूटेंगे सब तार,

बन्द हो जायेंगे ये जितने कोमल छन्द ।

(आवाहन, अपरा, निराला)

प्रस्तुत पद्यांश के प्रथम, चतुर्थ और पञ्चम चरणों में; द्वितीय, तृतीय एवं नवम चरणों में, षष्ठम एवं सप्तम चरणों में और अष्टम एवं दशम चरणों में अन्त्यानुप्रास है। लेखक ।

२. मिलबन्धनेर एमून प्रताप ये समिल वचन प्रवचन गुलिइ जनसाधारणेर वेदकुरान, नीतिशास्त्र ओ रीतिशास्त्र उडियाछे। समिल वचने एमनि एकटो रहस्य विजडित आछे, ये जनसाधारणेर चित्ते ईहा युगपत् अद्वा ओ विश्वास उत्पादन करे। जनसाधारणेर बहुदिनेर अभिज्ञता, सिद्धान्त ओ मीमांसागुलि युगे हाइते मिलेर सूत्रइ अथित आछे।

मिलती है। जनता की भाँति शिशु भी तुक की झंकार में आनन्द लेता है। पालना-गीत (लोरी) बिना अन्त्यानुप्रास-दोलायित के विशेष मोहक नहीं हो सकता। अतुकान्त-परम्परा के कारण ही संस्कृत भाषा में बाल-साहित्य समृद्ध नहीं हो सका।

अन्त्यानुप्रास के भेद

१. उत्तम (८, ७, ६ मात्राओं का साम्य)।
२. मध्यम (५, ४, ३ मात्राओं का साम्य)।
३. निकृष्ट (२, १ मात्रा का साम्य)।

अन्त्यानुप्रास के तीन भेद मानना ही अधिक व्यावहारिक है। कुछ लोग इसके प्रभेदों को भी मानते हैं, पर ये वर्गीकरण सदोष हैं^१, क्योंकि असंयोगमिलित (मध्यम का भेद) से कष्टसरि (उत्तम का भेद) में कम वर्णों की आवृत्ति होती है और निकृष्ट के भेदों में अन्त्यानुप्रास का अस्तित्व ही नहीं रह जाता, अतः नया वर्गीकरण आवश्यक है:—

(१) उत्तम—अ. वाक्यांश अन्त्य :—जिस अन्त्यानुप्रास में वाक्यांश की आवृत्ति हो।

ब. शब्दपुञ्ज अन्त्य :—जिसमें एकाधिक शब्द की आवृत्ति हो।

(२) मध्यम—अ. वर्णपुञ्ज अन्त्य :—जिसमें एक शब्द या दो से अधिक वर्णों की सस्वर आवृत्ति हो।

अथच

पूर्णङ्ग मिलबानी के ताड़ अमर करइ, मिलेर आग्रहनिष्ठा ओ बानौर जीवनीशक्ति बड़ाइया देइ। साहित्येर प्रसंग, पृ० १३६, कालिदास राय।

१. उत्तम अ. समसरि:—कई वर्णों की विषमतामूलक आवृत्ति।

ब. विषम सरि:—शब्दगत वर्णों की विषमतामूलक आवृत्ति।

स. कष्टसरि:—कठिनता से वर्णवृत्ति।

मध्यम अ. असंयोगमिलित:—तुक हो, पर संयुक्त वर्णों में साम्य न हो।

ब. स्वरमिलित:—अन्तिम स्वर मेल, व्यंजन-वैषम्य।

स. दुमिल:—एक वर्ण का मेल।

ब. वर्णाधिक अन्त्यः—जिसमें शब्दांश की सस्वर आवृत्ति हो, और उसके पहले मात्रा-साम्य हो ।

(३) निकृष्टः—अ. वर्ण अन्त्यः—जिसमें एक वर्ण की आवृत्ति हो, और उसके पूर्व स्वर-साम्य हो ।

ब. मात्रा अन्त्यः—जिसमें केवल एक मात्रा की आवृत्ति हो ।

उत्तम—अ. वाक्यांश अन्त्यः—इसमें वाक्यांश साम्य के साथ अन्त्यानुप्रास आता हैः—

इस डगर में भूल भी अनुकूल मेरे ।
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे ^१ ॥

ब. शब्दपुञ्ज अन्त्यः—

तुम अजर, बड़े चलो,
तुम अमर, बड़े चलो ॥
धूमते हुए चलो ।
झूमते हुए चलो ^२ ॥

ऊपर के उदाहरणों में (अ) १३ मात्राओं (ब) ८ तथा १० मात्राओं का अन्त्य साम्य है ।

मध्यम—वर्णपुञ्ज अन्त्यः—इसमें कई वर्णों के साम्य का अन्त्यानुप्रास होता है :—

फल-फूलों से हैं, लदी डालियाँ मेरी ।
वे हरी पत्तालें, भरी थालियाँ मेरी ॥
मुनिबालाएँ हैं, यहाँ आलियाँ मेरी ।
तटिनी की लहरें, और तालियाँ मेरी ^३ ॥

निकृष्ट : अ. अमिल समिलः—कुछ चरण अन्त्ययुक्त , कुछ अन्त्ययुक्त ।

ब. आदिमात्रामित्रः—अन्तिम मात्रा में साम्य न हो ।

१. बच्चन, मिलन-यामिनी, पृ० ४७ ।
२. इयामनारायण पांडेय, जोहर, पृ० ८७. आठवीं चिनगारी ।
३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० १५६ ।

वर्णाधिक अन्त्य :—इसमें एक वर्ण से अधिक साम्य का अन्त्यानुप्रास होता है :—

मेरे उपवन के हरिण आज बनचारी ।
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी ।
गिर पड़े दौड़ सोमिनि प्रिया-पद-तल में ।
वह भीग उठी प्रिय चरण धरे दृग-जल में ॥^१

निकृष्ट—वर्णान्त्य :—इसमें केवल अन्तिम वर्ण के मात्रा-साम्य का अन्त्यानुप्रास होता है :—

क—बँधी महावट से नौका थी,
सूखे में अब पड़ी रही ।
उतर चला था अब जल-प्लावन,
और निकलने लगी मही^२ ॥

ख—लहरों के धूँधट से झुकझुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख,
दिखलाता मुग्धा सा एक एक^३ ।

मात्रान्त्य :—अन्यानुप्रास के इस प्रभेद में केवल एक मात्रा का साम्य होता है :—

ग—फिर ऊर्ध्व तरंगित
हो जन-धरती का जीवन,
शाश्वत के मुख का
मानव मग, जो हो दर्पण^४ ।

जिस अन्त्य में वचन या लिंग परिवर्तन हो अथवा शब्द को खंडित करने से अन्त्यानुप्रास लक्षित हों, उसे सदीप मानना चाहिए :—

१. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० १६३ ।

२. प्रसाद, कामयनी, चिंता, पृ० ४ ।

३. पन्त, गुञ्जन, नौकाविहार, पृ० १०३ ।

४. पन्त, उत्तरा, परिणय, पृ० ४४ ।

(क) क्या तुम्हें देख कर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी ।
उस नीरवता में बलसाई,
कलियों ने आँखें खोली थी १ । (वचन-दोष)

(ख) एक विशेष प्रकार, कुतूहल होगा श्रद्धा को भी ।
प्रसन्नता से नाच उठा मन नूतनता का लोभी २ ॥ (खण्डितशब्दान्त्य)

अन्त्यानुप्रास के क्रमायोजन

(१) प्रथम क्रम वह है, जिसमें छन्द के चारों चरणों में अन्त्यानुप्रास-साम्य हो ।
ऐसा अनिवार्य क्रम केवल सर्वथा और घनाक्षरी छन्दों में मिलता है । मात्रिक छन्दों में
तो कहीं संयोग से ही चारों चरण समान तुकान्त के होते हैं, अन्यथा दो ही चरणों के
सम-तुकान्त होने का नियम है । घनाक्षरी जैसे विशाल छन्दों में ललितान्त्यानुप्रास
(चारों चरणों में सम) अपने संगीत के बँभव से श्रोता के हृदय पर चतुर्दिक् से भाववृष्टि
करता है :—

(अ) बलित सरोरुह कलित कोश तुल्य लाल,
लोचन उमा के वीर बाँके देख करके ।
झंझति समेत बलयावलि बलित कर,
कंज से स-नाल कंज तुल्य पुंख सरके ।
बाण चलते ही प्राण भागे प्रतिपक्षियों के,
चित्त उठे सिहर विरंचि-हरि-हर के ।
सर सर सर शर छूटते शरासन से,
तर तर तर कंचुकी के बंद तरके ३ ।

(ब) मात्रिक छन्द में ललितान्त्यानुप्रास का उदाहरण निम्न है :—

ब्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
आधि की शंका नहीं मन के लिए ।

१. प्रसाद, कामायनी, काम, पृ० ६२ ।

२. प्रसाद, कामायनी, कर्म, पृ० ११५ ।

३. अनूप, शर्वाणी, पृ० २१६, छन्द ५६४ ।

बोर की चिन्ता नहीं धन के लिए,
सब सुख हैं प्राप्त जीवन के लिए ।^१

इसको ललित अन्त्यानुप्रास (Feminine rhyme) कहते हैं ।

(२) दूसरा क्रम वह है, जिसमें पहले चरण का, दूसरे से और तीसरे चरण का, चौथे से अन्त्यानुप्रास मिलता है । यह क्रम मात्रा छन्द के सर्वाधिक अनुकूल है :—

नैमिष पुण्य अरण्य, पूत कण-कण यह धरणी,
युग-युग की सुप्रथित विश्व-सागर की तरणी ।
यह पावन गोमती, ज्ञान की, तप की धात्री,
वेद-ऋचा की, मुक्ति-भुक्ति की सहज विधात्री^२ ।

इसको युग्मक अन्त्यानुप्रास (Couplet rhyme) कहते हैं ।

(३) तीसरा क्रम वह है, जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरण का अन्त्यानुप्रास समान होता है :—

‘मैं तुम्हारी हूँ,’ मधुर मुख की मधुर वाणी,
गूँजती है हृदयनभ में आज सी सी बार,
क्या न सचमुच आज हूँ मेरा सफल जीवन,
पा सका जो मैं तुम्हारा पूर्ण पावन प्यार^३ !

इसको दूरान्तर अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(४) चौथा क्रम वह है, जिस में अ, झ, ब, व, अ, झ के योग से अन्त्यानुप्रास हो :—

प्रेम देव हे ! हे वसन्त के कोमल सहचर !
सुधा पिलाने वाले हे देवता मनीहर !
किया न तुम ने जिस को पीड़ित निज बाणों से,

१. गुप्त, साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १६ ।

२. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, शम्पा, बन्वता, पृ० १ ।

३. देवराज, प्रणय-गीत, पृ० २२ ।

उठी न रोदन की पुकार जिसके प्राणों से,
व्यर्थ हुआ उस का जीवन ही इस पृथ्वी पर,
प्रेमदेव हे ! हे वसन्त के कोमल सहचर !^१

इसको भ्रमरान्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(५) पाँचवाँ क्रम वह है, जिसमें अ, ब, ब, अ के योग से अन्त्यानुप्रास हो :—

यही तो काँटे सा चुपचाप,
उगा उर तरुवर में, सुकुमार,
सुमन वह था जिस में अविहार,
बेध डाला मधुकर निष्पाप^२ ॥

इसको आलिङ्गित अन्त्यानुप्रास (Enclosing rhyme) कहते हैं ।

(६) छठा क्रम वह है, जिसमें अ, ब,अ, ब के योग से अन्त्यानुप्रास हो :—

विन्दु में थीं तुम सिन्धु अनन्त,
एक सुर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल वसन्त,
धरा में थीं तुम स्वर्ग पुनीत^३ ।

इसको गुम्फित अन्त्यानुप्रास (Alternate rhyme) कहते हैं ।

(७) सातवाँ क्रम वह है, जिसमें अ,ब,अ,ब,स,स के योग से अन्त्यानुप्रास हो :—

हृदय के प्रणय-कुञ्ज में लीन,
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन-मन बन्धन-हीन,
मधुरता से अपनी अनजान,
खिल उठी रोओं से तत्काल,
पल्लवों की यह पुलकित डाल^४ ।

१. चन्द्रकुँवर घर्वाल, नन्दिनी, पृ० १६ ।

२. पन्त, पल्लविनी, उच्छ्वास, पृ० ६६ ।

३. पन्त, पल्लविनी, आसु, पृ० ७८ ।

४. पन्त, पल्लव, पृ० १ ।

इसको चुम्बित अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(८) आठवां क्रम वह है, जिसमें अ, अ, ब, अ, ब, ब, ब के योग से अन्त्यानुप्रास हो:—

स्वर्ण स्वप्न सी कर अभिसार,
जल के पलकों पर सुकुमार,
फूट आय ही आप अजान,
मधुर वेणु की सी झंकार,
तुम इच्छाओं सी असमान,
छोड़ विह उर में गतिवान,
हो जाती हो अन्तर्धान ।

इसको प्रगल्भ अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(९) नवां क्रम वह है, जिसमें अ, अ, ब, अ, ब, के योग से अन्त्यानुप्रास हो:—

गुंजित कुंजों में सुकुमार,
भौरों के सुरभित अभिसार,
आ, जा, खोल, फेर, स्वच्छन्द,
पत्रों के बहु छिद्रित द्वार,
हम क्रीड़ा करते सानन्द ।

इसको किलकिञ्चित् अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(१०) दसवां क्रम वह है, जिसमें अ, अ, अ, ब, ब, के योग से अन्त्यानुप्रास हो:—

हँसूँ कि रोऊँ नहीं जानता,
मन कुछ माने नहीं मानता,
मैं जीवन-हठ नहीं ठानता,

१. पन्त, पल्लविनी, वीचिविलास, पृ० ६६ ।

२. पन्त, पल्लविनी, विश्ववेणु, पृ० ६५ ।

होती जो श्रद्धा न गहन,
बरसो, हे घन ! १

इसका विभ्रम अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

- (११) ग्यारहवाँ क्रम अ, अ, व, व, स, स है:—
वही है नाम, विहग ! तो बोल,
न सुन पाये दो मीठे बोल,
विपुल गत वर्ष, अमित व्यवधान,
यही उस पुण्य-मिलन का स्थान,
मञ्जरी अपित, लो, अब गर्व,
हमारा पावन पर्व २ ।

इसको कोकिल अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

- (१२) बारहवाँ अन्त्यानुप्रास क्रम अ, व, स, व, द, य, द है ३:—

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग,
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उछ्वास,
और मैं कान्त कामिनी कविता ॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरा-पान घन अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति । ४

इसको मंगल अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(१३) आधुनिक युग में अन्त्यानुप्रास के आधार पर सामान्य छन्दों से कई गुने आकार-प्रकार के नवीन छन्दों की आयोजना की गई है, इनमें कवियों ने इच्छानुसार

१. पन्त, स्वर्णभूति, आह्वान, पृ० ५१ ।
२. चन्द्राकर, उदीयमान, फाल्गुणी पर्व (अप्रकाशित) ।
३. वस्तुतः (१, २), (३, ४), (६, ७) चरण मिल कर एक-एक चरण की सृष्टि करते हैं ।
ऊपर का क्रम-विश्लेषण लिपि के अनुसार किया गया है ।
४. निराला, परिमल, तुम और मैं, पृ० ८४ ।

अन्त्यानुप्रास का क्रम निश्चित किया है। 'विश्व छवि' में पन्त जी ने अ, ब, ब, स, स, अ, स, अ, ब क्रम से नवीन रूप निर्मित किया है --

रंगीले मृदु गुलाब के फूल,
कहाँ पाया मेरा यौवन ?
प्राण, मेरा प्यारा यौवन ?
रूप का खिलता हुआ उभार,
मधुर मधु का व्यापार,
चुभे उर में सौ-सौ मृदु शूल,
खुले उत्सुक दृग्द्वार,
हृदय ही से गुलाब के फूल,
तुम्हीं सा है मेरा यौवन ^१ ।

इसको उद्धेलित अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

(१४) पद्मरि छन्द के चरण के आधार पर 'नौका-विहार' में १४ चरणों का एक छन्द शिल्पमूर्त्त किया गया है, जिसके प्रथम दो चरणों में अन्त्यानुप्रास है और शेष अंश में तीन-तीन चरणों का अन्त्यानुप्रास परस्पर संगुम्फित किया गया है:—

अब पहुँची चपला बीच धार,	अ
छिप गया चाँदनी का कमार ।	अ
दो बाहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,	ब, ब
आलिंगन करने को अधीर ।	ब
अतिदूर क्षितिज पर विटप-माल, लगती भू-रेखा सी अराल,	स, स
अपलक नभ नील नयन विशाल,	स
माँ के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,	द, द
उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप,	द
वह कौन विहग, क्या विकल कोक, उड़ता हरने निज विरह-शोक ? य, य	
छाया की कोकी को विलोक ^२ ।	य

इसको चातक अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।

१. पन्त, पल्लव, विश्व-छवि, पृ० ८४ ।

२. पन्त, गुञ्जन, नौका-विहार, पृ० १३ ।

कामिनी छन्द (SSSX३) के आधार पर 'मिलन-यामिनी' में एक पदबन्ध क, ख, ग, ख, घ, ङ, च, ख, छ, ज झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ठ, ड क्रम से शिल्पित किया गया है :—

इस समय हिलती नहीं है एक डाली,
इस समय हिलता नहीं है एक पत्ता,
यदि प्रणय जागा न होता उस निशा में,
सुप्त होती विश्व की सम्पूर्ण सत्ता,

वह मरण की नींद होती जड़ भयंकर,
और उसका टूटना होता असंभव,
प्यार में संसार सोकर जागता है,
इस लिए है प्यार की जग में महत्ता,

हम किसी के हाथ के साधन बने हैं,
सृष्टि की कुछ मांग पूरी हो रही है,
हम नहीं अपराध कोई कर रहे हैं,
मत लजाओ और देखो उस तरफ भी,

प्राण, रजनी भिंच गई नभ के भुजों में,
थम गया है शीस पर निरुपम रुपहला चाँद,
मेरा प्यार बारंबार लो तुम ।

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तर पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम^१ ।

सन्त बिनोबा के भू-दान-आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखी गयी 'महायज्ञ' शीर्षक कविता में लेखक ने त्र्यष्टक छन्द में विशाल नवीन 'पदबन्ध' का क्रमायोजन क, क, ख, क, ग, घ, ङ, च, छ, क, ज, ज, क, झ, झ, क अन्त्य-रूप में रखा है :—

भूमि दान दो, अन्न दान दो, जीव-दान दो,
ज्ञान दान दो, स्नेह दान दो, श्रम दान दो,
बोल रहा है, नर- नारायण सन्त-रूप में,
महामोह से मुक्त बनो, सर्वस्व दान दो !

टूट गया कारागृह वह, शृंखला गिर गयी,
मार्ग मुक्त है, पर चरणों की शक्ति क्षीण है,
जीवन की जय-यात्रा पर प्रस्थान हो रहा,
महाश्वमी बलिदानी सैनिक छूट न जायें,
यही पदातिक, आगे भीषण संग्रामों में,
जयी बनेंगे, इन्हें शक्ति का यान-दान दो !

मानव की मानवता का है आज परीक्षण,
करो त्याग से बन्धु-राग का तुम संरक्षण,
साधिकार मानो इनको सम्पत्ति-दान दो !

इस समाज के हाथ-पाँव अब भी दुर्बल हैं,
हृदय वलान्त है, देह श्रान्त है, अंग निबल हैं,
हे भोगी आनन, समृद्धजन ! आत्मदान दो !^१

आधुनिक युग में स्फुट विषयों को लेकर चतुर्दशपदियों की भी योजना बहुशः हुई है, पर उन प्रयोगों में 'सॉनेट' की अन्त्यानुप्रास-पद्धति का विशेष प्रभाव नहीं परिलक्षित होता, क्योंकि प्रायः उनमें युग्मक अन्त्यानुप्रास का ही प्रयोग हुआ है। इसके लिए विभिन्न छन्द भी चुने गये हैं। निराला जी ने अणिमा में 'सन्त रविदास जी के प्रति' कविता में पीयूष-वर्षी छन्द और 'श्रद्धाञ्जलि' (आचार्य शुक्ल जी के प्रति), 'श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति' एवं 'महादेवी जी के प्रति' लिखी गयी चतुर्दश-पदियों में रोला छन्द का प्रयोग किया है। पन्त जी ने 'ग्राम्या' में 'अहिंसा', 'बापू', और 'सांस्कृतिक हृदय' में 'रोला', '१९४०' कविता में मत्तसर्वा (३२ मात्राएँ) का प्रयोग किया है। चतुर्दशपदी का विकर्षाधार (Resolution of Arrangement)^२ निश्चित नहीं है। प्रायः कवि सुविधानुकूल अन्त्यानुप्रास का प्रयोग करते हैं, और मुद्रण में खंड-विभाग भी भिन्न-भिन्न रूपों में कर देते हैं। निराला जा न प्रस्तुत प्रयोग में सम्पूर्ण कविता को अखण्ड रूप में ही रक्खा है:—

अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर,
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर।
दीप्त द्वितीया हुई लीन, खिलने से पहले,
किन्तु निशाचर सन्ध्या के अन्तर में दहले।
स्पष्ट तृतीया, खिंची दृष्टि लोगों की सहसा,
छिड़ी सिद्धि साहित्यिक से, तुम से जब वचसा।

१. चन्द्राकार, उदीयमान, महायज्ञ (अग्रकाशित)।

२. अवमहोऽविकर्षेण ज्येष्ठादाशतयोर्वृत्ता ॥

विकर्षेण तु पादैश्च स हि शर्ध इति स्मृतः ॥ ३० ॥ पाताल १७, ऋक् प्रातिशाख्य।
विकर्ष का अर्थ पद-क्रमायोजन है।

मुक्त चतुर्थी, समालोचना वधू व्याह कर,
 लाए तुम, पंचमी काव्यवाणी अपने घर ।
 षष्ठी, छः ऐश्वर्य प्रदर्शित कोष-प्राण में,
 शिक्षण की सप्तमी, महार्णव सत्य-ज्ञान में ।
 दिये अष्टमी आठों वसु टीकाओं में भर,
 नवमी शान्ति ग्रहों की, दशमी विजित दिगम्बर ।
 एकादशी रुद्रता, रामा कला द्वादशी,
 त्रयोदशी प्रदोष-गत चतुर्दशी रत्नशशी^१ ।

मुक्त छन्द में अन्त्यानुप्रास

मुक्त छन्द के कवियों ने भी अन्त्यानुप्रास की गरिमा का रहस्य समझा है । अन्त्यानुप्रास के कारण कविता के रूप-सौष्ठव, चरणानुबन्ध, भावसम्पूर्णता तथा संगीतात्मकता की सृष्टि होती है । अन्त्यानुप्रास से मुक्त छन्द की प्रसारमुक्त पंक्तियों के आवर्तन एवं सम्पूर्णता की सूचना मिलती है और एकरसता भी समाप्त होती है, अतः मुक्त छन्द के कवि भी अपनी भाषा को इस विशेष अलंकार से सुशोभित करते हैं । यह आवश्यक नहीं कि सभी मुक्त कविताओं में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हो, पर जिन कविताओं में इसका प्रयोग होता है, उनके पदानुबन्धन एवं लयानुशासन में इस शोभन व्यवस्था के कारण पुष्टि एवं दीप्ति आ जाती है । मुक्त छन्द में अन्त्यानुप्रास प्रयोग की किसी क्रमिक या निश्चयात्मक पद्धति का निष्कर्ष नहीं निकल सकता । इसके लिए कवि अपनी सुविधा के अनुसार पंक्तियों का विकर्षाधार अन्त्यानुप्रास-योग की स्थानीय एवं तात्कालिक परिकल्पना करता चलता है । इससे कविता में, निश्चित छन्द का रूप-माधुर्य एवं मुक्त छन्द का स्वतन्त्र पदनिक्षेप मणिकाञ्चन-संयोग उपस्थित करता है । ऐसा अन्त्यानुप्रास वाणी के विराम-स्थान और स्मरण के चुम्बक लौह का भी कार्य करता चलता है । छन्द की इस सहज प्रवृत्ति को यथास्थान स्वीकार करके भावज्ञता के साथ कवि-जन रूपप्रियता एवं सरलसाध्य अलंकार प्रियता का भी परिचय देते हैं । निराला जी की 'सहस्राब्दि' कविता का उदाहरण लीजिए :—

विक्रम की सहस्राब्दि का स्वर,
 कर चुका मुखर,
 विभिन्न रागनियों से अम्बर ।
 आ रही याद,

वह उज्जयिनी, वह निरवसाद
 प्रतिमा, वह इतिवृत्तात्म कथा,
 वह कार्य-धर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता,
 पाटिलीपुत्र का बौद्ध-श्री का अस्तरूप,
 वह हुई और भू, हुए जनों के और भूप,
 वह नव रत्नों की प्रभा - सभा के सुदृढ़ स्तम्भ, (अन्तरन्त्यानुप्रास)
 वह प्रतिभा से दिङ्नाग-दलन,
 लेखन में कालिदास के अमला-कला-कलन,
 वह महाकाल के मन्दिर में पूजोपचार,
 वह शिप्रावात, प्रिया से प्रिय ज्यों चाटुकार ।
 आ रही याद,
 वह विजय शकों से अप्रमाद,
 वह महावीर विक्रमादित्य का अभिनन्दन,
 वह प्रजाजनों का आवर्तित स्यन्दन-वन्दन,
 वे सजी हुई कलशों से, अकलुष कामिनियाँ,
 करती वर्षित लाजों की अञ्जलि भामिनियाँ,
 तोरण तोरण पर,
 जीवन को यौवन से भर,
 उठता सस्वर,
 मालकोश हर, (मालान्त्यानुप्रास)
 नस्वरता को नवस्वरता दे करता भास्वर,
 ताल ताल पर,
 नागों का वृंहण, अश्वों की हेषा,
 भर भर,
 रथ का घर्घर,
 घण्टों की घनघन,
 पदातिकों का उन्मद-मद पृथ्वी-मर्दन १ । (अष्टक पर्वाधार मात्रिक)

विशेष भाव पर बल देने के लिए समान विस्तार के चरणों में अन्त्यानुप्रास अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है । यह बात और ध्यान देने की है कि मुक्त में छन्द निश्चित छन्दकी तरह अधिक स्वर-व्यंजनों के सहित ललित अन्त्यानुप्रास देने की आवश्यकता नहीं, उसके

लिए एक स्वर और एक व्यंजन ही अधिक है, क्योंकि चरणान्त में लय-निपात-क्रम की एक मात्र अपेक्षित है। यह तो स्पष्ट ही है कि मुक्त छन्द का कवि भावानुकूल अथवा स्वेच्छा से किसी भी स्थान पर अन्त्य-योजना का अधिकारी है, उसके ऊपर किसी बाहरी नियम का अनुशासन नहीं चलता। मुक्त छन्द के कवि को किसी विशेष चरण का किसी पूर्व चरण के भाव से सम्बन्ध जोड़ना होता है। तो प्रायः वह उन दोनों चरणों में अन्त्यानुप्रास की योजना कर देता है। रूपक-विधान में, मालोपमा में, विशेषण वाक्यावली-नियोजन में, या अर्थान्तरन्यास, उदाहरण और उपमा वाले दो समानधर्मा विधानों में, अन्त्यानुप्रास भाव को अधिक स्पष्ट कर देता है। श्री सोहनलाल द्विवेदी की 'उर्वशी' का एक निदर्शन इस निष्कर्ष को अधिक पुष्ट करेगा :—

इसी सुरलोक में,
सुरपति के ओक में,
ऊर्ध्वगामी पुण्य सम, सौख्य सम, (अन्तरन्त्यानुप्रास)
आए पाण्डु-पुत्र पार्थ,
जैसे हो पुरुषार्थ ।
इन्द्रलोक में नवीन उत्सव-उत्साह भरा,
स्वयं उपहार सी,
सोलह शृंगार सी,
सुषमा अपार सी,
करती आर्यपुत्र की अर्चना, वंदना,
एक दिवस
उत्सव-उत्साह में,
कौतुक-प्रवाह में,
देवसुर-प्रेयसी,
सुरलोक-रूपसी,
आई चली उर्वशी,
इन्द्र जाल बनकर छा लेने को नभ विशाल
यौवन की तान में बनने को गहन ताल ।
एक रात,
जब कि वह रही थी मंद मंद मंदिर बात,
स्निग्ध हो उठे थे नव मधुर ऋतु से कुसुम-पात,
जाती स्वर्गङ्गा इठलाती मदमाती सी, (अन्तरन्त्यानुप्रास)
चूमने को सिन्धु-अघर,
तम का पहन नील वसन गहन कानन में,

बन कर अभिसारिका,
सज कर शत तारिका,

✽

✽

✽

देती हूँ तुझे शाप !

लगे पाप ! (मालान्त्यानुप्रास)

अबला पर तू ने किया है यह पदाघात,

कोमलतम भावनाओं पर कठिनतम संघात,

नारीत्व पर तूने किया है प्रतिघात^१ ।

भावानुबन्धमूलक दूरान्तर अन्त्यानुप्रास का एक उदाहरण 'परिमल' की 'सन्ध्या-सुन्दरी' से प्रस्तुत किया जाता है :—

दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही है,

वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी, (अन्तरन्त्यानुप्रास)

धीरे धीरे धीरे,

तिमिराञ्चल में चंचलता का कहीं नहीं आभास,

मधुर मधुर हैं दोनों उसके अघर,

किन्तु गंभीर, नहीं है उनमें हास-विलास ।

हँसता है तो केवल तारा एक,

गुथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,

हृदय-राज की रानी का वह करता है अभिषेक ।

अलसता की सी लता,

किन्तु कोमलता की वह कली,

सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,

छाँह सी अम्बर पथ से चली^२ ।

इस कविता में अन्त्ययोग छन्द की इकाई बनाते हैं और लम्बी कविता को बोझिल होने से रोकते हैं। शेष विशेषताओं का वर्णन निश्चित छन्द में 'अन्त्यानुप्रास की उपयोगिता' शीर्षक में किया जा चुका है ।

अन्त्यानुप्रास-मुक्त अथवा अतुकान्त प्रयोग

आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य की भाँति अतुकान्त छन्दों का प्रयोग नवीन रूप में हुआ है। समास, सन्धि एवं प्रत्ययों का संगुम्फन संस्कृत वृत्त के चरण को एक मोहक

१. सोहनलाल, द्विवेदी, उर्वशी, वासवदत्ता पृ०, २१ ।

२. निराला, परिमल, संध्या-सुन्दरी, पृ० १३५ ।

संगीत-मालाकार बना देता है। सामान्यतः वृत्त की धारा दो चरणों तक प्रवाहित होती है। असामान्य अवस्था में दो (युग्मक), तीन (सांद्रानतिक, विशेषक या ललित), चार (कलापक) और पाँच (कुलक) छन्दों के संयोग से भी विस्तृत पदबन्धों की योजना होती रही है^१। शिशुपालवध में तो दस-दस पद्य पुञ्जीभूत कर दिये गये हैं। भाषा के शब्द-शृंगार को उतार कर शुद्ध लय के आधार पर छन्द-निर्माण की प्राचीन परम्परा वैदिक साहित्य एवं संस्कृत साहित्य के दृष्टिकोण से मेल खाती है। वैदिक कविता के छन्दो-विधान में अन्त्यानुगास का प्रयोग नहीं होता था। आदि आर्य-भाषा के विभिन्न रूप जेन्दावेस्ता' और ग्रीक में अतुकान्त छन्दों में ही रचना होती थी। ग्रीक भाषा के छन्द संस्कृत की भाँति लघु-दीर्घ वर्णों के आधार पर विशेष मात्राकालों के होते थे। संस्कृत की भाँति उसमें भी एक दीर्घ के स्थान पर दो लघु प्रयुक्त किए जा सकते थे^२। मध्यकाल में सन् १५४० के लगभग अंग्रेज कावे सरे (Surrey) ने मूल काव्य की रूप-प्रेरणा से वर्जिल के एनियड (Aenied) काव्य का अनुवाद अतुकान्त छन्दों में किया। इसके पहले इटालियन में उसका अतुकान्त अनुवाद हो चुका था। यह धारा योरोप की सभी मध्यकालीन भाषाओं में व्याप्त हो रही थी। अंगरेज कथाकार कवि चासर ने 'ट्राइलस एण्ड क्रीसीडी' में अतुकान्त प्रयोग किया। मिल्टन ने इस पद्धति का 'पैराडॉइज लॉस्ट' में सर्वाधिक प्रौढ़, कुशल एवं विस्तृत प्रयोग किया। इसमें उन्होंने लघु-गुरु (ल ग) इकाई की पंचावृत्ति से वीर-छन्द (Heroic Verse) की योजना की। शेक्सपियर ने उसे नाटकीय वार्त्तालाप के लिए उपयुक्त समझ कर पदान्तरप्रवाही के रूप में प्रयुक्त किया^३। इस के पश्चात् टेनीसन ने 'इन मेमोरियम' और

१. छन्दोबद्धपदं पद्यं, तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।

द्वाभ्यां तु युग्मकं, सांद्रानतिकं त्रिभिरिष्यते । ३१४ ।

कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम् । षष्ठ परिच्छेद, साहित्यदर्पण ।

1—Greak metre:--The chief principle in ancient verse quantity in the amount of time involved in expressing a syllable. Accordingly, the two basal types which lie at the foundation of classical metre are "Long" and "Short". The convention was that a long syllable was equal to two short ones, accordingly, there was real truth in calling the succession of such 'feet' metre for the length or the weight, of the syllables forming them could be, and was measured.

Encyclopaedia Britannica. Vol. 23, Page 96.

3. Verse is used to exalt a theme by making language possible in this brightened rhythm which would otherwise be too grandiloquent, Blank verse served this purpose magnificiently for Elizabethan stage. In Shakespeare's hand form grew from single moulded line to the longer unit of speech...The next speaker was a different personality, perhaps a

क्रीट्स ने 'स्लीप एण्ड पोयटरी' में इस छन्द का प्रयोग किया। बीरे-धीरे इस धारा को वॉल्ट ह्विटमैन (अमेरिकन कवि ने 'लीब्ज अन् ग्रैस में') और टी० एस्० इलियट ने लगभग गद्य के समान धरातल तक उतार दिया।

अँगरेजी साहित्य के सम्पर्क में आकर मधुसूदन दत्त ने 'पैराडाइज़ लॉस्ट' जैसा महाकाव्य लिखने का संकल्प किया। प्रारम्भ में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजनारायण वसु जैसे मित्रों ने उनका समर्थन नहीं किया, पर वे दृढ़ रहे। उन्होंने बहुप्रचलित पयार (८+६ वर्ण) छन्द को अतुकान्त का रूप देकर महान् छन्द का निर्माण किया। मूल प्रकृति अपरिवर्तित होते हुए भी छन्द में रूप, पद-संचार और संगीतात्मक ध्वनि-गौरव की अपूर्व अवतारणा हुई^१। इस छन्द की प्रेरणा के लिए वे काशीदास के ऋणी हैं, यद्यपि उन्होंने नवीन भङ्गिमाओं के योग से छन्द का आचूड़पाद स्वरूप परिवर्तित कर दिया^२। पयार छन्द के सुप्त वृहत्तर संगीत को उद्बुद्ध करके नवीन ध्वनि-विन्यास, मुक्त गतिचिन्ताहीन कल्पना-विचरण, आवेगयुक्त आनन्द-संचार, अखंड भाव-विस्तार एवं अजस्रगामी गंगोत्री-प्रवाह के योग से माइकेल दत्त ने 'मेघनाद-वध' महाकाव्य का प्रणयन किया। उसके एक पद्य-खण्ड का उदाहरण लीजिए—

त्याजि धनु, निष्कासिला असि महातेजा
रामानुज, झलसिला फलक आलोके
नयन । हाय रे, अन्ध अरिन्दम बली
इन्द्रजित् । खड्गाघाते पड़िला भूतले
शोणितार्द्र थर थर काँपिला वसुधा,
गर्ज्जिला उथलि सिन्धु भैरव आरवे
सहसा पूरिल विश्व ! त्रिदिवे पाताले,

different mood so the verse could have no continuity from one speech to another. The speech itself might end anywhere in the line and the next speaker takes it up and ends the line. Page 175.

Rhetoric and Prosody. By Brander.

१. तेमून ताहाते ये नूतन छन्द ध्वनियुक्त होइयाछे, ताहारूपटेइ नूतनइ—मूल प्रकृति नूतननय। इहार परे, सेइ भाषारइ वाक्य-वैभव तथा ध्वनिगौरव वृद्ध करिया, मधु-सूदन ये काव्य-संगीत सृष्टि कोरलेन, ताहारओ मूले रहियाछे सेइ खांटी बाँङ्ला वाचन भाङ्गि ओ वाक्य-रीति, एतो बड़ काव्य छन्द एमून सुमहान् संगीतरव सहज ओ स्वाभाविक वाक्यछन्देर ऊपरइप्रतिष्ठित होइले।

पृ० ३५, बाङ्ला कवितार छन्द।

२—काशीदासी पयार छन्दे अमित्राक्षरेक सागरतरंग कलकलले प्रभावित होइते लागिलो। पृ० २४१। मधुसूदन पयार के जे नूतन यति वो छन्दे बाँधिया छिलेन, जाहार फले काव्य-छन्द चिरदिनेरजन्य नूतन चाले चलिते आरंभ कोरिलो, सेइ नूतन छन्दोभङ्गी

मर्त्ये मरामर जीव प्रमाद गनिला

आतंके ।^१

श्री मैथिलीशरण गुप्त संस्कृत की विशाल अन्त्यमुक्त परम्परा से पूर्णतः परिचित रहे हैं। पुनः, उनके सामने मधुसूदन दत्त (र ध्रुव जी गुजराती कवि) की अतुकान्त कृतियाँ आईं, जिनका उन पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इसके पहले भी मधुसूदन के आदर्श पर श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' सन् १९१३ में 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत अतुकान्त वृत्तों में कर चुके थे। वे अतुकान्त कविता के लिए वृत्तों का प्रयोग सर्वाधिक अनुकूल समझते थे।^२ कविता के क्षेत्र में विविधता लाने के लिए उन्होंने ऐसा प्रयोग किया था। उन्होंने लिखा है :—'भिन्न तुकान्त कविता सुविधा के साथ की जा सकती है और उस में विचार, स्वतन्त्रता, सुलभता और उत्तमता से प्रकट किए जा सकते हैं।' इस के पहले भी पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी ने संस्कृत वृत्तों के प्रयोग का समर्थन किया था :—'जब तक खड़ी बोली की कविता में संस्कृत के ललित वृत्तों की योजना न होगी तब तक भारत के अन्य प्रान्तों के विद्वान् उससे सच्चा आनन्द कैसे उठा सकते हैं? यदि राष्ट्र-भाषा हिन्दी के काव्यग्रन्थों का स्वाद अन्य प्रान्तवालों को भी चखाना है, तो उन्हें संस्कृत के मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, मालिनी, पृथ्वी, वसन्तलतिका, शार्दूलविक्रीडित आदि ललित वृत्तों से अलंकृत करना चाहिए। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के निवासी विद्वान् संस्कृत भाषा के वृत्तों से अधिक परिचित हैं। इसका कारण यही है कि संस्कृत भारतवर्ष की पूज्य और प्राचीन भाषा है। भाषा का गौरव बढ़ाने के लिए काव्य में अनेक प्रकार के ललित वृत्तों और नूतन छन्दों का भी समावेश होना चाहिए'।^३

साथ ही साथ कुछ विद्वान् इन प्रयोगों का विरोध भी कर रहे थे। पं० बालकृष्ण भट्ट ने द्वितीय साहित्य सम्मेलन के स्वागत भाषण में कहा था "आजकल छन्दों के चुनाव में भी लोगों की अजीब रुचि हो रही है, इन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि संस्कृत आदि छन्दों का हिन्दी में अनुकरण हम में तो कुढ़न पैदा करता है।"^४ श्री पं० वाक्यछन्देर ऊपरइ प्रतिष्ठित, सेइ छन्द होइते मधुसूदन ताहार अमर छन्द गड़िवार इंगित पाइया छिलेन।

पृ० २८६, आधुनिक बाइला साहित्य, मोहितलाल मजूमदार।

१. माइकेल मधुसूदनदत्त, मेघनादवध, षष्ठ सर्ग।

२. संस्कृत कविता का अधिकांश भिन्न-तुकान्त है, इसलिए यह स्पष्ट है कि भिन्न तुकान्त कविता लिखने के लिए संस्कृत वृत्त बहुत ही उच्युक्त हैं। इसके अतिरिक्त भाषा छन्दों में मैंने जो एकाध अतुकान्त कविता देखी, उसको बहुत ही भद्दी पाया, यदि कोई कविता अच्छी भी मिली, तो उसमें वह लावण्य नहीं मिला, जो संस्कृत वृत्तों में पाया जाता है, अतएव मैंने इस ग्रंथ को संस्कृत वृत्तों में ही लिखा है। यह भी भाषा-साहित्य में एक नई बात है।

प्रिय प्रवास, भूमिका, पृ० ५।

३. 'हिन्दी-मेघदूत', भूमिका, पृ० ३, ४, सं० १६६८।

४. 'द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्यविवरण, २ भाग, पृ० ८।

मन्त्रनद्विवेदी ने भी अतुकांत प्रयोग का खुले स्वरो में समर्थन किया था, पर वे मात्रिक अतुकान्त का समर्थन नहीं करते थे ।^२

‘हरिऔध’ जी ने हिंदी में संस्कृत वृत्तों का पहला प्रौढ़ श्रेष्ठ प्रयोग किया है । छोटे छन्द जैसे द्रुतविलम्बित एवं वंशस्थ को कवि ने पूरे छन्द में प्रायः पदान्तर-प्रवाही ही रखा है, किन्तु शार्दूलविक्रीडित और मन्दाक्रान्ता जैसे बड़े छन्दों में कुछ ही ऐसे उदाहरण हैं । वे वृत्त-क्षेत्र में नवीन छन्दों योजना नहीं कर सके और न पुराने छन्दों को ही विशालतर रूप दे सके, परन्तु उन्होंने पुराने छन्दों का प्रयोग सुन्दर किया है । प्रिय-प्रवास में मुश्किल से ही छन्द दोष (यतिगति दोष) मिलेगा । कुछ भाषा-दोष अवश्य हैं, उसके लिए अपरिपक्व युग की भाषा उत्तरदायी है । फिर भी, उस युग में कवि को आशा से अधिक सफलता मिली । इस प्रयोग को प्रशंसनीय एवं सुन्दर कह सकते हैं, हिन्दी कविता की अतुकान्त-परम्परा इस पथ से सुगम रीति से न चल सकी, क्योंकि वृत्त हिन्दी की प्रकृति के विशेष अनुकूल नहीं है । हिन्दी के प्रत्यय प्रकृति से अलग रहते हैं । सन्धियाँ और समास संस्कृत शब्दों के योग में ही अधिक संभव हैं, हिन्दी शब्दों में नहीं, अतः वृत्तों में संगीत घनीभूत नहीं हो पाता । प्रिय-प्रवास के अनुकरण में श्री अनूप शर्मा ने ‘सिद्धार्थ’ और ‘वर्द्धमान’ महाकाव्य लिखे, जो अपेक्षाकृत निर्दोष भाषा रखते हुए भी ग्रहणीयता की दृष्टि से प्रियप्रवास’ से अधिक अनुकूल न पड़ सके । कदाचित् कवि ने अनुभव किया कि बड़े संस्कृत वृत्त हिन्दी के अनुकूल नहीं हैं, अतः ‘वर्द्धमान’ महाकाव्य में वंशस्थ छन्द का विशेष प्रयोग किया । वंशस्थ छन्द का इतना बड़ा प्रयोग भारतवर्ष में इसके पहले किसी कवि ने नहीं किया है । इस छन्द में संगीत को घनीभूत रखा गया है, परन्तु ये सभी कृतियाँ उच्चशिक्षितों एवं क्लासिकल (शास्त्रीय) अभिरुचि वाले लोगों के ‘बुद्धि-विहार’ की ही साधन हैं । ‘विराट् संग्राम’ में अनूप जी ने रुक्मिणी (४ रगण) छन्द का मुक्त प्रयोग करके अद्भुत सफलता प्राप्त की है । वर्णिक छन्दों को मुक्त रूप में प्रयुक्त करने की अनूप जी में अनुपम प्रतिभा है । इस क्षेत्र में वे हिन्दी को ‘गान्धी-चरित’ महाकाव्य की अमूल्य देन दे चुके हैं ।

हरिऔध जी की परम्परा का विकास करने वाले श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं । इन

२- यहाँ एक बतला देना बहुत आवश्यक है, जो बेतुकान्त की कविता लिखे, उसको चाहिए कि संस्कृत के छन्दों को काम में लाये । मेरा ख्याल है कि हिन्दी-पिंगल के छन्दों में बेतुकान्त कविता अच्छी नहीं लगती । स्वर्गीय साहित्याचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद जी व्यास ऐसे विद्वान् भी हिन्दी छन्दों में अच्छी बेतुकान्त कविता नहीं कर सके । कहना नहीं होगा कि व्यास जी का ‘कंसवध’ काव्य बिल्कुल रद्दी हुआ है ।

में विभिन्न छन्दों को ग्रहण करने एवं प्रयोग करने की विशेष शक्ति है। हिन्दी में अन्त्यमुक्त शैली के ये प्रमुख समर्थक हैं, यद्यपि ये खड़ी बोली में अन्त्यानुप्रास के अनन्य भक्त भी हैं। इन्होंने हिन्दी जनता को 'भावच्छन्द' 'पदबन्ध' एवं 'पदान्तरप्रवाही' की धारा से परिचित कराने के लिए 'मेघनादवध' का हिन्दी अनुवाद किया। अनुवाद में घनाक्षरी या रूप घनाक्षरी के उत्तरार्द्ध (१५ या कहीं कहीं १६ वर्ण) को आधार मान कर छन्दोयोजना की गई है। मधुसूदन दत्त ने भी मुक्त वर्णिक (पयार, १४ वर्ण) का प्रयोग किया है, पर, इसके लिए कवि दूसरी भाषा का ऋणी नहीं बना। घनाक्षरी छन्द के गंभीर मर्म, संगीत-ऋद्धि, अनुपम अमता, कलात्मक चरण-निक्षेप, पुष्ट माँसल रूप, स्वस्थ आभिजात्य, प्रभूत रस-सिद्धि एवं जनमानसप्रियता के रहस्य को समझने के लिए कोई भी छन्दोमर्मज्ञ गुप्त जी को साधुवाद दे सकता है। घनाक्षरी छन्द के पूर्वार्द्ध के अन्त में कहीं-कहीं दो गुरुआ जाते हैं, जिससे चरणान्त की झंकार अविरल नहीं रहती, अतः उत्तरार्द्ध को प्रयोग का आधार बनाया गया है। इस छन्द के स्वरूप का विशेष विश्लेषण चौथे अध्याय में किया जायगा। यहाँ केवल इतना ही दिखाना अभीष्ट है कि अन्त्यानुप्रास मुक्त होकर छन्द का कैसा स्वरूप निखरा है। अनुवाद का एक निदर्शन लीजिये। रावण अपने पुत्र की हत्या का बदला लेने जा रहा है:—

पुष्पक में बैठा हुआ रक्षोराज निकला,
धूमे रथचक्र घोर घर्घर निनाद से,
उगल कृशानु कण, हीसे हय हर्ष से।
चौधा कर आगे चली रतन संभवा विभा,
ऊषा चलती है यथा आगे ऊष्ण - रश्मि के
जब उदयाद्रि पर, एक - चक्र रथ में,
होता है उदित वह, देख रक्षोराज को
रक्षोगण गरजा गंभीर धीर नाद से१।

१. (अ) अनुवाद, मेघनाथ-वध, मंथिलीशरण गुप्त।

(ख) बाहिरला रक्षोराज पुष्पक आरोही,
घर्घरित रथचक्र निर्घोष, उगरि
विस्फुलिङ्ग, तुरंगम हेषित उल्लासे।
रतन-संभवा विभा, नयन धांधिया,
धाय अग्रे, ऊषा यथा, एकचक्ररथे,
उबेन आदित्य जब उदय अचले।
ताबिल गंभीर रक्षः हेरि रक्षोनाथे।

४४८-५४ पंक्ति, सप्तम सर्ग, मेघनादवध, साइकल मधुसूदन दत्त।

इसके अतिरिक्त गुप्त जी ने 'सिद्धराज' में आद्योपान्त और 'जयभारत' (युद्ध खण्ड) में, तथा 'यशोधरा' सन्धान) में अंशतः अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है।

पं० रूपनारायण पांडेय ने 'दधीचि का त्याग' शीर्षक स्फुट कविता में और श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने प्लवंगम (२१ मात्रा) को अतुकान्त रूप में प्रयुक्त किया है। 'ग्रन्थि' (पन्त), उषा-अनिरुद्ध, तथा अनंग (प्रस्तुत लेखक) खण्डकाव्य में पीयूष-वर्ष छन्द का पदान्तर-प्रवाही अतुकान्त प्रयोग किया गया है। 'पयस्विनी' और 'जीतू' में वर्त्वालि ने अतुकान्त रोला के स्फुट प्रयोग किए हैं।

अन्त्यानुप्रास-मुक्त छन्द एक साथ— योगी के मेरुदण्ड की भाँति ऋजु, नर्तकी सा लघु-भङ्गिमा-शील, विक्रान्त योद्धा सा दर्पदीप्त, गिरिशिखर-सा समुन्नत एवं निर्झरसा अखंड होता है। ऐसा प्रयोग बाह्य-चित्रण, कथा-वर्णन एवं तीव्र तथा उदात्त ओजोमय भावों के लिए ही विशेष उपयुक्त होता है।

अन्तरनुप्रास और अन्तर्यति

अन्तरनुप्रास^१ छन्द के अन्त्यानुप्रास के अभाव का आभास नहीं आने देता। निश्चित छन्दों में भी 'अन्तरनुप्रास' एवं यमक के प्रयोग से संगीतमाधुर्य बढ़ जाता है^२।

१. एक चरण में कई तुकान्त तुल्य अनुप्रासों का आना, जैसे :— लासमयी, हासमयी, विविध विलासमयी सुंदरियाँ, अप्सरियाँ, किन्नरियाँ।
उर्वशी, वासवदत्ता, सोहनलाल द्विवेदी।

२. (अ) विजय वन है, प्रेम घन है, सुगंध मन है आश म।
चरण चंचल, मति अचंचल बंध गई प्रिय-पाश में ॥
यामिनी अनुगामिनी सी कामिनी के संग में।
प्यार के संसार में, अभिसार-लुब्ध उमंग में ॥ (लेखक)

(ब) गरज, गगन के गान गरज गम्भीर स्वरों में,
भर अपना संदेश उरों में, औ अधरों में,
धरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर सागर में,
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में।

पल्लव, उच्छ्वास, पन्त।

(स) राजपौरिया सो रूप राधे को बनाइ लाई, गोपी मथुरा तें मधुवन की लतानि में।
ढेर कह्यो कौन्ह सों, चलो हो कंस चाहै, तुम, काके कहे लूटत, सुनो है दधि दान में॥

अनुप्रास भाषा के सौंदर्य और छन्दोमाधुरी में ही अभिवृद्धि नहीं करता, लय के संतुलन में भी योग देता है। इससे लय-शैथिल्य के विदूरीकरण के साथ-साथ नूतन परिस्फुरण आता है और शब्द-संगुम्फन की आवृत्ति से संगीतात्मक संमोहन का प्रसरण भी होता है।

अतुकान्त कविता एवं मुक्त छन्द में अनुप्रास के प्रयोग से व्यंजना में बड़ा बल आ जाता है। नीचे के उदाहरण में कारक की द्वितीया एवं प्रथमा विभक्ति की आवृत्ति ने भाव और भाषा को कितना सबल बना दिया है :—

(१) किंवा अपने से-ही मनुष्य क्यों, कहूँ स्वयं
अपने ही भाई-बन्धुओं को, बड़े-बूढ़ों को ।
मामा-भानजों को, गुरु-शिष्यों को, सखाओं को,
साजे-बहनोइयों को, काकाओं-भतीजों को,
अपने ही हाथों मार डाला, कहा लोगों ने !
और अपनी ही बड़ी छोटी कुलदेवियाँ
काकियाँ-बुआएँ, स्नेहमूर्ति मामी-मौसियाँ,
भानजी-भतीजियाँ, बहिन-बहू-बेटियाँ,
सलहज-सालियाँ, सहज सखी भाभियाँ
विधवा बना दीं आत्मघातियों ने सहसार !

संग के सकाने गये डगरि डेराने 'देव', म्याम ससबाने, सो पकरि करि पानि में ।
छूटि गयो छल, छैल बाल की बिलोकनि में, ढीली भई भौंहें वा लजीली मुसकानि में ॥

कवि देव, शब्द-रसायन, द्वितीय प्रकाश, पृ० २१ ।

सं० डा० 'मनाज'

१. (अ) The repetition of the same letter at the beginning or in the body of the different words in more or less 'juxta' position on to each other.....forms part of the very vitals of the language. P. 267.

Historical Manual of English Prosody-By Saintsbury.

(ब) अनुप्रास द्वारा काव्यभाषार सौंदर्य एवं छन्देर ए माधुरी वृद्धि हय, ये खाने शब्द हिसाबे अतिसामान्य भोंक मात्र पड़े, से खाने एइ अनुप्रास सेइ शब्द के नाचाइया भोंकेर कथञ्चित् वृद्धि साधन करे ।

बाङ्लाकवितार छन्द, मोहितलाल मजूमदार ।

२. मैथिलीशरण गुप्त, जयभारत, युद्ध खण्ड, पृ० ३९८ ।

(२) कामिनी किशोरी गोरी दामिनी सी दृग समक्ष,

लक्ष-लक्ष आँखों से रूप सुरापान कर,

अधर से अधर मिलें,

भुज से भुज युगुल खिलें,

कंठ से हो कंठ, प्राण प्राण में हों लीन,

वज्रं कहीं सुदूर प्रेममयी बीन,

❀

❀

यशोधरा सोती थी स्नेह-मग्न,

गौतम-भुज-मूल-लग्न, मग्न स्वर्ण-वल्लरी सी,

विलग पड़ी, नींद लग्न ।

❀

❀

भृकुटि में खिची रेखा,

चिन्ता की, विषाद की, चित्त-अवसाद की,

मन बना भ्रान्त, चित्त उद्भ्रान्त, दिग्भ्रान्त,

तड़ित हत, जड़ित से खड़े अजान

गौतम महान् १ ।

आनुकान्त छन्द में प्रायः पदान्तरप्रवाही^२ प्रयोग होता है, अतः छन्दोयति की अपेक्षा अन्तर्यति अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। भाव के अनुसार जहाँ भी छन्दोधारा अपनी अभिव्यक्ति का उद्देश्य प्राप्त कर लेती है, वहीं विराम आ जाता है। मुक्त छन्द में यति का स्थान अनिश्चित रहता है, केवल भाव की पूर्णता ही लय का विराम स्थान है। इस प्रकार अनिश्चित पङ्क्तियों का निश्चित लयाधार पर अभिव्यक्त सम्पूर्ण भाव ही 'भावच्छन्द' (Verse Paragraph) की सृष्टि करता है। 'भावच्छन्द' के वाक्यों और वाक्यांशों का अधिकांश निर्माण गद्य के तुल्य होता है। विभिन्न स्थानिक यतियाँ, परिवर्तित विराम और पदान्तर (Enjambement)^३ भाव और छन्द को एकीकृत कर देते हैं। पाठ-काल में नेत्र और कंठ 'भावच्छन्द' के पूर्ण होने के पहले नहीं रुक सकते^३। अन्तर्यति के द्वारा 'भावच्छन्द' का अखंड संगीत अन्तर्यतियों, अल्प-विराम और अर्धविरामों में तरंगित होता

१. सोहनलाल त्रिवेदी, वासवदत्ता, महाभिनित्कमण, पृ० ७३ ।

२. Enjambement (French) का अर्थ Overflow (English) है ।

३. The effect of blank verse depends more upon variation than upon anything else and by this variation accompanied by stop or over run (enjambement) at the end of the line, verse paragraphs are constituted which can contain verse clauses or sentences, in like manner brought into existence by pauses. Page 33.

चलता है। भावच्छन्दों में लय का साम्य रहता है, परन्तु बाह्य आकृति की विशालता तथा अनुबन्ध का साम्य नहीं रहता। इस अनिश्चित विशाल छन्द की इकाई में अन्तर्यति, प्रासाद में भाससंतुलक लौहस्तम्भों की भाँति आवश्यकता-पूर्ति करते हैं, फलतः 'भावच्छन्द' निश्चित छन्द और मुक्त छन्द को एक बिन्दु पर मिलाता है।

सम छन्द वर्ग

मात्राओं की संख्या के क्रम से आधुनिक युग की हिन्दी-कविता में प्रयुक्त निश्चित छन्दों का स्वरूप और विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्रह्मवर्ग या पादिक वर्ग (२ भेद)

२ मात्राएँ :—

श्री,
ही,
माँ,
गा^१।

इस छन्द में गुरु के स्थान पर २ लघु मात्राएँ भी हो सकती हैं.—रवि, छवि ।
कवि, हवि ।

त्रिदेव वर्ग या राम वर्ग (३ भेद)

३ मात्राएँ :—

वरण,
करण,

Continued

It (pause) consists in so knitting a batch of blank verse lines together by variation of pause, alternate use of stop and enjambement and close connection of sense that neither eye nor voice is disposed to make serious halt till the close of paragraph is reached. Para 296.

Historical Manual of English Prosody,

By George Saintsbury.

चरण,

शरण^१ ।

इस छन्द में लघु-गुरु और गुरु-लघु का भी प्रयोग हो सकता है, यथा :— घूम, घाम
घाम, घाम ॥ अथवा 'जगे, ठगे । सगे, लगे ।'

विधिमुख वर्ग या वैदिक वर्ग (५ भेद)

४ मात्राएँ :— इसमें किसी भी चतुष्क (॥५, ॥५, ॥५, ॥५) की आवृत्ति की
जा सकती है और अलग अलग चरणों में चतुष्क भिन्न प्रस्तार में भी आ सकते हैं :—

पद-जल,

चञ्चल ।

हिमधर,

गिरिवर ।^२

पञ्चानन वर्ग या याज्ञिक वर्ग (८ भेद)

५ मात्राएँ :— इसमें ॥५, ॥५, ॥५, ॥५, ॥५, ॥५, ॥५, ॥५ :— पंचकों में
किसी पंचमात्रिक लय को आधार मानकर रचना की जा सकती है :—

कामिनी,

मानिनी,

यामिनी,

स्वामिनी ।^३

इस वर्ग के अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं, यथा :— प्रिय, प्यार, शृंगार,
आभार, सुखसार ।

षडःनन वर्ग या ऋतु वर्ग (१३ भेद)

६ मात्राएँ :—इस वर्ग के चरण दो त्रिकलों अथवा चौकल और द्विकल के योग से बनते हैं । पाँच और एक मात्रा का योग लयबाधक होता है ।

चिरपावन,
सृजन चरण,
अपित तन,
मन-जीवन ।१

नीचे शुद्ध प्रत्यमूलक (गुरुलघुमूलक) उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है :—

प्रेम-राग,
भाव-याग,
आत्म-दान,
मुक्ति मान ।२

लौकिक वर्ग (२१ भेद)

७ मात्राएँ :—इस वर्ग के चरणों की लय एक त्रिकल और एक चौकल के योग के आधार पर चलती है । प्रायः दो सप्तक-भेद (S I S S और S S I S) ही इसमें प्रयुक्त होते हैं और गुरु के स्थान पर दो लघुओं के रखने का विधान है ।

उषः मोहिनि ! (त्रिकल + चौकल)
मन-विमोहिनि !
प्रीत रवि से,
विमल छवि से ।३

इसे 'सुगति छन्द' कहते हैं । दूसरे सप्तक के आधार पर निर्मित छन्द का उदाहरण निम्न है :—

१. पन्त, स्वर्णधूलि, पृ० ८३ ;

२. ३. चन्द्राकर ।

कोमल लते ! (चौकल + त्रिकल)
पादप-रते !!
आलिंगिते !
अनुरञ्जिते !^१

वासव वर्ग (३४ भेद)

८ मात्राएँ :— इस वर्ग के कई भेद इस युग में प्रयुक्त हुए हैं ।

(१) छवि.—इसका अष्टक पद्धति - लय पर चलता है और इसके अन्त में गुरु-लघु होता है ।

अज्ञान चूर्ण,
हो ज्ञान पूर्ण,
मानव समूह,
हो एक व्यूह^२ ।

(२) अखण्ड :— इस में समात्मक दो चौकलों का प्रयोग होता है । साथ ही, पंचक और त्रिकल का योग भी मान्य है ।

धवल हिमाचल,
निक्षेर चंचल,
गंगा का जल,
यमुना का जल^३ ।

(३) मुक्ति :— इस छन्द में दो त्रिकलों और गुरु का योग होता है ।

जाति-जाति में,
देश-देश में,
मुक्ति-क्षेम का,
विश्व-प्रेम का^४ ।

अङ्क वर्ग (५५ भेद)

९ मात्राएँ :— महेन्द्रवज्रा (स, य, स, य) और इस लय का पूर्ण साम्य है ।

१. चन्द्राकर ।

२. पन्त, युगवाणी ।

३. सी० बी० राव, पञ्चमी ।

४. तेजनारायण काक, मुक्ति की मशाल, पृ० ५५ ।

इस युग में इस छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है, अतः लेखक एक स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है।

अनमोल बोली,
मधुपर्क घोली,
प्रिय कोकिला की,
वन में खिला की।^१

इस छन्द का 'इन्द्राणी' नाम उपयुक्त होगा। इसकी पाँचवी मात्रा लघु होती है, और आदि-अन्त में समात्मक चतुष्क का प्रयोग होता है।

दैशिक वर्ग (भेद ८९)

१० मात्राएँ:—१. दीप—इस छन्द का प्रयोग केवल रगण (sis) प्रस्तार के आधार पर हुआ है। इस वर्ग के अन्य प्रयोग यगण (iss) और तगण (SSI) के प्रस्तार के आधार पर भी सम्भव हैं।

विजन वन-प्रान्त था,
प्रकृति-मुख शान्त था,
अटन का समय था,
रजनि का उदय था।^२

यह छन्द 'अरुण' का आधा होता है। इसकी तीसरी और आठवीं मात्राएँ लघु होती हैं।

(२) ज्योति —तगण के आधार पर निर्मित प्रस्तुत छन्द गीत के अत्यन्त अनुकूल है।

कैसे गए भूल ?

बोलो सरल प्राण !

आती नहीं क्या, "तुम को कभी याद,

ब्रह्म मद भरी रात, वह मद भरी रात,

सुख के सरल फूल,

अब तो बने बाणश् ।

१. लेखक।

२. श्रीधर पाठक, भारत-गीत, सान्ध्य छटन।

३. चित्रा।

(३) नयन—यह छन्द भुजंगप्रयाता का आधा है । इसकी पहली और छठी मात्रा लघु होती है । प्रयोग के अभाव में लेखक स्वरचित उदाहरण दे रहा है ।

सरल नैन तेरे,
रसिक नैन मेरे,
मिले घूमते हैं,
खिले झूमते हैं ।^१

रौद्र वर्ग (भेद १४४)

११ मात्राएँ :—१. शिव—इस छन्द का आधार ३ त्रिकल और एक गुरु (SISISIS) का योग है । इस में प्रयुक्त त्रिकल प्रतनमूलक या गलात्मक (SI) होते हैं ।

कंठ कंठ गा उठा,
शून्य शून्य छा उठा,
सत्य काम सत्य है,
राम नाम सत्य है^२ ।

(२) समानिका :—यह छन्द समानिका वृत्त (राजगा समानिका—र, ज, ग) का मात्रिक स्वरूप है, अतः तीसरी, छठी और नवीं मात्रा लघु होती हैं । 'जौहर' में इस छन्द का विशद विस्तृत प्रयोग हुआ है :—

सात सौ सवारियाँ,
हैं सभी कुमारियाँ,
सुन नवीन नारियाँ
हो गए मगन मियाँ^३ ।

(३) प्रातः :—इस नवीन छन्द का प्रयोग षष्ठक और पञ्चक के संयोग से हुआ है । षष्ठक प्रतनमूलक या त्रिकलात्मक न होकर समात्मक (४+२ या २+४ मात्राएँ) होता है, और पञ्चक रगण के विस्तार से बनता है, अतः इसकी तीसरी मात्रा लघु होती है । यह छन्द उल्लास-पूर्ण मंगल-गीत, प्रयाण-गीत एवं समवेत गीत के अनुकूल है । प्रस्तुत प्रयोग दूरान्तर अन्त्यानुप्रास-युक्त है ।

१. चंद्राकर ।

२. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, सर्ग ७, पृ० १५५ ।

३. श्यामनारायण पांडेय, 'जौहर', आठवीं चिनगारी, पृ० ६० ।

जीवन के पन्थ पर,
जय भी है, हार भी ।
मिलते अवरोध तो,
खुलते हैं द्वार भी^१ ॥

अहीरः—दोहे के विषम चरण के आधार पर इसका प्रयोग किया गया है ।
इसका प्रवाह समात्मक होता है, अन्त में गुरु-लघु आवश्यक हैः—

महाकाल के हाथ,
अति श्रद्धा के साथ,
मैं ने तुम को नाथ,^२
(अपना जीवन भेंट किया ।)

पन्त जी ने पंचक और दो त्रिकलों के योग से नवीन छन्द का निर्माण किया है :—

जगें तरु, नीड़ सकल, (५ + ३ + ३ मात्राएँ)
खगों की, भीड़ विकल,
पवन में, गीत नवल,
गगन में, गीत चपल ।^३

आदित्य वर्ग (२३३ भेद)

१२ मात्राएँ :—प्रामाणिक—संस्कृत के प्रमाणिका वृत्त (ज, र, ल, ग) के आधार पर इसका प्रयोग किया गया है :—

न पास स्वर्ण की तरी,
व पास पर्ण की तरी,
न आस पास दीखती,
कहीं समुद्र की परी ।^४

१. विवाकरप्रकाश अग्निहोत्री ।
२. मैथिलीशरण गुप्त, भंकार, पृ० ७२ ।
३. पन्त, स्वर्ण-किरण, पृ० १६३ ।
४. शम्भूनाथ सिंह, उदयाचल, पृ० २० ।

दिग्पाल :—इस छन्द का आधार तगण, रगण और गुरु हैं, अतः इसकी पाँचवीं और आठवीं मात्रा लघु होती है:—

वन की गली-गली में,
हँसती कली कली में,
गुंजार काकली में,
गुलज़ार रँगरली में,
अलि आज घूमता है ।^१

श्री सनेही जी ने 'तोता' कविता में इस छन्द का प्रयोग दूरान्तर अन्त्यानुप्रास में किया है :—

तटिनी तरल तरंगें, तव तीर ले रहीं थीं ।
तू गीत गा रहा था, वे साथ दे रहीं थीं ॥

सारक:—पन्त जी ने ग्राम्या में सार के दूसरे अंश को लेकर १२ मात्राओं का छन्द प्रयुक्त किया है । इस का प्रवाह सममूलक होता है :—

जंगम जग-प्रांगण में,
जीवन संघर्षण में,
नव युग परिवर्तन में,
मन के पीले पत्तो,
(झरो, झरो, झरो ।२)

लीला :—चार त्रिकलों के आधार पर रचित यह छन्द बहुत दिनों से हिन्दी में प्रयुक्त होता रहा है ।^३ दो त्रिकलों के स्थान पर सममूलक छकल रखने की प्रथा भी पुरानी है । इस छन्द का प्रयोग पन्त और निराला ने विशेष रूप से किया है । प्रस्तुत छन्द शास्त्रीय संगीत के बहुत अनुकूल है :—

(क) निखिल नायिका ललाम, (६+६ मात्राएँ)

हम व्रज की, रहीं वाम, ,,
प्रीति-रीति में प्रकाम, ,,
बिकी बैधी, बिना दाम, ,,
मधुर भाव, में अकाम, ,,

१. सी० बी० राव, पंचमी ।

२. पन्त, ग्राम्या, पृ० ६७ ।

३. मुंजुल कल, कुंज-देश । (६+६ मात्राएँ)

राधे श्याम, राधे श्याम ।^१

(ख) स्तब्ध अन्ध-कार सघन, ६ + ६ मात्राएँ

मन्द गन्ध-भार पवन, ”

ध्यान-लग्न, नैश गगन, ”

मूँदे पल नीलोत्पल ।^२, ”

समात्मक (४ + २ या २ + ४ मात्राएँ) और विषमात्मक (३ + ३ मात्राएँ) षष्ठकों के समिश्रण से लय में किञ्चित् शैथिल्य का अनुभव होने लगता है । षष्ठकों की विशुद्धता से संगीत पूर्णतया सन्तुलित एवं सुष्ठुरूपेण सम रहता है । निम्न उदाहरण के षष्ठक शुद्ध गुरुलघुमूलक हैं:—

रम्य मालती-निकुञ्ज,
कान्त प्रेम-पुष्प-पुञ्ज;
मुग्ध भाव-भृङ्ग-गान,
मञ्जु माधवी वितान;
पावनी मनोज्ञ पुण्य-मूर्ति भामिनी ।
आज राग-रञ्जिता सुहाग-यामिनी^३ ॥

अनघ :— प्रथम सप्तक (S S | S) और तगण (Ss |) के आधार पर गुप्त जी ने इस छन्द का प्रयोग करके एक नवीनता उपस्थित की है । प्रस्तुत प्रयोग का आधार सप्तक है:—

प्रभु यों न हो वर-पूर्ति,
यह है मनुज की मूर्ति;

राधा-हरि, विशद वेश, (६ + ६ मात्राएँ)

राका नव, कुमुद बन्धु, शरद जामि/नी । (६ + ६ और ६ + २ मात्राएँ)

श्यामल व्रुति, कनक अंग,

विहरत मिलि, एक संग,

नीरव मणि नील मध्य, लसत दामि/नी । श्रीहितहरिवंश, श्रीहरिचरितामृत-सिन्धु,

पृ० २१, प्रकाशक, रासमण्डल, वृन्दावन ।

१. पन्त, स्वर्ण-धूलि, पृ० १५० ।

२. निराला, गीतिका, पृ० ७३ ।

३. चन्द्राकर, प्रणयिनी, प्रथम मिलन ।

ये वरद बाहु विशाल,

रक्षक रहें चिरकाल^१ ।

पन्त जी ने १२ मात्राओं के छन्द (त्रिकलाधार) को, उसके दुगुने चरण (पञ्चचामर) के साथ प्रयुक्त किया है :—

महान् क्रान्ति आज हो, (१५।५।५।५) १२ मात्राएँ

अखण्ड राम-राज्य हो,

अभीष्ट लोक-काज हो, सुसभ्य जन-समाज हो । १२; १२ मात्राएँ

उठो, सद्गुच्च ध्येय, धैर्य / वीर्य वीर्य को वरो^२ ,,

तोमर :—इस छन्द के अन्त में ५। होते हैं और आरम्भ में पञ्चक (तगण या रगण आधार) श्रुति-मधुर होता है । यदि चतुष्क आरम्भ में होता है, तो पाँचवीं मात्रा लघु होती है ।

प्रस्थान वन की ओर,

या लोक मन की ओर,

हो कर न धन की ओर,

है राम जन की ओर ।³

मालिका १—सप्तक (SASS) के आधार पर निर्मित १२ मात्राओं के छन्द में संगीतात्मकता की मात्रा अधिक होती है । यह छन्द संयोग शृंगार और सौंदर्य-चित्रण के अनुकूल है ।

प्रिय, शरद की यामिनी, ७ + ५ मात्राएँ

ये नयन अभिरामिनी ।

क्षीर-सागर-स्नात सी,

सौम्य अति अभिजात सी^४ ।

स्वर्ण-धूलि में (पृ० ७२) पन्त जी ने अ, अ, अ, ब, ब, ब, अन्त्य-क्रम से १२ मात्राओं की षटपदी का प्रयोग किया है ।

१. मैथिलीशरण गुप्त, अनघ, पृ० ११ ।

२. पन्त, स्वर्णधूलि, पृ० १६३ ।

३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ८५ ।

४. श्रीमती मालती शुक्ल ।

महाभागवत वर्ग (३७७ भेद)

१३ मात्राएँ:— प्रदीप—पन्त जी ने १३ मात्राओं के एक नवीन छन्द की सृष्टि की है। यह छन्द पंचक और दो चौकलों के योग से बनता है :—

यहाँ तो झरते निर्झर,	१३ मात्राएँ (५ + ४ + ४)
स्वर्ण-किरणों के निर्झर,	१३ मात्राएँ ”
‘स्वर्ग-सुषमा के निर्झर,	१३ मात्राएँ ”
(निस्तल हृदय गुहा में	१२ मात्राएँ ”
नीरव प्राणों के स्वर । ^१)	”

उर्वशी:—तृतीय सप्तक (SSSI) के आधार पर सुलक्षण छन्द की अन्तिम लघु मात्रा को न्यून करके इस छन्द की सृष्टि की गई है। इसकी सातवीं मात्रा लघु होती है। अन्त में SS या IIS या SII आ सकते हैं। इस नूतन प्रयोग का उर्वशी नाम इसकी सुषमा के गौरव के अनुरूप ही होगा। यह छन्द संयोग शृङ्गार और सौंदर्य-चित्रण के अनुकूल है।

लोचन रूप - अनुरागे,
क्षकृत छन्द नव जागे;
वन में मञ्जरी झूली,
मन में मालती फूली;
मेरा प्यार छलकाया।
सुख संसार में छाया ॥^२

१३ मात्राओं के उल्लाला छन्द का प्रयोग सनेही जी ने ‘कृष्णक-क्रन्दन’ में और श्री मैथिलीशरण गुप्त ने ‘भारतगीत’ में रोला के साथ किया है। श्री गोकुलचन्द शर्मा के ‘पद्य-प्रदीप’ से एक उदाहरण दिया जाता है :—

निर्मल मति मन में सदा, उठता यह उद्गार है। (१३ + १३ मात्राएँ)

सुगति स्वर्ग अपवर्ग का, गुरु-प्रसाद ही द्वार है।^३

१. पन्त, स्वर्ण-धूलि, पृ० ८०।

२. चन्द्राकर, प्रणयिनी आई प्यार की रातें।

३. गोकुल-चन्द शर्मा, पद्यप्रदीप पृष्ठ ४०।

इस छन्द में दोहा के विंश चरण की चार बार आवृत्ति होती है। इसका निर्माण ६+४+३ और ४+४+५ मात्राओं के योग के रूप में होता है।

नीचे युग्मक अन्त्यानुप्रासयुक्त उदाहरण दिया जाता है। उल्लाला का एक नाम चन्द्रमणि है, अतः इस प्रयोग का चन्द्रमणि नाम उपयुक्त होगा :—

मेरा सुत भी अन्त में,
पड़ मघ के अघ दन्त में;
निकल न जाये हाथ से,
फँसे न उसके साथ से^१।

मानववर्ग (६१० भेद)

१४ मात्राएँ :—सखी छन्द^२ का प्रयोग 'बंदेही-वनवास' के छठे सर्ग में दूरान्तर अन्त्यानुप्रास के साथ हुआ है। करुण रस के लिए यह छन्द अधिक उपयुक्त है। भानु जी ने इसके अन्त में SSS या ISS होना अनिवार्य माना है। हरिऔध जी ने अधिकांशतः इस नियम का निर्वाह किया है, पर कहीं कहीं दो गुरुओं के स्थान पर सभण (है उसमें प्यार छलकता) और भगण (आश्रम के दिवसों को गिन) भी रख दिया है :—

वाल्मीकाश्रम में जाकर,
कब तक तुम वहाँ रहोगी।
यह ज्ञात नहीं तुम को भी,
कुछ कैसे भला कहोगी^३।

हाकलि :— इस छन्द का विस्तृत प्रयोग साकेत के चतुर्थ सर्ग और 'वैतालिक'

१. मैथिलीशरण गुप्त, अनघ, पृ० ८१।

२. सखी छन्द के प्रत्येक चरण में अन्त्यानुप्रास अच्छा नहीं लगता, दूर दूर तक रखने से यह अधिक करुण हो जाता है। अंत में सभण के बदले भगण और नगण रखने से इस लय में एक प्रकार का स्वरभंग आ जाता है, जो करुणा का संचार करने में सहायता देता है।

पन्त, पल्लव, प्रवेश, पृ० ३२।

३. हरिऔध, बंदेही-वनवास, पृ० ७४।

में हुआ है। भानु जी ने इसके अंत में गुरु होना आवश्यक माना है ^१। पर, गुप्त जी ने चरणान्त में सभी संभव मात्राएँ (S;SS;S||S) रखी हैं, और बीच में चौकल न रख कर दो त्रिकल भी रखे हैं, जो आगे के द्विकल से मिल कर दो चौकलों के बराबर हो जाते हैं:—

भाग सुहाग पक्ष में थे,
अञ्चलबद्ध कक्ष में थे।
थी कमला सी कल्याणी,
वाणी में वीणापाणी ^२।

गुप्त जी ने चरणान्त में दो त्रिकलों को भी रखा है:—

लक्ष्मण, तुम हो तपस्पृही,
मैं वन में भी रहा गृही ^३।

सच बात तो यह है कि अन्त या मध्य में दो त्रिकलों को रखने से यह छन्द अधिक तरंगायमान हो जाता है, अतः इसका नियम केवल यही होना चाहिए:—‘समप्रवाही १५ मात्राएँ’।

जौहर की तरहवीं चिनगारी में इसका प्रयोग अ, अ, व, अ और अ, व, स, व (अर्द्धसम) अन्त्यक्रम से हुआ है:—

बोल बोल जय सेनानी,
राजपूत सैनिक मानी,
हुं हुं हुंकृति कर अरि के,
दल पर झपटे अभिमानी ^४।
लाल बादलों से जैसे,
कलों पर ओले गिरते।
वैसे गढ़ के तरुणों पर,
गोले पर गोले गिरते ^५।

मानव : - जहाँ चारों पदों में एक साथ तीन-तीन चौकल न पड़ें, वहाँ इस हाकलि छन्द को मानव कहेंगे ^६। इस छन्द का विस्तृत प्रयोग प्रसाद जी ने ‘आसू’ में किया है:—

१. त्रय चौकल गुरु हाकलि है। छन्द : प्रभाकर, पृ० ४७।
२. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, चतुर्थ सर्ग पृ० ७२।
३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ८४।
४. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ० १४६।
५. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ० १४८।
६. आचार्य भानु, छन्द : प्रभाकर, पृ० ४७।

शशि-मुख पर घूँघट डाले,
अञ्चल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये १।

इस छन्द को 'आँसू' नाम देना ठीक नहीं है, क्योंकि पहले से इसका नाम विद्यमान है। सम रूप में यह छन्द बड़ा गतिशील है, परन्तु अर्द्धसम होने पर इसकी गति बहुत धीमी और करुणापूर्ण हो जाती है। यह छन्द उस अभिजात कुलांगना सा है, जो हृदय में विरह की मीठी टीस भरे धीरे-धीरे सिसकती है और कभी-कभी मन बहलाने के लिए रुक रुक कर गीत गाती है। वह छन्द ज्वाला सा न जल कर धीरे-धीरे दहकता है और साथ ही प्रकाश और आनन्द भी देता है। कामायनी के 'आनन्द' सर्ग में इसकी लय में विशेष परिवर्तन हुआ है, वहाँ त्रिकलों का प्रयोग अधिक है, अतः कोमलता के स्थान पर ओज आ गया है और उसकी गति में स्निग्ध मांसल स्वस्थ तरुणी का उत्साहपूर्ण गंभीर पद-चाप सुनाई पड़ता है।

केहरि किशोर से अभिनव,
अवयव प्रस्फुटित हुए थे,
यौवन गंभीर हुआ था,
जिसमें कुछ भाव नये थे २।

मधुमालती:—यह छन्द सप्तक (SSIS) की दो आवृत्तियों से बनता है। भानु जी ने अन्त में रगण मान कर छन्द का अधूरा लक्षण दिया है। इसकी दो आवृत्तियों से हरिगीतिका छन्द बनता है, जिसका प्रयोग प्राकृत-युग से हो रहा है। हरिगीतिका के उदाहरण के साथ कुछ अधिक तुलनात्मक सूचनाएँ दी जायेंगी। फ़ारसी में यह छन्द 'मुत्फ़ायलुन' की आवृत्ति से बनता है। इस छन्द की पाँचवीं और बारहवीं मात्रा सर्वत्र लघु होती हैं:—

इस शोक के सम्बन्ध से—
सब देखते थे अन्ध से—
वस एक मूर्ति घृणामयी,
वह थी कठोरा केकयी ३।

१. प्रसाद, आँसू, पृ० १६।

२. प्रसाद, कामायनी, पृ० २७७।

३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, सर्ग ६, पृ० १२४।

मनोरमा:—यह छन्द द्वितीय सप्तक (९९) की दो आवृत्तियों से बनता है। इसके अंत में ९; ९॥ और ९९ आ सकते हैं। इस छन्द की तीसरी और दसवीं मात्रा सदा लघु होती है। आजकल इसका प्रयोग गीतों में अधिक होता है और लोग इसे आधुनिकतम छन्द मान कर ग्रहण करते हैं। यह छन्द शृंगार रस (विशेषतः विप्रलम्भ और करुण में अधिक सफल हुआ है। गीतों में इसके विविध रूप देखने को मिलते हैं। आवर्तक छन्द होने के कारण प्रवाह तो सरल है, पर इसमें क्षिप्रता नहीं है। वस्तुतः इसका नाम 'मनोरमा' होना चाहिए, क्योंकि इस छन्द में किशोरी की कोमलता है। इसके स्वरों में विरहिणी की वेदना और टीस भर गई है साथ ही इस छन्द में संभोग शृंगार के उल्लास और रति क्रीड़ा के भावों की व्यंजना भी सफलता से हो सकती है।

जो कहा रुक/रुक पवन ने, / ७ + ७ मात्राएँ
जो सुना झुक/झुक गगन ने, / " "
साँझ जो लिख/ती अधूरा, / " "
प्रात रंग पा/ता न पूरा, / " "

आँक डाला/वह दृगों ने/एक सजल नि/मेष में, ७ + ७ + ७ + ५ मात्राएँ।
आँसुओं के/देश में^१ । / ७ + ५ मात्राएँ

सम रूप में एक और उदाहरण लीजिए :—

चाहता मन/आत्म गौरव, / ७ + ७ मात्राएँ
चाहता मन/कीर्ति-सौरभ, / " "
ज्ञान - मंथन/नीति - दर्शन, / " "
मान-पद-अधि/कार-पूजन ।^२ / " "

अर्द्धसम :—

:स्वप्न देही/हो प्रिये तुम, / ७ + ७ मात्राएँ
देह तनिमा/अश्रु - धोई, / " "
रूप की लौ/सी सुनहली, / " "
दीप में तन/के सँजोई^३ । / " "

श्री श्यामनारायण पाण्डेय न 'जोहर' में इस छन्द का प्रयोग किया है, पर यह

१. दीप-शिला, गीत १७, श्रीमती महादेवी वर्मा।

२. पन्त, स्वर्ण-धूलि, चौथी भूख, पृ० ३३।

३. पन्त, स्वर्ण-धूलि, स्वप्न-देही, पृ० ६६।

छन्द उत्साह के अनुकूल नहीं है, प्रकृति वर्णन और शुभाशंसा में यह छन्द अवश्य किसी सीमा तक चल सकता है। 'जौहर' से त्रिसम अन्त्यानुप्रास का एक उदाहरण लीजिए :—

रात आधी / हो रही थी, / ७+७ मात्राएँ
मौन दुनियाँ/सो रही थी, / "
मोतियों के / तरल दाने / "
नियति तृण/पर बो रही थी ।^१ "

मुलाना:— यह छन्द तृतीय सप्तक (SSS) की दो आवृत्तियों से बनता है, अतः सातवीं और चौदहवीं मात्रा लघु होती है। भानु जी ने केवल अंत में S होने का ही लक्षण दिया है। यह छन्द वीररस के अनुकूल है :—

नभ में आँधियों का गान, / (SSS /SSSi) = ७ + ७ मात्राएँ
सागर में उठे तूफान, / "
तट को छोड़/ कर कुछ दूर, / "
जब था बड़ चु/का जलयान, / "
तुम ने छोड़/दी पतवार, / "
पहुँचे जब य/हाँ मैदधार, / "
तुमने मान/ली क्या हार/^२।

इस छन्द में शृंगार रस के बीच भी ओज लक्षित हो जाता है, अतः सूक्ष्म कोमल अनुभूतियों को व्यक्त करने में असमर्थ है :—

गा डाले वि/रह आख्यान,
गा डाले वि/रह मधुगान,
कुछ अभिशाप / कुछ वरदान,
फिर भी हृदय / मेरा व्यग्र,
फिर भी साध / मेरी शेष,
गाने को अ/भी अवशेष^३।

विधाताकल्प :— यह छन्द चतुर्थ सप्तक (SSSS) की दो आवृत्तियों से बनता है। यह बिल्कुल नवीन प्रयोग है। इसके दुगुने छन्द को विधाता कहते हैं, अतः इसकी संज्ञा

१. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, बारहवीं चिनगारी, पृ० १३५।

२. शम्भूनाथ सिंह, उदयाचल, पृ० २४।

३. शिवमंगलसिंह, सुमन, जीवन के गान।

‘विधाताकल्प’ होनी चाहिए। इसकी पहली और आठवीं मात्रा लघु होती हैं। गुप्त जी ने ‘अनघ’ में इस छन्द का विस्तृत प्रयोग किया है। श्री त्रिपाठी जी का ललितान्त्य प्रयोग प्रस्तुत किया जाता है—

चरित है मू/ल्य जीवन का, / (1555 × २) = ७ + ७ मात्राएँ
वचन प्रतिवि/म्ब है मन का /
सुयश है आ/यु सज्जन की, /
सुजनता है/प्रभा धन की^१, /

कोकिला :—लेखक ने दो षष्ठकों और गुरु के योग से इस नवीन छन्द का संयोजन किया है। प्रथम दो छन्दक चरणों में समात्मक षष्ठकों और सम्पद चरणों में प्रत्यमूलक षष्ठकों का प्रयोग हुआ है जिन्हें प्रस्तुत छन्द के दो भेदों के रूप में माना जा सकता है। इस छन्द में दुःख की अपेक्षा आह्लाद के सूक्ष्म स्पर्शनों को व्यक्त करने की अधिक क्षमता है। समात्मक षष्ठकों को समात्मक अष्टक पर्व की लय में नहीं पढ़ना चाहिये।

बन बन में / कोकिला बो/ले ।	६ + ६ + २ मात्राएँ
संयम के / बन्धन खो/ले ॥	, ,
सुमन-सुमन / भ्रमर घूम/ते ,	, ,
खिली कली / अंक झूम/ते ;	, ,
मुग्ध पवन / गान गा र/हा ,	, ,
रूप रँगा / ध्यान आ र/हा ;	, ,
रुको रुको, / सरल आँसु/ओ ,	, ,
नयन-बीच / प्रिय-छवि डो/ले ^२ ।	, ,

तौथक वर्ग (६८७ भेद) १५ मात्राएँ

गोपी :—यह १५ मात्राओं का छन्द है। इसके आदि में त्रिकल और अन्त में गुरु होता है। शृंगार छन्द की अन्तिम लघु मात्रा को कम करने से यह छन्द बनता है।
दूरान्तर अत्यानुप्रास-युक्त प्रयोग :—

चोनी छिटक-छिटक छवि से,
छबीली बनती रहती थी ।
सुधाकर-कर से वसुधा पर,
सुधा सी धारा बहती थी^३ ।

१. रामनरेश त्रिपाठी, स्फुट ।

२. चन्द्राकर स्मृतियाँ; ‘जाव-शक्ति राग मूल है; ये न कहो, प्रेम मूल है ।’

३. हरिऔध, बंदेशी-वनवास, दशम सर्ग, पृ० ११८ ।

ललितान्त्यानुप्रास-युक्त प्रयोग:—(अन्तिम गुरुके स्थान पर दो लघु)

अचल हो उठते हैं चंचल,
चपल बन जाते हैं अविचल,
पिघल पड़ते हैं पाहन-दल,
कुलिश भी हो जाता कोमल ^१ ।

गुम्फित अन्त्यानुप्रास (अ, ब, अ, ब,) का उदाहरण :—

रंगीले गीले फूलों से,
अधखिले भावों से प्रमदित,
बाल्य सरिता के कूलों से,
खेलती थी तरंग सी नित ^२ ।

‘अर्जुन का मोह’ (जयभारत शीर्षक में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने और ‘स्वर्णोदय’ में श्री सुमित्रानन्दन पंत ने इस छन्द का विशेष प्रयोग किया है ।

चौपई:—इसमें चौपाई की ही भाँति सममात्रिक प्रवाह होता है । चौपाई की अन्तिम गुरु मात्रा को लघु कर देने से यह छन्द बनता है । आचार्य भानु जी ने इसके अंत में ऽ। रखने का नियम माना है और अन्य नाम जयकारी बताया है । यह छन्द बालसाहित्य के बहुत अनुकूल है ^३ । इसमें सरल चपलता है और अन्त ऽ। होने के कारण पाठश्रम भी कम पड़ता है :—

हम मास्त के मधुर झकोर , ८+४+ॽ। मात्राएँ,
नील व्योम अञ्चल के छोर , ,,
बाल-कल्पना से अनजान , ,,
फिरते रहते हैं निशि - भोर , ,,
उर-उर के प्रिय जग के प्राण ^४। ,,

१. पंत, पल्लविनी, उच्छ्वास, पृ० ६८ ।

२. पंत, पल्लविनी, उच्छ्वास, पृ० ६३ ।

३. पंद्रह मात्रा का चौपई छंद अनमोल मोतियों का हार है बाल साहित्य के लिए इससे उपयुक्त छंद मुझे कोई नहीं लगता । इसकी ध्वनि में बच्चों की साँसे, बच्चों का कण्ठरव मिलता है , बच्चों की ही तरह चलने में यह इधर-उधर देखता हुआ, अपने को भूल जाता है । ‘पन्त’, पल्लव, प्रवेश, पृ० ३२ ।

४. पंत, पल्लविनी, विद्वदेणु, पृ० ६५ ।

गुप्त जी ने 'हिन्दू' में आद्योपान्त, 'कावा और कर्बला' के कावा खण्ड में, अनघ के 'वटच्छाया' शीर्षक में; 'जयभारत' के 'अतिथि और आतिथेय' अंश में; और 'अनाथ' के तीसरे भाग में चौपई का कुशल प्रयोग किया है। यह छन्द प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों प्रकार की कविता के लिए उपयुक्त है, क्योंकि इसमें क्षिप्र प्रवाहमयता एवं मधुरता - दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं।

दीखा फिर लज्जा से लाल,
झुका भार सा पाकर भाल;
सान्ध्य प्रकृति प्रतिपल के संग,
पलट शून्य में जैसे रंग।^१

पुनीत छन्द चौपई का ही एक भेद है, जिसके सभी चरणों के अन्त में तगण होता है। चौपई के सभी चरणों के अन्त में जगण (ISI) रखने से गोपाल छन्द बनता है और अन्त में SI के स्थान पर IS रखने से चौबोला छन्द बन जाता है।

महालक्ष्मी:—महालक्ष्मी वृत्त (र, र, र) के आधार पर यह मात्रिक प्रयोग किया गया है। इस छन्द में रगणावृत्ति के कारण क्षिप्रता एवं स्वल्प विस्तार के कारण गीतात्मक गुञ्जार विद्यमान है। यह छन्द शृङ्गार रस के अनुकूल है। इसकी तीसरी, आठवीं और तेरहवीं मात्रा लघु होती है।

गिरि-शिखर पर सघन घन खिले
दामिनी संग प्रिय, मन मिले,
कह रहे रूप-रस बार से,
'हम बरसते अभी प्यार से'॥^२

संस्कारी वर्ग (१५९७ भेद) १६ मात्राएँ

पादाकुलः—यह १६ मात्राओं का छन्द है। इसके चारों चरणों में चार चार चौकल होते हैं। इसमें चौपाई की भाँति विषम मात्रिक शब्दों का प्रयोग नहीं होता, अर्थात् त्रिकल (ढगण) और पंचक (ठगण) का प्रयोग वर्जित है, और चौकल (डगण) का प्रयोग अभीष्ट है। चौकल के पाँच भेद (SS; IIS; ISI; SII; IIIS) होते हैं। इस छन्द का सचेतन प्रयोग आद्योपान्त कहीं नहीं हुआ है, केवल चौपाइयों के बीच इसके उदाहरण खोजे जा सकते हैं:—

१. श्री मंथलीशरण गुप्त, अतिथि और आतिथेय, जयभारत, पृ० २२१।

२. श्रीमती मालती शुक्ल; शीर्षक, 'यक्षिणी के अतिथि'।

खोलो/ मुख से/ घूँघट/ खोलो/, ४+४+४+४ मात्राएँ
 हे चिर/ अवगुण/ ठनमयि ! बोलो / ",
 क्या तुम/ केवल/ चिर अव/गुणन/, ",
 अथवा/ भीतर/ जीवन/ कम्पन ?/१,, ",

डिल्ला:—यह समप्रवाही १६ मात्राओं का छन्द है, इसके अन्त में भगण (SH) होता है:—

क्या पाँच पुत्र हो जाने पर,
 सुत के धन - धाम गँवाने पर,
 या महानाश के छाने पर,
 अथवा मन के घबराने पर^२।

इस छन्द का विस्तृत प्रयोग नहीं हुआ है। यत्र-तत्र ही इसके उदाहरण मिलते हैं।

पञ्चमटिका:—यह १६ मात्राओं का छन्द है। इसके पहले अष्टक में कोई विचार नहीं होता, पर लय-निपात में यह ध्यान रखा जाता है कि दूसरा अष्टक गुरु से प्रारम्भ हो और गुरु से ही समाप्त हो, इससे अन्त, सममूलक और दीर्घ-प्रधान हो जाता है। इसके बीच में एक लय उदभूत होती है, जो ऊर्ध्वमुखी होकर पुनः निपतित होती है। इससे तरंग में चपलता आ जाती है:—

सिर पर कुलीन/ता का टीका, (दूसरे अष्टक के आदि और
 भीतर जीवन का रस फीका, अन्त में गुरु है)
 अपना न नाम जो ले सकते,
 परिचय न तेज से दे सकते^३,

सिंह:—इस सोलह मात्राओं के छन्द के आदि में ॥ और अन्त में सगण (H) होता है। इस छन्द में तोटक (चार सगण) की छाया रखती है, आदि और अन्त प्रायः वैसा ही रहता है, केवल बीच में परिवर्तन होता है। इसमें तोटक की क्षिप्रता तो होती है, पर एकरसता नहीं होती:—

१. पत, पल्लविनी, छाया, पृ० २३८।

२. दिनकर, रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० ४९, ।

३. दिनकर, रश्मिरथी, पृ० ५५।

रथ मानों एक रिक्त घन था,
जल भी न था न वह गर्जन था;
वह बिजली भी थी हाय नहीं,
विधि-विधि पर कहीं उपाय नहीं^१।

मत्तसमरः—यह सोलह मात्राओं का छन्द है, जिसमें दूसरा अष्टक लघु से प्रारम्भ होता है। इस छन्द में लय को नीचे गिर कर ऊपर उठने का अवसर मिलता है। इस प्रयोग से दीर्घ अक्षरों की मंदता समाप्त होती है और तरंगायित क्षिप्रता आ जाती है:—

जब रजनी आकर प्राप्त हुई, (६वीं मात्रा लघु)
बाहर ही साँझ समाप्त हुई,
नीरव गति से, उदास उर में,
तब सचिव प्रविष्ट हुए पुर में^२।

विश्वलोकः—१६ मात्राओं के चरण में यदि पहले चौकल के बाद जगण आवे, तो उसे विश्वलोक छन्द कहते हैं। भानु जी ने इसके लक्षण में पाँचवीं और आठवीं मात्रा को लघु माना है, पर यदि दूसरे चौकल में चार लघु रख दिए जायें, तो इस छन्द में अभीष्ट लय नहीं आ सकेगी, पर भानु जी द्वारा दिया गया लक्षण घटित हो जायगा। उनके अनुसार तो पादाकुलक आदि छन्दों में भी यह लक्षण घटित हो जाता है, अतः प्रस्तुत लेखक ने चौकल के बाद जगण का लक्षण माना है, जिससे अभीष्ट लय-तरंग बनती है:—

टूटी महीप की हृत्तन्त्री,
बोले विषादपूर्वक मन्त्री।
हे आर्य! राम-मुख देखोगे,
दुख देख आज सुख देखोगे^३।

इसी प्रकार मनोहारी विविधता (Variations) से पादाकुलक के अनेक भेद किये जा सकते हैं। ये विभिन्न भेद ऐसी एक दृष्टि प्रदान करते हैं कि एक ही छन्द में विभिन्न तरंगों और ध्वनियों को उत्पन्न करके किस प्रकार प्रति चरण में नवीनता लायी जा सकती है। संस्कृत के कवि वृत्तों में विभिन्न अक्षरसंख्या पर शब्दों को समाप्त करके और नवसमास-पद्धति एवं गुरु-लघु-मूलक शब्द-योजना प्रस्तुत करके प्रत्येक चरण में नवीनता उत्पन्न करते थे। हिन्दी के मात्रिक छन्दों में अपेक्षाकृत इस प्रकार की अविक सुविधा है। इस दृष्टि से

१. तथा २. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, षष्ठ सर्ग, पृ० ११६; १२०।

३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, षष्ठ सर्ग, पृ० १२१।

मात्रिक छन्दों का प्रत्येक चरण उस छन्द का अलग भेद बनता चलता है। वस्तुतः मात्रिक छन्दों में कवि जितने चरण लिखता है, उनमें अधिकांश चरण मात्राक्रम-भिन्नता के कारण उस छन्द के भेद ही होते हैं।

पट्टरि:— भानु जी के अनुसार तो इस छन्द के अन्त में जगण होना चाहिए, पर शृंगार छन्द के भी अन्त में जगण आ सकते हैं, अतः यह भेद मिटाने के लिए ऐसा नियम बनाना आवश्यक है कि छन्द के आदि में लय सम-मात्रिक हो और अन्त प्रत्नमूलक (SI) हो। शृंगार छन्द का प्रारम्भ त्रिकल से होता है, अतः पट्टरि के आदि में सममूलक प्रवाह मानना अत्यन्त आवश्यक है। जयभारत के 'अज्ञात वास' और 'अर्जुन का मोह' खण्ड में गुप्त जी ने इस छन्द का प्रयोग किया है। यह छन्द वीर रस के लिए उपयुक्त है:—

अम्बर में कुन्तल-जाल देख,
षट् के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख,
मेरा स्वरूप विकराल देख^१।

अरिल:— १६ मात्राओं के छन्द के अन्त में (ISS) हो, तो उसे अरिल्ल छन्द कहें। भानु जी ने अन्त में दो लघुओं को भी माना है, पर यह लक्षण अन्य छन्दों पर भी घट सकता है। अन्तिम यगण के पहले त्रिकल श्रुतिमधुर होता है। यह छन्द बालसाहित्य के अनुकूल है।^२

निज सागर को थाह रहा हूँ।
खोज गीत में राह रहा हूँ।
ग्रन्थि हृदय की खोल रहा हूँ,
उन्मद सा कुछ बोल रहा हूँ^३।

चौपाई:— यह हिन्दी का सर्वाधिक प्रचलित छन्द है। इसे सम-प्रवाही मात्रिक छन्दों का मेरुदण्ड कह सकते हैं। इसके अंत में SI (जगण और तगण के अंश) वंजित हैं। अंत में दो गुरु श्रुतिमधुर होते हैं, परन्तु भगण (SI) और सगण (IIS) एवं अपवादत-रगण (SIS) भी, आ सकते हैं। इसका प्रवाह समतामूलक चलता है। इसमें सम

१. दिनकर, रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० ३९।

२. सोलह मात्रा का अरिल्ल छन्द भी निर्भरणी की भाँति कल-कल छल-छल करता हुआ बहता है। अरिल्ल बाल-कल्पना के पंखों में खूब उड़ता है।

पन्त, पल्लव, प्रवेश, पृ० ३१, ३२।

३. दिनकर, रसवन्ती, सम्बल पृ० ६७।

मात्रिक शब्द के बाद सममात्रिक शब्द ही आता है^१ । जब चरण में विषममात्रिक शब्द का प्रयोग होता है, तब तुरन्त ही उसके आगे विषम मात्राओं के शब्द के द्वारा समतामूलक मैत्री स्थापित की जाती है ।

समता मूलक नियमः—

(१) सम सम मात्रिक शब्दों के योग से सम प्रवाह बनता है । यह उत्तम लय है ।

(२) अ. विषम विषम मात्रिक शब्द मिलकर सम प्रवाह बनाते हैं । यह क्रम छंदो-सौषम्य और तरङ्ग-भङ्गिमा में सहायता करता है ।

ब. त्रिकल के बाद त्रिकल ही आना चाहिए, समकलात्मक शब्द का योग यतिबाधक होता है । चौपाई के बीच में जगण भी आ सकता है, क्योंकि त्रिकल के बाद यदि जगण ।S। आता है, तो ।S पहले त्रिकल के साथ मिल जाते हैं, शेष लघु आगे के विषम मात्रिक शब्द से मिल जाता है:—

(अ) जब तुम मुझे गँभीर गोद में ।^२

(ब) कट गया सवार गिरा भू पर ।^३

चौपाई छंद हिन्दी का सबसे पुराना छंद है । पालि, प्रकृत एवं अपभ्रंश युग में भी इसका प्रयोग होता था ।

सि निद्ध नील मुट्कुञ्चित केसो ।
सुरिय निम्मल तलाभि ललाटो ॥
युत्त तुंग मुदकायत नासो ।
रसज्जाल विततो नरसीहो ॥

चौपाई छन्द के गणात्मक रूप—विद्युन्माला, चम्पकमाला, शुद्धविराट्, मता, पणव, अनुकूला, दोषक, भ्रमरविलसिता, स्वागता, तालरस, चन्द्रवर्त्म, कुसुमविचित्रा, मालती, मोदक इत्यादि संस्कृत साहित्य में पहले से प्रचलित थे । कालान्तर में इन्हीं गणात्मक चतुष्पदियों के लय-संस्कार से चौपाई छन्द का विकास हुआ ।

१. सम सम सम सम सम सुखदाई ।

विषम विषम सम सम हू भाई ॥ आचार्य भानु, छन्द प्रभाकर, पृ० ५१ ।

२. पन्त, पल्लविनी, अंघकार के प्रति, पृ० १५ ।

३. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ० १६ ।

४. निदान कथा जातक, श्लो० २६६, पृ० ११६, सम्पादक, एस० के० भागवत ।

यह छन्द सर्व रस-सिद्ध है। सरहपा (वि० ६९० श्री विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार) ने स्फुट पदबन्धों में; धवल कवि (१० वीं शताब्दी) ने 'हरिवंश पुराण' के 'कड़वकी' में; अमरकीर्ति ने 'छक्कम्मोवएस' (षट्कर्मोपदेश) में; पुष्पदन्त (सं० वि० १०-२६) ने 'आदिपुराण', 'उत्तरपुराण' और 'जशदरिचरित' में; यशःकीर्ति सं० १४६७) ने 'पाण्डवपुराण' और 'हरिवंश पुराण' में; स्वयंभुव ने 'वज्रचरित' में, जायसी ने 'पद्मावत' में; तुलसी ने 'रामचरितमानस' में; लाल ने 'छत्रप्रकाश' में; सबलसिंह चौहान ने 'महा-भारत' में; ब्रजवासीदास ने 'ब्रजविलास' में; और आधुनिक युग में द्वारकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' में चौपाई छन्द का विषद प्रयोग किया है।

आधुनिक युग में भी इस छंद का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। चौपाई मात्रिक प्रदेश की रानी है। कवियों ने इसे अमोघास्त्र की भाँति विविध रूपों में प्रयुक्त किया है। योग, रोला, विष्णुपद, सार, ताटक, मत्तसवाई आदि छन्दों में इसी लय का आधार विद्यमान है। प्रबंध काव्यों में इसका प्रयोग बहुत सफल होता है। जिस प्रकार चौपाई छन्द ने भक्ति काल में प्रबंधों (रामचरितमानस) आदि पर अधिकार जमाने के साथ सूर आदि अष्टछाप के कवियों के मुक्तक पदों पर अधिकार जमाया था (पदों में प्रयुक्त, विष्णुपद, सार, सरसी, नाटक, मत्तसवाई इसी छन्द के आधार पर बनते हैं) उसी प्रकार इस युग में भी प्रबंधों के अतिरिक्त मुक्तक प्रगीतों में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। भारत के राष्ट्र-गीत में प्रयुक्त होने वाले सार छन्द का भी निर्माण चौपाई की सोलह मात्राओं की ही मूल लय के विस्तार से हुआ है। इस युग में जितना इस छन्द के शरीर को सँवारा गया है, उतना कभी किसी छन्द को नहीं सँवारा गया, परन्तु इस छन्द की गंभीरता और ध्वंजना-शक्ति कम हो गई है, अब इस में 'अरथ अमित अरु आखर थोर' का गुण नहीं रहा। इसके लिए नागरी भाषा की काव्यपरम्परा के कवि-गण एवं समाज के श्रोता भी उत्तरदायी हैं।

आजकल चौपाई में लघुमात्रामूलक शब्दों का पहले की अपेक्षा कम प्रयोग होता है। नागरी भाषा के क्रियापद और कारक चिह्न (अधिकरण के 'पर' को छोड़कर) दीर्घ होते हैं। अधिकांश संज्ञाएं और सर्वनाम भी दीर्घाक्षर प्रधान हैं, अतः थोड़े शब्दों में ही छन्द की मात्राएँ घिर जाती हैं, फलतः एक चरण में भाव अधूरा ही रह जाता है। इसी कारण आज कल चौपाई छन्द के एक चरण में भाव न पूर्ण होकर, दो चरणों में पूरा होता है। इसके साथ यह भी आवश्यक हो जाता है कि अर्द्धसम रूप में अन्त्यानुप्रास का आयोजन किया जाय। इसका फल यह हुआ कि समान-सवाई और मत्तसवाई के रूप में चौपाई ने अपना विस्तार करके ३२ मात्राओं का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। बहुत से कवि चौपाई के चरणों को स्पष्ट करने के लिए १६, १६ मात्राओं के लिपि-चरण भी रख देते हैं और १६ मात्राओं के बाद यति मान लेते हैं। ऐसे प्रयोगों में जहाँ १६ मात्राओं पर यति आती है, और भाव का अंश समाप्त होता है, वहाँ छन्द में अधिक सौष्ठव और लय-रमणीयता

आ जाती है, पर जहाँ पर बड़े और विशद विचार हों; भाव की धारा तीव्र हो; विशाल चित्राधार हों, वहाँ पर १६ मात्राओं के स्थान पर ३२ मात्राओं पर विराम अधिक सफल एवं प्रभावोत्तम सिद्ध होता है। यदि इतने स्वातन्त्र्य से काम न चले, तो ३२ मात्राओं के बाद भी भाव प्रवाहित किया जा सकता है, क्योंकि चौपाई में सममात्रामूलक प्रवाह इतना विचुम्बक एवं सरल होता है कि विस्तार के कारण लय में कोई व्याघात नहीं उपस्थित होता, परन्तु ऐसी अवस्था में ३२ मात्राओं वाले चरण के अन्तिम शब्द को पूर्ण रूप में समाप्त होना चाहिये। यदि शब्द के बीच में ३२ मात्राओं का चरण समाप्त होगा, तो लय-भंग अवश्य होगा। आजकल कोमल, सरल एवं सूक्ष्म भावों में ही १६ मात्राओं के बाद अन्त्यानुप्रास दिया जाता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त के साकेत से एक उदाहरण दिया जाता है:—

तुम ने निज सत्य-धर्म पाला,
सुत ने स्वापत्य-धर्म पाला,
पत्नी पति-संग बनी देवी,
प्रिय अनुज हुआ अग्रज-सेवी ।^१

चौपाई के अन्त में IIII; IIS; SII; SIIIS आदि लय-निपातों का भी प्रयोग होता है:—

जगमग जगमग, हम जग का मग,
ज्योतिष प्रति-पग करते जगमग।
हम ज्योति-शलभ, हम कोमल-प्रभ,
हम सहज सुलभ दीपों के नभ^२ ।

चौपाई का दूसरा नाम 'रूप चौपाई' है। इसके एक पाद को एक पाई, दो चरणों को अर्द्धाली, तीन पदों को 'तीन पाई' और चारों पदों को चौपाई कहते हैं^३। चौपाई के साथ पादाकुलक, पदपादाकुलक, चित्रा, विश्वलोक, मत्तसमक, सिंह, पञ्चटिका, उपचित्रा, डिल्ला और करिल्ला आदि का सम्मिश्रित प्रयोग भी होता रहता है, क्योंकि मोटे तौर पर इन छन्दों की लय समान ही होती है। चौपाई और पादाकुलक में यह भेद है कि चौपाई में त्रिकल भी आते हैं, पर पादाकुलक में चार चौकलों का ही प्रयोग होता है। पद-पादाकुलक भी पादाकुलक का एक भेद है।

१. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० ११८।

२. पत, पल्लविनी, जुगनू, पृ० २८७।

३. चौपाई को रूपचौपाई भी कहते हैं। कोई कोई लोग चौपाई के एक पद को ही चौपाई कहते हैं, यह ठीक नहीं; एक-पद को एक पाई, दो पद को दोपाई वा अर्द्धाली, तीन पद को तीन-पाई और चार पद को चौपाई जानिये।

आचार्य भानु छन्द प्रभाकर, पृ० ५२।

पदपादाकुलकः—इस छन्द के आदि में त्रिकल (ऽ या ॥) ही रहता है, त्रिकल नहीं आ सकता। पादाकुलक और इसमें यह भेद है कि पादाकुलक में चौकल ही आते हैं, पर पदपादाकुलक में दो मात्राओं के बाद कहीं भी त्रिकल आ सकता है, इस दृष्टि से यह छंद पादाकुलक की अपेक्षा चौपाई के अधिक समीप है। इसका सम प्रवाह और निपात चौपाई के समान ही होता है:—

नृप राम-राम ही रटते थे,
युग के समान पल कटते थे।
फिर भी सुमन्त हैं साथ गये,
गृह-दशा देख रघुनाथ गये १।

शृङ्गार - १६ मात्राओं के छन्द में यदि आदि में त्रिकल, मध्य में समप्रवाह और अन्त में प्रतन निपात^२ या गलात्मक त्रिकल (SI) हो, तो उसे शृङ्गार^३ छन्द कहते हैं। यह छन्द पद्धति के अधिक समीप है; पर, पद्धति के आदि में त्रिकल नहीं होता। यह छंद चौपाई वर्ग से बिल्कुल भिन्न है। जिस प्रकार पादाकुलक आदि छंद चौपाई में मिल जाते हैं, उस प्रकार शृङ्गार छंद नहीं मिल सकता। इसका मेल केवल पद्धति के साथ संभव है, परन्तु ऐसा संयोग भी अधिक अच्छा नहीं होगा। यह छन्द 'अन्वर्थनाम' है, क्योंकि शृङ्गार रस में ही अधिक सफल होता है। इस छन्द में वीणा की झंकार सुनाई पड़ती है। इसकी लय क्रमशः ऊर्ध्वमुखी होकर लहराती है और फिर उसी क्रम से अवतरित होती है, जिससे हर्ष, उल्लास और आनन्द की व्यंजना होती है, अतः यह छन्द वियोग की अपेक्षा संयोग में अधिक सफल होता है। प्रकृति-चित्रण भी इस छन्द में बड़ा मोहक लगता है। इसकी गति-ध्वनि नर्तित किशोरी के तुल्य है और रूप भी बड़ा मोहक, रमणीय और उन्मादक है; चौपाई में वर्णित शृङ्गार-रस में तो गंभीरता और पवित्रता अधिक आ जाती है। देखिए, शृङ्गार छन्द का उदाहरण:—

१. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० ११६।

२. 'प्रतन' शब्द का प्रयोग गुरुलघुनिपात अर्थ में, श्रीप्रबोधचन्द्रसेन ने छन्दोगुरुरवीन्द्र-नाथ^४ के पृ० ७४ पर किया है, यथा: एबार प्रतन रीतिर षण्मात्रपर्विक छन्देरदुएकदि दृष्टान्त देओया प्रयोजन :—

दैन्य/जीर्ण/कक्ष/तार/, मलिन/शीर्ण/आशा SI/SI/SI/SI/III/SI/SS
गोतिवतान, प्रथमखंड, पृ० २५६।

३. चाएण कण्णु विहवेण इन्वु । रुवेण कामु कंतीए चन्दु ॥

दण्डे जम्पु दिण्ण पचंड घाउ । पर दुम (?) दलन वलेण वाउ ॥

आचार्य पुष्पदन्त, जसहरि-चरित, १.५.

हृदय के प्रणय-कुंज में लीन, III/—/SI त्रिकल साद्यन्त
मूक कोकिल का मादक गान, SI/—/SI
बहा जब तन-मन बन्धनहीन, IS/—/SI
मधुरता से अपनी अनजान^१ । III/—/SI

प्रसाद जी ने कामायनी (श्रद्धा सर्ग) में, सियारामशरण गुप्त ने 'अनाथ' में, और हरिऔध जी ने पारिजात में इस छन्द का प्रयोग किया है ।

त्रिहंगः— 'फूऊल फेलुन्' अरकान तरकीब से यह छन्द उर्दू में बहुत प्रचलित है । जलोद्धतिगति वृत्त (ISISS/ISISS) का यह मात्रिक रूप है । प्रबन्ध और मुक्तक दोनों में यह छन्द चल सकता है । चौपाई की भाँति इसमें भी अनेक रससिद्धता विद्यमान है ।

न छेड़ना उस अतीत स्मृति को,
खिंचे हुए बीन तार कोकिल ।
करुण रागिनी तड़प उठेगी,
सुना न ऐसी पुकार कोकिल^२ ॥

महासंस्कारी वर्ग (२५८४ भेद)

१७ मात्राएँ :—राम छन्द (६, ८ ; अंत SS) नवीन रूप में प्रयुक्त हुआ है । आधुनिक युग में इसके बीच में विषम मात्राएँ न रखकर आदि में रख दी जाती हैं, जिस से शेष भाग समप्रवाही बन जाता है । प्रायः त्रिकल के बाद तीन चौकल और गुरु रखा जाता है, यह एक और नवीनता है । गुप्त जी ने 'अनघ' में इसका विशेष प्रयोग (पृष्ठ २१) किया है ।

चले फिर रघुवर माँ से मिलने, त्रिकल ।चौ०।चौ०।चौ०। गुरु
बढ़ाया घन सा प्राणानिल ने,
चले पीछे लक्ष्मण भी ऐसे,
भाद्र के पीछे आश्विन जैसे^३ ।

चन्द्र :—तीन रगणों और गुरु के आधार पर इस छन्द का निर्माण होता है, अतः तीसरी, आठवीं और तेरहवीं मात्रा लघु होती हैं । रगण की क्षिप्रता होते हुए भी निपात

१. पंत, पल्लव, पृ० १ ।

२. प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० १६ ।

३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० ७१ ।

के कारण यह छन्द वेदनामय वातावरण उपस्थित करता है, अतः विप्रलम्भ और करुण रस के लिए उपयुक्त है :—

भग्न-मन यदि विकल काम-रण में,
देखते ही न युग शम्भु क्षण में,
छवि-विवश हो, तरुण-प्रेम-लीला,
व्यर्थ तो सुन्दरी रूप-शीला^१ ।

उर्मिला :— यह छन्द दूसरे सप्तक(SS) की दो आवृत्तियों और गुरुलघु के योग से बनता है (SISS/SISS/SI आधार) । इसकी तीसरी और दसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है । यह छन्द करुण और विप्रलम्भ के लिए अधिक उपयुक्त है :—

क्या यही सा/केत है जग/दीश !
थी जिसे अल/का झुकाती/ शीश ।
क्या हुए वह/नित्य के आ/नन्द ?
शांति या अव/सन्नता ये/मन्द^२ ?

पारिजातः - यह छंद 'फायलातुन् मफायलुन्फेलुन्' (S:SS/ISIS/SS) के आधार पर बनता है । इसका संस्कृत रूप 'रौ यगौ पारिजातः' हो सकता है । इसकी तीसरी, आठवीं और ग्यारहवीं मात्रा लघु होती है ।

हो तरंगायमान कवि-मानस,
सिन्धु सम भावरत्न जनता है ।
स्थान बदले सुधा गरल मुक्ता,
स्वाति वर-वारि बिन्दु बनता है^३ ।

श्येनिका :— यह श्येनिका वृत्त (रगण, जगण, रगण, लघु, गुरु) का मात्रिक रूप है । त्रिकल की पाँच आवृत्तियों और गुरु के योग से, यह छन्द बनता है :—

१. नासौ रामा मनसिजकथाघातभग्नाः युवानः ।

कामं यस्या न निबिडतरप्रेमबन्धे पतन्ति ॥

विक्रमाङ्कदेवचरित, १८ अ०, २०, महाकवि बिल्हण ।

छायानुवाद-कर्त्ता चन्द्राकर ।

२. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० १२१ ।

३. हरिऔध, पारिजात ।

S | S | S | S | S | S | S |

बढ़ रहा शरीर, आयु घट रही,
चित्र बन रहा, लकीर मिट रही,
आ रहा समीप लक्ष्य के पथिक,
राह किन्तु दूर-दूर हट रही,
इसलिए सुहाग-रात के लिए
आँख में न अश्रु हैं, न हास है^१ ।

इस छन्द में १२ मात्राओं पर हलकी यति आती है । इस प्रयोग का अन्त्यानुप्रास क, क, ख, क, ग, घ क्रम से है, अंतिम चरण का अन्त्यानुप्रास छन्दक (टेक) से मिलता है ।

अणिमा :—कुंडल छन्द की लय के आधार पर निर्मित यह त्रिकलात्मक छन्द है । इसमें दो त्रिकलों के स्थान पर ६ मात्राएँ भी प्रयुक्त होती हैं । इसका निर्माण ६+६+५ मात्राओं के क्रम से होता है । अन्त में प्रायः रगण (SS) ही रहता है:—

फैली दिङ्/मंडल में/ चाँदनी,	६+६+५ मात्राएँ
बैधी ज्योति/ जितनी थी/ बाँधनी,	”
करती है/ स्तवन मंद/ पवन से,	”
गन्ध-कुसुम/ कलिकाएँ/ भवन से ^२ ।	”

‘गीतिका’ के ६४वें गीत में और ‘बेला’ के ४५ वें गीत में इसी छन्द का प्रयोग है ।

बाला :—यह छन्द तीन पंचकों (रगण प्रस्तार) और गुरु के योग से बनता है । इस का लक्षण है:—‘रोरि रंगे धरै मंजुबाला’ (SSSSSSSS) ।^३ चन्द्र छन्द से इसमें इतना भेद है कि इसके अन्त में दो लघु भी आ सकते हैं ।

डाल पर बोलता हूँ पपीहा,	५+५+५+२= १७ मात्राएँ
‘हो भला प्राणधन, तुम कहीं ? हा !	”
(आ मिलो हो जहाँ !	५+५ ”
पी कहाँ ? पी कहाँ ?)	”
प्यास से मर रहे दीन चातक,	५+५+५+२ मात्राएँ
क्यों बना चाहते प्राण-घातक ?	”
(श्याम घन ! हो कहाँ ?	५+५ ”
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?)	”

१. नीरज विभावरी ।

२. निराला, अणिमा, पृ० ४२ ।

३. छन्द-प्रभाकर, पृ० १३३ ।

४. प्रसाद, भरना, पृ० ३५ ।

इस छन्द का विशेष प्रयोग 'सूत की माला' में हुआ है। सम छन्द के रूप में इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

रागिनी प्रेम की कौन गाता ।
आ रहा आज मुझको बुलाता ॥
क्यों न जाऊँ मिलन के लिए मैं ।
साज सिंगार अपना किए मैं ^१ ॥

इस वर्ग के अन्य दो छन्द यगण (|SS|SS|SSS) और तगण (SS|SS|SS|S) के आधार पर भी बन सकते हैं, जिनका प्रयोग नहीं हुआ है। इन दोनों छन्दों की लय प्रवाहपूर्ण है।

पौराणिक वर्ग (४१८१ भेद)

१८ मात्राएँ :—चामरी-पञ्चचामर, यद्यपि १६ वर्णों (15×८) से निर्मित होता है, पर 'छन्दोमंजरी' में लघुगुहमूलक १२ वर्णों के छन्द को भी पञ्चचामर माना गया है, 'लघुगुह्वदन्ति पञ्चचामरं' (|S|S|S|S|S|S द्वितीय स्तवक, १०)। इसी के आधार पर 'मिलन-यामिनी' में १८ मात्राओं का मात्रिक चामरी छन्द प्रयुक्त हुआ है। इस छन्द की पहली, चौथी, सातवीं, दसवीं, तेरहवीं और सोलहवीं मात्रा लघु होती है:—

मयंक-रश्मि पूर्व से लहक रही,
असुप्त नीड़-वासिनी चहक रही,
शरद-प्रफुल्ल मालिका महक रही,
दहक रहा बुझा हुआ अँगार फिर ^२ ।

सिन्धुजा :—इस नवीन छन्द में आठ मात्राओं के बाद यति आती है। यति के पूर्व का खण्ड दो त्रिकलों और गुह के योग से, एवं बाद का भाग दो त्रिकलों और चौकल के योग से बनता है। चरणान्त का चौकल SS; ||S या S। होगा। यह छन्द बाल-साहित्य के अनुकूल है।

मुदित 'सिन्धुजा', विहँस रही कैसी !
कली कमल की, कहीं खिली ऐसी ?
बोल मधुर तू, हृदय खिले मेरा ।
बढ़े स्वस्थ बन, मञ्जु रूप तेरा ^३ ॥

१. चन्द्राकर ।

२. बल्लभ, मिलन-यामिनी, पृ० १६८ ।

३. चन्द्राकर ।

शशवः—यह नवीन छन्द तीन तगणों और गुरुलघु के आधार पर बनाया गया है। इसकी पाँचवीं, दसवीं और पन्द्रहवीं मात्रा लघु होती हैं। यह छन्द बाल-साहित्य के अनुकूल है।

धीरे चलो, पाँव दोनों संभाल ।
डगमग कहीं और होवे न चाल ॥
लाओ, खिलौना पड़ा दूर-दूर ।
दौड़ो, उठाओ बनो बीर शूर ॥

शक्ति :—यह भुजंगी (य, य, य, ल, ग) वृत्त का मात्रिक रूप है, अतः पहली, छठी, ग्यारहवीं और सोलहवीं मात्रा लघु होती है। यह छन्द आनन्द, हर्ष, उल्लास एवं ओज के अनुकूल है।

नयन में तुम्हें और भरलूँ, रुको !
प्रिये ! मैं तुम्हें प्यार कर लूँ, रुको !
हृदय में अभी प्यास कितनी भरी ।
कहाँ तुम चलीं ? बोल दो, सुन्दरी २ !

तरङ्गनयन :—SI के आधार पर १८ मात्राओं :-(SISI SISI SISI का मात्रिक रूप से इस छन्द का स्वरूप निर्मित होता है। इसकी तीसरी, छठी, नवीं, बारहवीं पन्द्रहवीं और अठारहवीं मात्रा लघु होती है।

देवदूत, दीप्तिमान, विश्वमित्र,
तुम कुबेर सोम-अंग वीर्यवान ।
अश्व से प्रसन्न मातरिश्व संग,
अङ्ग-गन्ध-धूम रचे जातुधान ३ ।

उर्मिला-सखी :—यह छन्द उर्मिला (७+७+३ मात्राओं) के अन्तिम लघु अक्षर को गुरु कर देने से बनता है। इसका आधार-दूसरा सप्तक (SSS) है, अतः तीसरी और दसवीं मात्रा लघु होती है:—

वायदे बेंकार, भूलीं बातें । ७+७+४ मात्राएँ
देखते ही राह बीती रातें ॥
बेमुरव्वत तुम नहीं हो ऐसे ।
बात हो, पर, मान लें मन कैसे !

महेन्द्रवज्रा :—यह छन्द इन्द्रवज्रा वृत्त का मात्रिक रूप है । इसका आधार नवक पर्व (SSIS) है, अतः पाँचवीं और चौदहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं और अंत में गुरु होता है । पवित्र गुरुओं के स्थान पर लघु का प्रयोग स्वच्छन्द रूप से होता है । मात्रिक छन्द में गुरुओं के आधिक्य से गति क्षिप्र हो जाती है और लघुओं के आधिक्य से मन्द पड़ जाती है । यह छन्द ओज गुण के अधिक अनुकूल है ।

टूटे बवंडर/ चिन्ता नहीं हो/ ! ६+६ मात्राएँ
गरजे समुन्दर/ चिन्ता नहीं हो/ ! ”
बरसों अँगारे/ चिन्ता नहीं हो/ । ”
हिम्मत न ढीली/ तेरी कभी हो/ !^२ ”

ग्रह :—यह छन्द नवक (ISSSS) के आधार पर बनता है । इस छन्द की पहली और दसवीं मात्रा लघु होती हैं । यह नवक यगण और चौकल के योग से बनता है ।

किसी पर मरना/ यही तो दुख है/ । ६+६ मात्राएँ
उपेक्षा करना/ मुझे भी सुख है/ ॥ ”
हमारे उर में/ न सुख पाओगे/ । ”
मिला है किसको/ कहाँ जाओगे^३/ ॥ ”

पुराण :—यह फ़ारसी के वज़न ‘फ़ायलुन मुफ़ायलुन मुफ़ायलतुन’ के आधार पर चलता है (SISISISSS का मात्रिक रूप) :—

हाथ मारते फिरे कहाँ के हैं, १८ मात्राएँ
ये गफ़लत से धिरे जहाँ के हैं, ”
अपनी तरणी तिरे यहाँ के हैं, ”
इनसे जैसा चाहे कह ले^४ । १६ मात्राएँ ।

१. चन्द्राकर, ‘ये न शिकवें, बात दिल की सुन लो ।

कुछ बहाने और मन्तक चुन लो ॥”

२. मानव, गाण्डीव, पृ० ६, रामझकबालसिंह ‘राकेश’ ।

३. प्रसाद, झरना, पृ० ६५ ।

४. निराला, बेला, गीत ३६ ।

अन्तिम दो प्रयोगों में दुष्प्रवहमानता है। इन छन्दों का प्रयोग मुक्तक कविता में ही संभव है।

महापौराणिक (छन्द के भेद, ६७६५)

१६ मात्राएँ :— पीयूषवर्ष— यह छन्द (SASS) द्वितीय सप्तक के आधार पर बनता है। सप्तक की दो आवृत्तियों के बाद रगण का प्रस्तार जोड़ने से इसका चरण छन्द निर्मित होता है। इसकी तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है। यह छन्द शृंगार की कोमल भावनाओं के लिए उपयुक्त है। प्राचीन पीयूषवर्ष छन्द इस युग में अतुक और सतुक दोनों रूपों में प्रयुक्त हुआ है। 'ग्रन्थि' (पन्त) और 'अनंग' (लेखक) में इसका प्रवहमान अतुकान्त प्रयोग हुआ है, और 'साकेत' के प्रथम सर्ग में अत्यययुक्त रूप में। अमृत के छीटे फेंकने वाला यह छन्द सचमुच अन्वर्थनाम है, इसकी गति से मधुरता का वर्णन होता है। इस छन्द की लय बड़ी भावुक और संवेदनशील है, वह कभी विरहिणी सी सिसकती और कभी रतिप्रीता सी उल्लसित दिखाई देती है:—

“जनकपुर की/राजकुंज-वि/हारिका, (७+७+५ मात्राएँ)

एक सुकुमा/री सलौनी/सारिका।” ” ”

देख निज शि/क्षा सफल ल/क्ष्मण हँसे, ” ”

उमिला के/नेत्र खंजन/से फँसे^१। ” ”

गुप्त जी ने 'शकुन्तला' (कर्तव्य) ; अनघ (पृष्ठ १२५) ; कावा और कर्बला (श्रेय और प्रय) में पीयूष वर्ष का युग्मक प्रयोग किया है। प्रसाद जी का दूरान्तर प्रयोग नीचे दिया जाता है:—

सब रगों में फिर रही है बिजलियाँ,

नील नीरद ! क्या न बरसोगे कभी ।

एक झोंका और मलयानिल अहा !

क्षुद्र कलिका है खिली जाती, अभी^२ ॥

१. (पीयूषवर्षण की ध्वनि से कैसी उदासीनता टपकती है ? मरुभूमि में बहने वाली निर्जन तटिनी की तरह, जिसके किनारे पत्रपुष्पों के शृंगार से विहीन, जिसकी धारा लहरों के चंचल कलरव तथा हास-परिहास से वंचित रहती, यह छन्द भी, वैधव्यवेश में, अकेलेपन में सिसकता, श्रान्त गति से, अपने ही अश्रुजल से धीरे-धीरे बहता है ।)

पंत, पल्लव, प्रवेश, पृ० ३६ ।

मंथिलीशरण गुप्त, साकेत, प्रथम सर्ग पृ० २४ ।

२. प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० ११३ ।

हिन्दी, अरबी, फ़ारसी और उर्दू में यह छन्द 'फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलुन्' के वजन पर चलता है।

सुमेरु :—इस छन्द में १० मात्राओं पर यति होती है। श्रीमान् जी ने यह माना है कि १२ या १० मात्राओं के बाद पर यति होती है। आधुनिक युग में केवल १० मात्राओं पर ही हल्की सी यति आती है, अन्यथा छोटा छन्द होने के कारण एक ही श्वास में बिना यति के भी इसका पाठ संभव है :—

जहाँ अभिषेक अम्बुद छा/रहे थे । (७+७+५ मात्राएँ)

मयूरों से/सभी मुद्र पा/रहे थे ।

वहाँ परिणा/म में पत्थर/पड़े यों

खड़े ही रह/गये सब थे /खड़े ज्यों^५ ।।

‘कावा और कबला’ (प्रतिशोध) में गुप्त जी ने इसी छन्द का प्रयोग किया है। यह छन्द चतुर्थ सप्तक (ISSS) की दो आवृत्तियों और यगण (ISS) के योग से बनता है, अतः पहली, आठवीं और पन्द्रहवीं मात्रा लघु होती है। ‘रश्मिरथी’ के सप्तम सर्ग में और सनेहीकृत ‘अशोक-वाटिका’ में ‘सीता’ कविता में इस छन्द का प्रयोग हुआ है। अन्त में निश्चय ही यगण या यगण का प्रस्ताव आता है, तगण, रगण, जगण और मगण नहीं आ सकते। फारसी में यह छन्द ‘मफाईलुन् मफाईलुन् फऊलुन्’ के आधार पर चलता है।

तमाल :—यह छन्द चौपाई में ८। जोड़ने से बनता है। विषम छन्दों में इसकी फुटकल पंक्तियाँ मिल जाती हैं, पर इसका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हुआ है :—

(१) थके हुए जी/वों को वह स/स्नेह । (८+८+३=१९ मात्राएँ)

(एवं)

(२) आप निकल पड़/ता तब एक वि/हाग^२ । ”

(३) मेरे दग्ध हृदय का ही था/ताप^३ । ,,

विध्वंकमाला :—यह छन्द संस्कृत वृत्त विध्वंकमाला के आधार पर बनता है। तगण आधार होने के कारण पाँचवीं, दसवीं और पन्द्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है, अंत में SS श्रुतिमधुर होते हैं :—

१. गुप्त, साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ७३ ।
२. निराला, परिमल, संध्यासुन्दरी, पृ० १३६, १३७ ।
३. निराला, परिमल, विफलवासना, पृ० १६३ ।

लंका स/रोज स्थि/ता वेद/हस्ता, (५+५+५+४ मात्राएँ)
 आद्या ज/या विश्व /वाणी प्र/शस्ता, (त+त+त+गग)
 मातः पु/रा कीर्ति/मति, भीति/ध्वस्ता,
 जागो, क/रो जाति /महिमाभि/रामा^१ ।

भुजंगरु : — भुजंगप्रयात (४ यगण) के अन्तिम गुरु को लघु कर देने से भुजंगरु छन्द बनता है । इसकी पहली, छठी, ग्यारवीं और सोलहवीं मात्रा लघु होती है । इसी छन्द का प्रयोग फिरदौसी ने शाहनामा महाकाव्य में आदि से अन्त तक किया है :—

सुपीदा हमां गह जे कह वदंमोद,
 मयाने शबे तीरा अन्दर खमीद ।
 व पोशीद रुस्तम सलीहे न वदं,
 वसे अज जहाँ आफरीं याद कर्द^२ ।

हिन्दी-प्रयोग प्रस्तुत है, देखिए :—

विजेता बनेंगे सदा देश-वीर,
 रहें मातृ-भू-पुत्र गंभीर-धीर ।
 न कश्मीर की भूमि हो छिन्न-भिन्न,
 रहेगी रही हिन्द से ये अभिन्न^३ ।

दोल :— प्रस्तुत नूतन छन्द (SI IS SIS / SI SI S) के आधार पर निर्मित किया गया है । इसमें दो त्रिकलों और रगणात्मक पञ्चक के बाद यति आती है, इसके बाद प्रत्यमूलक त्रिकल और रगणात्मक पञ्चक का योग होता है । इसकी समस्त लय त्रिकलात्मक है । यह छन्द शाङ्गारिक गीतों के लिए उपयुक्त है :—

आज खिली माधवी, मञ्जु मालती ।
 नयन-किरण हेम का, हार डालती ॥
 पवन-पुलक अङ्ग में, राग-रंग में ।
 ये वसन्त नित्य हो, मोद संग में^४ ॥

१. विध्वंकमाला भवेत्तौ तगौगः । छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तवक, ८ ।

तू तात गा गाय, विध्वंकमाला । छन्दः प्रभाकर, पृ० १३८ ।

कु० चन्द्र-प्रकाश सिंह. शम्पा, पृ० ८ ।

२. हकीम अब्दुल, कासिम फिरदौसी तुसी, शाहनामा ।

३. ४. चन्द्राकर ।

महादेशिक वर्ग (१०६४ भेद)

२० मात्राएँ :—योग छन्द—श्री भानु जी न १२, ८ मात्राओं पर इस छन्द की यति मानी है और अन्त में यगण (ISS) होना आवश्यक समझा है, पर आधुनिक युग में ऐसा प्रयोग नहीं होता। आजकल इस छन्द की २० मात्राएँ समप्रवाही होती हैं, कहीं कहीं ८ मात्राओं पर यति होती है, अन्यथा बिना यति के चरण होते हैं। अन्त में SS; IIS; SII ही आते हैं :—

भाव-कर्म में जहाँ साम्य हो संतत,
जग जीवन में हों विचार जन के रत।
ज्ञानवृद्ध निष्क्रिय न जहाँ मानव-मन,
मृत आदर्श न बंधन, सक्रिय जीवन१।

योग छन्द का दूरान्तर अन्त्यानुप्रास-मूलक प्रयोग नीच दिया हुआ है :—

वाणी मौन रहे, पर नयनों से ही,
मृदु भावों की झंकार छलकती है।
प्रथम प्यार बोलता नहीं प्रिय से पर,
मुख-मण्डल में मनुहार झलकती है२ ॥

पन्तजी ने 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्ण-किरण' में योग छन्द का प्रयोग किया है।

शस्त्र :—यह छन्द चतुर्थ सप्तक ISSS की दो अवृत्तियों और यगण-घु के योग से बनता है। इसकी लय प्रवाह-पूर्ण नहीं है, जिसका विशेष कारण इसका अन्तिम लघु वर्ण है।

हृदय है व्यर्थ अनुशासी / बिना त्याग।
रहा है साध्य मानव का प्रणय-याग ॥
व लय होता अगर जल में कभी क्षीर।
भला कैसे पता चलता भरी पीर३ ॥

ऋगुण :—यह छन्द सग्विणी वृत्त (कीर्तितैषा चतुरेफिका सग्विणी, छन्दोमंजरी, २ स्तवक, ७) के आधार पर बना है, इसीलिए इसकी तीसरी, आठवीं, तेरहवीं और

-
१. पन्त, युगववाणी, नबसंस्कृति।
 २. चन्द्राकर, प्रीति-सञ्चरण।
 ३. चन्द्राकर, शृङ्गार-सूक्ति।

बहिन आज फूली समाती न मन में । (गुरु के स्थान पर दो लघु)
तड़ित आज फूली समाती न घन में ।
घटा है न फूली समाती गगन में । (५+५+५+५ मात्राएँ ; 1SS
लता आज फूली समाती न बन में^१ । के प्रस्तार का आधार)

इस छन्द के दूरान्तर अन्त्यानुप्रासमूलक भी प्रयोग हुए हैं, जो शृङ्गार रस के अनु-
कूल पड़ते हैं ।

‘मिलन बिन्दु सा है, विरह सिन्धु सा है,’
विकल प्रेम की कल्पना हो रही है ।
न छोड़ो इसे कामने ! चुप रहो तुम,
हृदय की कथा रो चुकी, सो रही है^२ ॥

भृङ्गचुम्बितः—निराला जी ने त्रिकल के आधार पर बीस मात्राओं के चरणों का
प्रयोग गीतिका में किया है । जिसमें ६, ६, ६ मात्राओं के बाद यति आती है :

हुआ प्रातः, प्रियतम तुम/जावगे च/ले, ६+६+६+२ मात्राएँ
कैसी थी रात, बन्धु थे गले गले । (1S1 के प्रस्तार का आधार)
परिचय परिचय पर जंग गया भेद शोक, ६+६+६+३ मात्राएँ
छलते सब चले एक अन्य के छले ।^३ ६+६+६+२

गीत की पंक्तियों को छाँटकर यह छन्द बना लिया गया है । इसके तीसरे चरण में
एक मात्रा अधिक है, जो एक सौषम्यवैचित्र्य है ।

पीयूषरशिः—यह नवीन छन्द दो द्वितीय सप्तकों (1SSS) और दो त्रिकलों (1S)
के योग से निर्मित हुआ है । पीयूषवर्ष छन्द के अन्त में लघुमात्रा के योग से इस छन्द
का निर्माण होता है, अतः इसका नाम पीयूष-र शि रखा गया है । पीयूषवर्ष की अपेक्षा
अधिक मंदगामी और गंभीर होने के कारण यह छन्द संगीत शृङ्गार के अधिक अनुकूल है :

पूर्व में लज्जित उषा नव शोभमान । ७+७+६; अंत 1S ।
धन्य, पाकर रवि-हृदय का प्रेम-दान ।
लीन होती आप प्रिय में सानुराग ।
विश्व भर में दीप्त है सुन्दर सुहाग ॥^४

१. स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, राखी की चुनौती ।
२. चन्द्राकर ।
३. निराला, गीतिका, गीत-६१ ।
४. प्रभात, श्रीमती मालती शुक्ल ।

सारंगः—सारंग वृत्त (त, त, त, त) के आधार पर इस छन्द का मात्रिक प्रयोग किया गया है । लय की दृष्टि से, पञ्चकात्मक होने के कारण, भुजंग-प्रयात-परिवार का छन्द है । इसकी पाँचवी, दसवीं, पन्द्रहवीं और बीसवीं मात्रा लघु होती है । यह छन्द वीर रस के अनुकूल है ।

वह श्यामला शस्य-भू की परम कान्ति ।

होगी कहाँ पुण्य 'पयँदापुरी'-शान्ति ॥

है जन्मदाता सदा तीर्थ सा ग्राम ।

मैं हूँ प्रणत ध्यान कर मोद का धाम^१ ॥

र३ः—राग वृत्त (र, ज, र, ज, ग) के आधार पर यह मात्रिक प्रयोग किया गया है । पञ्चचामर-परिवार का होने के कारण यह छन्द तरंगायमान क्षिप्रगतिशाली है, तथा वीररस और सशक्त स्वस्थ शृङ्गार के अनुकूल है ।

बाट जोहती जहाँ सखी सहेलियाँ ।

संगिनी अधीर आज की नवेलियाँ ॥

और वह पिता उदार स्नेह का धनी ।

तुम जहाँ किशोरि ! रूप-गविता बनी^२ ॥

आज-कल मंजुलतिका छन्द (१२, न, अंत । S ।) सारंग के साथ और हंसगति छन्द (११, ६) योग छन्द के साथ अभिन्न हो गया है ।

त्रैलोक्य वर्ग (१७७११ भेद)

२१ मात्राएँ :—चन्द्रायण^३—इस छन्द में ग्यारहवीं मात्रा पर यति होती है और वह मात्रा जगणान्त होती है तथा अन्त में । S होता है । रगणान्त अधिक श्रुति-मधुर होता

१. चन्द्राकर ।

विशेष :—पन्द्रहवीं शताब्दी के कवि हरिदेव ने 'भयण पराजय चरित' (२. न) में सारंग छन्द का मात्रिक प्रयोग बहुत प्रौढ़ किया था :—

गिरिराज टलटलइ, जलरासि भलभलइ ।

फणिराज लवलवइ, सुरराइ चलवलइ ॥

घरणिगलु खलभलइ, जय जीव जणु लवइ ।

दर भइ सहायस्स, तह भयण रायस्स ॥

२. गोपाल सिंह नेपाली, आज तुम चलीं, कवि भारती, पृ० ६२० ।

३. चान्द्रायण के आदि में लघु व गुरु समकलात्मक रूप में आते हैं, जैसे SS; IIS; SII; II II; यदि कोई पद त्रिकल से आरंभ हो, तो एक त्रिकल और रखना पड़ता

हैं। यह छन्द वर्णन-प्रधान है। इसका प्रयोग अनुकान्त रूप में भी सुन्दर होता है। यह छन्द वीर, शान्त और हास्य जैसे विरोधी रसों में भी समानतया सफल होता है:—

‘शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?’
‘गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं।’
वैदेही ये सरल भाव से कह गई,
तब भी वे कुछ तरल हँसी हँस रह गई^१।

‘किसान’ (सर्वस्वान्त) में भी गुप्त जी ने इस छन्द का प्रयोग किया है।

प्लवंगम:—इस छन्द में आठवीं मात्रा पर यति होती है। श्री भानु जी ने अंत में SIS माना है, पर आधुनिक युग में चरण के अंत में SIS और SSIS दोनों ही आते हैं। इसका केवल अनुकान्त प्रयोग प्राप्त है।^२

हो कलरविता लसिता दीपक-अवलि से,
निज विकास से बहुतों को विकसित बना।
विपुल कुसुम-कुल की कलिकाओं को खिला,
हुई निशामुख द्वारा रजनी व्यंजना^३।

है, परन्तु ११ मात्राएँ जगणान्त और १० मात्राएँ रगणान्त होती हैं। चन्द्र के दो पक्ष जैसे शुक्ल और कृष्ण प्रसिद्ध हैं, वैसे ही इसके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध पादान्त की रीति भी भिन्न-भिन्न है।

भानु जी, छन्दः प्रभाकर, पृ० ५८।

१. मंथिलीशरण, साकेत, पंचम सर्ग, पृ० १०६।
२. नूरजहाँ (गुरुभगत सिंह) के तीसरे सर्ग के आरम्भ में भी प्लवंगम का अनुकान्त प्रयोग हुआ है। लेखक।
३. हरिऔध, वैदेही-वनवास, नवम सर्ग, पृ० १०५।

विशेष :— बारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के कवि जिनदत्त सूरि ने ‘चधरो में इस छन्द का प्रयोग किया है। इसका नाम ‘कुन्द छन्द’ दिया गया है, और उसे ‘वास्तु’ छन्द का एक भेद माना गया है :—

कालिदास कइ आसि जु लोइहि वनियइ।
ताव जाव जिणबल्लहुकइ ना अन्नियइ।
अप्प चित्तु परियाणहि तं प विसुद्ध नय।
ते वि चित्त कइराय भणिज्जइ मुद्धनय ॥५॥

तिलोकी :— चान्द्रायण और प्लवंगम के सम्मिलन से तिलोकी छन्द बनता है^१ ।

दिन भर के विश्रांत विहग-कुल-नीड़ से,
निकल-निकल कर लगे डाल पर बैठने ।
पश्चिम निधि में दिनकर होते अस्त थे,
विपुल शैलमाला अर्जुन गिरि की घनी^२ ।

गुप्त जी ने 'कावा और कर्बला' के 'दासता' खण्ड में, 'जयभारत' के 'वनवास' खण्ड में, और 'शकुन्तला' के 'मिलन' खण्ड में इस छन्द का विशद सान्ध्य प्रयोग किया है । 'महाराणा का महत्त्व' में प्रसाद जी, 'दधीचि का त्याग' में रूपनाथण पाण्डेय ने और 'भारती' में (हम-तुम; वसन्त का उदार परिवार; राका-रजनी) गोविन्दवल्लभ पन्त ने इसका अन्त्यमुक्त प्रयोग किया है । इस छन्द का 'अरिल्ल' नाम अशुद्ध है ।

सिन्धु:—आधुनिक युग में इसका प्रयोग SISS के आधार पर हुआ है । प्रत्येक चरण में सप्तक (SISS) की तीन आवृत्तियाँ होती हैं, अतः तीसरी, दसवीं तथा सत्रहवीं मात्रा लघु होती है ।

क्या नहीं नर/ने इसे रौ/रव बनाया/, ७ + ७ + ७ मात्राएँ
क्या न तुम ने/स्वर्ग है इस/पर बसाया/, ,,
विश्व आतप/ने हमें जब/-जब तपाया/, ,,
नील नीरद !/क्या तुम्हीं ने/की न छाया/^३ । ,,

प्रणय छन्द:—कुण्डल छन्द (२२ मात्राएँ) के अन्तिम गुरु को लघु रूप देकर इस नवीन छन्द का निर्माण कर दिया गया है । इसमें तीन षष्ठकों (३ + ३ या ४ + २ मात्राएँ) और गुरु-लघु का योग होता है । यह छन्द संयोग शृंगार, प्रकृति-चित्रण एवं हर्षोल्लास के अनुकूल है ।

शरद-इन्दु / का सिंगार/रञ्जित अभि/सार । ६ + ६ + ६ +
नयनों में नयनों का, वरस रहा प्यार ॥ ३(SI) मात्राएँ

१. (क) प्लवंगम और चान्द्रायण के मेल से, अन्त में IS, तिलोकी नामक छन्द माना गया है, यथा 'सोरह पर कल पाँच तिलोकी जानिए' । भानु, छन्दःप्रभाकर, पृ० ५८ ।

(ख) जिनदत्त सूरि ने बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपने गुरु जिन-वल्लभ सूरि का गुण-गान करते हुए 'चर्चरी' में इसका प्रयोग किया है, जिसकी व्याख्या में इसे वास्तु छन्द का भेद 'कुन्द' छन्द माना गया है ।

कालिदास कइ आस जु लोईहि वल्लियइ । ताव जाव जिनवल्लभ कइ ना अभियइ ॥
अप्य चित्तु परियाणहि तं पि विसुद्ध नय । तेवि वित्त कइराय भणिज्जहि मुद्धनय । ५ ।

२. प्रसाद, महाराणा का महत्त्व, पृ० ७ ।

३. सोहनलाल द्विवेदी, वासन्ती, पृ० ५० ।

मग्न हुआ हृदय, वही विमल प्रणय-धार ।
 वन्दन-अभिनन्दन में, इंगित-अभिचार ॥
 तरुण विहंग, मधुर मिलन, मन का आकाश ।
 जीवन की मुक्ति लिए, युगुल बाहु-पाश ॥
 संगम में वक्ष-तरी, तिरी साभिलाष ।
 युग्म कुमुद कान्त, प्रिया-राग का प्रकाश^१ ।

प्रवासी:—यह छन्द (ISSS) चतुर्थ सप्तक की तीन आवृत्तियों से बनता है, इसकी प्रथम, अष्टम एवं पंचदश मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं। इस छन्द का विशेष प्रयोग 'मिलन-यामिनी' में हुआ है। 'साकेत' से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

वचन पलटें/कि भेजें रा/म को वन में/, ७+७+७ मात्राएँ
 उभय विधि मृत्यु निश्चय जानकर मन में, ,,
 हुए जीवन-मरण के मध्य धृत से वे, ,,
 रहे बस अर्द्ध-जीवित, अर्द्ध-मृत से वे।^२ ,,

गुप्त जी ने जयभारत (तीर्थयात्रा) में भी इस छन्द का प्रयोग किया है।

महारौद्र वर्ग (छन्द-भेद २८६५७)

२२ मात्राएँ:—राधिका—प्राचीन आचार्यों ने राधिका छन्द की यति १३ मात्राओं के बाद मानी है (तेरा पै सज नव कला राधिका रानी—भानु)। अब, प्रायः १० मात्राओं के बाद यति का प्रयोग होता है। अंत में SS ; ॥S या S॥ ही आते हैं। लावनी में इस छन्द का प्रचार है। 'साकेत' के आठवें सर्ग और 'अनाथ' के दूसरे खण्ड में इसका विशेष प्रयोग हुआ है।

पाकर विशाल कच/भार एड़ियाँ धँसतीं/, १०+१२ मात्राएँ
 तब नख-ज्योति मिष/, मृदुल अँगुलियाँ हँसतीं/। ,,
 पर, पग उठने पर/भार उन्हीं पर पड़ता/, ,,
 तब अरुण एड़ियों/से सुहास सा झड़ता/^३। ,,

दिव्यधू छन्द:—दिक्पाल (१२, १२ मात्राएँ) छन्द के अन्तिम गुरु अक्षर को न्यून करके इस नवीन छन्द का निर्माण कर लिया गया है। इसमें १२ मात्राओं पर यति होती है और पाँचवीं, आठवीं, सत्रहवीं और बीसवीं मात्रा लघु होती हैं। यह छन्द संयोग शृंगार और हर्षोल्लास के अनुकूल है।

१. चन्द्राकर, प्रणय-गीत, शरदुत्सव ।

२. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ५२ ।

३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० १५७ ।

(ख) अर्द्धसम प्रयोगः—जननि, जनक-/जननि-जननि, / ६+६ मात्राएँ
 जन्म-भूमि/भाषे ! ६+४ ”
 जागो, नव / अम्बर भर, ६+६ ”
 ज्योति-स्तर/वासे^१। ६+४ ”

प्राचीन नियम के अनुसार यदि इस छन्द के अंत में सगण हो, तो उसे 'उड़ियाना' कहते हैं, जैसे 'ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ' ।

कोकिलकः—आचार्य भिखारीदास के अनुसार इसका लक्षण ||S|S|S||S|S|S है । आधुनिक प्रयोगों में समप्रवाही १६ मात्राओं के बाद यति होती है, उसके बाद दो त्रिकल प्रयुक्त होते हैं ।

तुझ पर, मुझ पर/हाथ फेरते/साथ यहाँ, १६+६ मात्राएँ
 शशक ! विदित है/तुझे आज वे/नाथ कहाँ ? ”
 तेरी हो प्रिय/जन्म-भूमि में,/दूर नहीं, ”
 जा तू भी कह/ना कि उमिला/कूर नहीं^२ । ”

मुखदाः—इस छन्द में १२, १० मात्राओं के बाद यति और अन्त में गुरु का प्रयोग होता है । सार और विष्णुपद के द्वितीय खण्डों को क्रमशः रखने से यह छन्द बनता है ।

उषा-काल में जगकर, नलिनी मुसकाती ।
 अस्फुट स्वर में जैसे, अलिनी कुछ गाती ॥
 मुदित 'सिन्धुजा' प्रातः, वैसे ही लगती ।
 दिव्य चेतना गृह में, मुखरित बन जगती ॥^३

श्री देल्हन कवि (सं० वि० १३००) ने 'गय-सुकुमाल-रास' में मुखदा छन्द का विशद-प्रयोग किया था ।

नयरिहि रज्जु करेई, नहि कन्हु नरिदू ।
 नरवइ मंति सणाहो, जिव सुरगण इन्दू ॥^४

ख. तू दयालु/दीन हौं तू/दानि हौं भि/खारी । ६+६+६+४ मात्राएँ
 हौं प्रसिद्ध/पातकी तू !/पाप-पुंज/हारी ॥ ”
 नाथ तू अ/नाथ को अ/नाथ कौन/मो सों । ”
 मो समान/आरत नहि/आरत-हर/तो सों ॥ ”

गो० तुलसीदास, विनयपत्रिका, ७६।

१. निराला, गीतिका, गीत ७८ ।

२. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २०२ ।

३. चन्द्राकर, शिशु का जागरण ।

४. राजस्थान-भारती; वर्ष ३; अङ्क २; पृ० ८७; अग्ररचन्द नाहटा का लेख ।

बेला :— निराला जी ने 'भुतफायलुन् मफाइलुन् मफाइलुन् फइल्' के वजन पर २२ मात्राओं का एक नया छन्द प्रयुक्त किया है। इस छन्द की पाँचवीं, आठवीं, ग्यारहवीं, चौदहवीं, सत्रहवीं और बीसवीं मात्रा लघु होती है। उल्लास के लघु स्फन्दन एवं जीवनानभतिजन्य सक्ति के लिए यह छन्द अनकल है।

ये टहनी से हवा कि छेड़छाड़ थी मगर,
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बदल गया।
खामोश फूतह पाने को रोका नहीं रुका,
मरिक्ल मकाम जिन्दगी का जब सहल गया१ ॥

हिन्दी-नियम के अनुसार समचतुष्क के बाद त्रिकल (लघु-गुरु आधार) की छः आवृत्तियों से यह छन्द बनता है । इसका गणात्मक स्वरूप (SSISISISISIS) है, जिसका लक्षण 'बेला तरौ जरौ लगौ यतिश्च सिद्धिभिः' बन सकता है । इस छन्द का नाम बेला रखा गया है ।

रौद्राक वर्ग (छन्द-भेद ४६३६८)

२३ मात्राएँ :—रजनी—यह नवीन छन्द सप्तक (११११) की तीन आवृत्तियों और गुरु के योग से बनता है। इसकी तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है। यह छन्द शृंगार रस के लिए उपयुक्त है।

मधुमयी कुसु/मित क्षणों से/शुचि सुवासित/सी, ७ + ७ + ७ + २ मात्राएँ
इन्दुक-आ/लिंगिता सी/अमृत - भाषित/सी,
सब दिशाओं/में सरस उ/ल्लास सा भर/ती,
जा रही चं/चल हृदय को/देह को कर/ती^२ ।

दूरान्तर अन्त्यानुप्रासमूलक प्रयोगः—

स्वर्ग के सम्राट् को जाकर ख़बर कर दे, (लिपि और उच्चारण में भेद)
 “रोज़ ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे,
 रोकिए, जैसे बने इन स्वप्नवालों को,
 स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे ३।”

१. निराला, बेला, गीत ७५ ।
२. देवराज, प्रणय-गीत, पृ० १४ ।
३. दिनकर, गगन का चँद, कवि-भारती, पृ० ५४८ ।

अर्द्धसम रूपः—जब कहीं झड़/जायँगी वे/, १४ मात्राएँ

कह न पायें/गी । ६ ”

वह हमारी/मौन भाषा, १४ ”

क्या सुनायें/गी ॥ ६ ”

हीरः—इस छन्द में ६, ६ और ११ मात्राओं के बाद यति होती है। पहले इसके अन्त में रगण अनिवार्य माना जाता था। इस युग में इसका परिवर्तित स्वरूप प्रयुक्त हुआ है, जिसके अन्त में तगण के आधार पर पाँच मात्राएँ प्रयुक्त होती हैं।

सोए तरु-/वन में खग/ सरसी में/जलजात, ६+६+६+५ मात्राएँ

सजग गगन/के तारक/भू प्रहरी/प्रख्यात, ”

सोओ जग/-दृगतारक/ भूलो पल/क-निपात, ”

चपल वायु/सा मानस/पा स्मृतियों/के घात^२ । ”

निश्चल—इस छन्द में १६, ७ मात्राओं पर यति और अन्त में गुरु-लघु होते हैं लय का आधार समप्रवाही श्रष्टक है। रोला की अन्तिम गुरु मात्रा को लघु करने से यह छन्द बन जाता है। यह वर्णनात्मक छन्द प्रबन्ध के अनुकूल है। ‘पार्वती’ (शिव-समाज-प्रयाण) में इस छन्द का प्रयोग हुआ है।

एक रात उर्वशी अप्सरा-मणि सविलास,

दिव-विभूति सी हुई उपस्थित उनके पास।

नूपुर-रव से मुखर बनाती मृदु मुस्कान,

नर को करने चली अप्सरा सुधा प्रदान^३ ॥

इस युग में उपमान (१३, १०, अन्त ५५), जग (१०, ८, ५ अंत ५१), सम्पदा (११, १२ अंत ५१), अवतार (१३, १०), सुजान (१४, ९ अंत ५१), मोहन (५, ६, ६, ६) का प्रयोग नहीं हुआ है।

अवतारी वर्ग (छन्द-भेद ७५०२५) २४ मात्राएँ

रोलाः—पहले इस छन्द में ११ मात्राओं के बाद यति मानी जाती थी, और कुछ लोग अब भी मानते हैं। आचार्य भानु जी ने पहली ११ मात्राओं के दो क्रम (४+४+३ या ३+३+२+३) और शेष तेरह मात्राओं के दो क्रम (३+२+४+४ या ३+२+३+३+२) माने हैं^४। इस छन्द का विकास संस्कृत के रसाल वृत्त (भ, न, ज, भ,

१. निराला, परिमल, निवेदन, पृ० ३२।

२. पन्त, पल्लविनी, निद्रा के गीत, पृ० २२२।

३. मैथिलीशरण गुप्त, अस्त्रलाभ, जयभारत, पृ० १५२।

४. रचनाक्रम विषम पद ४+४+३ या ३+३+२+३; समपद ३+२+४+४ या ३+२+३+३+२ (छन्दःप्रभाकर, पृ० ६३)।

ज, ज, ल) से हुआ प्रतीत होता है^१। इसी आधार पर मात्रिक छन्द में भी ग्यारहवीं मात्रा लघु होती है। जिस रोला के चारों चरणों में ग्यारहवीं मात्रा लघु होती है, उसे काव्य छन्द कहते हैं। आचार्य भिखारीदास ने १२ मात्राओं पर यति मानी है और रोला में छैः चौकलों का प्रयोग किया है।^२ प्राकृत-पैंगलम् में ११वीं मात्रा को लघु करने का विधान नहीं किया गया है, पर, उदाहरण में ११वीं मात्रा लघु रखी गयी है^३। इस ग्रन्थ के टीकाकार वंशीधर मिश्र ने भी ११वीं मात्रा के लघु होने का विवरण नहीं दिया है^४। वाणी-

१. जिस रोला के चारों पदों में ग्यारहवीं मात्रा लघु हो, उसे काव्य छन्द कहते हैं। वर्णवृत्त में इसी के एक भेद (भ न ज भ ज ज ल) को रसाला नामक वृत्त माना है। यथा:—

मोहन मदन गुपाल, राम प्रभु शोक-निवारन ।
सोहन परम कृपालु, दीन जन-पाप-उधारन ॥
प्रीतम मुजन दयालु, केशि वक दानव-मारन ।
पूरन करन सुनाम, दीन-दुख - दारिद-टारन ॥

छन्दःप्रभाकर, पृ० ६३ ।

२. भिखारीदास ने रोला में २४ मात्राएँ मानकर उसकी गति अनियमित लिखी है, परन्तु उसकी पदयोजना देख कर यह पाया जाता है कि प्रत्येक पद में उन्होंने छैः चौकल मानकर बारह मात्राओं पर विश्राम माना है, यथा:—

रवि छवि देखत घुछू, धुसत जहाँ तहँ पागत ।
कोकनि को ताही सों, अधिक हियो अनुरागत ॥
त्योँ कारे काहँहि लखि, मन न तिहारो पागत ।
हमको तो वाही ते, जगत उज्यारो लागत ॥ (दास) ॥

छन्दःप्रभाकर, पृ० ६५ ।

३. पढम होइ चौबीस मत्त गुरु अंतर जुत्ते ।
पिगल होति सेस णाग्र तण्हि रोला उत्ते । ६१ ।
पय भर दरु मरु धरणि तरणि रह घूलिअ भंषिअ ।
कमठ पिठ तरपरिअ मेरु मंदर सिर कंषिअ ।
कोइ चलिअ हम्मीर वीर गअ जूह संजुत्ते ।
किवउ कट्ट हाकंद मुच्छि मेच्छइ के पुत्ते । ६२ । १ परि०, प्राकृतपैङ्गलम् ।

४. रोलायां चतुर्विंशति मात्राः प्रतिचरणदेया इत्यावश्यकम् । तत्र प्रकारद्वयेन संभवति लघुद्वययुक्तेकादशगुरुदानेन, यथेच्छं गुरुलघुदानेन वा ।

प्राकृतपैङ्गलटीकाकार, वंशीधर मिश्र ।

भूषण में दामोदर मिश्र ने ११वीं मात्रा को लघु माना है ।^१ वृत्त-विचार में शुकदेव-मिश्र ने भी रोला में केवल चौबीस मात्राओं का विधान किया है ।^२ यहाँ तक कि रत्नाकर जी ने भी रोला में ग्यारहवीं मात्रा का लघु होना आवश्यक नहीं माना है ।^३ यह ध्यान देने की बात है कि 'गंगावतरण' में ११वीं मात्रा को लघु मानकर ही प्रायः रोलों की रचना की गयी है, परन्तु अपवादों की संख्या भी कम नहीं है । 'गंगावतरण' में ११वीं मात्रा पर यति अधिकांशतः मानी गई है ।^४ मैथिलीभरण गुप्त के प्रयोग से निष्कर्ष निकलता है कि वे ११वीं मात्रा पर यति मानते हैं (साकेत, १२ सर्ग जयभारत परीक्षा, द्रोणाचार्य), अनूप शर्मा प्रायः दोनों नियमों को मानते हैं (फेरि मिलिबो; शंघाई में शान्ति, सुमनांजलि), पन्त जी (स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, ग्राम्या), सियारामशरण जी (दूर्वादल, आर्द्रा में) और रामानन्द (पार्वती—दोहद-विहार, देवोद्बोधन) स्वेच्छा से कहीं इन नियमों को

१. रोलावृत्तमवेहि नागपिगलकविभणितम् ।
प्रतिपदमिह चतुरधिककला विशति परिगणितम् ।
एकादशमधिविरतिरखिलजनचित्ताहरणम् ।
सुललितपदमदकारि विमलकविकण्ठाभरणम् ।

वाणीभूषण, १ परिच्छेद, ५६, दामोदर मिश्र ।

२. बारह गुरु जहें होय, सुकवि सुकदेव सुआछे ।
घटै सुदीरघ अंकु बढै टंकला सो पाछे ॥
सकल कला चौबीस होहि गुरु अंतहि आवैं ।
पिगल मति यों कहैं छन्द रोला सुकहावैं ॥

वृत्त-विचार, ना. प्र. सभा की प्रति, पृ० ३६, शुकदेव मिश्र ।

३. रोला छन्द की ग्यारह मात्राओं पर विरति होना आवश्यक नहीं है, यदि हो, तो अच्छी बात है । पृ० ८१, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० १६८१, कविवर रत्नाकर ।

४. क. ११ वीं मात्रा लघु नहीं है :—

चारिहु जुग में रहै सुजस सुभ अमर तिहारो ।

ख. ११ वीं मात्रा पर यति नहीं है :—

३ सर्ग, गंगावतरण ।

गिरि खोहनि खाडनि गँभीर सो सुभकरि सोध्यौ ।

३ सर्ग, गंगावतरण ।

ग. ग्यारहवीं मात्रा पर यति और लघुत्व का उदाहरण :—

ग्राम-बधूटी जुरति / आनि तट गागरि लै-लै । ११ + १३ मात्राएँ

गावति परम पुनीत / गीत, धुनि लावत जै जै ॥

धारे सहज सिंगार / गात गोरे गदकारे ।

विहँसत गोल कपोल / लोल लोचन रतनारे ॥

१७ सर्ग, गंगावतरण, रत्नाकर ।

मानते हैं और कहीं नहीं। आजकल नवीन प्रयोगों में अधिकांश तीन अष्टकों को रख दिया जाता है, जिससे गति प्रबल हो जाती है^१।

मैं पूषण हूँ/जगती का ज्यो/तिर्मय ईश्वर/, ८+८+८ मात्राएँ
स्वर्ण रजत का/चिर प्रकाश बर/साता भू पर/। ”
जब धरती सो/ती तमिस्र का/दे अदगुंठन/, ”
मैं सुधांशु वन/भरता दिव-स्वप्/नों से जन-मन/^२। ”

प्राचीन नियमों से युक्त उदाहरण:—

“नाथ, नाथ, क्या तुम्हें/ सत्य ही मैंने पाया ?” ११+१३ मात्राएँ
“प्रिये, प्रिये, हाँ आज/आज ही वह दिन आया ! ”
मेघनाद की शक्ति/सहन करके यह छाती ! ”
अब भी क्या इन पाद/-पल्लवों से न जुड़ाती^३”। ”

अष्टकपर्वात्मक अर्द्धसप्त-प्रयोग :—

फावड़े और/ हल राजदंड/ बनने को हैं/, ८+८+८ मात्राएँ
धूसरता सो/ने से श्रृंगा/र सजाती हैं/, ”
दो राह, समय/ के रथ का घ/घंर नाद सुनो/ ”
सिंहासन खा/ली करो कि जन/ता आती है/^४। ”

पन्त जी ने समललित अन्त्यानुप्रास देकर रोला को षट्पदी रूप में प्रयुक्त किया है:—

ज्ञान-ज्योति का दिव्य चक्षु सामने अब उदित,
देखें हम शत शरद, शरद शत सुनें भद्र नित,
बोलें हम शत शरद, शरद शत तक हों जीवित,
ऐश्वर्यों में रहें शरद शत दैन्य से रहित,
शत शरदों से अधिक सुनें देखें हम निश्चित,
तन मन आत्मा के वैभव से युक्त अपरिमित^५।

१. रोला जहाँ बरसाती नाले की तरह अपने पथ की रुकावटों को लांघता तथा कलनाद करता हुआ आगे बढ़ता है...। पन्त, पल्लव, प्रवेश, पृ० ३१।
२. पन्त, स्वर्णकिरण, पूषण, पृ० ४७।
३. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ३३४।
४. दिनकर, धूप और धुआँ, जनतन्त्र का जन्म, पृ० ७१।
५. पन्त, स्वर्णधूलि, मंगलस्तवन, पृ० १३०।

शक्ति-पूजा छन्द :— तीन अष्टकों के आधार पर श्री निराला जी ने शक्ति-पूजा छन्द की रचना की है। इसमें विभिन्न अष्टकों का योग होता है। अधिकांश SSSS अष्टक का प्रयोग हुआ है। 'राम की शक्ति पूजा' कविता के समप्रवाह में उतनी छान्दसिक नवीनता नहीं है, जितनी SSSS अष्टक के आधार पर रचित चरणों में। इसका अनुकरण श्री दिनकर, डाक्टर रामविलास शर्मा और श्री शिवसिंह 'सरोज' ने कई कविताओं में किया है। निराला जी के सम्युगी पन्त जी ने बहुत से प्रयोग इसी छन्द के अनुरूप किए हैं, परन्तु SSSS के आधार पर बीररसानुकूल गजित छन्द उतना सुन्दर न बन पड़ा। निराला जी इस छन्द के निर्माता हैं, अतः उनकी कविता के शीर्षक के आधार पर इस छन्द का नाम 'शक्तिपूजा' दिया गया है। इस छन्द के अन्त में S आता है। अधिकांश में SSSS या SSSS की आवृत्ति होती है। 'राम की शक्ति पूजा' में इस छन्द के कुछ ही उदाहरण प्राप्त हैं, और अधिकांश चरण तो रोला के अन्तर्गत आ जाते हैं।

उदाहरण :—शत घूर्णावर्त, तरंग भंग, उठते पहाड़/ ८+८+८ मात्राएं, अंत S
जल-राशि-राशि/जल पर चढ़ता/खाता पछाड़,/ ”
तोड़ता बन्ध/—प्रतिसन्ध धरा/, हो स्फीतवक्ष/, ”
दिग्विजय अर्थ/ प्रतिपल समर्थ/बढ़ता समक्ष/^१ । ”

रूपमाला :—प्राचीन नियम में १४ मात्राओं पर यति और अंत में S का होना आवश्यक है। लेखक इस चन्द का लक्षण सप्तक (SSSS) की तीन आवृत्तियाँ और S का योग मानता है, अपवाद रूप में अंत में S के स्थान पर नगण भी आ सकता है, पर IS वर्जित है। १४ मात्राओं पर यति निरपवाद रूप से मानी गई है, पर इतने से लय का रूप स्थिर नहीं होता, अतः यहाँ नया नियम बनाना पड़ा। इस छन्द की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं, शेष स्थान पर यथेच्छ लघु गुरु का प्रयोग होता है। यह छन्द शृंगार और करुणरस के लिए उपयुक्त है।

गिर रहीं पल/कें झुकी थी/ नासिका की/ नोक; ७+७+७+३ मात्राएँ, अंत S
भ्रू-लता थी/ कान तक चढ़/ती रही बे/रोक । ” ”
स्पर्श करने/ लगी लज्जा/ ललित कर्णक/पोल, ” ”
खिला पुलक क/दम्ब सा था/ भरा गद्गद/ बोल^२ । ” ”

इस छन्द का प्रयोग कामायनी, बुद्धचरित (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी कृत), जयभारत (यदु और पुरु) और पार्वती (योगीश्वर शिव, तपस्विनी उमा, कुमार-जन्म) में विशेष हुआ है।

सारस :—१२ मात्राओं पर यति और अंत में S का होना भानु जी ने माना है। वस्तुतः, यह छन्द त्रिकलों के आधार पर प्रवाहित होता है। इसमें चार त्रिकलों के बाद

१. निराला, अपरा, राम की शक्तिपूजा, पृ० ४२।

२. प्रसाद, कामायनी, वासना, पृ० ६४।

पहली यति आती है। इसका वृत्त रूप पंचचामर (ISISIS/ISISIS) है, अतः मात्रिक रूप में पहली, चौथी, सातवीं, दसवीं, तेरहवीं, सोलहवीं, उन्नीसवीं और बाईसवीं मात्रा लघु होती है :—

युवक :— ‘प्रतीति प्रीति प्राण में, चरण धरो चरण धरो। (३ × ८) मात्राएँ

युवतियाँ :— ‘हृदय सुमन, प्रणय-सुरभि, ग्रहण करो, ग्रहण करो। १२, १२ ”

युवक :— ‘लिए हो हाथ-हाथ में, न तुम डरो, न तुम डरो। ”

युवतियाँ :— ‘सृजन-विकास की शिक्षा, वहन करो, वहन करो^१। ”

दिग्पाल :— इस छन्द में १२ मात्राओं पर यति होती है। २४ मात्राओं में पाँचवी, आठवीं, सत्रहवीं और बीसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है। गुप्त जी ने ‘शकुन्तला’ (स्मृति, पृ० ३२) में इस छन्द का प्रयोग किया है।

तटिनी तरल तरंगे, तव तीर ले रहीं थीं।

तू गीत गा रहा था, वे साथ दे रही थीं^२।

फारसी बहर में इसका वजन मफ़ज़ल फ़ायलातुन है। इसे ‘बहरे मुज़ारअ’ कहते हैं, यथा :—

दिल मी खद जे दस्ताँ, साहिब दिलाँ खुदारा।

दरदा कि राज़े पिनहाँ, खाहद शुदाशकारा^३।

इस छन्द के वृत्त-रूप का सूत्र यों बन सकता है, ‘दिग्पाल तारंगः वै’। दिग्पाल तगण, रगण और गुरु के योग से बनता है और तब इस छन्द के रूप का विकास वैदिक उष्णिक् छन्द (७ अक्षर) से सिद्ध किया जा सकेगा।

नवीन छन्द

(१) श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने दिग्पाल से भिन्न १२, १२ मात्राओं के चरण का छन्द प्रयुक्त किया है। इसमें कभी त्रिकल के आधार पर १२ मात्राएँ चलती हैं कभी दो पँचकों और द्विकल के योग से बारह मात्राएँ बनती हैं, अन्त निश्चित रूप से त्रिकलात्मक होता है। इसका प्रौढ़ रूप SSS/SS/SIS/SSS या ISSSIS/S/SIS/S के समान होगा।

राष्ट्र ने कहा कि महायुग का नियोग करो।

कंपा दो विश्व को अब शक्ति का प्रयोग करो।

१ पत्त, स्वर्णधूलि मानसी, पृ० १६६।

२. सनेही, तोता।

३. हाफिज़ शीराजी।

हंटा दो दुश्मनों को हट के असहयोग करो ।
स्वतंत्र माता को कर के स्वराज्य भोग करो ।

(२) पन्त जी ने सारस छन्द से मिलता हुआ २४ मात्राओं का एक छन्द प्रयुक्त किया है, जिसमें त्रिकल और छकलों के आवर्त चलते हैं, तथा अन्त में चौकल या लघुमूलक त्रिकल का प्रयोग होता है, जो सारस छन्द के असमान है । उच्चारण से चौकल को भी त्रिकल के तुल्य पढ़ने की कहीं-कहीं नयी पद्धति अपनायी गयी है :—

३+३+६+६+२+३+३ खोलो जीर्ण विश्वासों, संस्कारों के जीर्ण वसन,
१२+६+६ रुढ़ियों रीतियों आचारों के अवगुंठन,
३+३+३+३+६+२+६ छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियों के जड़ बन्धन,
(आधिक्य दोष)

३+३+३+३+३+३+६ जाति वर्ण, श्रेणी वर्ग से विमुक्त जन नूतन
३+३+३+३+३+३+६ विश्व सभ्यता का शिलान्यास करे भव शोभन
३+३+३+३+३+३+६ देश-राष्ट्र-मुक्ति-धरणि पुण्य तीर्थ हो पावन ।

पहले चरण में 'खोलो' का दूसरा अक्षर लघु उच्चरित होता है । दूसरे चरण की पहली १२ मात्राओं (२ रगण-गुरु) की लय में परिवर्तन होता है और पहले तीसरे चरण में दो-दो मात्राएँ अधिक हैं ।

महावतारी वर्ग (छन्द के भेद, १२१३६३)

२५ मात्राएँ :—इस वर्ग का कोई छन्द इस युग में प्रयुक्त नहीं हुआ । गगनांगना (१६,६ अंत S1S) और मुक्तामणि (१३,१२, अंतSS) के अन्तिम-गुरु रोला और दोहा के अभ्यस्त कानों को नहीं रुचते । सुगीतिका छन्द रूपमाला के पहले एक लघु रखने से बनता है, अतः रूपमाला के अभ्यस्त कानों को बहुत अखरता है । मदनान (१७,८) का प्रथम खंड प्रवाहहीन है । नाग (१०,८,७) झूलना वर्ग का छन्द है, अतः वह भी पुरानी शैली में माना जाता है ।

महाभागवत वर्ग (छन्द के भेद १९६४१८)

२६ मात्राएँ :—विष्णुपद—इस छन्द में सोलह मात्राओं के बाद यति आती है और अन्त में गुरु होता है । अन्तिम दस मात्राएँ ४+३+३ या ४+४+२ या ३+३+४ के योग से बनती हैं । यह बहुत प्राचीन प्रचलित छन्द है । सार छन्द

१. सौ० सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, स्वागत गीत ।

२. पन्त, ग्राम्या, पृ० ६६ ।

का अन्तिम गुरु कम करने से यह छन्द बनता है । 'कावा और कर्वाला' के यहूदी शीर्षक (पृ० ३६) में गुप्तजी ने इस छन्द का प्रयोग किया है । भक्तिकालीन पदों में इसका विशेष प्रयोग हुआ है ।

अरी, वियोग-समाधि, अनोखी, तू क्या ठीक ठनी, १६ + १० मात्राएँ
अपने को, प्रिय को, अगती को, देखूँ खिची-तनी । ”
मन-सा मानिक मुझे मिला है, तुझमें उपल खनी । ”
तुझे तभी छोड़ूँ जब सजनी, पाऊँ प्राण-धनी । ”

गीतिका :—प्राचीन नियम के अनुसार १४, १२ मात्राओं पर यति आती है, और अंत में १५ होते हैं । यह छन्द सप्तक (S/SS) की तीन आवृत्तियों और रगण के योग से बनता है । इसकी तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्रा लघु होती है । यह छन्द हरिगीतिका की पहली दो मात्राएँ कम करने से बनता है । इस युग में इस छन्द में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । इसका अन्य नाम चंचरी या चर्चरी भी है ।

‘किसान’ (दिशत्याग, पृ० ३१) और ‘रंग में भंग’ में गुप्तजी ने इस छन्द का प्रयोग किया है ।

देवता थे / वे हुए द/र्शन अलौकिक / रूप था । ७ + ७ + ७ + ५ मात्राएँ
देवता थे मधुर सम्मोहन स्वरूप अनूप था ॥ ”
देवता थे देखते ही बन गई थी भक्त मैं । ”
हो गई उस रूप-लीला पर अटल आसक्त मैं ॥ ”

फ़ारसी बहर में यह छन्द ‘फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलुन्’ अरकान के आधार पर चलता है :—

शुबह दमचूँ/कल्ल बन्दद/आहे हूद आ/साये मन । ७ + ७ + ७ + ५ मात्राएँ
चूँ शफ़क़ दर/खूँ नशीनद/चश्मे शव पं/माये मन ३ । ”

१. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २०३ ।

२. स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, भ्रम ।

गो लघू गुरु सा पुनै जगने धरै दुगुनी जहाँ ।

फेरि गो लघु द्वै करै गुरुदेय कै लघु गो तहाँ ॥

वर्ण अष्टदशै भरै छहबीस मत्त प्रमानियो ।

चर्चरी यह छन्द जानि बिहारिलाल बखानियो ॥

छन्द-प्रभाकर-पिंगल, पं० जानी बिहारीलाल । हस्त० ना० प्र० सभा ।

३. हकीम अफ़जलुद्दीन खाकानी, १२वीं शताब्दी ।

दिगम्बरी :—यह छन्दसप्तक (ISSS) की तीन आवृत्तियों और यगण (ISS) के योग से बनता है। इसकी पहली, आठवीं, पन्द्रहवीं और बाईसवीं मात्रा लघु होती है, अन्त में प्रायः दो गुरु होते हैं, पर SS के स्थान पर सगण भी आ सकता है। उर्दू में यह बहर अधिक प्रयुक्त होती है, पर, हिन्दी में यह नवीन प्रयोग है। पार्वती' (कुमार-दीक्षा) में इस छन्द का विशेष प्रयोग हुआ है।

तिमिर के भा/ल पर चढ़कर/विभा के बा/ण वाले, ७+७+७+५ मात्राएँ

खड़े हैं मु/न्तजिर कब से/नये अभिया/न वाले । ”

प्रतीक्षा है/सुनें कब, व्या/लिनी फुंका/र तेरा । ”

विदारित कब/करेगा व्योम को हुंका/र तेरा^१ । ”

उर्दू में इसका वजुन ,मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन् फ़ऊलुन् है।

नाक्षत्रिक वर्ग (छन्द के भेद ३१७=११)

२७ मात्राएँ :—सरसी :—प्राचीन नियम यह है कि सोलह मात्राओं के बाद यति हो, और अन्त में SI हो, इस छन्द में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। कुछ प्रयोग बिना यति के भी मिलते हैं, यही नयी बात है, पर, इससे लय में अन्तर नहीं आता। 'इस छन्द का आधार समप्रवाही अष्टक पर्व है। यह लक्षण महत्वपूर्ण है।

तोड़ो सब शृंखला, उन्हें निज/जीवन बंधन जान, १६+११ मात्राएँ, अन्त SI

हो उज्ज्वल काँचन के अथवा/क्षुद्र धातु के म्लान, ”

प्रेम-धृणा, सद्-असद्, सभी ये/द्वन्द्वों के सन्धान । ”

दास सदा ही दास, समादृत/वा ताडित परतन्त्र, ”

स्वर्ण-निगड् होने से क्या वे/सुदृढ़ न बंधन-यंत्र, ”

अतः उन्हें सन्धासी तोड़ो,/छिन्न करो, गा मन्त्र^२ । ”

गुप्तजी ने 'काबा और कुर्वा' न्याया (पृ० ५३) और 'जयभारत' (एकलव्य, पृ० ४३; राजसूय, पृ० १२९) में, एवं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'भ्रमजाल' (कवि भारती, पृ० ३०४), में सरसी छन्द का प्रयोग किया है। गुम्फित अन्त्यानुप्रासयुक्त (क,स,क,ख) सरसी का प्रयोग भी प्रस्तुत किया जाता है।

कौन छेड़ता मुरली स्वर, धर स्वप्न चरण लघु भार,

मन्दिर के आँगन में किसकी, गूँज रही पद-चाप ?

आः, यह गोपन हृदय-प्रान्त या मधुर स्वर्ग का द्वार ?

देवदूत सा प्रेम, प्रतीक्षा में कब से चुपचाप !^३

१. बिनकर, हुंकार, दिगम्बरि, पृ० २४।

२. पन्त, स्वर्णधूलि, सन्धासी का गीत, पृ० १३१।

३. पन्त, अतिमा, पृ० १।

अर्द्धसम प्रयोगः—

निखिल कल्पनामयि अप्सरि ! १६ मात्राएँ

अखिल विस्मयाकार ! ११ ”

अकथ अलौकिक अमर अगोचर, १६ ”

भावों की आधार ! ११ ”

हरिगीतिका के पहले गुरुको लघु छन्द करने से शुभगीता (१५, १२, अंत S।S और गीतिका के अन्त में लघु जोड़ने से शुद्ध गीता छन्द (१४, १३, अंत S।) बनता है । पहले छन्द का जगणात्मक आरंभ और दूसरे का जगणात्मक अंत लय पर आघात करता है, अतः गीतिका और हरिगीतिका के प्रवाह के सामने यह दोनों छन्द प्रचलित न हो सके ।

यौगिक वर्ग (छन्द के भेद ५१४२२६)

२८ मात्राएँ:—सार—प्राचीन नियम के अनुसार सोलह मात्राओं के बाद यति और अंत में दो गुरु होने चाहिए। इसके अन्य नाम दोवै और नरेन्द्रललित पद हैं। अंत में मधुरता एवं सुविधा के लिये ॥S और S॥ का प्रयोग पहले भी होता था और अब होता है। नवीन प्रयोगों में कभी-कभी बीच में यति नहीं आती हैं। प्राचीन लोग इसे यतिभंग मानेंगे, परन्तु लय-प्रवाह अखंड होने पर इसे अक्षम्य दोष नहीं मानना चाहिए।

इस छन्द का आधार समप्रवाही अष्टक पर्व है ।

उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरन सी वामा ।

कवि के स्वप्न समान, विश्व के/विस्मय सी अभिरामा ॥

सिन्धु-गोद में लय से पहले/तरंगिता सरिता सी ।

आकर चकित हुई तट, पर प्रिय/तम-दर्शन की प्यासी ।^२

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' में, गुप्त जी ने बन्धुविद्वेष (जयभारत) और 'द्वापर' में, प्रसाद जी ने 'कर्म' (कामायनी) में एवं भारतीयनन्दन ने 'पार्वती' में सार छन्द का सर्ग-गत प्रयोग किया है ।

आलिङ्गित (क, ख, ख, क) अन्त्यानुप्रास क्रम का उदाहरणः—

विधुरा फाल्गुण की सन्ध्या: वन-वोधी में इठलाती,

मदिर बनेली गन्ध, मधुर भीनी महकों से गुम्फित,

नासा-रन्ध्रों में घुसकर, प्राणों की कर सुख-मूर्छित,

शत-शत अस्फुट सुमनों की मधु स्मृति उर में भर लाती ।^३

१. पन्त, पल्लविनी, अप्सरा, पृ० १६४ ।

२. रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, प्रथम सर्ग, ४ ।

३. पन्त, अतिमा, पतभर, पृ० १०४ ।

त्रिसम पादः—

बाँध लिया तुमने प्राणों को/फूलों के बंधन में,
एक मधुर जीवित आभा सी/लिपट गई तुम तन में !
बाँध लिया तुम ने मुझको स्व/प्नों के आलिंगन में^१ !

वर्द्धसम प्रयोगः—इस छन्द में १६ मात्राओं के विषम चरण और १२ मात्राओं के सम चरण होते हैं। वस्तुतः इस छन्द में लिपि-विशेषत्व ही मानना चाहिए, क्योंकि सार के एक चरण को ही दो पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है।

उधर सोम का पात्र लिए मनु,	१६ मात्राएँ
समय देख कर बोले—	१२ ,,
‘श्रद्धे’ ! पीलो इसे बुद्धि के	१६ ,,
बंधन को जो खोले ^२ ।	१२ ,,

मराठी भाषा में ‘साकी’ इसी छन्द के आधार पर लिखी जाती हैः—

श्री रघुवंशी ब्रह्मप्रार्थित/लक्ष्मीपति अवतरला ।
विश्व सहित ज्याच्या जनकत्वे/कौशल्या धवतरला^३ ॥

जयदेव ने इस छन्द का सर्वाधिक मधुर प्रयोग किया है। श्री माधवराव पटवर्धन ने जयदेव के ‘ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे’^४ चरण के आधार पर इसका नाम ‘ललितलवंग’ रखा है। उन्होंने इसका लक्षण तीन अष्टकों का आवर्तन और चौकल का योग माना है।^१ मराठी के पदों में इस छन्द का प्रयोग होता है^५ः—

१. पन्त, युगवाणी ।

२. प्रसाद, कामायनी, कर्म, पृ० १३४ ।

३. भानु, छन्दःप्रभाकर, पृ० ६६ ।

४. धीर समीरे यमुना-तीरे बसति बने बनमाली ।

गोपीपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली ॥

रतिमुखसारे, गतमभिसारे, सदनमनोहरवेशम् ।

न कुरु नितम्बिनि ! गमनविलम्बनमनुसरतंहृदयेशम् ॥

नामसमेतं कृतसंकेतं वादयतेमृदुवेषम् ।

जयदेव, गीतगोविन्द, नवमालोक ।

५. या पद्यांतील सारे चरण सार से (प,प,प,स,स) या मोडणीचे आहेत । चरणारम्भींच आवर्तनाला आरम्भ होऊन आठ आठ मात्रांची तीन आवर्तने झाल्यावर चौथ्या आवर्तनांत चार चारच मात्रा सशब्द आहेत । अर्थात् प्रयुक्त चरणाच्या अन्तीं चार मात्रांचा विराम आहे । माधवराव पटवर्धन, छन्दोरचना, पृ० ३३५ ।

मर्जी देवाची देवाची ।	१६ मात्राएँ
मिथ्या धावमनाची ।	१२ ”
मनांत येतें हत्ती घोडे, पालखींत बैसावे,	१६+१२ मात्राएँ
देवाजीच्या मनांत याला, पायीं च चालवावे ^१ ॥	१६+१२ ”

बंगाल के वैष्णव कवि चंडीदास, गोविन्ददास और आधुनिक युग में भानुसिंह (रवीन्द्रनाथ) ने पदों में सार छन्द का प्रयोग किया है । भारत के राष्ट्रगीत (रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत) 'जनमनगन' का छन्द सार ही है । गीत की टेक (छन्दक) सार छन्द की है । दूसरी पंक्ति के प्रारम्भ में तगण (पंजाब) आने के कारण १८ और १२ मात्राओं का चरण हो गया है, पर छन्द की लय 'जाव' से प्रारम्भ होती है और गीत का पहला चरण होने के कारण २ मात्राएँ बढ़ने पर भी संगीत में व्याघात नहीं आता । अतः, राष्ट्र-गीत का यह विशेष दोष क्षम्य कहा जा सकता है । आगे के दो चरण सार छन्द के ही हैं । फिर १२ मात्राओं (सार का सम भाग) के तीन चरण और फिर सार का पूरा चरण आता है । छन्द का अन्तिम चरण समप्रवाही १२ और १० मात्राओं के योग से बनता है । इस प्रकार इस कविता का एक पदबन्ध बन जाता है । छन्द का विकर्षाधार रवि ठाकुर का अपना है । इसका अन्त्यानुपास अ, व, व, स, स, अ, अ और द क्रम से है ^२।

हरिगीतिका:—प्राचीन आचार्यों ने १६ मात्राओं के बाद यति मानी है और अन्त में लघु गुरु का नियम दिया है । भानु और विहारीलाल ने इस छन्द को क्रम-नियम से खूब बाँधा है ^३ । सरल नियम यह है कि इसमें सप्तक (SSIS) की चार आवृत्तियाँ

१. बल्लव कवि, पदसंग्रह, ३, २१३ ।

२. जन-मन-गन-श्रुतिनायक जय हे, / भारत-भाग्य-विधाता । / १६+१२ मात्राएँ
 पं/जाब, सिन्धु, गुजरात, मराठा/द्राविड़, उत्कल, बंगा ॥ २+१६=१८ ”
 विन्ध्य, हिमाचल यमुना, गंगा/, उच्छल जलधि-तरंगा / १६+१२ ”
 तब शुभ नामे जागे/, तब शुभ आशिष माँगे / १२+१ ”
 गाहे तब जय-गाथा । १२ ”

जन-मन-संगलदायक जय हे, / भारत-भाग्य-विधाता / १६+१२ ”
 जय हे, जय हे, जय हे/ जय जय जय, जय हे ॥ २०+१० ”

रवीन्द्रनाथ, सञ्चयिता, भारत-विधाता ।

३. इस का रचनाक्रम यों है:—२+३+४+३+४+३+४+५=२८ । जहाँ जहाँ चौकल हैं, उन में 'जन' जगण निषिद्ध है, अन्त में रगण कर्णमधुर होता है ।
 आचार्य भानु, छन्द प्रभाकर, पृ० ६६ ।

होती हैं। इसकी पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती हैं। यह छन्द वीर रस, शृंगार रस, करुण रस और शान्त रस के अनुकूल है। इसका विशेष प्रयोग 'भारत-भारती' और 'जयद्रथवध' में हुआ है। संस्कृत के मन्दाकिनी वृत्त से इसका विकास हुआ है^१। मराठी में हरिगीतिका का 'दलभा' भी नाम है, जो इस छन्द की शृङ्गाररससिद्धता का द्योतक है। 'प्राकृत पैङ्गलम्' में इसका उदाहरण और लक्षण प्राप्त है। लक्षण में (पंचक, पंचक, पंचक, पंचक, छकल, गुरु) दिए हुए पंचक और छकलों की मात्राओं का क्रम—निर्देश करने से विशेषण में दोष आ गया है। ग्रंथकार ने लक्षण के बाद १४ मात्राओं की दो आवृत्तियों का विवरण देकर अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। छन्द का उदाहरण पूर्णतया निर्दोष है^२।

हिन्दी में गुप्त जी ने १६ मात्राओं पर यति का नियम न मानकर १४ मात्राओं के बाद माना है। इस प्रयोग का शास्त्रीय आधार भी है, क्योंकि १४ मात्राओं के बाद दो सप्तक पूरे होते हैं। १४ मात्राओं पर यति रखने से छन्द अधिक क्षिप्रगतिशील, प्रौढ़ और ओजोमय हो जाता है। १६ मात्राओं के बाद यति देने से छन्द धीरे-धीरे तरंगायित होता है, जिस से शृङ्गारमूलक कोमलता अधिक आ जाती है। गोस्वामी जी ने इस छन्द में रामचरितमानस में १६ मात्राओं के बाद यति दी है। गुप्त जी के छन्दों में १४ अथवा १६ मात्राओं के बाद स्वेच्छा से यति आती है।

कल प्रथम जामे पंचकल पुनि छकल आगे कीजिये ।

गनि देहु तीनहु पंचकल जहँ, अन्त में गुरु दीजिये ॥

प्रतिचरण सत्ता अष्टाविंशति छन्द सो हरिगीत है ।

अहिराज मत सुखसाज सो भव-सिन्धु तरत गँभीर है ।

छन्दःप्रकाशपिगल, द्वितीय विभास, १७६, पं० जानी विहारीलाल ।

१. मन्दाकिनीमयतागोवेदैर्वैद्ययतिर्भवेत् । (मन्दारसरन्दाचम्पू, कृष्णकवि) अर्थात्
SS|SSS|SSS|SSS|S = तगण, मगण, यगण, रगण, तगण गुरु ।

२. गण चारि पंचकल (यदि) ठविज्जसु वीअ ठामहि छक्कलो ।
पअ पअह अंतहि गुरु करिज्जसु वण्णणेण सुसब्बलो ।
दह चारि बुक्कइ दह दुमाणहु मत्त ठाइस पाअओ ।
हरिगीय छन्द पसिद्ध जाणहु पिगलेश पआसिओ । १६१ ।

उदाहरणः—गअ गअइ बुक्कअ तरणि लुक्कय तुरअ तुरअहि जुज्झआ ।
रह रहहि मील्लिअ धरणि पीलिअ अण्णवरणहि बुज्झआ ।
बलमिलिअ आइअ पत्ति जाइउ कंण गिरिवर सीहरा ।
उच्छलइ साअर दीन काअर बइर बड्डिअ दीहरा ।

प्राकृतपैङ्गलम् । १। १६३ ।

रवि को छिपा/ने के प्रथम/ मुझको सचे/त किया नही/, ७+७+७+७ मात्राएँ
 आ जाय मर/ने की दशा/ ऐसी हूँसी/ होती कहीं/ ? ”
 हूँसने लगे/ तब हरि अहा/ ! पूर्णेन्दु सा/ मुख खिल गया/, ”
 हूँसना उसी/ में भीम अ/र्जुन, सात्यकी/ का मिल गया/१ ! ”

इस छन्द में चौथे चरण में १६ मात्राओं के बाद यति आती है और प्रथम तीन चरणों में १४ मात्राओं के बाद ।

फारसी में यह छन्द ‘मुतफायलुन् मुतफायलुन् मुतफायलुन् मुतफायलुन्’ या ४ बार “मुस्तफ़ायलुन्” के वजन पर चलता है:—

मन त्र शुदं/ तू मन शुदी/ मन तन शुदं/ तू जाँ शुदी/ ।
 ताकस न गो/यद बादजीं/ मन दीगरं/ तू दीगरी/ ॥

विधाता—इस छन्द में १४ मात्राओं पर यति होती है । इसका निर्माण सप्तक (ISSS) की ४ आवृत्तियों से होता है । इसकी पहली, आठवीं, पंद्रहवीं और बाईसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है, और अन्त में दो गुरु श्रुतिमधुर होते हैं । इसका प्रयोग गीतों में अधिक होता है । यह छन्द शृङ्गार रस के लिए अधिक उपयुक्त है ।

अभी कुछ दे/र मेरे का/न में गूँजे/ तुम्हारा स्वर/, ७+७+७+७ मात्राएँ
 बहे प्रति रो/म से मेरे/ सरस उल्ला/स का निझरं/, ”
 बुझा दिल का/दिया दायद/किरण सा खिल/उठा जल कर/, ”
 ठहर जाओ/ धड़ी भर औ/र तुम को दे/ख लें आँखें/२ ! ”

दूरान्तर अन्ययानुप्रासमूलक प्रयोग:—

कड़ी आरा/धना कर के/बुलाया था/तुम्हें मैं ने/, ७+७+७+७ मात्राएँ
 पदों को पू/जने के ही/ लिए थी सा/धना मेरी/ ”
 तपस्या ने/म-व्रत कर के/रिझाया था/उन्हें मैं ने/, ”
 पधारे दे/व पूरी हो/ गई आरा/धना मेरी/३ । ”

फारसी में यह छन्द “मफाईलुन् मफाईलुन् मफाईलुन् मफाईलुन्” के वजन पर चलता है । यह बहरे हज्ज का ‘मुसम्मन’ (चार आवृत्तियाँ) भेद है ।

इला या अ/य्यो हस्साकी/ अदिर कासों/ व नाविल हा/, ७+७+७+७ मात्राएँ
 के इश्क आसां/ नमूदअव्वल/ बले उफ़ता/द मुश्किल हा/४ । ”

१. गुप्त, जयद्रथबध, सप्तम सर्ग, पृ० ६१ ।
२. अंचल, लालचूनर ठहर जाओ, पृ० १२ ।
३. स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, कलहकारण ।
४. हाफ़िज़ शीराज़ी, ग्यारहवीं शताब्दी, कुल्लियातशीराज़ी ।

मराठी में इसे 'जीवकलिका' छन्द कहते हैं। इसका विकास वियद्गङ्गा वृत्त (ISSSISSSISSS SSS) से हुआ है^१।

पटवर्द्धन जी ने लक्षण-सूत्र का उद्धरण नहीं दिया है और अन्यत्र भी छन्दोग्रंथों में यह छन्द प्राप्त नहीं है, अतः लेखक स्वयं वृत्त का सूत्र दे रहा है:—

‘यरी तामी यगौ यामैः सदा वन्द्या वियद्गङ्गा’।

इसका अर्थ यह है कि यगण, रगण, तगण, मगण, यगण और गुरु के योग से, ८ (याम) अक्षरों के बाद यति से, यह वियद्गङ्गा सदा वन्दनीय है।

मानवीयः—यह छन्द मानव छन्द की दो आवृत्तियों से बनता है और समप्रवाही होने के कारण सम-विषम मात्रामैत्री के आधार पर चलता है।

बालों में श्याम घटाएँ, / कानों में बिजली चमकी/।

हैं शोभा अजब निराली / शैशव-यौवन संगम की/।

गालों पर ऊषा आ जा, / लज्जा सी छिप-छिप जाती/।

बालापन छूट चला है, / नहीं आता बहुत बुलाती/^२।

माधवमालतीः—यह नवीन छन्द है। सप्तक (S:SS) की चार आवृत्तियों से इसका निर्माण होता है। इसकी तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है और अन्त में दो गुरु श्रुतिमधुर होते हैं। संयोग-वियोग के हर्ष-उल्लास एवं वेदना-व्यथा को व्यंजित करने में यह छन्द अत्यन्त सिद्ध है। आजकल गीतों में इस छन्द का बहुत प्रचार है। इसकी लय में उत्सव के बाद का अवसाद होता है, जो मधुर स्मृतियों से भरा प्रतीत होता है। इसीलिए यह छन्द वियोग श्रृङ्गार में संयोग से भी अधिक सफल होता है।

सृष्टि के आ/रम्भ में मैं/ने उषा के/गाल चूमे/, ७+७+७+७ मात्राएँ

बाल रवि के/भाग्य वाले/दीप्त भाल वि/शाल चूमे। ,,

प्रथम संध्या/के अरुण दृग/चूम कर मैं/ने सुलाये/ ,,

तारकावलि/से सुसज्जित/नव निशा के/बाल चूमे^३/। ,,

महादेवी वर्मा, निराला, नरेन्द्र, बच्चन और चन्द्रप्रकाशसिंह ने इस छन्द का विशेष प्रयोग किया है। फ़ारसी में यह छन्द ‘फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलातुन् फ़ायलातुन्’ के आधार पर चलता है। मराठी में इसे “कालगंगा” छन्द कहते हैं। इस छन्द का विकास “व्योमगंगा” वृत्त से सिद्ध किया जा सकता है, जिसका लक्षण है ‘तौम्यौगौ व्योमगंगा जैः’^४ अर्थात् SISS/SISS/SISS/SISS

१. माधवराव पटवर्द्धन, छन्दोरचना, पृ० १७२।

२. गुरुभगत सिंह, नूरजहाँ, ६ सर्ग।

३. बच्चन, मधुकलश, कवि की वासना।

४. माधवराव पटवर्द्धन, छन्दोरचना, पृ० १७६।

मणिवन्धक :—यह छन्द मणिवन्ध (छन्दाण्व, ५ तरंग, १०६; भिखारीदास) का दुगुना होता है। मणिवन्ध का प्रयोग पंतजी ने गुञ्जन में किया है:—‘कब से विलोकती तुमको, ऊषा आ वातायन से। सन्ध्या उदास फिर जाती, सूने गृह के आंगन से’ ॥ इस छन्द के स्फुट प्रयोग सुभद्रा कुमारी चौहान और पं० उमादत्त सारस्वत ने किए हैं। मणिवन्ध के आधार पर ही मणिवन्धक बना है, जो प्रयोग की दृष्टि से आधुनिक नवीन छन्द है। इस छन्द में सम और विषम मात्रिक दोनों ही समप्रवाही संयोग मान्य हैं। १४ मात्राओं पर यति आती है और २८ मात्राओं के बाद युग्मक अन्त्यानुग्रास आता है। यह छन्द आत्माभिव्यंजन के अनुकूल है, अतः शृंगार प्रगीतों में ही अधिक शोभा देता है।

मानस-मन्दिर में प्रोज्ज्वल, आकर्षक दीप शिखा सी।

शारद सरिता-अञ्चल में, मृदु-नर्तित इन्दु-विभा सी ॥

पल्लवित प्रणय-कानन में, मोहक वसन्त-महिमा सी।

तुम मथित क्षीर-सागर पर, इन्दिरा रूप-अतिमा सी^१ ॥

नन्दन :—श्री सुमित्रानन्दन पन्त इस छन्द के आविष्कारक हैं। यह छन्द शृङ्गार छन्द की लय पर १६ और १२ मात्राओं के योग से बनता है। इसका विषम चरण शृङ्गार का है; सम चरण शृङ्गार के अन्तिम जगण (।s) को घटा कर १२ मात्राओं से बनता है। इन दोनों चरणों की लय का आधार एक ही है, अतः दोनों का संयोग अनुकूल है। इस छन्द में उल्लास, हर्ष और शुभाशंसा की व्यंजना अधिक होती है, अतः सम्भोग शृङ्गार और प्रकृति-वर्णन के अनुकूल है। इसके प्रत्येक चरण का आरंभ विषम मात्रिक होता है और अंत में s। रहते हैं।

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ? १६ मात्राएँ

अये, अभिनव अभिराम ॥ १२ ”

मृदुलता हीं है बस आकार। १६ ”

मधुरिमा छवि-शृङ्गार ॥ १२ ”

न अंगों में है रंग-उभार। १६ ”

न मृदु उर में उद्गार^२ ॥ १२ ”

महायौगिक (छन्द भेद ८३२०४०) २६ मात्राएँ

२६ मात्राएँ—मरहठामाधवी:—प्राचीन काल में यह छन्द झूलना शैली में (११, ८, १० मात्राओं की यति से) प्रयुक्त होता था और अन्त में लघु-गुरु का नियम था। अब इस छन्द ने नया रूप धारण कर लिया है। इसके अन्त में लघु-गुरु तो ज्यों के त्यों रहते हैं, पर यति केवल सोलहवीं मात्रा के बाद आती है। यह छन्द सार छन्द के अन्तिम

१. चन्द्राकर, स्मृति-कल्पना।

२. पन्त, पल्लविनी, शिशु, पृ० १०६।

गुरु के स्थान पर लघु-गुरु रखने से बनता है। बच्चों के कोरस में भी यह छन्द प्रयुक्त हो सकता है और साथ ही साथ विनोदात्मक अगम्भीर शृङ्गार में भी सफल हो सकता है।

मुरली है अपूर्व असि उसकी/, विजयी है वह प्रेम का। १६+१३ मात्राएँ, अंत SS

वह गोधन का धनी, हाथ है/उस उदार का हेम का। ”

शिखिशेखर को ध्यान सदा है/, सब के योगक्षेम का, ”

राधा चिढ़े श्यामता हरि की/, है उसके विधुभाल की। ”

बलिहारी, बलिहारी, जय जय/, गिरधारी गोपाल की। ”

कौरव-पाण्डव (जय भारत), प्रमाण (काबा और कर्बला), द्वापर और यशोधरा में इसका विशेष प्रयोग हुआ है। इसकी अन्तिम १३ मात्राएँ ‘जय कन्हैयालाल की, ठाकुर बैठे पालकी’ की लय पर हैं, जो बालविनोद के लिए उपयुक्त हैं।

जयलक्ष्मी :—यह नवीन छन्द चार षष्ठकों (३+३ या २+४ या ४+२) और रमण के योग से बना है। इस छन्द कुण्डल वर्ग से सम्बद्ध है। हर्ष, उल्लास और ओजपूर्ण सशक्त भाव की अभिव्यक्ति इस छन्द में सफलता से होती है।

शारदीय/कुमुद-कली/मृदुमुख में/नवल कान्ति/इन्दुजा।

मैना-शिशु/के समान/मधुर-मधुर/बोल रही/‘सिन्धुजा’ ॥

धन्य भाग्य/जयलक्ष्मी/आई शिशु/रूप धरे/गेह में।

स्वर्ण-कान्ति/दीप-शिखा/दीप्त हुई/दम्पति के/स्नेह में ॥

इस वर्ग के अन्य छन्द चुलियाला (१३, १६, अन्त लघु गुरु लघु लघु), मरहठा (१०, ८, ११ मात्राएँ, अन्त गुरु लघु) अपनी अस्थानिक गति के कारण प्रचलित नहीं हो सके। धारा छन्द (१५, १४ अन्त गुरु) का पहला अंश चौपई का है और दूसरा अंश हाकलि का है, अतः पूरे चरण में समात्मक प्रवाह नहीं आ पाता।

महातैथिक वर्ग (छन्द भेद १३४६२६६) ३० मात्राएँ

ताटक—इस छन्द में १६ मात्राओं के बाद यदि होती है। प्राचीन आचार्यों ने छन्द के अन्त में मगण आवश्यक माना है; अब SS, IIS, SI समात्मक वर्णक्रम

१. श्री मैथिलीशरण गुप्त, द्वापर, बालबाल, पृ० ६३।

अनुवय रयण पईड कृत ‘रोहिणी विधान कहा’ (१४वीं शताब्दी) के भूलना (१०, ८, १३ मा.) के अन्तिक लय खण्ड में मरहठा माधवी के अन्तिम लय के समान गति प्रयुक्त हुई है :—

जिनवर वंदेविणु, भाव धरेविणु, दिव्व वाणि गुरु भत्तिए।

रोहणि उसवासहो, डुरिय विणासहो, फलु अक्खमि णिय सत्तिए ॥

२. चन्द्राकर; शिशु ‘सिन्धुजा’।

लहराती है रोम - रोम में, १६ ”

अहा ! अमृत की सी तरंग ! १४ ”

यह छन्द ‘हल्दी-घाटी’ में भी प्रयुक्त हुआ है, पर उसमें अधिक सफलता नहीं मिली है।

गोपी-वत्सलभः—यह छन्द गोपी छन्द की दो आवृत्तियों से बनता है। गोपी छन्द शृंगार की अन्तिम लघु मात्रा न्यून करने से बनता है।

उठो प्रिय देव ! न अब हिचको, स्वपत्नी को आ अपना लो।

न सकुचो तुम कुबेरनागा, तुरत तुम जयमाला डालो २।

रुचिरा (१४, १६ अन्त गुरु), शोकहर (८, ८, ८, ६, अन्त गुरु), वर्ण छन्द (१३, १७, अन्त में दो गुरु) आजकल प्रयोग में नहीं आते। रुचिरा की अप्रवाह-मानता, शोकहर की प्राचीन झूलना शैली और वर्ण छन्द में यति के स्थान पर विषम मात्रिक प्रयोग प्रचार में बाधक बने हैं।

अगले वर्ग का विवरण देने के पहले यह बता देना आवश्यक है कि आजकल ताटंक छन्द के साथ वीर छन्द का भी प्रयोग होता है। चूँकि ताटंक के अन्त में लघु बढ़ा देने से वीर छन्द बन जाता है, इसलिये दोनों की लय में कोई भेद नहीं उपस्थित होता, केवल निपात में थोड़ा अन्तर हो जाता है। यद्यपि लक्षण के हिसाब से ऐसे चरण वीर छन्द ही माने जायेंगे, पर प्रयोग में उन्हें ताटंक का अपवाद ही मानना चाहिए, क्योंकि बहुत से ताटंक-चरणों के बीच ऐसे प्रयोग आते हैं। ऐसा वर्गीकरण वैदिक युग में भी होता था। यदि त्रिष्टुभ् छन्द के चरण (११ अक्षर) का प्रयोग बहुत से वृहती चरणों (१० अक्षर) के बीच होता था, तो उसे वृहती का अपवाद और यदि जगती चरणों (१२ अक्षर) के बीच होता था, तो उसे जगती का अपवाद मान लिया जाता था। ताटंक के बीच वीर चरण के प्रयोग मनोहारी विविधता और नवीनता प्रस्तुत करते हैं, अतः ऐसे प्रयोग अभीष्ट और अभिनन्दनीय हैं। ऐसे संयोगों को ‘ताटंकवीर’ कह सकते हैं। यह छन्द मिश्रित छन्द की कोटि में माना जायगा।

वह अनांग पीड़ा अनुभव सा ,	१६ मात्राएँ
अंग - भंगियों का नर्तन ,	१४ ”
मधुकर के मरद - उत्सव सा ,	१६ ”
मदिर भाव से आवर्त्तन ।	१४ ” (ताटंक छन्द)
सुरा सुरभिमय वदन अरुण वे ,	१६ मात्राएँ
नयन भरे आलस अनुराग ;	१५ ”
कल कपोल था जहाँ विछलता ,	१६ ”
कल्पवृक्ष का पीत पराग ३।	१५ ” (वीर छन्द)

१. गुप्त, यशोधरा, पृ० १११।

२. गुच भगवत्सिंह, विक्रमादित्य।

३. प्रसाद, कामायनी, चिन्ता, पृ० ११।

अश्वावतारी वर्ग (छन्दभेद २१७८३०६) ३१ मात्राएँ

इस वर्ग का सब से अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित छन्द वीर है, जिसमें १६ मात्राओं के बाद यति होती है और चरण के अन्त में गुरु-लघु का अनिवार्यतः प्रयोग होता है। इसका प्रवाह सम-प्रधान है, अतः इसमें भी चौपाई की भाँति सममात्रामैत्री चलती है। इस छन्द के प्रथम रक्षयिता श्री जगनिक भट्ट माने जाते हैं। इन्होंने 'आल्हखंड' प्रबन्ध गीत लिखा था, जिसमें महोबे के दो वीरों—आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन है। यह मूल ग्रन्थ तो लुप्त हो चुका है, पर उसी छन्द-शैली में अन्य आल्हखंड प्रचलित हैं। आज मूल की एक पंक्ति भी प्राप्त नहीं है, पर छन्द के आविष्कारक के नाते जगनिक का नाम प्रसिद्ध है। किसी भी एक छन्द के आविष्कारक को इतना यश संसार में नहीं मिला होगा। इस छन्द ने रासोप्रबन्धों के साहित्यिक रूप को, जिनमें वृत्तों और अप्रचलित मात्रिकों का प्रयोग होता था, सामान्य जनता के घरातल तक पहुँचा कर जागरण का कार्य किया है। आज भी गाँव के लोग इस छन्द से अपार शक्ति और ओज की प्राप्ति करते हैं। वीर छन्द ही भारतवर्ष का ऐसा वीर है, जो हजार वर्ष की गुलामी में न कभी पराजित हुआ और न अनुत्साहित। यह छन्द बुन्देलखंड, विन्ध्यप्रदेश एवं समस्त अवध में प्रचलित है। प्रायः अलहैत लोग बरसात में ढोल के साथ इस छन्द को गाते हैं। फरखाबाद के एक कलक्टर मि० चार्ल्स इलियट ने पहले पहल इन गीतों का संग्रह आज से लगभग सौ वर्ष पहले छपवाया था^१। खड़ी बोली में इसका प्रयोग वीर रस और शृंगार रस में हुआ है। आल्हखंड में शृंगार और वीर दो रस प्रमुख हैं, अतः वीर छन्द की शृंगार-रस-सिद्धता बहुत पुरानी है।

कारि बदरिया तुम मोरी बहिनी,
कौंधा बिरना लगें हमारि।

झिमिकि के बरसौ सतखंडा पर,
कन्ता एक रैन रहि जायँ^२॥

गुप्त जी ने 'गुरुकुल' में आद्योपान्त एवं 'अर्जन और विसर्जन' में (विसर्जन, प्रदक्षिणा, अञ्जलि और अर्घ्य) में स्फुट प्रयोग किए हैं। नवीन जी ने 'विनोवास्तवन' में (पृ० १) इस छन्द का प्रयोग किया है। पं० गोकुलचन्द्र शर्मा ने 'तपस्वी तिलक' के तीसरे सर्ग में और रामानन्द ने 'पार्वती' में (सर्ग १, १७, २३, २४) इस छन्द का विशद प्रयोग किया है। पंत जी ने 'अनंग' (पल्लविनी) कविता में इसका मधुर रूप प्रस्तुत किया है।

नहीं जानतीं हाय ! हमारा, माताएँ आभोद-प्रमोद, १६+१५ मात्राएँ
मिली हमें है कितनी कोमल, कितनी बड़ी प्रकृति की गोद। अंतः SI „

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५२।

२. संगृहीत, लेखक।

इसी खेल को कहते हैं क्या विद्वज्जन जीवन-संग्राम ।

तो इस में सुनाम कर लेना, है कितना साधारण काम ।

अर्द्धसम प्रयोगः—

अहं विश्व अभिनय के नायक ! १६ मात्राएँ

अखिल सृष्टि के सूत्राधार ! १५ ,,

उर-उर के कम्पन में व्यापक ! १६ ,,

ऐ त्रिभवन के मनोविकार २ ! १५ ,,

इस वर्ग में अधुनिक युग में तीन नवीन छन्द प्रयुक्त हुए हैंः—

(१) मधुमालतीलताः—यह छन्द सप्तक (S I S S) की ४ आवृत्तियों में गुरु-लघु जोड़ने से अथवा रूपमाला के आदि में सप्तक जोड़ने से बनता है ।

यह खुला नभ/, यह खुला नभ/, खिल रही ये/ चाँदनी अन/मोल, ७+७+७+७+३
यह अमृत की/ दृष्टि खिलती/ कुमुदिनी सी/सृष्टि दृग उर/खोल^३ । मात्राएँ, अन्त S I

(२) गोपी-शृंगारः—इस छन्द के विषम चरण गोपी छन्द (१५ मात्राएँ, आदि लघु गुरु, अन्त गुरु गुरु) और सम चरण शृंगार छन्द (१६ मात्राएँ अन्त गुरु लघु, आदि त्रिकल) से बनता है ।

हृदय की व्याकुल ज्वाला से, १५ मात्राएँ

हुए व्याकुल हम उस दिन पूर्ण, १६ ,,

देखती प्यासी आँखें थीं, १५ ,,

रस-भरी आँखों को मदघूर्ण ४ । १६ ,,

(३) शृंगार-गोपीः—अर्द्धसम रूप में इसके विषम चरण शृंगार छन्द के और सम चरण गोपी छन्द के होते हैं ।

धूप थी कड़ी पवन था ऊष्म, १६ मात्राएँ

धूलि की भी थी कमी नहीं । १५ ,,

भूलकर विश्व खेल में व्यस्त, १६ ,,

रहे हम उस दिन कभी नहीं ५ । १५ ,,

सममात्रिक अन्त का प्रयोग अधिक श्रुतिमधुर होता है—

सखे ! जाओ तुम हँस कर भूल/, रहूँ मैं सुध करके रोती/ ।

तुम्हारे हँसने में हैं फूल/, हमारे रोने में मोती/ ॥ ६ १६, १५ मात्राएँ, अन्त SS

१. गुप्त, पंचवटी, पृ० ११ ।

२. पन्त, पल्लविनी, अनंग, पृ० १०२ ।

३. नरेन्द्र शर्मा, पलाशवन, रानीखेत की बात ।

४. प्रसाद, भरना, पृ० ३३ ।

५. प्रसाद, भरना, धूलि का खेल, पृ० ७५ ।

६. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २३३ ।

शृङ्गार-गोपी:—(समरूप) शृङ्गार (१६ मात्राएँ, आदि त्रिकल, अंतःSI) और गोपी (१५ मात्राएँ, आदि त्रिकल और शेष १२ मात्राएँ समप्रवाही, अन्त मेंS)के संयोग से इस छन्द का निर्माण हुआ है। शृङ्गार-राग (शृङ्गार का दुगुना) की अन्तिम लघु मात्रा हटाने से यह छन्द बनता है। इसमें १६ मात्राओं के बाद यति आती है और ३१ मात्राओं के बाद युग्मक अन्त्यानुप्रास। यह छन्द सुखपूर्ण कोमल भावों के अनुकूल है। 'पाथेय' (समाधान, पृ० ८८) में सियारामशरण गुप्त ने इस छन्द का प्रयोग किया है।

सभी अंगों में उसके नित्य, छलकता था मद यौवन का।

अजब था रंग प्रेम से तृप्त, अधखुले पंकज-लोचन का॥

अधर पर उसके मृदु मुस्कान, निरन्तर क्रीड़ा करती थी।

दृगों में प्रियतम की छवि नित्य, बिना विश्राम विचरती थी^१॥

लाक्षणिक वर्ग (छन्द भेद ३५२४५७८) ३२ मात्राएँ

इस वर्ग में वे ही छन्द प्रचलित हो सके हैं, जिनकी यति १६ मात्राओं के बाद आती है, शेष ३, ४ यतियों वाले छन्द जैसे त्रिभंगी (१०, ८, ८, ६, अन्त गुरु), शुद्ध ध्वनि (१०, ८, ८, ६, अन्त गुरु, त्रिकलाधार), पद्मावती (१०, ८, १४ मात्राएँ, अन्त गुरु), दंड-कला (१०, ८, १४; अन्त लघु लघु गुरु), दुर्मिल (१०, ८, १४, अन्त ॥SSS), कर्मद (१५, १७, अन्त गुरु गुरु) और खरारी (८, ६, ८, १०, मात्राएँ) इस युग में प्रयुक्त नहीं हुए हैं। इन छन्दों की तीन-तीन और चार-चार यतियाँ आधुनिक संस्कारों को बहुत खरती हैं। थोड़ा विषयान्तर होते हुए भी यह बता देना ठीक होगा कि करखा (८, १२, ८, ६) झूलना (१०, १०, १०, ७), मदनहर (१०, ८, १४, ८, मात्राएँ), उद्धत (१०, १०, १०, १०) आदि दंडक कई यतियों के कारण ही इस युग में नहीं प्रयुक्त हो सके।

समानसवाई :—इस छन्द में १६, १६ मात्राओं पर यति होती है और अन्त में गुरु, दो लघु होते हैं। इस छन्द का प्रवाह सममूलक मात्रामंत्री पर चलता है। यह छन्द बहु-रससिद्ध है, पर वीर और शृङ्गार के अधिक अनुकूल है।

अतुलनीय जिसके प्रताप का, साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।

धूम-धूमकर देख चुका है, जिसकी निर्मल कीर्ति निशाकर॥

देख चुके हैं जिनका वैभव, ये नभ के अनन्त तारागण।

अगणित बार सुन चुका है नभ, जिसका विजय-घोष, रण-गर्जन^२॥

मतसवैया:—प्राचीन काल में पदपादाकुलक के दो चरणों के योग से यह छन्द बनता था। आधुनिक युग में इस का प्रयोग चौकलों की आवृत्ति के आधार पर होता है, अतः पादाकुलक के चरणों का योग कहना अधिक उपयुक्त होगा। स्वर्गारोहण (जयभारत, पृ० ४२८) में गुप्त ने इस छन्द का विशेष प्रयोग किया है।

चिथड़ों में सुन्दरता देखी, १६ मात्राएँ

सुन्दरता में दानव पाया। १६

”

निजपरता भी शक्तिशील फिर,	१६	”
कंकालों में मानव पाया ।	१६	”
ठुकराये जाने वालों में,	१६	”
देखी सजल प्यार की धारा ।	१६	”
लालों में लालित लोगों का,	१६	”
देखा जीवन बनते कारा । ^१	१६	”

मत्तसवेया का अर्द्धसम रूपः—

थे भ्रमरावलि से वेणी में / बँध जाने की लालायित जो; १६+१६ मात्राएँ
सुरभित मेरा भी स्नेह, सुमुख/निशिगन्धा के उन फूलों में/, ”
साड़ी का पल्ला थाम तुम्हें/जो बरबस थाम लिया करते/, ”
मेरी ही तो उर-आकांक्षा/ हो ढीठ उठी उन शूलों में^२ / ॥ ”

शृङ्गार-रागः—यह छन्द शृङ्गार का ठीक दुगुना होता है। इसमें १६ मात्राओं पर यति आती है और ३२ मात्राओं के बाद युग्मक अन्त्यानुप्रास। प्रसाद जी ने कामायनी के श्रद्धासर्ग में इस छन्द का दूरान्तर अन्त्यानुप्रास मूलक प्रयोग किया है। यह छन्द शृङ्गार रस के अनुकूल है।

उषा की सुषमा सी अवतीर्ण, प्रणय की मूर्ति मधुर सुकुमार ।
खिला रहा ज्यों पावन अनुराग, जगत के जीवन का सिंगार ॥
लता ज्यों पुष्पस्तवक समेत, पद्मिनी पर शोभित मकरंद ।
भाव के मंथन का नवनीत, उदित ज्यों हुआ राग का छंद ॥^३

शृङ्गारहारः—यह छन्द शृङ्गार (१६ मात्राएँ, आदि त्रिकल अन्त गुल्लघु) की दो आवृत्तियों से बनता है। इसके प्रारम्भ में त्रिकल और अन्त में गुल्लघु होते हैं। पूर्वाद्ध के अन्त में ।ऽ भी आ सकते हैं। इसी लक्ष्मण के कारण यह छंद ‘शृङ्गार-राग’ से भिन्न है।

हिमालय के आंगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार ।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक-हार ॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फला फिर आलोक ।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक^४ ॥

इसी प्रकार से १६ मात्राओं के विविध भेदों से लाक्षणिक वर्ग के अन्यान्य नवीन छन्द संभव हैं। वस्तुतः ३२ मात्राओं तक किसी लय को अखंड रूप में प्रवहमान करना मनुष्य की उच्चारण-शक्ति के परे है, अतः ३२ मात्राओं के छन्द सदैव ही दो खंडों के (१६, १६ मात्राएँ विशेषतः) संयोग से निर्मित होते हैं।

१. डॉ० भगीरथ मिश्र, चित्रण, मने देखा, पृ० १७ ।
२. नरेन्द्र शर्मा, पलाशवन, आत्मपरिचय ।
३. चन्द्राकर, रूप-राशि ।
४. प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० १५० ।

अर्द्धसम मात्रिक छन्द

पिगलनागमुनि ने कहा है कि छन्द ३ प्रकार के होते हैं:—सम, अर्द्धसम और विषम। जिस छन्द के आधे चरण (प्रायः २) एक समान हों और आधे एक समान, उसे अर्द्धसम छन्द कहते हैं।^१ आचार्य केदार भट्ट और आचार्य गंगादास के अनुसार जिस छन्द का प्रथम चरण, तृतीय के समान और द्वितीय चरण, चतुर्थ के समान हो, वह अर्द्धसम छन्द होता है।^२ अर्द्धसम वृत्त का जन्म सम छन्द की एक रसता को समाप्त करने के लिए हुआ जान पड़ता है। नवीनता होते हुए भी इस छन्द की विशेषता यह है कि अर्द्धसम छन्द के चरण सम छन्द के मात्राक्रम के अनुसार ही आवृत होते हैं, जैसे यदि ३० मात्रा (१६, १४) के तादृक छन्द का अर्द्धसम रूप निर्मित होगा, तो १६ मात्राएँ प्रथम और तृतीय चरण में और १४ मात्राएँ द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में आयेंगी। इससे एकरूपता तो समाप्त ही होती है, साथ ही सौष्ठव और विकर्ष भी निश्चित तथा रमणीय हो जाता है। इस प्रकार के अर्द्धसम छन्दों का प्रयोग वैदिक युग से हो रहा है। सतोवृहती छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १२ अक्षर और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ८ अक्षर होते हैं। इसके प्रतिकूल क्रम (८, १२, ८, १२ वर्ण) से विपरीत छन्द का निर्माण होता है।^३

हिन्दी के अर्द्धसम छन्दों में प्रायः दूसरे और चौथे चरणों में अन्त्यानुप्रास समान होता है। इसे दूरान्तर अन्त्यानुप्रास कहते हैं।

१. सममर्धसमं विषमञ्च । २। पंचमोऽध्याय पिङ्गलछन्दःसूत्रम् ।
यस्य चत्वारः पादाः एकलक्षणयुक्तस्तत् समं वृत्तम् । तत्तादृं समे यस्य तत् अर्द्धसमम् ।
हलायुध भट्ट ।
२. (क) प्रथमांघ्रिसमो यस्य, तृतीयश्चरणो भवेत् ।
द्वितीयस्तुर्यंबवृत्तं तद्वंसममुच्यते । १५ । अध्याय १, वृत्तरत्नाकर, आचार्य केदार भट्ट ।
(ख) आदिस्तृतीयबद् यस्य, पादस्तुर्यो द्वितीयबद् । ६, प्रथमस्तवक, छन्दोमञ्जरी,
आचार्य गंगादास ।
३. युग्मावष्टाक्षरौ पादावयुजौ द्वादशाक्षरौ ।
सा सतोवृहतीनाम विपरीता विपर्यये । ३६, पाताल १६, ऋक्प्रातिशाख्य ।
सतोवृहती—१२, ८, १२, ८ वर्ण (ऋक्, १, ८४, २०) ।
विपरीता—८, १२, ८, १२ वर्ण (ऋक् ८, ४६, १२) ।

नवीन अर्द्धसम मात्रिक छन्द

१० मात्राएँ :—	बन बन जातीं प्रिय ,	१० मात्राएँ
	अमृत अधर की बातें ,	१२ ”
	सोने स्वप्नों से ,	१० ”
	चढ़ी चाँदनी रातें ^१ ,	१२ ”

प्रस्तुत छन्द के विषम चरणों में १० एवं समचरणों में १२ समप्रवाही मात्राएँ हैं ।

११ मात्राएँ :—(क)	खो गया जीवन रस ,	११ मात्राएँ
	रहस स्पर्श ।	६ ”
	सृजन का मुक्त रभस ,	११ ”
	निखिल हर्ष ^२ ॥	६ ”

इस छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में ११ तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में ६ मात्राएँ हैं । इस अर्द्धसम (५+६+६) छन्द में त्रिकल मात्रिक आधार प्रयुक्त हुआ है ।

(ख)	हृदय गुफा थी शून्य ,	११ मात्राएँ
	रहा घर सूना ।	६ ”
	इसे बसाऊँ शीघ्र ,	११ ”
	बढ़ा मन दुना ^३ ।	६ ”

इस छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में ११ मात्राएँ एवं द्वितीय तथा तृतीय चरण में ६ मात्राएँ हैं । पहले और दूसरे चरण मिल कर समप्रवाही बन जाते हैं । प्रथम चरण का अन्तिम त्रिकल दूसरे चरण के प्रारम्भिक त्रिकल के योग से समलय ग्रहण करता है, अतः पहले और दूसरे चरण एक प्रवाह में पड़े जा सकते हैं ।

१२ मात्राएँ :—(क)	गोपन रह न सकेगी ,	१२ मात्राएँ
	अब यह मर्म कथा ,	१० ”
	प्राणों की न सकेगी ,	१२ ”
	बढ़ती विरह व्यथा ^४ ।	१० ”

इस छन्द में १२, १०; १२, १० मात्राएँ समप्रवाही हैं ।

१. नीरज, किरण बधू, पृ० ४६ ।

२. पल्ल, स्वर्णकिरण, संक्रमण, पृ० ८१ ।

३. प्रसाद, झरना, अतिथि, पृ० ६८ ।

४. पल्ल, स्वर्णधूलि, मर्मकथा, पृ० ६२ ।

(ख) अ/शब्द हो गई वीणा ,	१+१२ मात्राएँ (अपवाद)
विभास वजता था ।	१० ”
अमिय-क्षरण नवजीवन ,	१२ ”
समास वजता था ^१ ।	१० ”

यह छन्द चौकलान्त है, जब कि 'स्वर्णधूलि' का पिछला उदाहरण त्रिकलान्त है ।

१४ मात्राएँ :—(क) डूबते सित/पीत श्यामल/,	१४ मात्राएँ
मेघ पश्चिम / पार ,	१० ”
भ्रान्त नीरव/ता बिछाए /	१४ ”
मैं खड़ी सा/कार ^२ ।	१० ”

रूपमाला के चरण को यति-स्थान पर दो भागों में बाँट कर इस अर्द्धसमछन्द का निर्माण किया गया है ।

(ख) नव यौवन की निर्मलता ,	१४ मात्राएँ
नद की चंचलता ।	१० ”
लेकर पंकज-मञ्जुलता ,	१४ ”
जीवन ये चलता ^३ ॥	१० ”

इसके विषम चरणों में १४ मात्राएँ एवं सम चरणों में १० मात्राएँ होती हैं । समस्त छन्द का आधार समप्रवाही चतुष्कल है । अन्त में सगण अनुकूल पड़ता है, यद्यपि दो गुरु भी प्रयुक्त हो सकते हैं । यह प्रयोग पूर्णतया नवीन है । इसका उपयोग गीत एवं समवेत गान में श्रुति-मधुर होगा ।

१५ मात्राएँ :—(क) हृदय की व्याकुल ज्वाला से ,	१५ मात्राएँ
हुए व्याकुल हम उस दिन पूर्ण ।	१६ ”
देखती प्यासी आँखें थीं ,	१५ ”
रसभरी आँखों का मदघूर्ण ^४ ।	१६ ”

इसे अर्द्धसम 'गोपी-शृङ्गार' छन्द कह सकते हैं । इसका पहला चरण गोपी छन्द का और दूसरा चरण शृङ्गार छन्द का है ।

१. निराला, बेला, गीत, पृ० १८ ।

२. चंचल, लालचूनर, पृ० ५२ ।

३. चन्द्राकर ।

४. प्रसाद, भरना, प्यास, पृ० ३३ ।

१६ मात्राएँ :—(क) काल वायु से स्खलित न होंगे	१६ मात्राएँ
कनक प्रसून ?	७ ”
क्या पलकों पर विचरे हीगी	१६ ”
यौवन धूम ^१ ।	७ ”

इसके विषम चरणों में समप्रवाही १६ मात्राएँ और समचरणों में ७ मात्राएँ हैं । सम चरण चौकल और गुरुलघु से निर्मित हैं । वह निश्चल छन्द (१६, ७) का अर्द्धसम रूप है ।

(ख) नयन मुँदेगे जब, क्या देंगे,	१६ मात्राएँ
चिर प्रिय-दर्शन ?	८ ”
सत सहस्र जीवन पुलकित प्लुत—	१६ ”
प्यालाकर्षण ^२ ?	८ ”

यह छन्द रोला छन्द का अर्द्धसम रूप है, जिस में १६ और ८ मात्राओं के दो चरण कर दिए गए हैं ।

(ग) हमारे निज सुख, दुख, निश्वास,	१६ मात्राएँ
तुम्हें केवल परिहास,	१२ ”
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास,	१६ ”
हमारा चिर आश्वास ^३ !	१२ ”

इसके प्रथम और तृतीय चरण शृंगार छन्द (आदि-अन्त त्रिकल, १६ मात्राएँ) और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण १२ मात्राओं के हैं, जो जगणान्त शृंगार के चरण से अन्तिम जगण न्यून करने से बनते हैं । यह नन्दन छन्द (देखिए, २८ मात्राएँ) का अर्द्धसम रूप है । इसका आविष्कार पन्त जी ने किया है । चरण की न्यूनता से शृङ्गार में करुण रस की वेदना आ गई है । यह छन्द आत्माभिव्यञ्जना के अनुकूल है, और प्रबन्ध के प्रतिकूल ।

(ङ) उच्च शैल-शिखरों पर हँसती	१६ मात्राएँ
प्रकृति चंचला बाला,	१२ ”
धवल हँसी बिखराती अपनी	१६ ”

१—निराला, परिमल, युक्ति, पृ० ६२ ।

२—निराला, परिमल, परलोक, पृ० ६३ ।

३—पन्त, पल्लविनी, परिवर्तन, पृ० १३५ ।

फैला मधुर उजाला^१ । १२ ”
प्रस्तुत प्रयोग सार छन्द (१६, १२) का अर्द्धसम रूप है ।

(च) फूले फूल सुरभि व्याकुल बलि १६ मात्राएँ
गूँज रहे हैं चारों ओर, १५ ”
जगती तल में सकल देवता १६ ”
भरते शशि मृदु हँसी हिलोर^२ । १५ ”
यह वीर छन्द का अर्द्धसम रूप है ।

१८ मात्राएँ :—दरक कर दिया गया, निज सार जो, १८ मात्राएँ
हँस, दाढ़िम, तू खिल खेल, १३ ”
प्रकट कर सका न अपना प्यार जो, १८ ”
रो कठिन हृदय सब झेल^३ । १३ ”

यह छन्द धत्तानन्द के समान है । इसका पहला चरण ११ और ७ मात्राओं के विश्राम से बनता है और दूसरा चरण दोहे के सम चरण के पहले दो मात्राएँ जोड़ कर ।

१६ मात्राएँ—फलों के गीत फलों में फिर आए, १६ मात्राएँ
मेरे दिन फिरे न हाय ! १३ ”
गए घन कै कै बार न धिर आए ? १६ ”
वे निर्झर न झिरे हाय^४ ! १३ ”

इस छन्द का नाम अश्राप्य है । धत्तानन्द के आदि में एक मात्रा के योग से यह छन्द बनता है । अतः इसे “गुरुधत्तानन्द” छन्द कहना चाहिए ।

२० मात्राएँ—अम्बर पथ से मन्थर सन्ध्याश्यामा, २० मात्राएँ
उतर रही पृथ्वी पर कोमल पदभार । २१ ”
मन्द मन्द बही पवन खुल गई जुही, २० ”
अंजलि कल विनत नवल पदतल उपहार^५ । २१ ”

१—प्रसाद, कामायनी, कर्म, पृ० ११६ ।

२—निराला, अपरा, नाचे उस पर श्यामा, पृ० १५३ ।

३—गुप्त यशोधरा, पृ० ४५ ।

४—गुप्त, यशोधरा, पृ० ४५ ।

५—निराला, अपरा, पृ० ३५ ।

यह छन्द षष्ठक (३, ३ या ४, २ मात्राओं का योग) की आवृत्ति से प्रवाहित होता है, विषम चरण में तीन षष्ठकों के बाद गुरु और समचरण में, गुरुलघु आते हैं। १२ मात्राओं के बाद यति आती है।

मालिका :—प्रस्तुत नवीन प्रयोग के प्रथम और तृतीय चरण में २० मात्राएँ एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण में १० मात्राएँ हैं। समस्त लय रगणात्मक है। यह छन्द सखिणी परिवार का है, ओर संयोग शृंगार के अनुकूल है।

आज तो जिन्दगी की बड़ी बात है,
प्यार की रात है।
झूमते हम, नयन भीगते, रूप की—
खूब बरसात है॥
चाँदनी में बराबर, कि अन्दाज में,
चाँद भी मात है।
दिल में शहनाइयाँ बज उठीं, फिर सजी,
एक बारात है१॥

२३ मात्राएँ—संसार कब से मुग्ध हो कर मर रहा है,	२३ मात्राएँ
आह, तेरी माधुरी !	१२ ”
कवि चित्रकार सुवर्ण रंजित कर रहा है,	२३ ”
बाह, तेरी माधुरी !	१२ ”

यह छन्द के विषम चरण दो मात्राओं के बाद सप्तक (SSS) की ३ आवृत्तियों से बनते हैं और समचरण सप्तक में रगणात्मक पञ्चक जोड़ने से।

कान्तिमानः—प्रस्तुत नवीन प्रयोग षष्ठक एवं पर आधारित है। प्रथम और तृतीय चरण में २३ मात्राएँ एवं दूसरे और चौथे चरण में २१ मात्राएँ हैं, प्रत्येक चरण में १२ मात्राओं के बाद यति आती है। विषम चरणों में तीन षष्ठकों के बाद पञ्चक (रगणाधार) एवं सम चरणों में त्रिक (S) होता है। यह छन्द संयोग शृंगार और प्रकृति-वर्णन के अनुकूल है।

गिरिवर की/रम्य छटा/सुन्दर वन/राजियाँ, (६+६+६+५ मात्राएँ)
देवदार-चीड़-बाँझ, मण्डित ये शृंग। (६+६+६+ S) ,,

१—चन्द्राकर, प्यार की रात।

२—गुप्त, भंकार, माधुरी, पृ० ७६।

सुन्दर हिमहास-रजत, वे त्रिवूल-श्रेणियाँ,
वरसाता प्रात-अरुण, दिव्य हेम-रंग^३ ॥

ऊपर भिन्न मात्राओं के चरणों के साथ भिन्न मात्राओं के योग के क्रम से प्रयोगों का वर्गीकरण किया गया है। इन छन्दों को देखने से विदित होता है कि कुछ प्रयोगों को छोड़ कर पहले और तीसरे चरणों की मात्राएँ दूसरे और चौथे चरणों से अधिक हैं। दूसरी विशेषता यह है कि सम और विषम चरणों की लय का आधार एक ही होता है, क्योंकि भिन्न लयाधार के चरण एक साथ नहीं आ सकते। इन प्रयोगों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी प्रयोग हुए हैं, जिनमें द्वितीय और चतुर्थ चरणों का अन्त्यानुप्रास तो समान है, पर चारों चरणों की मात्राएँ बराबर हैं। परम्परागत दृष्टि से ऐसे प्रयोगों को अर्द्धसम ही मानना चाहिए, क्योंकि अर्द्धसम छन्दों में अन्त्यानुप्रास की समानता विषम चरणों में ही होती है, परन्तु लय की दृष्टि से ऐसे प्रयोग सम छन्द के ही अन्तर्गत आते हैं, अतः उन के उदाहरण नहीं दिए गए, क्योंकि ऐसा करना आवृत्ति मात्र होता।

प्राचीन अर्द्धसम छन्द

दोहा :— सरहपा (डा० विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार वि० सं० ६८० समय) ने दोहे का शुद्ध रूप प्रयुक्त किया है^१। धवल कवि (दसवीं शताब्दी) ने 'हरिवंश पुराण' में कड़वकों के अन्त में कहीं कहीं घत्ता में दोहा छन्द^२ और कहीं दोहक^३ का प्रयोग किया है। पुष्पदन्त के परवर्ती कवि देवसेन गणि (११ वीं शताब्दी) ने 'सुलोचना-चरित' प्रबन्ध की अठारहवीं सन्धि में कड़वकों के आरम्भ में 'दोह्य' का प्रयोग किया है^४। गुर्जरवासी धनपाल कवि (वि० १४५४) ने 'बाहुबल चरित' की ग्यारहवीं सन्धि में कड़वक

१. चन्द्राकर, स्तो व्यू ।

२. जीवन्तहं जो नउ जरइ, सो अजरामर होइ ।

गुरु उवए से विमल मइ सो घर घण्णा कोइ ॥

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ६६ ।

३. जइण रमिय बहुतेण सहू, परिसेसिय बहु गव्वु ।

अजगल सिहू णवि जिमि विहलु, जुव्वणु रूउ वि सब्बु ॥

सन्धि ८१, कड़वक ८, हरिवंश पुराण ।

४. धाइ कम्म खाउ रोविणु, केवल णणु लहेवि ।

वंति भाणि णिय पच्छिम, तिज्ज चउत्थ इवेवि ॥

सन्धि ८६, कड़वक १३, हरिवंश पुराण ।

५. कोइण कासु वि दुइ सुहई करइण कोवि हरेइ ।

अप्पाणेण विठंतु बहु सयलु वि जोउ लहेइ ॥

सुलोचना-चरित, १८ ६ ।

के पहले 'दोहड़ा' का प्रयोग किया है।^१ कवि यशःकीर्त ने वि० १४६७ में 'पाण्डवपुराण' और वि० १५०० में 'हरिवंश पुराण' की रचना की थी, उन्होंने 'पाण्डव' पुराण की अष्टादशवीं सन्धि में 'दोहड़' या दोधक का प्रयोग किया है।^२ इसके बाद सूफी, निर्गुण सन्त, सगुण कवि और रीतिकाल के श्रृंगारी एवं नीति कवियों ने प्रचुर मात्रा में इस छन्द का प्रयोग किया—इनमें कबीर, जायसी, तुलसी, नन्ददास विहारी, सतिराम और वृन्द प्रमुख हैं। आधुनिक युग में नागरी भाषा में इस छन्द का कम प्रयोग हुआ है, यद्यपि ब्रजभाषा में वियोगीहरि ने 'वीर सतसई', भार्गव ने 'दुलारे-दोहावली', सेंगर ने 'किसान-सतसई' की रचना की है। गुप्त जी ने 'समरसज्जा' (जयभारत, पृ० ३४२) और 'साकेत' में स्फुट प्रयोग किए हैं।

इसके विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं।^३ विषम चरण के अन्त में लघु-गुरु या नगण और सम चरण के अन्त में गुरु-लघु होते हैं। विषम चरण और सम चरण की अन्तिम ३ मात्राओं के पहले की समस्त मात्राएँ समप्रवाही होती हैं। 'प्राकृतपङ्गल' में दोहा छन्द की मात्रामैत्री दी है, जिस के अनुसार विषम चरण में (६+४+३) और सम चरण में (६+४+१) क्रम से मात्राएँ होनी चाहिए।^४ श्री भानु जी ने माना है कि विषम चरण के आदि में जगण और सम चरण के अन्त में सगण, रगण और नगण नहीं होना चाहिए,^५ परन्तु ऊपर के नियम के बाद यह कहने की आवश्यकता नहीं रहती। लेखक का मत है कि यदि दोहे के आदि में त्रिकल-मूलक आवृत्ति हो, तो प्रारम्भ में जगण व्याघातक नहीं होता है, क्योंकि दो त्रिकलों के

१. अन्दोलिउ गह चक्कणहि, तारा-यण सजलहु ।

धनु हर-गुण-टंकार-रव, गिरि दरि हुअ पडिसदहु ।

सन्धि ११ कड़वक ११, बाहुबल-चरिउ ।

२. ता सिचिय सयिल जलेण, विज्जिय चमर निलेण ।

उट्टिय सोयानल तविय, महलिय अंसु जलेण ।

पाण्डवपुराण, २८, १३ ।

३. तेरह मत्ता पढम पअ, पुण एअरह देह ।

पुण तेरह एअरहहि, दोहा लखण एह । ७८। प्रथम परिच्छेद, प्राकृत-पङ्गलम् ।

४. छक्कलु चक्कलु तीणिकलु, एमपरि विसम पअन्ति ।

सम पाअहि अंतेक्कु कलु, ठवि दोहा णिममंति । ८५।

प्रथम परिच्छेद, प्राकृत-पङ्गलम् ।

५. जान विषम राखे सरन, अन्त सु सम हे जात ।

संकट तेरो शिव हरें, सुन दोहा अवदात ।

छन्दःप्रभाकर, पृ० ८५ ।

संयोग से समात्मक लयधारा बन जाती है, यथा:—भलो भलो कहि छोड़ियत, छोटे ग्रह जप-दान ।^१

विषम दल के दो क्रम सुगम होते हैं:—

अ. विषममूलक, ३+३+२+३+२ मात्राएँ ।

ब. सममूलक, ४+४+३+२ मात्राएँ ।

और सम दल के भी दो क्रम सुगम होते हैं:—

अ. विषममूलक, ३+३+२+३ मात्राएँ ।

ब. सममूलक, ४+४+३ मात्राएँ ।

जहाँ दोहे के आदि में जगण आता है, वहाँ भानु जी के अनुसार दोहे को चंडालिनी कहना चाहिए । उन्होंने यह भी माना है कि समप्रवाही में यह दोष नहीं आता, पर आरम्भ में एक साथ दो जगण अत्यन्त दूषित होते हैं । आचार्य भानु जी ने दोहे के २३ भेदों के उदाहरण दिये हैं, जो विभिन्न लघु और गुरु की संख्याओं से निर्मित होते हैं । गुप्त जी ने 'जयभारत' (पृ. ३४२) में इस छन्द का विशेष प्रयोग किया है ।

उदाहरण:—मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप । १३+११ मात्राएँ, अंत ऽ जलती श्री उस विरह में, बनी आरती आप ॥^२ ”

दोहक्रीय:—प्रसाद जी ने दोहे के आधार पर इस छन्द का प्रयोग किया है । इसके पहले और तीसरे दल दोहे के समान १३ (४+४+५ रगणात्मक या ३+३+२+५ रगणात्मक) मात्राओं के और दूसरे-चौथे दल दोहे के समचरणों के पूर्व दो मात्राओं के योग से बनते हैं । जनगीतों में ऐसे बहुत प्रयोग देखने में आते हैं । इस छन्द की लय दोहे के समान ही है, बीच में दो मात्राओं के योग से गीतात्मकता में वृद्धि हुई है ।

धमनी की तन्त्री बजी, तू रहा लगाये कान ।

बलिहारी में, कौन तू, है मेरा जीवन प्रान^३ ॥

सोरठा:—दोहा छन्द के चरणों के क्रम को उलट देने से सोरठा बनता है^४ अर्थात् सम चरण को विषम और विषम चरण को सम कर दिया जाता है । सोरठे में विचित्र बात यह है कि विषम चरणों में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग होता है ।

लिख कर लोहित लेख, डूब गया दिनमणि अहा । ११+१३ मात्राएँ ।

व्योम सिन्धु सखि, देख तारक बुदबुद दे रहा ।^५ ” ; मध्यानुप्रास

१. बिहारी-सतसई ।

२. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० १६५ ।

३. प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० १४७ ।

४. समतेरह विषमेश, दोहा उलटे सोरठा । छन्द प्रभाकर, पृ० ८६ ।

५. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २०४ ।

बरवै छन्दः—इसके विषम दल में सममूलक १२ मात्राएँ और समदल में सममूलक ७ मात्राएँ होती हैं। सम चरण के अन्त में जगण, मधुर होता है, पर तगण भी आ सकता है। यह अवधी भाषा का अपना छन्द है। यह छन्द जितना अवधी में सरल, मधुर और बहुअर्थव्यंजक होता है, उतना खड़ी बोली, ब्रज और भोजपुरी में नहीं। इस छन्द के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि एक बार एक अवध के सैनिक को उसकी पत्नी ने अकबर के दरबार में जाते समय एक आत्मनिवेदन मूलक गीत सुनाया^१ सैनिक ने प्रसंगवश वही छन्द रहीम को सुनाया। रहीम ने इस छन्द को पसन्द करके 'बरवै शतक' की रचना की, जिसमें अवध के ग्रामीण जीवन के मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह बरवै किसी अवध-निवासी ने बनाए थे, जो रहीम को समर्पित किये गये थे। इस छन्द में शृङ्गार रस, विशेषतः वियोग बहुत सफल होता है। सम्भवतः, प्रचलित छन्दों में यह लघुतम छन्द है, पर इसमें व्यंजना बड़े-बड़े छन्दों से अधिक होती है। इस छन्द में 'गागर में सागर' भरा रहता है। तरुणी का कटाक्ष चूक सकता है, पर, अमोघ बरवै छन्द, हृदय पर अवश्य चोट करता है। खड़ी बोली में भी गुप्त जी ने इस छन्द में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है।

अवध शिला का उर पर , १२ मात्राएँ
था गुरु भार । ७ "
तिल-तिल काट रही थी, १२ "
दृग-जल-धार^२ ॥ ७ "

आर्या—इस छन्द के पहले और तीसरे दल में १२ मात्राएँ; दूसरे दल में १८ मात्राएँ और चौथे में १५ मात्राएँ होती हैं^३। इस छन्द के विषम गणों (पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें चौकल) में जगण का निषेध है। दूसरे चरण के छठे गण में जगण या ४ लघु आते हैं^४। सम दलों के अन्त में गुरु अनिवार्यतः आता है। पूर्वार्द्ध के छठे गण में चारों लघु वर्ण होने पर दूसरे लघु से पूर्व यति होती है और सातवें गण में चारों लघु वर्ण होने पर प्रथम लघु से पूर्व यति होती है; तथा, यदि उत्तरार्द्ध में पाँचवें गण में सब लघु वर्ण हों तो चौथे गण के बाद यति आती है।

उदाहरण :—पहले/आँखों/ में थे/, १२ मात्राएँ
मानस/में कू/दमन/प्रिय अब/थे, १८ "
छोटे/वही उ/ड़े थे/, १२ "

-
१. प्रेम प्रीति का विरवा, चलेउ लगाय ।
सौचन की सुधि लीज्यो, मुरझि न जाय ।
 २. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २४८ ।
 ३. यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पंचदश साऽर्या । श्रुतबोध, ४ ।
 ४. लक्ष्मैतत् सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
षष्ठो जश्च न लघु वा, प्रथमऽर्धे नियतमार्यायाः । १ ।

बड़े व/ड़े अणु/वह कव/थे? १५ ”

चौकल व्यवस्था:—४,+४+४/, ४,+४,+४,+४, और गुरु।

४,+४,+४/, ४,+४,+१,+४/ और गुरु।

गीति—इस छंद के प्रथम और तृतीय चरण में बारह मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में अठारह मात्राएँ होती हैं। इस छंद में आर्या के प्रथम दो दलों की दो बार आवृत्ति होती है।^२—

चौकल व्यवस्था :—करुणे/क्यों रो/ती है ?/ १२ मात्राएँ

‘उत्तर’/में औ/र अधिक/तू रो/ई/, १८ ”

मेरी/विभूति/है जो/, १२ ”

उसको/‘भवभू/ति’ क्यों क/हे को/ई^३/ ? १८ ”

आर्या गीति :—इस छंद के विषम दलों में बारह मात्राएँ और सम दलों में बीस मात्राएँ होती हैं। विषम चौकलों में जगण वर्जित, और छठे चौकल में आवश्यक है, अंत में गुरु अक्षर मधुर होता है।

चौकल व्यवस्था :—वर्थ ग/ल गया/मेरा/, १२ मात्राएँ

रसाल/मैंने/स्वयं न/हीं चक/खा था;/ २० ”

माँ, चुन/कर सौ/सौ में/, १२ ”

इसे पि/ता के/ लिये व/चा र/कला था/^४। २० ”

उपगीति :—इस छंद के विषम चरणों में बारह मात्राएँ और सम चरणों में १५ (योग ८, मुनि ७) मात्राएँ होती हैं। विषम गणों में जगण नहीं होता और अन्त में गुरु अनिवार्य है।

हृदयस्थित स्वामी की,/स्वजनि, उचित क्यों नहीं अर्चा/, १२, १५ मात्राएँ

मन सब उन्हें चढ़ावे,/चन्दन की एक क्या चर्चा/^५/ ? ” ”

षष्ठे द्वितीयलात् परके न्ने मुखलाश्च सयतिपदनियमः ।

चरमेऽर्द्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः । २ पंचम स्तवक, छन्दोमंजरी ।

१. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० १६५ ।

२. अ. आर्यापूर्वार्धसमं, द्वितीयमपि यत्र भवति चारुमते !

छन्दोबिदस्तदानीं, गीति तामसलभाव भाषन्ते । श्रुतबोध, ५ ।

आ. आर्याप्रथमार्धसमं, यस्या अपरार्धमाह तां गीतिम् । ८, ५ स्तवक, छंदोमंजरी ।

३. गुप्त, साकेत, नवमसर्ग, पृ० १९४ ।

४. गुप्त, यशोधरा, पृ० ५२ ।

५. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग पृ० २०६ ।

प्रथम उल्लास-इस छन्द में दोहे के प्रथम दल की चार आवृत्तियाँ होती हैं, अर्थात् विषम चरणों में १३, १३ मात्राएँ और सम चरणों में १३, १३ मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक दल ४+४+५ या ३+३+२+५ मात्राओं के योग से बनता है। यह छन्द वीर रस के अनुकूल है। छप्यय (त्रिषूळ-तरंग) में तो सनेही जी ने इसका प्रयोग किया है, पर, स्वतन्त्र प्रयोग देखने में नहीं आया।

त्यागो अणु-उद्जन गरल, रूप द्वेष के ज्वाल का। १३, १३ मात्राएँ

अमृत-शान्ति-सन्देश यह, वीर जवाहरलाल का। ११, ११, ११

द्वितीय उल्लास :—प्रथम उल्लास के प्रथम-तृतीय दल के पहले दो मात्राएँ जोड़ने से यह छन्द बनता है। इसके विषम दलों में १५ (२+४+४+५) और सम दलों में १३ (४+४+५, अंत १५) मात्राएँ होती हैं। वीर गाथाकाल से छप्यय में इसका प्रयोग होता आया है। वीर रस के अतिरिक्त शान्त और शृङ्गार में भी इसका प्रयोग रसानुकूल है।

तेरी करुणा का एक कण, १५ मात्राएँ

बरस पड़े अब भी कहीं। १३, १३

तो ऐसा फल है कौन, जो, १५, १५

मिट्टी में फलता नहीं। १३, १३

त्रिसम वर्ग

त्रिसम वर्ग में वे छन्द आते हैं, जिनके ४ चरणों में ३ चरणों का अन्त्यानुप्रास एक सा होता है। यह वर्ग आमूल रूप से नया है। आधुनिक युग में ही ऐसे प्रयोग अधिक हुए हैं, जिनके चार चरणों में तीन चरणों के सम होने का विधान किया गया है। त्रिसम वर्ग में दो प्रकार का अन्त्यक्रम होता है :-

१. जिसमें अन्त्यानुप्रास का क्रम क, क, क, और ख होता है। ऐसे प्रयोग गीतों में अधिक आते हैं। इसमें चौथे चरण का अन्त्यानुप्रास छन्दक (टेक) से मिलता है।

२. जिसमें अन्त्यानुप्रास का क्रम क, क, ख, और क होता है। ऐसे प्रयोग प्रबन्ध के अनुकूल होते हैं। इस अन्त्यक्रम को ललितान्तर अन्त्यानुप्रास कहते हैं।

अन्त्यक्रम के इस नवीन संयोजन से लय में कोई अन्तर नहीं आता और छन्द ज्यों का त्यों रहता है। इस नवीन वर्गीकरण के लिए यह तर्क देना आवश्यक है कि यदि उसी छन्द के दो चरणों के अन्त्यानुप्रास के मिलने से छन्द का नया वर्ग “अर्द्धसम” बन जाता

है और रोला, विष्णुपद, सार, ताटक और मत्तसवाई यति के स्थान से विभाजित होकर अर्द्धसम वर्ग में आ जाते हैं, तो तीन समान अन्त्यानुप्रासवाले छन्दों का त्रिसम वर्ग भी मानना चाहिए। यह ठीक है कि पूर्ववर्ती आचार्यों ने ऐसा कोई वर्ग नहीं माना है, पर उनके त्रिसम के प्रयोग भी नहीं थे। त्रिसम छन्दों का जन्म तो आधुनिक गीतों के प्रयोग के बाद हुआ है। यहाँ सामने पर कुछ त्रिसम छन्दों के मात्राक्रम से उदाहरण दिये जाते हैं।

१२ मात्राएँ— सजनी, उलटी बयार,
वेग धरे प्रखर धार,
पद-पद पर विपद-वार,
रजनी धन-धेरी^१। टेक।

१४ मात्राएँ— रात आधी हो रही थी,
मौन, दुनियाँ सो रही थी,
मोतियों के तरल दाने,
नियति तुण पर बो रही थी^२।

१६ मात्राएँ— उषा की कनक मंदिर सुस्कात,
उसी में था क्या यह अनजान।
भला उठते ही तुमको आज।
दिलाया किसने इसका ध्यान ॥^३

चौपाई लय— पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुंजन सोया कभी भ्रमर में,
सो, मेरे गृहगुंजन, सो !^४

१६ मात्राएँ— आन पर जो मौत का मैदान लें,
गोलियों के लक्ष्य पर सर तान लें।
वीरसू चित्तीङ्गड़ के वक्ष पर,
जुट गए वे शत्रु के जो प्राण लें।^५

-
१. गुप्त, यशोधरा, पृ० ४७।
 २. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ० १३५।
 ३. पन्त, पल्लविनी, सोने का गान, पृ० ८७।
 ४. गुप्त, यशोधरा, पृ० ६१।
 ५. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ० ५७।

२८ मात्राएँ— पानी भर आया फूलों के मुँह में आज सबेरे,
 हाँ, गोपा का दूध जमा है, राहुल ! मुख में तेरे ।
 लटपट चरण, चाल अटपट सी मनभाई है मेरे,
 तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धाऊँ ।^१ (टेक)

त्रिसम वर्ग के यह ६ उदाहरण पर्याप्त हैं । इस वर्ग में लय की नवीन तान होकर केवल अन्त्यक्रम की ही नवीनता है, अतः विस्तार अनपेक्षित है । इसी प्रकार अन्य मात्राछन्दों के आधार पर त्रिसम प्रयोग समझे जा सकते हैं ।

मिश्र वर्ग के छन्द

मिश्र छन्द उन छन्दों को कहते हैं, जिनमें दो निश्चित छन्दों की लयें मिलकर छन्द की एक सयी इकाई तैयार करती हैं । प्राचीन आचार्यों ने कुण्डली, छप्पय, अमृतध्वनि और हुल्लास (पद्धति+हरि-गीतिका) आदि मिश्र छन्दों को विषम छन्दों के अन्तर्गत माना है, पर ये छन्द पूर्णतया विषम नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे योगिक हैं और उनकी निश्चित इकाई की आवृत्ति होती है । मेरे मत से विषम छन्द में विभिन्न छन्दों के चरण तो अवश्य आते हैं, पर उनका क्रम निर्धारित नहीं होता । मिश्र छन्द और विषम छन्द में यही भेद है । प्रस्तुत लेखक ने केवल मुक्त छन्दों को विषम छन्द के अन्तर्गत माना है । “नवविकर्षाधार” छन्द और “मिश्र छन्द” में यह भेद है कि “मिश्र छन्द” में किन्हीं दो निश्चित छन्दों के चरणों का योग कर लिया जाता है और पूर्ववत् निश्चित क्रम से ही चरणों की आवृत्ति होती है, पर “नवविकर्षाधार” में किन्हीं छन्दों के चरणों को किसी क्रम से आयोजित करके उसकी एक इकाई बना ली जाती है और फिर उसकी निश्चित रूप से आवृत्ति होती है, जैसे कि पंत जी द्वारा रचित “नीकाविहार”, “एक तारा” और “भावी पत्नी के प्रति” कविताओं में नये क्रमायोजन हैं । मिश्र छन्द प्रायः चार चरणों अथवा चार दलों से अधिक योग से निर्मित होते हैं । चार चरणों के वे छंद, जिनके पहले और तीसरे चरण में एक छंद की लय होती है और दूसरे तथा चौथे चरण में दूसरे छंद की लय होती है, वे भी मिश्र छंद ही हैं, पर चार चरणों के होने के कारण उन्हें अर्द्धसम वर्ग में मानना ठीक है । यहाँ पर प्रथम चरण या दल की मात्रा के क्रम से मिश्र छन्द दिए जाते हैं । पीछे निश्चित छन्दों का विश्लेषण हो चुका है, अतः बिना विश्लेषण किये उनके विभिन्न अंशों में विभिन्न छन्दों की लयों का निर्देश कर दिया गया है ।

८ मात्राएँ—

पक्ष सिद्ध हो,
 लक्ष सिद्ध हो,
 राम नाम हो तेरा,

धर्म-वृद्धि हो,
मर्म ऋद्धि हो,
सब तेरे, तू मेरा ।^१

इस छन्द में प्रथम दो चरण आठ मात्राओं के और तीसरा चरण १२ मात्राओं का है, इस खण्ड की दो आवृत्तियों से यह सम्पूर्ण छन्द बना है । लय की दृष्टि से प्रथम तीन चरण मिलकर सार छन्द के एक चरण के बराबर हैं ।

१३ मात्राएँ—	(क) भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान्, यशोधरा के अर्थ हैं, अब भी यह अभिमान । मैं निज राज-भवन में, सखि, प्रियतम है वन में ^२ ।	१३ मात्राएँ ११ ” १३ ” ११ ” १२ ” ” ”
--------------	--	--

इस छन्द में दोहे और सारक के दो चरणों का योग है ।

(ख) उड़ने को है तड़पता, मेरा भावानन्द, व्यर्थ उसे पुचकार कर, फुसलाते हैं छन्द । दिलाकर पद गौरव का ध्यान । स्वजनि, रोता है मेरा गान ॥ ^३	१३ मात्राएँ ११ ” १३ ” ११ ” १६ मात्राएँ ” ”
--	---

इस छन्द में दोहे और शृंगार छन्द के दो चरणों का योग है ।

१४ मात्राएँ—	उसका मान लाभ महान्, उसकी वृद्धि, सुखदा सिद्धि, उसका गौरव सदा बढ़ाना ही मेरा उद्देश ^४ ।
--------------	---

यह छन्द सुगति (SSSI × २) के दो चरणों और सरसी के एक चरण के योग से बना है । इसके प्रथम दो चरणों की विशेषता यह है कि उनमें अन्तरनुप्रास का प्रयोग हुआ है ।

१. गुप्त, साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ८५ ।

२. गुप्त, यशोधरा, पृ० ३६ ।

३. गुप्त, साकेत, नवम् सर्ग, पृ० २६४ ।

४. गोकुल चन्द शर्मा, पद्यप्रदीप, राष्ट्रगीत, पृ० ४ ।

१६ मात्राएँ:—(क) अम्बर में कुन्तल जाल देख ,
पद के नीचे पाताल देख ,
मुट्ठी में तीनों काल देख ,
मेरा स्वरूप विकराल देख ।

सब जन्म तुझी से पाते हैं ।

फिर लौट तुझी में आते हैं^१ ।

यह छन्द पद्वारि के ४ चरणों और पदपादाकुलक के दो चरणों के योग से बना है :

(ख) लहरें अपनापन खो न सकीं ,
पायल का शिजन ढो न सकीं ,
युग चरण घेर कर रो न सकीं ,
विवसन आभा जल में बिखेर ,
मुकुलों का बन्ध खिला न सकीं ,
जीवन की अयि रूपसी प्रथम !
तू पहली सुरा पिला न सकी^२ ।

यह छन्द चौपाई के तीन चरणों और मत्तसवाई के दो चरणों के योग से बना है ।

(ग) निज सागर को थाह रहा हूँ ,
उन्मन सा कुछ बोल रहा हूँ ,
मन का अलस खेल यह गुन गुन, सचमुच गीत बना न रहा मैं^३ । (ठेक)
यह छन्द चौपाई की अद्धाली और मत्तसवाई के एक चरण के योग से बना है ।

(घ) आलि, काल है काल अन्त में ,
ऊष्ण रहे चाहे वह शीत ,
आया यह हेमन्त दया कर ,
देख हर्में संतप्त सभीत ।

आगत का स्वागत समुचित है, पर क्या आँसू लेकर ,
प्रिय होते तो लेती उसको, मैं घी गुड़ दे देकर^४ ।

१. दिनकर, रश्मिरथी, सर्ग ३, पृ० ३६ ।

२. दिनकर, रसवंती, पृ० ६१ ।

३. दिनकर, रसवंती, सम्बल, पृ० ६७ ।

४. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २२० ।

वह छन्द, धीर (१६, १५, १६, १५) और सार के दो चरणों के योग से बना है।

(च)

यदि वह स्वर्ग कल्पना ही है,

यदि वह शुद्ध जल्पना ही है।

तब भी हमें भूमि माता को, अनुपम स्वर्ग बनाना है।

जो देवोपम है उसको ही, इस घरती पर लाना है ॥^१

यह छन्द चौपाई और ताटक के दो-दो चरणों के योग से बना है।

(छ)

निशिकर ने आ शहद-निशा में,

बरसाया मधु दशों दिशा में,

विचरण करके नभोदेश में, गमन किया निज धाम।

पर चकोर ने कहा भ्रान्त हो,

प्रिय-वियोग दुख से अशान्त हो,

गया छोड़ करके जीवन-धन, मुझे कहाँ ? हा राम^२ !

चौपाई के दो चरणों और सरसी के एक चरण के योग से अर्द्धक का निर्माण हुआ है और छन्द की इकाई में अर्द्धक की दो आवृत्तियाँ होती हैं। इसका अन्त्यक्रम क, क, ख, ग, ग, ख है।

१६ मात्राएँ—

धूल हो कर्पूर की भी श्वेतिमा,

पूर्ण चन्द्रप्रकाश में ही पीतिमा,

क्षीर-सागर की छटा हो लोल, कर अवलोकना,

आप ही सम आप है बस, अचल आभाशोभना !^३

पीयूषवर्ष और गीतिका छन्द के अर्द्धकों के योग से यह छन्द बना है।

२० मात्राएँ—

देवता का भाव व्यापक है अपार,

देवधारा ! देवधारा ! देवदार !

देव-ऋषियों का तपःस्थल, देवमाया का विभास,

देव-देव महेश-प्रिय ! जय अचल देवप्रभा-निवास !^४

कोकिला (पीयूषवर्ष + लघु) और गीतिक (गीतिका + लघु) के अर्द्धकों के योग से यह छन्द बना है।

१. नवीन, विनोबा-स्तवन, पृ० ३०।

२. मुकुटधर पाण्डेय, रूप का जादू, कवि भारती, पृ० २७७।

३. राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', रजतगिरि कैलास।

४. राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', रजतगिरि कैलास।

२४ मात्राएँ—(क) अश्रुधारा सी गगन से वही सारी रात ।
विश्व-विरहिणि के नयन से ये हुई बरसात ॥
कर दिया जिसके नयन ने जगत कण-कण स्नात ॥
कौन कह सकता भली उसकी व्यथा की बात ॥
वह गली हिम तुल्य, सोती ही रही दुनियाँ ।
दुख में उपेक्षापूर्ण होती ही रही दुनियाँ^१ ॥

इस विकर्ष का आधार सप्तक (SSS) है, इसके प्रथम चार चरण रूपमाला (७×३+S) और दो चरण रजनी छन्द (३×७+S) के हैं, जो रूपमाला छन्द के अन्तिम लघुवर्ण को न्यून करने से बना है ।

(ख) समय के वनमालियों की कलम के वरदान ,
डालियों, काँटों भरी के, ऐ मृदुल अहसान ।
मुग्ध मस्तों के हृदय के मुँदे तत्त्व अगाध ,
चपल अलि की परम संचित गूँजने की साथ ।
बाग की बागी हवा की मानिनी खिलवाड़ ,
पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़ ।
खोल मत निज पंखियों के द्वार ,
री सजनि, वन-राजि की शृंगार^२ ।

यह छन्द रूपमाला छन्द के ६ चरणों और उर्मिला छन्द के दो चरणों के योग से बना है । दोनों छन्दों का आधार सप्तक (S S S) ही है ।

२७ मात्राएँ—(क) किसी देश ने लिली चुनी है सुन्दरता की खान ,
कहीं गुलाब चुना लोगों ने भरा अनोखी शान ।
थिसल कहीं, शैमराक कहीं औ आइरस कहीं अमूल ,
पर सहस्रदल युक्त कमल है श्री भारत का फूल ।
और कमल भारत का फूल ,
वह लक्ष्मी देवी का फूल ,
वह जातीय हमारा फूल^३ ।

१. श्रीमती मालती शुक्ल ।

२. माखनलाल चतुर्वेदी, हिमकिरीटिनी, पृ० १४८ ।

३. सहस्रदल कमल, श्रीनारायण चतुर्वेदी ।

यह विकर्ष सरसी और चौपई (१५ मा०) के तीन चरणों से मिलकर बना है ।
सरसी और चौपई का लय-निपात सम है । इसका नाम सरसी दल छन्द है ।

(ख) तेरी पृथ्वी की प्रदक्षिणा देख रहे रवि सोम,
वह अचला है करे भले ही गर्जन तर्जन व्योम ।
न भय से, लीला से हूँ लोल,
सखे ! मेरे मत बन्धन खोल^१ ।

यह छन्द सरसी और शृंगार के दो दो चरणों के योग से बना है ।

२८ मात्राएँ—(क) किसी देश का विजय चिह्न है मञ्जुल लौरल-माला ।
कहीं कहीं पर जय का सूचक आलिव मुकुट निराला ॥
मेपल पत्र कीर्ति का सूचक किसी देश का प्यारा ।
परशतपत्र शान्ति का द्योतक है यह कमल हमारा ॥
कमल योगियों का है फूल,
वह भारत माँ के अनुकूल,
वैसा सुन्दर और न फूल ।^२

यह विकर्ष सार और चौपाई के तीन चरणों से मिलकर बना है । इसका नाम सहस्रदल छन्द है ।

(ख) “जय हो” जग में जले जहाँ भी नमन पुनीत बनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को ।
किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल^३ ।

यह छन्द सार और सरसी के दो-दो चरणों के योग से बना है ।

(ग) माना है अधिकार तुझे दानी सब कुछ देने का,
मगर, विराला खेल कौन इच्छाएँ हर लेने का ।
अचल साध्य साधक हम दोनों, अचल कामना कामी ।
इतनी सीधी बात तुझे ही ज्ञान न अन्तर्यामी !

१. गुप्त, भंकार, पृ० २३ ।

२. सहस्रदल कमल, श्रीनारायण चतुर्वेदी ।

३. दिनकर, रश्मिरथी, प्रथम सर्ग, पृ० १ ।

माँग रहा चन्द्रमा स्वर्ग का, माँग रहा दिनमान ,
नहीं माँगने आया मैं इच्छाओं का अवसान^१ ।

यह छन्द सार और सरसी के दो चरणों के योग बना है ।

(ग) वीर वंदना की बेला है, कहो, कहो क्या गाऊँ ,
अमरज्योति वह कहाँ देश की, जिसको शीश झुकाऊँ ।
दिखा नहीं दर्पण पातक का, अरे गाँस मत मार ,
अश्रु पोंछ कर जीने को होने तो दे तैयार ।
काल-शिखर से बोल रहा यह किस ऋषि का बलिदान ,
कमल-पत्र लिखो, लिखी, कवि, भारत का जयगान^२ ।

यह छन्द सार के दो चरणों और सरसी के योग से बना है ।

(घ) तुम आये, जैसे आते सावन के मेघ गगन में ,
तुम आये, जैसे आता हो सन्यासी मधुवन में ।
तुम आये, जैसे आवे जल ऊपर फूल कमल का ,
तुम आये, भू पर आवे ज्यों सौरभ नभमंडल का ।
निज से विरत, सकल मानवता के हित में अनुरत से ,
भारत ! राजभवन में आओ, सचमुच आज भरत से ।
हवन-पूत कर मैं सुदंड नव, जटा-जूट पर ताज ,
जगत देखने को आयेगा, सन्यासी का राज^३ ।

यह छन्द सार के ६ चरणों और सरसी के दो चरणों के योग से बना है ।

(ङ) कह तो झूठमूठ बतला दूँ ! पर वह होगी छाया ,
मुझको भी शैशव में शशि की थी ऐसी ही माया ।
किन्तु प्रसू बन कर अब मैंने उसको तुझमें पाया ,
पिता बनेगा, तभी पायगा तू वह धन मन-भाया ।

“अम्ब, पुत्र ही अच्छा यह मैं ,
शेल्हूँ इतनी शंखट क्यों ?”

१. दिनकर, धूप और धुआँ, इच्छाहरण पृ० १६ ।

२. दिनकर, धूप और धुआँ, वीरवन्दना, पृ० ३२ ।

३. दिनकर, धूप और धुआँ, भारत का आगमन, पृ० ४६ ।

“पुत्र हुआ, तो पिता न होगा ?

यह विरक्ति, ओ नटखट ! क्यों ?”

यह छन्द सार और अर्द्धसम ताटक के योग से बना है ।

प्राचीन मिश्र छन्दों का अर्वाचीन प्रयोग

१. कुण्डलिया — चौदह चक्कर खायेगी, जब यह भूमि अभंग ।

घूमेंगे इस ओर तब, प्रियतम प्रभु के संग ॥

प्रियतम प्रभु के संग, आयेंगे तब हे सजनी,

अब दिन पर दिन गिनो, और रजनी पर रजनी !

पर पल-पल ले रहा यहाँ प्राणों से टक्कर,

कलहमूल यह भूमि लगावे चौदह चक्कर^२ ।

कुण्डलिया छन्द दोहा और रोला छन्द के योग से बनता है । इन दोनों छन्दों का सम्बन्ध अभिन्न करने के लिए दोहे का अन्तिम दल रोला के आदि में आवृत्त होता है और रोला का अन्तिम शब्द-समूह दोहे के प्रारम्भिक शब्द-समूह के समान रखा जाता है । इन प्राचीन नियमों को आधुनिक युग के कवियों ने कुण्डलिया छन्द के प्रयोग में ज्यों का त्यों माना है । शकुन्तला (पृ० १२) और शक्ति में गुप्त जी ने इस छन्द का प्रयोग किया है ।

२ छप्पयः— इसके दो भेद होते हैं । प्रथम वह छप्पय, जिसमें रोला छन्द के साथ १३, १३ मात्राओं से निर्मित उल्लाला का योग होता है और दूसरा वह, जिसमें रोला छन्द के साथ १५, १३ मात्राओं द्वारा निर्मित उल्लाला का योग होता है ।

(अ) चेरी भी वह आज कहाँ, कल थी जो रानी,

दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी ?

अबला जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी,

आँचल में है दूध और आँखों में पानी !

मेरा शिशु संसार यह, दूध पिये परिपुष्ट हो,

पानी के ही पात्र तुम, प्रभो ! रुष्ट या तुष्ट हो^३ ।

१. गुप्त, यशोधरा, पृ० ५१ ।

२. गुप्त, साकेत नवम सर्ग, पृ० २२३ ।

३. गुप्त, यशोधरा, पृ० ४७ ।

इस छन्द में रोला के साथ प्रथम उल्लाला (१३, १३ मात्राओं) का योग है। समस्त छन्द के प्रयोग में प्राचीन नियमों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। सनेही जी ने 'सत्य की उपासना' शीर्षक कविता में इस छप्पय का प्रयोग किया है।

(ब) नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है ॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह सूर्य-तारे मँडन हैं।
बन्दीजन खगवन्द शेषफण सिंहासन हैं ॥
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी उस वेष की।
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की^१ ॥

इस छप्पय में रोला के साथ द्वितीय उल्लाला (१५, १३; १५ १३ मात्राओं) का योग है। वीरगाथा काल में इस छन्द का कवित्त नाम प्रचलित था। भक्तिकाल में श्री नाभादास जी ने "भक्तमाल" में इस छन्द का विशेष प्रयोग किया था। आधुनिक व्रजभाषा में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और श्री रत्नाकर ने तथा खड़ी बोली में श्री गुप्तजी (जयभारत-सैन्धी, शांति-सन्देश), श्री सियाराम शरण गुप्त (मौर्य-विजय) और श्री सनेही जी ने इस छन्द का विशद प्रयोग किया है। इस छन्द का प्रयोग प्राकृत और अपभ्रंश में भी हुआ है। 'प्राकृत-पैङ्गलम्' में भी इस छन्द का उदाहरण प्राप्त है^२।

१. श्री मैथिलीशरण गुप्त, मातृभूमि।
२. पिंघउ दिढ़ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
बंघु समदि रण धसउ साहि हम्मीर वग्नण लइ ॥
उड्डलणहपह भमउ खग रिउ सीसहि डारउ।
पक्खर पक्खर ठेलि पेलि पव्वअ अण्फालउ ॥
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ, कोहाणल मुह मुह जलउ।
सुरताण सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥ १० ६ ॥

प्रथम परिच्छेद, 'प्राकृतपैङ्गलम्'

नव विकर्षाधार

नवीन मात्रिक छन्द

विकर्ष का अर्थ क्रमायोजन या पंक्तियों का विशेष प्रकार का रिजोल्यूशन (Resolution) है। ऋक् प्रातिशाख्य^१ में प्रयुक्त “विकर्ष” शब्द की टीका में महापंडित मैक्समूलर ने यही अर्थ दिया है। आधुनिक कवियों द्वारा निश्चित नवीन क्रमायोजन के आधार पर निर्मित मात्रिक छन्दों को लेखक ने “नव विकर्षाधार” वर्ग में रखा है। इस वर्ग की समस्त लयें पुरानी ही हैं, पर उनका अन्त्यक्रम, परिसंख्यान (मात्रा-संख्या या वजन) और मात्राक्रम नवीन होता है, जिसमें कवि को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, पर एक बार छन्द का स्वरूप निश्चित हो जाने पर कवि को छन्द की आवृत्ति में आत्मानुशासन मानना पड़ता है। इस वर्ग के दो भेद हैं :—

१. सम विकर्षाधार—इस छन्द में समान मात्रा के चरण विकर्ष में आद्योपान्त प्रयुक्त होते हैं, छन्द ४ चरणों से अधिक होता है, केवल अन्त्यक्रम के आयोजन में ही विशेष नवीनता होती है।

२. विषम विकर्षाधार :—इस वर्ग के छन्दों में विभिन्न परिसंख्यान के चरणों का संयोग होता है, अतः ये छन्द विषम-कोटि में आते हैं, पर इनका विकर्षाधार निश्चित होता है और ये छन्द उसी क्रम से आवृत्त होते हैं, इसलिए इन्हें “विषम विकर्षाधार वर्ग” में माना गया है। यह वर्ग “मिश्र छन्द” से इस लक्षण में भिन्न है कि इसमें निश्चित दो छन्दों का योग न होकर विभिन्न लयों के विविध परिसंख्यानों का योग होता है।

आधुनिक हिन्दी-काव्य में कवियों ने—विशेषतः द्विवेदी-काल के पश्चात्—मुक्त छन्दों के अतिरिक्त प्राचीन लयखंडों के आधार पर इस वर्ग के नवीन छन्दों की आयोजना की है। पिछले शीर्षक “मिश्र छन्द” वर्ग के छन्द भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं, पर उनमें दो भिन्न छन्दों का योग होता है और वह योग एक स्थान पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है, अतः उन्हें “मिश्र छन्द” की कोटि में रखा गया है। ‘नव विकर्षाधार वर्ग’ के छन्द मुक्त छन्दों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि इस वर्ग के छन्दों में विभिन्न छन्दों के चरणों और परि

१. ऋक्प्रातिशाख्य (पटल १७, ३०) में विकर्ष का अर्थ क्रमायोजन या रिजोल्यूशन है। लेखक ने क्रमायोजन के लिए इसी शब्द की स्वीकार किया है। टीकाकार मैक्समूलर ने भी विकर्ष का अर्थ रिजोल्यूशन दिया है। वह मंत्र इस प्रकार है :—

अवमर्होऽविकर्षेण ज्येष्ठा दाशतयोध्वचा।

संस्थान को अनिश्चित क्रम से स्थान नहीं दिया जाता है, जैसा कि मुक्त छन्द में होता है। दूसरी बात यह है कि 'नव विकर्षाधार' मूलक छन्दों का अन्त्यानुप्रास क्रम भी निश्चित होता है और मुक्त छन्दों में आये हुए अन्त्यानुप्रासों का कोई क्रम नहीं होता। तीसरी बात यह है कि इस वर्ग में एक ही लय को लेकर विभिन्न क्रमों से सज्जित किया जाता है और यदि कहीं भिन्न मात्राओं का चरण उसके साथ आता है, तो वह उसी वर्ग की लय का होता है, अतः दो भिन्न चरणों में भी लयमैत्री रहती है। मुक्त छन्द के चरणों में भी आकार भिन्नता के साथ चरणों में लयमैत्री होती है, पर उनके अन्त्यानुप्रास निश्चित नहीं होते और उनका स्थान यथाक्रम निश्चित नहीं होता। 'नवविकर्षाधार' में भिन्न मात्राओं के चरण आवृत्ति में अपने निश्चित स्थान पर क्रम से ही आते हैं।

'नव विकर्षाधार' मूलक छन्दों के दो वर्ग किए जा सकते हैं (१) इस वर्ग में वे छन्द आते हैं, जो एक निश्चित लय (निश्चित मात्राओं) के आधार पर नवीन क्रमायोजन से प्रयुक्त होते हैं और (२) इस दूसरे वर्ग में वे छन्द आते हैं जो विभिन्न परिसंस्थानों आधार पर निश्चित विकर्ष में सज्जित किये जाते हैं। पहले प्रकार के विकर्ष को सम और दूसरे प्रकार के विकर्ष को विषम वर्ग के अन्तर्गत रक्खा गया है।

सम विकर्षाधार

यहाँ मात्राक्रम से सम विकर्षाधारों को अन्त्यानुप्रास के क्रमायोजन-निर्देश के साथ दिया जाता है।

१२ मात्राएँ (क) मुक्त को पुकारती क्यों ? क अन्त्यानुप्रास
मैं छोड़ स्वप्न छाया ख
इस दूर देश आया ख
मरुदेश के पथिक से ग
यह कौन खेल भाया ? ख
छिप कुञ्ज में स्वरो के, घ
शर तान मारती क्यों ? क

दिग्पाल छन्द को क, ख, ग, ख, घ, क अन्त्यानुप्रास से क्रमायोजित करने पर यह छन्द बना है।

विकर्षेण तु पादैश्च सहिशर्ध इति स्मृतः । ३० । पाताल १७, ऋक् प्रा० ।

बिना विकर्ष के अवसर्ग (७० वर्ण वाला छन्द) ऋग्वेद में सब से बड़ा है। विकर्ष के साथ 'सहिशर्ध' वाला मंत्र (ऋक् १, १२७, ६) (लक्षण १२, १२, ८, ८, १२, ८, ८ अक्षर) सबसे बड़ा है।

१. शम्भू नाथ सिंह, उदयाचल, पृ० १४।

(ख)	अजेय तू अभी बना ।	क
	न मंजिलें मिलीं कभी,	ख
	न मुश्किलें हिलीं कभी ।	ख
	मगर कदम थमे नहीं,	ग
	करारे कौल जो ठना ।	क
	अजेय तू अभी बना । ^१	क

प्रमाणिका वृत्त के मात्रिक रूप के आधार पर क, ख, ख, ग, क, क अन्त्यक्रम से यह छन्द बना है ।

१४ मात्राएँ—	आगे आगे अम्ब जहाँ,	क
	में पीछे चुपचाप वहाँ ।	क
	खोज फिरी तू कहाँ कहाँ,	क
	फिर कर क्यों न निहार गई ।	ख
	हार गई माँ, हार गई । ^२	ख

हाकलि छन्द क, क, क, ख, ख अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

१५ मात्राएँ (क)—	गुञ्जित कुञ्जों में सुकुमार,	क
	भौरों के सुरभित अभिसार,	क
	आ, जा, खोल, फेर, स्वच्छन्द,	ख
	पत्रों के बहु छिद्रित द्वार,	क
	हम क्रीड़ा करते सानन्द । ^३	ख

चोपई छंद क, क, ख, क, ख अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

(ख)	अरी सलिल की लोल हिलोर ।	क
	यह कैसा स्वर्गीय हुलास !	ख
	सरिता की चंचल दृगकोर ।	क
	यह जग को अविदित उल्लास !	ख
	आ, मरे मृदु अंग झकोर,	ग
	नयनों को निज छवि में बोर,	ग

१. बच्चन, सतरंगिनी, अजेय, पृ० ६७ ।

२. गुप्त, यशोधरा, पृ० ५३ ।

३. पन्त, पल्लविनी, विश्व बेणु, पृ० ६५ ।

मेरे उर में भर मधु रोर ।^१

ग

चौपई छन्द क, ख, क, ख, ग, ग, ग अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

१६ मात्राएँ (क)—उषा की कनक मंदिर मुस्कान,	क
उसी में था क्या यह अनजान ।	क
भला उठते ही तुम को आज,	ख
दिलाया किसने इसका ध्यान,	क
स्वर्ण पंखों की विहग कुमारि ।	ग
अमर हैं यह पुलकों का गान । ^२	क

शृङ्गार छन्द को क, क, ख, क, ग, क अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

(ख) किसी के उर में तुम अनजान,	क
कभी बँध जाती, बन चितचोर,	ख
अवखिले, खिले, सुकोमल गान	क
गूँथती हो फिर उड़-उड़ भोर,	ख
मुझे भी बतला दो न कुमारि ।	ग
मधुर निधि स्वप्नों के वे गान ^३ !	क

शृङ्गार छन्द क, ख, ग, क अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

(ग) स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,	क
चकित रहता शिशु सा नादान,	ख
विश्व के पलकों पर सुकुमार,	क
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,	ख
न जाने नक्षत्रों से कौन,	ग
निमन्त्रण देता मुझको मोन ^४ !	ग

शृङ्गार छन्द क, ख, क, ख, ग, अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

(ग-२) सुरबधूओं की बजती पायल,
उड़ती जल-फुहार स्मृति कोमल,

१. पल्ल, पल्लविनी, वीचिबिलास, पृ० ६८ ।

२. पल्ल, पल्लविनी, सोने का गान, पृ० ८७ ।

३. पल्ल, पल्लविनी, मधुकरि, पृ० ६१ ।

४. पल्ल, पल्लविनी, मोननिमन्त्रण, पृ० १११ ।

स्पर्शों से उर को कर तन्मय ।
 सूक्ष्म मधुरिमा इनमें घुलकर,
 तन-मन की तृष्णा लेती हर,
 अवचनीय रस सी जल में लय^१ ॥

इस छन्द में चौपाई के चरणों को क, क, ख, ग, ग, ख क्रम से आयोजित किया गया है ।

(घ)	तुम देवि ! आह कितनी उदार,	क
	वह मातृमूर्ति है निर्विकार,	क
	हे सर्वमंगले ! तुम महती,	ख
	सब का दुख अपने पर सहती,	ख
	कल्याणमयी वाणी कहती,	ख
	तुम क्षमा-निलय में हो रहती ।	ख
	मैं भूला हूँ तुमको निहार,	क
	नारी सा ही ! वह लघु विचार । ^२	क

इस विकर्ष में आदि और अन्त के दो-दो चरण पद्विर छन्द के और मध्य के चार चरण चौपाई के हैं । आद्योपान्त १६ मात्राओं का क्रम-विधान होने के कारण यह छन्द सम विकर्ष के अन्तर्गत आता है । अन्यथा मिश्र वर्ग में रखा जा सकता था । इसका अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ख, ख, क, क है ।

(ङ)	शीतल कोमल चिरकम्पन सी,	क
	दुर्लभित हठीले वचन सी,	क
	तू लौट कहाँ जाती है री,	ख
	यह खेल खेल ले ठहर ठहर ^३ ! (छन्दक)	

चौपाई के चरणों को क, क, ख, ग (छन्दक या टेक) अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

(च)	उस दिन जब जीवन के पथ में,	क
	छिन्न पात्र ले कम्पित कर में,	ख

१. पन्त, अतिमा, ऊषाएँ, पृ० ४१ ।

२. प्रसाद, कामायनी, दर्शन, पृ० २४६ ।

३. प्रसाद, लहर, पृ० ६ ।

मधुभिक्षा की रटन अधर म ,	ख
इस अनजाने चिकट नगर में ,	ख
आ पहुँचा था एक अकिंचन ^१ ।	ग

यहाँ चौपाई के चरणों को क, ख, ख, ख, ग अन्त्यक्रम से विकृष्ट किया गया है ।

(छ) फँसती है जब उषा राग ,	क
जग जाता है उसका विराग ,	क
बंचकता, पीड़ा, घृणा, मोह ,	ख
मिलकर बिखेरते अन्धकार ,	ग
धीरे से वह उठता पुकार ,	ग
‘मुझको न मिला रे कभी प्यार ^२ ।’	ग

यह विकर्षण पद्धति (१६ मात्रा, अन्त गुरुलघु) के आधार पर बना है । इसका अन्त्यक्रम क, क, ख, ग, ग, ग है ।

(ज) यह वह पाप जिसे करने से ,	क
भेद भरा परलोक डराता ।	ख
यह वह पाप जिसे कर कोई ,	ग
कब जग के दृग से बच पाता ॥	ख
यह वह पाप झगड़ती आई ,	घ
जिससे बुद्धि सदा मानव की ।	ङ
यह वह पाप मनन भी जिसका ,	च
कर लेने से मन शरमाता ।	ख
तन सुलगा मन द्रवित भ्रमित कर ,	छ
बुद्धि, लोक, युग सब पर छाता ॥	ख
हार नहीं स्वीकार हुआ तो ,	ज
प्यार रहेगा ही अनजाना ।	झ
प्यार, जवानी, जीवन इनका ,	ञ
जादू मैंने सब दिन जाना ^३ ॥	झ

१. प्रसाद, लहर, पृ० १७ ।

२. प्रसाद, लहर, पृ० ३५ ।

३. बच्चन, मिलनयामिनी, पृ० ६७ ।

वस्तुतः यह छन्द मत्तसवाई ३२ मात्राएँ) है, पर लिखने के क्रम को देखकर चौपाई का आधार माना गया है। इसका अन्त्यक्रम क, ख, ग, ख, घ, ङ, च, ख, छ, ख, ज, झ, ञ, झ है। मत्तसवाई मानने पर इसका अन्त्यक्रम क, क, ख, क, क, ग, ग होगा।

(झ)	जब सारी दुनिया सोई है ,	क
	तब नभमंडल पर चाँद जगा ।	ख
	कुछ सपनोंमें डूबा-डूबा ,	ग
	कुछ सपनों में उमगा-उमगा ॥	ख
	उसके पथ में अनचाहे से ,	च
	कुछ बेबस बादल के टुकड़े ।	ङ
	पर पूजव, स्नेह-समर्पण से ,	च
	कब सुन्दरता को दाग लगा ,	ख
	जैसे यह बादल के टुकड़े ,	छ
	सुखमा का आँचल थामे से ,	ज
	अनजान किसी पर न्यौछावर ,	झ
	क्या शोभन, स्वागतमय होगा ,	ञ
	मेरे उर का पागलपन भी ?	ट
	चाँदनी रात के आँगन में ,	ठ
	कुछ छिटके छिटके से बादल ,	ड
	कुछ भटका-भटका सा मन भी ।	ढ

यह विकर्ष भी मत्तसवाई छन्द के आधार पर निर्मित है।

(ज)	हमने न खड़े हैं किये महल	क
	हमने न कहीं डाले छप्पर ,	ख
	हमने न विभाजित किये देश	ग
	हमने न बसाये ग्राम-नगर	ख
	हम नहीं उठाते पुतलीघर	ख
	हम स्वर्ण नहीं हरते सुन्दर	ख
	भू की छाती में खोद विवर	ख
	श्रौरी के श्रम से लाभ उठा	घ
	हम नहीं जोड़ते रत्न-विभव !	च

देखो हमको भोले मानव ! च
युग-युग से ओ भूले मानव ! च
इस चौपाई-मिश्रित समान सवाई छन्द का अन्त्यक्रम—क, ख, ग, ख, ख, ख, ख, च, च, च, च है। इसमें ४, ३, ४ चरणों के तीन खंडों का योग है।

(ट)	जय-जय कल्याणि अलकनन्दा !	क
	झलों में फिरती निर्द्वन्द्वा ।	क
	मात्रा पवित्र हिम लहरों की,	ख
	स्मिति सी शंकर के अधरों की,	ख
	आनन्द-मूल परमानन्दा ! ^२	क

इस विकर्ष में चौपाई छन्द है और अन्त्यक्रम—क, क, ख, ख, क है।

(ठ)	किया गया मधुवन को विह्वल,	क
	टूटा तरुओं का दल, प्रतिदल,	क
	फाड़ा गया कुसुम का दामन,	ख
	चीरा गया कली का अंचल,	क
	क्योंकि कोकिला की वाणी में	ग
	थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा	घ
	मृत मधुवन को दे सकती थी	ङ
	फिर से वह जीवन का दान	च

इस छन्द का आधार मत्तसवाई है, अन्तिम चरण चौपाई छन्द का है, जिसका अन्त्यक्रम विकर्ष के प्रत्येक अन्तिम छन्द से मिलता है। विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, ख, क, ग, घ, ङ, च है।

(ड)	चन्द्र-धनु का वह नव भ्रू-भङ्ग,	क
	वायु-वाहन मेघों का रंग,	क
	वारि-धारा का वह घनघोर	ख
	नृत्य-निरता विद्युत् के संग,	क
	न नाचा पर तव मानस मोर । ^३	ख

१. शंभूनाथ सिंह, उदयाचल, पंछी, पृ० ५५ ।

२. चन्द्र-कुंवर वर्तवाल, गीत-माधवी, पृ० ११ ।

३. सियारामशरण गुप्त, ह्रस्वदिल, वर्ष-प्रयाण, पृ० ११३ ।

इस विकर्ष का आधार शृङ्गार छन्द है और अत्यक्रम क, क, ख, क, ख है ।

१७ मात्राएँ— नाम के आज आज़ाद हम हैं, क
देश की एकता खो गयी है, ख
क्या इसी पर खुशी हम मनाएँ ग
एक की कौम दो हो गयी है, ख
लाख-हा खो चुके जान अपनी घ
लाख-हा, वन चुके हैं भिखारी ड
हर जगह आज हैवान जागा च
आदमीयत कहीं सो गयी है, ख
जो कि बोया ज़हर था घृणाका, छ
आज चारों तरफ़ फल रहा है, ज
देश में आँख फेरो कहीं भी झ
सामने दर्द डूबा नज़ारा। ज
उठ गये आज बापू हमारे, ट
झुक गया आज झंडा हमारा ।^१ ज

बाला वृत्त (र, र, र, ग) के आधार पर मात्रिक बाला छन्द का अत्यक्रम क, ख, ग, ख, घ, ड, च, ख, छ, ज्ञ, ज्ञ, ट, ज्ञ है ।

इस छन्द की तीसरी, आठवीं और तेरहवीं मात्रा लघु होती है, और अंत में गुण वर्ण श्रुति-मधुर होता है ।

१८ मात्राएँ—कुदिन लगा/, सरोजनी/ सजा न सर/, (६ + ६ + ६ मा०) क
सुदिन भगा, न कंज पर ठहर भ्रमर, क
अनय जगा, न रस-विभुग्ध कर अधर, क
सदैव स्नेह के लिए विकल हृदय ! ख
कटक चला, निकुञ्ज से हवा न चल, ग
नगर हिला, न फूल-फूल पर मचल, ग
गदर हुआ, सुरभि समीर से न रल, ग
सदैव मस्त चाल से चला प्रणय ! ख
समर छिड़ा, न आज बोल, कोकिला, घ
कहत पड़ा, न कण्ठ खोल, कोकिला, घ

प्रलय खड़ा, न कर ठोल कोकिला , घ
सदैव प्रीति-गीत के लिये समय !^१ ख

पञ्च-चामर के मात्रिक रूप से यह छन्द बना है (देखिए, १८ मात्राएँ, प्रस्तुत ग्रंथ)।
इसका अन्त्यक्रम क, क, ख, ग, ग, ग, ख, घ, घ, ख है ।

१६ मात्राएँ :— अटक जीवन के विशेष विचार में , क
भटकती फिरती स्वयं मझधार में , क
सहज कर्षण कूल, कुञ्ज, कछार में , ख
विषमता है किन्तु वायु-विकार में , ख
और चारों ओर चक्कर हैं कई, ग
ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई ।^२ ग

प्रस्तुत पीयूषवर्ष-नियोजित छन्द का अन्त्यक्रम क, क, ख, ग, है ।

(ख) रूप रही रात भर, मैं सँवारती । क
प्राण बने प्रेम की, दीप्त आरती ॥ क
चित्र नयी प्रीति के, छवि अकूलिका । ख
राग-रेंगी कल्पना, चपल तूलिका ॥ ख
नयनों की ओस से, रंग खो गया । ग
प्रातः हुआ, स्वप्न सा, भंग हो गया ॥ ग
अपने ही भाग्य से, आज हारती । क
रूप रही रात भर, मैं सँवारती ॥^३ क

प्रस्तुत विकर्ष में दोल छन्द को (६ + ५; ६ + २ मात्राएँ) क, क, ख, ख, ग,
ग, क, क अन्त्य-क्रम से आयोजित किया गया है ।

२० मात्राएँ :— यहाँ राह अपनी बनाने चले हम, क
यहाँ प्यास अपनी बुझाने चले हम, क
जहाँ हाथ औ पाँव की ज़िन्दगी हो, ख
नयी एक दुनियाँ बसाने चले हम । क
विषम भूमि को सम बनाना हमें है, ग

१. बरचन मिलन यामिनी, पृ० १६७ ।

२. गुप्त, साकेत नवम सर्ग, २३६ ।

३. चन्द्राकर, प्रणय-गीत, प्रतीक्षा ।

निठुर व्योम को भी झुकाना हमें है, क
न अपने लिये विश्व भर के लिये ही, घ
धरा-व्योम को हम रखेंगे उलटकर । च
विषम भूमि नीचे निठुर व्योम ऊपर ।^१ च

यहाँ भुजंगप्रयाता का क, क, ख, क, ग, ग, घ, च, च अन्त्यक्रम-विकर्ष से आयोजन किया गया है ।

२१ मात्राएँ :—(क) मंजु मोहक ये मिलन की यामिनी है । क
भाग्य-रेखा-दीप्ति सी अभिरामिनी है ॥ क
कल्पनाओं के सजाए नीड कितने । ख
हृदय-तन्त्री पर बजाए मीड कितने ॥ ख
किन्तु सूनापन न अपना खो सका था । ग
कामना के भाव थे उत्क्रीड कितने ॥ ख
आज अपना काम अपनी कामिनी है ॥^२ क

प्रस्तुत विकर्ष में सिन्धु (SISSX३) छन्द को क, क, ख, ख, ग, ख, क अन्त्यक्रम से सज्जित किया गया है ।

२२ मात्राएँ :—(क) यदि हम में अपना नियम और शम, दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है ।
वह जरा एक विश्रान्ति जहाँ संयम है,
नव-जीवन-दाता मरण कहीं निर्मम है ?
भव भावे मुझको और उसे में भाऊ ।
कह मुक्ति, भला किसलिये तुझे में पाऊँ ?^३

यह विकर्ष राधिका (१०, १२) छन्द के आधार पर निर्मित हुआ है । इसका अन्त्यक्रम क, क, क, क, ख, ख है । अन्तिम चरण छन्दक है, अतः प्रत्येक छन्द के अन्त में आता है ।

(ख) अंगार अधर पर धर मैं मुस्काया हूँ, क
मैं मरघट से जिन्दगी बुला लाया हूँ, क

१. शम्भूनाथ सिंह, उदयाचल, सर्वहापा गीत, पृ० ५१ ।
२. चन्द्राकर, प्रणय-गीत, मिलन की यामिनी ।
३. गुप्त, यशोधरा, पृ० १०६ ।

हूँ-आँख मिचीनी खेल चुका किस्मत से,	ख
सौ बार मृत्यु के गाल चूम आया हूँ,	क
हैं नहीं मुझे स्वीकार दया अपनी भी,	ग
तुम मत मुझ पर कोई अहसान करो । ^१	घ

प्रस्तुत विकर्ष राधिका छन्द के आधार पर निर्मित है, केवल अन्तिम चरण में राधिका छन्द से दो मात्राएँ कम हैं, जो छन्दक के दूसरे चरण के समान हैं। इस विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, ख, क, ग, घ है, अन्तिम अन्त्य छन्दक के अनुरूप है।

(ग)	इस विषम धूम में साँस नहीं ले पाता,	क
	यह जन-दावानल सहज पैठता आता,	क
	किस अग्नि सुरा से मनुज आज मदमाता,	क
	किस कलह-काण्ड का छोर जला सा जाता,	क
	छोड़ूँगा अञ्चल नहीं धरा का तब भी,	ख
	इसकी माटी निज्ज्वलन सिन्धु-सुसनाता । ^२	क

इस विकर्ष में राधिका छन्द को क, क, क, ख, क अन्त्यक्रम से आयोजित किया गया है।

(घ)	जिनकी बाती का अंशमात्र ही जलता,	क
	जिनके समग्र में ज्वलन नहीं है ढलता,	क
	माटी के वे लघु दीप घिरे घेरों में,	ख
	रखते हैं कक्ष-निबद्ध-प्रकाश-विकलता,	क
	इस भुवन दीप में नहीं तमस् की छाया,	ग
	वह निखिल-बन्धु-अनुराग छलकता आया । ^३	ग

इस विकर्ष में राधिका छन्द को क, क, ख, क, ग, ग, अन्त्यक्रम से आयोजित किया गया है।

२४ मात्राएँ :—(क)	रजनी में आँखें सपनों से बहुला भी लो,	क
	दिन देन दूसरी ही कुछ माँगा करता हूँ,	ख
	देखें अधियारा चीर निकलता है कोई,	ग

१. नीरज, बिभावरी।

२. सियारामशरण गुप्त, दैनिकी, पृ० ५१।

३. सियारामशरण गुप्त, नोआखाली में, पृ० ४६।

देखें कोई अन्तर की पीड़ा हरता है,	ख
सारी आशा-प्रत्याशाओं की परवशता	च
में मन गल कर निर्मम बूंदों में ढल जाता,	छ
देखें मिलकर क्या देना जब कि प्रतीक्षा में	ज
पलकों का आँचल मुक्ताहल से भरता है	छ
कवि वह है जिसके उर में आहें उठती हैं	झ
जब होती मिलनातुर घड़ियों की अवहेला,	झ
आँसू का कुछ भी मोल नहीं बाजारों में,	ट
क्यों इस कारण कोई उसका उहास करे	ठ
में गाता हूँ इसलिए कि विरही के दृग में,	ड
जो बिन्दु-सुधा का सिंधु समेट छलकता है,	ढ
उसको कोई खारा जलकण मत कह बैठे । ^१	ण

रोला छन्द क, ख, ग, ख, च, छ, ज, छ, झ, जा, ट, ठ, ड, ढ, ण अन्त्यक्रम के विकर्ष रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

(ख) मधुर स्वरों में मुझे नाम प्रिय का जपने दो !	क
मधुरितु की ज्वाला में जी भर कर तपने दो !	क
मुझे डूबने दो यमुना में प्रिय नयनों की !	ख
मुझको बहने दो गंगा में प्रिय वचनों की !	ख
मुझे रूप की कुंजी में जी भर फिरने दो !	क
मधुर स्वरों में नाम मुझे प्रिय का जपने दो । ^२	क

रोला छन्द क, क, ख, ख, क, क, अन्त्यक्रम-विकर्ष से प्रयुक्त हुआ है इस छन्द में पहले चरण की अन्तिम चरण में आवृत्ति होती है ।

(ग) 'पके, वनों में काफल', तुम अपनी वाणी से,	क
भेज रहे मुझको पहले की तरह निमंत्रण,	ख
शिथिल हो गये चरण, बन्धु किस तरह आज में	ग
करूँ तुम्हारे इस प्रिय आमंत्रण का रक्षण ? ^३	ख

रोला छन्द क, ख, ग, ख अन्त्यक्रम-विकर्ष से प्रयुक्त हुआ है ।

१. बचन, मिलन-यामिनी, पृ० ५७ ।

२. चन्द्र कुँवर वर्त्मान, नन्दिनी, ४ ।

३. चन्द्र कुँवर वर्त्मान, पयस्विनी, काफल पाक्कू, पृ० १६१ ।

(घ) साँसे भरता है पृथ्वी पर खड़ा खंडहर,	क
शहनाइयाँ वहाँ बधुओं को गृह में लाती,	ख
पुर-नारियाँ मधुर मंगल गीतों को गाती,	ख
वहाँ बधू मिलती वर से आँखें नीचे कर। ^४	क

रोला छन्द को क, ख, ख, क अन्त्यक्रम-विकर्ष से सज्जित किया गया है।

२८ मात्राएँ:—(क) वह कोयल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,	क
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-वृष्टि करती है,	क
लेता है निःश्वास समीरण सुरभि धूलि चरती है,	ख
उबल सूखती है जलधारा, यह धरती भरती है !	ग
पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी तेरी,	ग
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी। ^१	ग

सार छन्द क, क, ख, ख, ग, ग, अत्यक्रम-विकर्ष से गीत-शैली में प्रयुक्त हुआ है।

(ख) सिद्धि-मार्ग की बाधा नारी ! फिर उसकी क्या गति है।
पर उनसे पूछूँ क्या, जिनको मुझसे आज विरति है !
अर्द्धविश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है !
मैं भी नहीं अनाथ जगत में, मेरा भी प्रभु पति है !
यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार भय भारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।^२

सार छन्द क, क, ख, ख, ग, ग अन्त्यक्रम से प्रयुक्त हुआ। अन्तिम चरण छन्दक है, जिसका अन्त्य प्रत्येक छन्द के निपात के समान है।

अभी तक हिन्दी में इतने ही सम विकर्षाधार निर्मित हुए हैं, पर आवश्यकतानुसार कवि लोग विभिन्न मात्राओं के आधार पर स्वेच्छा से अन्य प्रभावोत्पादक विकर्षाधार-मूलक नवीन छन्दों का निर्माण कर सकते हैं। इस युग की यह विशेषता है कि जहाँ उसने ओजो-मय निर्झर मुक्तछन्दों में अन्त्यानुप्रास को स्वल्प और शून्य स्थान दिया है, वहाँ साथ ही साथ नव विकर्षाधारों में अन्त्यानुप्रास का वह ध्वनि-वैभव भी दिखाया है, जो कि

४. चन्द्रकुंवर वर्तवाल खंडहर, पृ० १८५।

१. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २०१।

२. गुप्त, यशोधरा, पृ० ३८।

पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य में संभव नहीं हो सका। मध्यकाल के पदों में एकरूपतामूलक विशाल अन्त्यानुप्रास की योजना तो मिलती है, पर आजकल की विविधता और क्रमावर्त्तन का आनन्द वहाँ नहीं है। खड़ी बोली में सम्पन्न अन्त्यानुप्रास का श्रुतिमधुर विधान, रूढ़ि के प्रति विद्रोह के गर्जन के साथ, स्वस्थ स्वतंत्र व्यक्ति की आत्मतंत्रता के संयम और नवीन विधान-निर्माण-क्षमता की सूचना देता है। साथ ही गौरव की बात यह है कि यह विधान प्राचीन परम्परा से भिन्न पीठिका पर नहीं निर्मित हो रहा है। आधुनिक युग ने अपने विकास के लिये प्राचीन मूल्यों को नवीन मानों पर परखा है, और साथ ही उसके सम्यक् उपयोग के लिए सचेष्ट भी रहा है।

विषम विकर्षाधार

यह पहले कहा जा चुका है कि इस वर्ग के छन्द विषम अथवा असमान चरण के होते हैं, पर उनमें परस्पर लय-मैत्री होती है। इन छन्दों की यह विशेषता है कि जिस रूप में वह पहली इकाई में प्रयुक्त होते हैं, दूसरी इकाइयों में भी उसी क्रम से समग्र रूप से प्रयुक्त होते हैं, उनके चरणों का क्रम अपरिवर्तित रहता है। ऐसे सान्त्वानुप्रास-युक्त विषम छन्द, जो प्रत्येक इकाई में क्रम परिवर्तन करते हैं, अन्य-युक्त मुक्त छन्दों के वर्ग में रखे गये हैं।

यहाँ प्रथम चरण के मात्रा-क्रम से विषम विकर्षाधारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही यथास्थान विभिन्न चरणों की लय-मैत्री का भी निर्देश किया जायगा, क्योंकि इस विषय का विस्तृत वर्णन मुक्त छन्दों के विश्लेषण में दिया जायगा।

७ मात्राएँ :—

हे भगवान !	७ मात्राएँ
तेरा ध्यान,	७ "
जो करता है क्यों करता है ?	१६ "
सुख के अर्थ ?	७ "
तो है व्यर्थ ।	७ "
सुख से तो पशु भी चरता है । ^१	१६ "

७ मात्राओं के चरणों की मात्रा-मैत्री समप्रवाही है, जब तक कि अन्तिम लघु नहीं आ जाता। अन्तिम लघु आने पर विषम मैत्री में चरण समाप्त हो जाता है, इसीलिये समप्रवाही १६ मात्राओं से इसका योग संभव हुआ है। इस विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, ख, ग, ग, ख है।

८ मात्राएँ :—	(क)	मैं जाग पड़ी,	८ मात्राएँ
		हो गयी खड़ी,	८ ”
		फिर चौकी ज्यों चौंके चकोर।	१६ ”
		चोर चोर ! ^१	६ ”

८, ८ और १६ (पदरि) के चरण समप्रवाही हैं, क्योंकि उनकी समविषम मात्रा-मैत्री मिलती चलती है। अन्तिम चरण की ६ मात्राएँ १६ मात्राओं के लय-निपात से मिलती हैं, पर ये विषम मात्राएँ हैं, अतः वहाँ चकोर शब्द के बाद विशेष यति देनी पड़ती है। इस विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख है।

(ख)	गीत जगाओ,	८ मात्राएँ
	गले लगाओ,	८ ”
	हुआ ग़ैर जो, सहजसगा हो,	१६ ”
	करे पार जो है अति दुस्तर। ^२	१६ ”

यहाँ ८ और १६ मात्राएँ चौपाई के अष्टक के आधार पर ही चलती हैं, अतः दोनों भिन्न विस्तार के चरणों का संयोग संभव हुआ।

९ मात्राएँ :—	जलन छाती की,	९ मात्राएँ
	बड़ी सहसा हूँ,	९ ”
	मिलो मत मुझसे	९ ”
	यही कहता हूँ,	९ ”
	बड़ी हो दया तुम्हारी। ^३	१३ ”

यह दोनों लयें शृंगार छन्द की आदिम अंश हैं, यथा :—

जलन छाती की (बुझी न होय),
बड़ी हो दया तुम्हारी (जाय)।

-
१. गुप्त, भंकार, छलना, पृ० १४४।
 २. निराला, अणिमा, पृ० ११।
 ३. प्रसाद, भरना, उपेक्षा करना, पृ० ७३।

अतः लय-रूप-साम्य के कारण ६ मात्राएँ और १३ मात्राएँ एक साथ आ सकीं ।

१० मात्राएँ :—

ओ पुरुष के/गर्व

१० मात्राएँ

तूने/नाप डाला/दो पगों से/रे, गगन निः/धीम का वि/स्तार !

३५ ”

तूने/चीर डाला/नोक से नख/की, जलधि का/गर्भ गहन अ/पार !

३५ ”

तूने/तोड़ डाला/चाप से उ/त्तुङ्ग पर्वत/शिखर का अभि/मान !

३५ ”

तूने/झेल हाथों/पर लिया गु/र्वी धरा का/अतुल भार, नि/दान !

३५ ”

क्या तुझे व/न्दी बना लें/गें भुजा के/पाश ?

२४ ”

कम्पित/बाहुओं के/पाश ॥^१

१४ ”

प्रथम चरण से पाँचवें चरण तक एक और छठे सातवें-चरणों में (SISS) सप्तक का दूसरा प्रवाह चलता है । यदि छठा चरण चौकल से प्रारम्भ होता (क्योंकि पाँचवाँ चरण त्रिकल में समाप्त होता है) तो आदि से अन्त तक प्रवाह अखंड ही रहता । १०, ३५, ३५, ३५ ३५, २४ और १४ मात्राओं के एक साथ आ सकने का यही कारण है कि उनमें लया-धार एक है । इस छन्द का अन्त्यक्रम क, ख, ख, ग, ग, घ, घ, विकर्ष से निर्मित हुआ है ।

११ मात्राएँ :—(क) सुखकर किरणालोक ।

मैं था जीवन ज्योतिमय, कहीं नहीं था शोक ।

आज लखा मैंने अनिल, तजता था निश्वास ।

‘चित्रित तेरे रूप से’, मुझे न था विश्वास ।^२

प्रथम चरण दोहे का सम दल (११ मात्राएँ) है और शेष चरण दोहे के प्रथम एवं द्वितीय दलों के बराबर हैं । संभवतः, खड़ी बोली में एक ही ऐसा प्रयोग हुआ है । इस विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख है ।

(ख) मधु बेला है आज,

११ मात्राएँ

अरे तू जीवन पाटल फूल ।

१६ ”

आई दुख की रात मोतियों की देने जयमाल,

१६, ११ ”

सुख की मंद बतास खोलती पलकें दे दे ताल,

१६, ११ ”

डर मत रे सुकुमार ।

११ ”

तुझे दुलराने आये शूल ।

१६ ”

अरे तू जीवन पाटल फूल ।^३

१६ ”

१. नगेन्द्र छन्दमयी, ओ पुरुष के गर्व, पृ० ३७ ।

२. गोविन्द-वल्लभ पन्त, आरती, सुख दुःख में, पृ० ४६ ।

३. महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० ८२ ।

११ और १६ मात्राओं का लयनिपात एक है, यथा:—

(प्रेम की) मधुबेला है आज,
धरे तू जीवन पाटल फूल।

१६ मात्राओं का अन्तिम लय-निपात (११ मात्राएँ) सरसी (२७ मात्राओं) के अन्तिम लयनिपात (११ मात्राओं) से मिलता है, जैसा कि सिद्ध किया जा चुका है, अतः ११, १६, २७, ११, १६, १६ मात्राओं के चरण एक साथ आ सके। इनका अन्त्यक्रम क, ख, ग, ग, घ, ख, ख, है। छन्द के रूप में तीसरे चरण से लेकर अन्तिम चरण (५ चरणों) तक की आवृत्ति होती है। पहले दो चरण छन्दक (टेक) के रूप में रहते हैं।

(ग)	घोर	अन्धकार	है,	११	मात्राएँ
	चल	रही	वयार	है,	११
	दृष्टि	दुर्निवार	है,	११	॥
	देश	तिमिर-ग्रस्त	है,	११	॥
	देश	क्लेश-ग्रस्त	है,	११	॥

ज्योति यह मिटे नहीं; आग यह बुझे नहीं, २२ ॥

मुक्ति की मशाल जल; लाल लाल ज्वाल जल^१। २२ ॥

लक्ष्मी छन्द की अन्तिम मात्रा कम करके (SISISIS—२, ज, ग,) ११ मात्राओं का मात्रिक छन्द इसका आधार है। २२ मात्राओं में ११ मात्राओं की दो आवृत्तियाँ होती हैं। इसका विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, क, ख, ख, ग, (ग, ग,) घ (घ, घ) हैं।

१२ मात्राएँ:—(क)	सब है, सब है, सब है,	१२	मात्राएँ
	सत्य-मरण दुर्लभ है।	॥	॥
	पैर व्याल के फुंकारों में,	॥	॥
	वीरों की इन हुंकारों में,	॥	॥
	इस कालानल की वर्षा से,	॥	॥
	उठते हुए धुआँ-धारों में,	॥	॥
	सब है, सब है, सब है,	॥	॥
	सत्य-मरण दुर्लभ है। ^२	॥	॥

विकर्ष के आदि और अन्त के दो चरण सारक (१२ मात्राओं के) और बीच के चार चरण चौपाई के हैं, अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ग, ख, क, क है।

(ख)	सुनते हो, हे स्वामी,	१२ मात्राएँ
	आये संत बिनोबा नामी,	१६ ॥

१. तेज नारायण काक, मुक्ति की मशाल, पृ० ६२।

२. सियारामशरण गुप्त, वैनिकी, पृ० ११।

उत्सुक हूँ यदि अनुमति पाऊँ,	”	”
तो मैं भी दर्शन कर आऊँ,	”	”
नहीं चाहते चाँदी सोना,	”	”
दो, मिट्टी की भेंट चढ़ाऊँ,	”	”
कठिन भूमि का भार लिए वे, अनुदिन मृदु-पद-गामी । १६	”	”
सुनते हो, हे स्वामी ! १	१२	”

इस विकर्ष में प्रथम और अन्तिम चरण सारक का, एवं बीच में ५ चौपाई के चरण तथा एक सार का चरण हैं। समस्त चरण समप्रवाही हैं, अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ग, ख, क, क है।

(क) कण कण कर/ कंकण, प्रिय/	१२ (६+६)	मात्राएँ
किण किण रव/ किंकिणी,/	११ (६+५)	”
रणन रणन/ नूपुर उर/लाज,	१५ (६+६+३)	”
लौट/रंकिणी,	८ (३+५)	”
और मुखर/ पायल स्वर/कहे बार/बार,	२१ (६+६+६+३)	”
प्रिय पथ पर/चलती, सब/कहते शृंगार । २	२१ (६+६+६+३)	”

व्याख्या से स्पष्ट है कि समस्त छन्द छकल के आधार पर चलता है। तीसरे चरण का 'लाज' शब्द 'लौट' के साथ आता है। किंकिणी (SIS), और रंकिणी (SIS) में छकल (SI/SI) का पवाँश है। पवाँश के कारण चरण-लय वहीं समाप्त होती है। पाँचवें और छठे चरण भी छकल के आधार पर चलते हैं, अन्त में (SI) अर्द्ध-पर्व है, अतः स्पष्ट है कि सभी चरणों में लय समान है। इस छन्द का विकर्ष क, ख, ग, ख, घ, घ अन्त्यक्रम से है।

(ख) क्षण भर की भाषा में,	१२	मात्राएँ
सुव-नव अभिलाषा में,	१२	”
उगते पल्लव से कोमल शाखा में	२० (८, १२)	”
आये थे जो निष्ठुर कर से,	१६	मात्राएँ
मले गये ।	६	”
मेरे प्रिय सब बुरे गये, सब	१६	”
मले गये । ३	६	”

१. मैथिलीशरण गुप्त, भूमिभाग, चढ़ौती, पृ० २५ ।
२. निराला, गीतिका, पृ० ८ ।
३. निराला, परिमल, वृत्ति, पृ० ६८ ।

इसके सभी चरण सम-प्रवाही हैं, अर्थात् सम-विषम-योगमूलक आधार पर प्रवाहित होते हैं, इसलिए भिन्न मात्राएँ १०, १२, २०, १६, ६, १६, ६, एक साथ आ सकीं। इसका विकर्षाधार क, क, क, ख, ग, घ, ग, अन्त्यक्रम से है।

(ग)	फिर भी नाथ न आये।	१२ मात्राएँ
	लेने गये हाथ जो उनको, वं भी लौट न पाये।	१६, १२ "
	रहे न हम सब आज कहीं के,	१६ "
	वहाँ गये सो हुए वहीं के !	१६ "
	माया, तेरे भाव यहीं के,	१६ "
	वहाँ उन्हें क्यों भाये ?	१२ "
	फिर भी नाथ न आये। ^१	१६ "

समस्त चरण समप्रवाही हैं। विकर्ष का मात्राक्रम १२, २८, १६, १६, १६, १२, १६, और अन्य क्रम क, क, ख, ख, ख, क, क है। प्रथम दो पंक्तियाँ छन्दक हैं, अतः शेष चरणों की आवृत्ति होती है और प्रत्येक छन्द के अन्त में छन्दक आता है।

१३ मात्राएँ:—	तुम तुझ हिमालय शृङ्ग	१३ : २+(१६+१२=सार)
	और मैं चंचल जल सुर-सरिता।	१७ : = २+२८=३०
	तुम विमल हृदय उछ्वास	१३ : " "
	और मैं कान्तकामिनी कविता।	१७ :
	तुम प्रेम और मैं शान्ति,	१३ : = २+११
	तुम सुरापान घन अंधकार	१६ : २+(१६+११ सरसी)
	मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।	१३ :
	तुम दिनकर के खर किरणजाल,	१६ : २+(१६+११=सरसी)
	मैं सरसिज की, मुत्कान,	१३ :
	तुम वर्षों के बीते वियोग,	१६ : २+(१६+११)=सरसी]
	मैं हूँ पिछली पहवान ; ^२	१३ : = २+२७=२९

समस्त छन्द समप्रवाही है। प्रत्येक चरण की पहली दो मात्राएँ हटाकर विश्लेषण करने से सार और सरसी के संयोग का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। १३, १७ मात्राएँ मिल कर (२+सार) सार-लय का निर्माण करती हैं। इन ३० मात्राओं में

१. गुप्त, यशोधरा, पृ० १३०।

२. निराला, परिमल, तुम और मैं, पृ० ८४।

ताटक की लय नहीं है, अतः लेखक ने “२+सार” रूप निश्चित किया है। यही बात १६+१२ मात्राओं के चरणों में है। इनके योग से “२+सरसी” का निर्माण होता है। तेरह मात्रा वाले पाँचवें चरण का निपात सातवें से मिलता है। इस छंद में सार और सरसी का मूलाधार स्पष्ट है। मात्रा क्रम, (१३, १७, १३, १७, १३, ६१, १३, १६, १३, १६, १३) और अन्त्यक्रम क, ख, ग, ख, घ, च, घ, छ, ज, झ, ज है। समस्त विकर्ष में प्रथम चार चरण छन्दकांश हैं, अतः षष्ठ सात चरणों की आवृत्ति होती है।

१४ मात्राएँ:—(क)	हम राज्य लिये मरते हैं।	१४ मात्राएँ
	सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।	१६, १२ ”
	जिनके खेतों में है अन्न,	१६ ”
	कौन अधिक उनसे सम्पन्न ?	१६ ”
	पत्नी सहित विचरते हैं वे भव-वंभव भरते हैं।	१६, १२ ”
	हम राज्य लिये मरते हैं। ^१	१४ ”

सभी चरण समप्रवाही हैं, केवल तीसरे और चौथे का लय-निपात भिन्न है। विकर्षाधार का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, क, क है, जो १४, २८, १६, १६, २८, १४ मात्रा-क्रम से आयोजित है। पहला चरण छन्दक है, अतः प्रत्येक छन्द के अन्त में आता है, और तीसरे, चौथे तथा पाँचवें चरण की, मात्राक्रम (१६, १६, २८) से आवृत्ति होती है।

(ख)	काली काली अलकों में,	१४ मात्राएँ
	आलस मदनत पलकों में,	”
	मणि-मुक्ता की झलकी में,	”
	सुख की प्यासी ललकों में,	”
	देखा क्षण-भंगुर है तंग। ^२	१६

इसका विकर्षाधार क, क, क, क, ख अन्त्यक्रम से निर्मित है। मात्राक्रम १४, १४, १४, १४, १६ है। अन्तिम चरण पद्धति का लयनिपात भिन्न है, पर यहीं छन्द समाप्ति की सूचना मिलती है, इससे निपात-भेद नवीनता उत्पन्न करता है। अन्तिम चरण की अन्त्यध्वनि सभी छन्दों के अन्तिम चरण के अन्त्य के अनुकूल है।

(ग)	यदि न हो मृदुता हृदय में,	७ + ७ मात्राएँ
	यदि न हो शुचिता प्रणय में,	७ + ७ ”
	यदि सदयता हो नयन में,	७ + ७ ”

१. गुप्त, साकेत, तवल सर्ग पृ० २२२।

२. प्रसाद, लहर, अशोक की चिंता, पृ० ४८।

हो नहीं उन्मुक्त संतत, ७ + ७ ,,
यदि प्रगति का द्वार, (अन्तक) ७ + ७ ,,
बन जाय जीवन भार ।^१ ७ + ७ ,,

यह छन्द सप्तक के आधार पर चलता है। आधार अन्तिम दो चरणों के अंत में सप्तक पर्वाश है, अतः अन्तक लय है। विकर्षाधार का अन्त्यक्रम क, क, क, ख, ग, ग और मात्रा-क्रम १४, १४, १४, १०, १२ है।

(घ) भामिनी वह स्वर्ग की है, १४ मात्राएँ
कामिनी अपवर्ग की है, १४ ,,
स्वामिनी उत्सर्ग की है, १४ ,,
प्राण-पिजर-वासिनी है, बालविहगी प्रेम-वन की ।^२ २८ ,,

समस्त छन्द का आधार सप्तक (SISS) है। विकर्षाधार का अन्त्यक्रम क, क, क, ख है और मात्राक्रम १४, १४, १४, २८ है।

(ङ) जय देव-मन्दिर देहली, १४ मात्राएँ
सम भाव से जिस पर चढ़ी,— १४ ,,
नृप हेममुद्रा और रंकवर्णाटिका । २१ ,,
मुनि सत्य-सौरभ की कली— १४ ,,
कवि-कल्पना जिसमें बड़ी १४ ,,
फूले फले साहित्य की वह वाटिका ।^३ २१ ,,

इस विकर्षाधार का लयाधार सप्तक (SSIS) है। इसमें अन्त्यक्रम अ, ब, स, अ, ब, स और मात्राक्रम १४, १४, २१, १४, १४, २१ है।

(च) अब भी समय नहीं आया ? १४ मात्राएँ
कब तक करे प्रतीक्षा काया, जिये कहाँ तक काया ? १६, १२ ,,
होती है मुझको यह शंका, क्षमा करो हे नाथ, १६, ११ ,,
समय तुम्हारे साथ नहीं क्या, तुम्हीं समय के साथ ? १६, ११ ,,
कहाँ योग मन - भाया ? १२ ,,
अब भी समय नहीं आया ? ४ १४ ,,

१. गोपाल शरण सिंह, सागरिका, पृ० ३१ ।

२. " " " पृ० ६६ ।

३. गुप्त, साकेत, पृ० ८ ।

४. गुप्त, यशोधरा, पृ० १३१ ।

समस्त चरण समप्रवाही है। सरसी के विषमान्त चरणों के बाद छन्दकान्त्य से निपात मिलाने के लिये समात्मक १२ मात्राएँ रखी गयी हैं। विकर्ष का मात्राक्रम ३४, २८, २७, २७, १२, १४ और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, क, क है। प्रथम दो चरण छन्दक खंड हैं, अतः शेष चार चरणों की क्रमिक आवृत्ति होती है।

(छ) मेरा मरण तुमको खला,^१ १४ = ७ + ७ मात्राएँ
किन्तु मैं लेकर कहाँ क्या, विरह जीवन जला ?^१ ७ + ७ + ७ + ३

पद का आधार सप्तक (SSIS और SSS) है। दूसरा चरण रूपमाला है, केवल अन्त में S के स्थान पर IS कर दिया गया है। विकर्ष का मात्राक्रम १४, २४ और अन्त्यक्रम क, क है।

१५ मात्राएँ:—(क) उसी का कोमल करुणस्वर,
कोकिला बोल रही रटकर,
वही मम मूर्तिमान संसार,
आज हो गया स्वप्न निःसार,
उसी के लिए वहाँ दृग्धार।
उसी की स्मृति पाई उपहार।^२

नाटक एवं उपन्यास लेखक पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने 'कंदक' नाम से 'आरती' पुस्तक में यह प्रयोग वि० सं० १६७५ में किया था। उन्होंने श्रृंगार (१६ मात्राएँ आदि त्रिकलात्मक, अंत S।) के अन्तपूर्व (Penultimate) अक्षर को लघु करके पन्द्रह मात्राओं के चरणों को निर्मित किया, बाद में श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने ऐसे चरणों का विशद प्रयोग किया (देखिए सु० न० पन्त कृत, 'उच्छ्वास' और 'स्वर्णोदय')। प्रथम दो चरण इसी प्रकार के हैं, शेष चार चरण श्रृंगार छन्द के हैं। समस्त छन्द म युग्मक अन्त्यानुप्रास है।

(ख) प्रेम की आँखों से मैंने,
चुराई अहा मनोहर दृष्टि।
हुई हिय में आशा की सृष्टि।
मनोहर गान विकम्पित था,
जहाँ दुःखी की दृग्-जल वृष्टि,
दीर्घ निश्वास।^३

१. गुप्त, यशोधरा, पृ० १०९।

२. गोविन्दवल्लभ पन्त, आरती, वह मूर्ति, पृ० १२।

३. गोविन्द वल्लभ पन्त, आरती, प्रेम की आँखों से, पृ० १८।

प्रथम और चतुर्थ चरण शृंगार छन्द के अन्तिम लघु को न्यून करके १५ मात्राओं के निर्मित किये गये हैं, द्वितीय, तृतीय एवं पञ्चम चरण शृङ्गार छन्द के हैं और छठी पंक्ति शृङ्गार छन्द की आधी है, जिसका निपात शृंगार की भाँति गुरुलघु-मूलक है। श्री सुमित्रा-नन्दन पन्त ने शृंगार छन्द के चरणों के साथ इसी भाँति शृंगार छन्द के तीन चौथाई चरणों का विशद प्रयोग किया है (शृंगार के अन्तिम जगण को न्यून करके, देखिए, परिवर्तन) ।

(ग) पली सुख वृन्तों की कलियाँ,	१५ मात्राएँ
बिटप-उर की अवलम्बित हार ।	१६ ”
विजन वन मुदित सहेलरियाँ	१५ ”
आज खुल खुल गिरती असहाय,	१६ ”
बिटप वक्षःस्थल से निरुपाय ? ^१	१६ ”

१५ मात्राओं का चरण, शृंगार छन्द (१६ मात्रा, अंत S।) की अंतिम लघु मात्रा कम करके बनाया गया है, अतः शृंगार के चरणों से केवल लय-निपात में भेद है। ये चरण नवीनता उत्पन्न करते हैं। दोनों प्रकार के चरणों में प्रारंभ-लय और मध्य-लय पूर्णतया समान है। विकर्ष का अन्त्यक्रम १५, १६, १५, १६, १६, १६ है।

(घ) दधुपति, राधव, राजा राम,	१५ मात्राएँ
पतित पावन सीताराम ।	१४ ”
छोड़ नीड़ का तन बापू की	१६ ”
आत्मा ने पर फड़काए,	१४ ”
आओ कर लें कम्पित करसे, उनको अन्तिम बार प्रणाम ।	१६, १५ ”
दधुपति, राधव, राजाराम,	१५ ”
पतित पावन सीताराम ? ^२	१४ ”

सभी चरण सम-प्रवाही हैं। दो चरण चौपई के, फिर चौपाई, हाकलि, वीर छन्द और फिर चौपई की श्रद्धाली की आवृत्ति। विकर्षाधार का मात्राक्रम १५, १४, १६, १४, ३१, १५, १४ और अन्त्यक्रम कं, क, ख, ग, क, क, क, है। प्रथम दो चरणों में छन्दक है, शेष में छन्द का विकर्ष। 'पतित' को 'पतीत' पढ़ने से चरण १५ मात्राओं के हो जाते हैं।

(च) घूम रहा है कैसा चक्र !	१५ मात्राएँ
यह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र ।	१६, ११ ”

१. निराला, परिमल, स्मृति, पृ० १०६ ।

२. बच्चन, सूत की माला, पृ० ६७ ।

पिसो, पड़े हो इसमें जब तक,	१६	मात्राएँ
क्या अन्तर आया है अब तक ?	१६	"
सहें अन्ततोगत्वा कब तक	१६	"
हम उसकी गति बक्र ?	११	"
धूम रहा है कैसा बक्र । ^१	१५	"

यह पीछे सिद्ध किया जा चुका है कि चौपाई और सरसी या दोहे की अन्तिम ११ मात्राओं का लय-निपात एक सा ही है, अतः १५, २७, १६, १६, १६, १६, ११, १५ मात्राएँ एक साथ आ सकीं। बीच में चौपाई के तीन चरणों के बाद छन्दक के अन्त्य के समान लय-निपात की ११ मात्राएँ रखी गई हैं।

(छ) जाओ, मेरे सिर के बाल ! १५ मात्राएँ

आलि, कर्तरी ला मैंने क्या, पाले काले व्याल ? १६, ११ "

चौपाई और सरसी दोनों चरणों का लय-निपात समान है। इस पद का मात्राक्रम १५, २७, २७ और अन्त्यक्रम क, क, क है।

(ज) मिला न हा ! इतना भी योग,	१५	मात्राएँ
मैं हँस लेती तुझे वियोग !	१५	"
देती उन्हें विदा मैं गाकर,	१६	"
भार झेलती गौरव पाकर,	१६	"
यह निःश्वास न उठता हा कर !	१६	"
बनता मेरा राग न रोग,	१५	"
मिला न हा ! इतना भी योग । ^२	१५	"

यहाँ छन्दक १५ मात्राओं का है और मध्य चौपाई के त्रिसम का है। छन्दक के अन्त्य के अनुकूल लय लाने के लिये त्रिसम के बाद चौपाई का चरण आया है। विकर्ष का मात्राक्रम १५, १५, १६, १६, १६, १५, १५ और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ख, क, क है। पहला चरण छन्दक है और अन्तिम ५ पंक्तियों की आवृत्ति होती है।

(झ) मरण सुन्दर बन आया री। १५ मात्राएँ

शरण मेरे मन भाया री। १५ "

आली, मेरे मनस्ताप से पिघला वह इस बार ! १६, ११ "

रहा कराल कठोर काल सो, हुआ सदय सुकुमार ! १६, ११ "

१. गुप्त, यशोधरा, पृ० १२।

२. " " पृ० ३५।

नर्म सहचर सा छाया री,
मरण सुन्दर बन आया री !^१

१५ मात्राएँ
१५ ”

गोपी छन्द की अर्द्धाली बाद सरसी के दो चरण और फिर गोपी की अर्द्धाली । सभी चरण समप्रवाही हैं । सरसी के बाद गोपी के लय-निपात के लिये बीच में गोपी छन्द का चरण रखा गया है । तीन खंडों में प्रथम खंड छन्दक अंश है, अन्तिम चरण छन्दक, अतः छन्द की आवृत्ति में अन्तिम चार चरणों का ही योग होता है । विकर्ष का अन्त्य-क्रम क, क, ख, ख, क, क है और मात्रा-क्रम १५, १५, २७, २७, १५, १५ है ।

१६ मात्राएँ :—सबसे अधिक नवीन विकर्षाधार-मूलक मात्रिक छन्द इसी वर्ग के हैं, क्योंकि यह हिन्दी की सर्वप्रिय लय है ।

(क) मार पलक परिमल के शीतल,	१६
छन छनकर पुलकित धरणीतल,	१६
बहती है वायु, मुक्त कुन्तल,	१६
अपिप्त है चरणों पर मेरा यह हृदय हार ।	२४
मेरे जीवन पर, प्रिय जीवन वन के बहार ! ^२	२४

समस्त छन्द का आधार अष्टक है, प्रथम तीन चरण चौपाइयों के और अन्तिम दो चरण शक्ति पूजा छन्द के हैं, अतः १६, १६, १६, २४, २४ मात्राक्रम समलयात्मक है । विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, है । षष्ठक पर्व के आधार पर भी इस विकर्ष की व्याख्या हो सकती है ।

(ख) अलि, घिर आए घन पावस के ।	१६	मात्राएँ
लख ये काले काले बादल,	१६	”
नील सिंधु में खुले कमल दल,	१६	”
हरित ज्योति चपलाति चंचल,	१६	”
सौरभ के रस के । ^३	१०	”

समस्त छन्द समप्रवाही है, विकर्ष का अन्त्यक्रम क, ख, ख, ग है और मात्राक्रम १६, १६, १६, १६, १० है । प्रथम चरण छन्दक है, शेष चरणों की आवृत्ति होती है ।

(ग) वह देता जाता है ज्यों ज्यों,	१६ क	मात्राएँ
लोभ वृद्धि पाता है त्यों त्यों,	१६ क	”

१. गुप्त, यशोधरा, पृ० ४० ।

२. निराला, परिमल, पारस, पृ० ७० ।

३. निराला, परिमल, पृ० १०२ ।

नहीं वृत्ति-घातक मैं,	१२ ख	”
उस घन का चातक मैं,	१२ ख	”
उसमें रस है शेष नहीं ।	१४ ग	”
नहीं मुझे संतोष नहीं । ^१	१४ ग	”

समस्त विकर्ष समप्रवाही हैं । विकर्षाधार का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ग, ग और मात्रा क्रम १६, १६, १२, १२, १४, १४ है ।

(घ) कौन कह पाया मन की बात ।	(शृंगार चरण) १६ मात्राएँ
बोल रहा है विकल पपीहा, बीती आधी रात, १६, ११ सरसी	
रहता रहा, नहीं कह पाया लेकिन आधी बात ।	”
विरह की लगी हुई बरसात,	शृंगार-चरण
छिन्न भावों के मूड जलजात,	”
कराहें भरते हैं दलपात,	”
अधूरी फिर भी बात ।	१२ मा० (शृंगार-निपात)
कौन कह पाया मन की बात ॥ ^२	शृंगार-चरण

शृंगार और सरसी का लय-निपात समान है, अतः दोनों का प्रयोग एक साथ हुआ है । इसका विकर्ष १६, २७, २७, १६, १६, १६, १२, १६ मात्राओं का है और अन्त्य-क्रम आद्योपान्त एक सा है ।

(ङ) तुम्हारी करुणा ने प्राणेश !	१६ क	मात्राएँ
बना कर नव मन-मोहन वेश ।	१६ क	”
दीनता को अपनाया,	१३ ख	”
उसी से स्नेह बढ़ाया,	१३ ख	”
लता अज्ञात बढ़ चली साथ ।	१६ ग	”
मिला था करुणा का शुभ हाथ । ^३	१६ ग	”

शृंगार छन्द के दो चरणों के बाद अन्तिम त्रिकल के साथ १३ मात्राओं का चरण विषम मात्राओं द्वारा सममैत्री स्थापित करता है, परन्तु चौथे चरण में यह मैत्री नहीं चलती, अतः लय-परिवर्तन होता है । पुनः, शृंगार के दो चरण आते हैं । छन्द के विकर्षाधार का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ग, ग और मात्राक्रम १६, १६, १३, १३, १६, १६ है ।

१. गुप्त, भंकार, असंतोष, पृ० २५ ।

२. श्रीमती मालती शुक्ल ।

३. प्रसाद, भरना, आशालता, पृ० ४४ ।

(च) सुधा में मिला दिया क्यों गरल ।	क १६ मात्राएँ
पिलाया तुमने कैसा तरल ॥	क १६ ”
माँगा होकर दीन,	ग ११ ”
कण्ठ सींचने के लिये,	घ १३ ”
गर्म झील का मीन,	ग ११ ”
निर्दय ! तुमने कर दिया ॥	ङ १३ ”
सुना था तुम हो सुन्दर ! सरल ।	क १६ ”
सुधा में मिला दिया क्यों गरल ॥ ^१	क १६ ”

प्रथम दो चरणों में शृंगार छन्द के अन्तिम ऽ। को ॥ रूप देकर अर्द्धाली निर्मित की गई है। बीच में सौरठा लय-परिवर्तन करता है और फिर शृंगार छन्द की अर्द्धाली आती है। छन्द का अन्त्यक्रम क, क, ग, घ, ग, ङ, क, क और मात्राक्रम १६, १६, ११, १३, ११, १३, १६, १६ है।

(छ) जगती की मङ्गलमयी उषा,	१६ मात्राएँ
बन करुणा उस दिन आई थी ।	१६ ”
जिसके नव गौरिक अञ्चल की, प्राची में भरी ललाई थी ।	३२ ”
भय-संकुल रजनी बीत गयी,	१६ ”
भय की व्याकुलता दूर गयी,	१६ ”
घन तिमिर मार के लिए तडित, स्वर्गीय किरण बन आई थी । ^२	३२ ”

इस छन्द का आधार पादाकुलक है। विकर्ष का अन्त्यक्रम क, ख, ख, ग, ग, ख है और मात्रा क्रम १६, १६, ३२, १६, १६, ३२ है। प्रथम खंड छन्दक है, और द्वितीय आवर्तित।

(ज) मानी, देख न कर नादानी ।	१६ क मात्राएँ
मातम का तम छाया, माना,	१६ ख ”
अन्तिम सत्य इसे यदि जाना,	१६ ख ”
तो तूने जीवन में अब तक आधी सुनी कहानी ।	२८ क ”
मानी, देख न कर नादानी । ^३	१६ क ”

१. प्रसाद, झरना, सुधा में गरल, पृ० ७० ।

२. प्रसाद, लहर, पृ० ३२ ।

३. बच्चन, सतरंगिनी चेतावनी, पृ० १२४ ।

विकर्ष के समस्त चरण समप्रवाही हैं। इसका का अन्त्यक्रम क, ख, ख, क, क और मात्राक्रम १६, १६, १६, २८, १६ है। प्रथम चरण छन्दक है और चतुर्थ चरण १६ मात्राओं का यौगिक विस्तार है (१६, १२; सारछन्द), अतः विभिन्न विस्तार के चरणों का योग संभव हुआ।

(झ) दबा देने को जग की क्रान्ति, १६ क मात्राएँ
चली ले करके स्वयं श्रृष्टान्ति, १६ क "
मिली ना असफलता वह मुझे, कभी यदि दे न सकी संतोष। ३२
नियति का भी क्या उसमें दोष।^१ १६ ख "

शृंगार छंद के आधार पर यह विकर्षाधार निर्मित हुआ है। इसका अन्त्यक्रम क, क, क, ख, ख और मात्राक्रम १६, १६, ३२, १६ है। अन्तिम चरण छन्दक है।

(ञ) मेरी ही पृथिवी का पानी, क १६ मात्राएँ
ले ले कर यह अन्तरिक्ष सखि, आज बवा है दानी। क १६, १२ "
मेरी ही भरती का घूम, १५ ख "
बना आज आली, घन घूम। १५ ख "
गूँज रहा गज सा झुक झूम, डाल रहा मनमानी। १५ ख, १२ क "
मेरी ही पृथिवी का पानी।^२ १६ क "

इसके चरण समप्रवाही हैं। विकर्ष का मात्राक्रम १६, २८, १५, १५, २७ (१५, १२), १६ और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, क, (ख, क,) क है।

(ट) निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये,
फँला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये।^३

इस पद के चरण समप्रवाही हैं। छन्दक १६ मात्राओं का और शेष चरण २८ मात्राओं के हैं। अन्त्यक्रम क, क, क, हैं।

(ठ) सखि, वे मुझसे कहकर जाते, १६ मात्राएँ
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते? २८ "

१. शांति, रेखा, पृ० २१।

२. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २११।

३. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २१६।

मुझको बहुत उन्होंने माना,	१६ ”
फिर भी क्या पूरा पहिचाना ।	१६ ”
मैंने मुख्य उसी को जाना,	१६ ”
जो वे मन में लाते ।	१२ ”
सखि, वे मुझसे कह कर जाते । ^१	१६ ”

इस छन्द के समस्त चरण समप्रवाही हैं । विकर्षाधार का मात्राक्रम १६, २८, १६, १६, १६, १२, १६ है और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ख, क, क, है । इसके प्रथम दो चरण छन्दक खंड के हैं, शेष चरणों की आवृत्ति होती है ।

(ढ)	दूँ किस मुँह से आज उलहना,	१६ क मात्राएँ
	नाथ, मुझे इतना ही कहना ।	१६ क ”
	हाय स्वार्थिनी थी मैं ऐसी, रोक तुम्हें रख लेती ?	२८ ख ”
	जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मैं, जाने तुम्हें न देती ?	२८ ख ”
	आश्रय होता या वह बहना ?	१६ क ”
	नाथ मुझे उतना ही कहना । ^२	१६ क ”

छन्द के समस्त चरण समप्रवाही हैं । विकर्षाधार का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, क, क और मात्राक्रम १६, १६, २८, २८, १६, १६ है । प्रथम खंड छन्दक है ।

(ढ)	देखी, शारदा नीलवसना,
	है सम्मुख स्वयं सृष्टि-रसना,
	जीवन समीर शुचि, निःश्वसना, वरदात्री,
	वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर,
	फूटी तर अमृताक्षर निर्झर,
	यह विश्वहंस, है चरण सुघर जिस पर श्री । ^३

तीसरे और छठे चरण की २२ मात्राएँ चौपाई में समप्रवाही षष्ठक जोड़ने से बनी हैं । चौपाई के दो चरण और २२ मात्राओं के चरण के योग से छन्द का आधा भाग बनता है । इस प्रकार के दो खंडों से छन्द का निर्माण हुआ है । साथ ही २६ मात्राओं के

३. गुप्त, यशोधरा, पृ० २४ ।

४. गुप्त, यशोधरा, पृ० ३६ ।

१. निराला, तुलसीदास, छन्द ८७ ।

चरणों का अन्त्यानुप्रास और १६ मात्राओं के बाद पूर्व चरण से अन्तरन्त्यानुप्रास मिलता है ।
विकर्षाधार का मात्राक्रम १६, १६, २२ (१६+६) १६, १६, २२ (१६+६), और अन्त्यक्रम
क, क, ख (क, ख), ग ग ख (ग, ख) ।

(ण) देखे मैंने वे शैल-शृंग,	क १६ मात्राएँ
जो अचल हिमानी से रंजित, उन्मुक्त उपेक्षा भरे तुङ्ग,	क ३२ "
अपने जड़ गौरव के प्रतीक, वसुधा का कर अभिमान भंग,	क ३२ "
अपनी समाधि में रहे सुखी, वह जाती हैं नदियाँ अबोध,	ख ३२ "
कुछ स्वेद बिंदु उनके लेकर, वह स्तिमित-नयनगत-शोक-क्रोध,	ख ३२ "
स्थिर, मुक्त प्रतिष्ठा में वैसी चाहता नहीं इस जीवन की,	ग ३२ "
मैं तो अबाध गति मरुत् सदृश, हूँ चाह रहा अपने मन की,	ग ३२ "
जो चूम चला जाता अगजग, प्रतिपग में कंदन की तरंग,	क ३२ "
वह उवलनशील गतिमय पतंग । ^१	क १६ "

इस विकर्षाधार में प्रथम चरण पद्धरि का, फिर चार चरण पद्धरि सवाई के और दो चरण समान सवाई के हैं; पुनः एक चरण पद्धरि सवाई का और अन्तिम चरण पद्धरि का है । इस प्रकार इस विकर्ष में नव चरण हैं । इसका अन्त्यक्रम क, क, क, ख, ख, ग, ग, क, क, रखा गया है ।

(त) अरे, वह प्रथम मिलन अज्ञात !	क १६ मात्राएँ
विकंपित मृदु उर पुलकित गात ।	क १६ "
सशङ्कित ज्योत्सना सी चुपचाप,	क १६ "
जड़ित पद, नमित पलक दुःग-पात,	क १६ "
पास जब आ न सकोगी, प्राण !	ख १६ "
मधुरता म सी मरी अजान,	ख १६ "
लाज की छुई मुई सी म्लान,	ख १६ "
प्रिये, प्राणों की प्राण ! ^२	ख १२ "

अन्तिम १२ मात्राओं का चरण शृंगार छन्द में जगण न्यून करने से बनता है, यथा-
प्रिये, प्राणों की प्राण, अनन्त, अतः १६ मात्राओं के चरणों और १२ मात्राओं के लय
का प्रारंभ और मध्य एक सा ही है विकर्ष का क्रमायोजन १६, १६, १६, १६, १६, १६,
(शृङ्गार), १२ मात्राओं का है । पर अन्त्यक्रम परिवर्तन-शील है । उदाहरण में क, का

१. प्रसाद, कामायनी, इडा, पृ० १५७ ।

२. पन्त, पल्लविनी, भावी पत्नी के प्रति, पृ० १४८ ।

क, क, ख, ख, ख, ख अन्त्यक्रम है, साथ ही अन्य छन्दों में (१) क, ख, क, ख, क, ख, ग, ग, और (२) क, क, ख, क, ग, क, ग, ग, एवं (३) क, ख, क, ख, ग, घ, ग, घ, आदि अन्त्यक्रम से भी विकर्ष की आयोजना की गयी है।

(ध)	नौका से उठती जल-हिलोर,	१६ मात्राएँ
	हिल पड़ते नभ के ओर-छोर,	१६ "
	विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,	३२ "
	ज्योतिष कर नभ का अंतस्तल,	१६ "
	जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किये अविरल,	३२ "
	फिरती लहरें लुक छिप पल-पल।	१६ "
	सामने शुक्र की छबि झलमल, पंरती परी सौ जल में कल,	३२ "
	रुपहले कचों में हो ओझल !	१६ "
	लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख,	३२ "
	दिखलाता मुग्धा सा रुक रुक ! ^१	१६ "

इस समस्त विकर्ष की इकाई में १६ मात्राओं की एक अद्वाली और चार त्रिसमों का योग है। त्रिसम में, पहले दो चरण एक पंक्ति में, और तीसरा चरण उसके बाद दूसरी पंक्ति में आता है। इस प्रकार मात्राक्रम १६, १६, ३२, (१६, १६.), १६, ३२ (१६, १६,) १६, ३२ (१६, १६), १६ है। अन्त्यक्रम में पहली अद्वाली सम है और चारों त्रिसमों के तीन तीन चरण आपस में समान अन्त्यानुप्रास के हैं।

१७ मात्राएँ:—

(क)	मधुर है स्रोत मधुर है लहरो।	१७ मात्राएँ
	न है उत्पात, छटा है छहरी।	१७ "
	मनोहर झरना,	६ "
	कठिन गिरि कहाँ विदारित करना।	१७ "
	बात कुछ छिपी हुई है गहरी।	१७ "
	मधुर है स्रोत मधुर है लहरो। ^२	१७ "

इसका आधार चन्द्र छन्द (१७ मात्राएँ, प्राचीन नियम १० मात्राओं पर यति, आधुनिक प्रयोग में ८ मात्राओं पर यति) है। ये १७ मात्राएँ पदरि छन्द के अष्टक और नवक (ISSIIS) के योग से निर्मित होती हैं। तीसरे चरण के नवक और चौथे चन्द्र

१. पन्त, पल्लविनी, नौका-विहार, पृ० १८५।

२. प्रसाद, झरना, पृ० १।

चरण का निपात समान होता है। एक ही लय के कारण १७, १७, ६, १७, १७ मात्राक्रम का विकर्ष निश्चित हुआ है। इस छन्द का अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, क, क है। इस छन्द का विशेषता यह है कि अन्त में प्रथम चरण की आवृत्ति होती है।

(ख)	डाल पर/बोलता/है पपी/हा:—	क १७ मा० + ५ + ५ + २
	'हो भला/प्राणधन/, तुम कहीं/? हा ! क १७	" "
	अ, मिलो/ही, जहाँ।	ख १० " ५ + ५
	पी ! कहीं?/ पी ! कहीं? ?	ख १० " "

मात्रिक बाला रगण की आवृत्तियों से बनता है। यही छन्द इस विकर्ष का आधार है। प्रथम दो चरणों में रगण की तीन आवृत्तियाँ और गुरु का योग है, अन्तिम दो चरणों में रगण की दो आवृत्तियाँ हैं, अतः चारों चरणों की लय एक है। इस विकर्ष का मात्राक्रम १७, १७, १०, १० और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख है।

(ग)	छू गया है/कौन मन के/तार,	१७ (७+७+३) मात्राएँ
	बीणा/बोलती है !/	११ (४+७)
	मौन तम के/पार से यह/कौन =	१७ "
	तेरे/पास आया/,	११ "
	मौत में सो/ये हुए सं/सार	१७ "
	को किस/ने जगाया/,	११ "
	कर गया है/कौन फिर भिन/सार	१७ "
	बीणा/बोलती है:/	११ "
	छू गया है/कौन मन के/तार,	१७ "
	बीणा/बोलती है!/ २	११ "

लय के अनुसार यह माधवमालती छन्द है, जो सप्तक (SISS) के आधार पर बनता है, पर लिपि-चरण की दृष्टि से यहाँ १७ मात्राओं के प्रथम चरण के अनुसार विवरण दिया गया है।

यहाँ माधव-मालती के चरण को १७ मात्रा के बाद समाप्त करके शेष ११ मात्राओं का दूसरा चरण बना दिया गया है। इस विकर्ष का मात्रानुक्रम १७, ११, १७, ११, १७, ११, १७, ११ और अन्त्यक्रम क, ख, ग, घ, क, घ, क, ख, क, ख है।

अठारह मात्रा से प्रारंभ होने वाला नव विकर्ष अप्राप्य है।

१. प्रसाद, भरना, पी कहीं, पृ० ३५।

२. बच्चन, सतरंगिनी, नयी भक्तकार, पृ० १२३।

१६ मात्राएँ :—

वह जला क्या/जग उठी इस/जाति की—	१६ ७, ७, ७
सो/ई हुई तक/दीर	१२ ७, ३।
वह/गल गया, क्या/दासता की/ गल गई	२१ : ७, ७, ७, मात्राएँ (अपवाद)
बं/धन बनीं/जं/जीर,	१२ : ७, ५, ”
वह जला क्या/जंग उठी आ/जाद होने/	२१ : ७, ७, ७, ”
की लगन मज/बूत,	१० : ७, ३, ”
वह जला क्या/विश्व ने दे/खा हमें	१६ : ७, ७, ७, ”
आ/श्चर्य से दिल/खोल,	१२ : ७, ३, ”
वह जला क्या/मदितों ने/क्रान्ति की	१६ : ७, ७, ७, ”
दे/खी ध्वजा अम/लान,	१२ : ७, ३, ”
हो गया क्या/देश के	१२ : ७, ७, ७, ”
सब/से दमकते/दीप का नि/र्वाण। ^१	१६ : ७, ७, ३, ”

समस्त छन्द सप्तक (SISS) के आधार पर चलता है। इस विकर्ष का मात्राक्रम १६, १२, १६, १२, २१, १०, १६, १२, १६, १२, १२, १६ है और अन्त्यक्रम क, ख, ग, ख, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, झ है। उदाहरण का तीसरा चरण चौकल से प्रारम्भ होता है, अतः (SISS) अविकलाङ्गी सप्तक दो मात्राओं के बाद शुरू होता है।

२० मात्राएँ :—

(क) लगे जो उपल पद, हुए उत्पल जात,	२० मात्राएँ ५+५+५+५
कंठक चुभे, जागरण बने अवदात,	२० ” ”
स्मृति में रहा पार करता हुआ रात,	२० ” ”
अवसन्न भी हूँ प्रसन्न में प्राप्त वर,	२० ” ”
प्राप्त तब द्वार पर। ^२	१० ” ५+५

समस्त छंद में पंचक (हरावर्तक) की आवृत्ति है, कहीं पर पंचक तगणात्मक है, कहीं शगणात्मक। विकर्ष का अन्त्यक्रम क, क, क, ख, ख और मात्राक्रम २०, २०, २०, १० है।

(ख) हुआ, प्रात/, प्रियतम, तुम/जावगे च/ले ?	२० क
कैसी थी/रात, बन्धु/थे गले ग/ले !	२० क

१. बरचन, खादी के फूल, पृ० १६।

२. निराला, अपरा, प्रात तब द्वार पर, पृ० २५।

फूटा आ/लोक, ६ ख ६+३ मात्राएँ
परिचय परिचय पर जग/गया भेद/शोक । २१ ख ६+६+६+३ „अपवाद
छलते सब/चले एक/अन्य के छ/ले । २० क ६+६+६+२ „
जाव च/गेले ?^१ ८ क ६+२

समस्त छन्द षष्ठक (भृङ्गावर्त्तक) के आधार पर चलता है । यह षष्ठक कहीं विष-मात्मक (SIS) या ISIS) और कहीं समात्मक (४+२ या २+४ मात्राएँ) है । आवृत्त पवों को चिन्हाङ्कित कर दिया गया है । इस विकर्ष का मात्राक्रम २०, २०, ६, २१, २०, ८ और अन्त्यत्रम क, क, ख, ख, क, क है ।

२३ मात्राएँ :—(१) मानिनि ! मान तजो लो, रही तुम्हारी बान । २३ = (४+८
+११ मात्राएँ)
दानिनि ! आया स्वयं द्वार पर, यह तव तत्रभवान् ।^२ २७ = (८+८
+११ मात्राएँ)

इस पद के विकर्ष में २३ मात्राओं के (१२, ११) दोहक का छन्दक है, शेष चरण २७ (१६, ११) सरसी के हैं । दोनों के लय-निपात समान हैं, क्योंकि दोनों ही दोहे के सम दल के समान हैं ।

(२) चढ़ रहा है सूर्य उधर, चाँद इधर ढल रहा,
झर रही है रात यहाँ, प्रात वहाँ खिल रहा,
जी रही है एक साँस, एक साँस मर रही,
बुझ रहा है एक दीप, एक दीप जल रहा,
इसलिए मिलन-विरह विहान में SI X ५ + S आधार
इक दिया जला रही है जिन्दगी, ”
इक दिया बुझा रही है जिन्दगी ।^३ ”

इसके प्रथम चार चरण राधिका वृत्त (SI X ७ + S) के मात्रिक रूप हैं और अन्तिम तीन चरण श्येनिका वृत्त (SISISISIS) के मात्रिक रूप हैं । ये दोनों भेद गलात्मक (IS) हैं, अतः एक साथ आ सके । इस छन्द का अन्त्यत्रम क, क, ख, क, ग, घ, घ है ।

२४ मात्राएँ :—(क) नील कमल, पति कमल, सेत कमल, रक्त कमल । २४ मात्राएँ
अरुण कमल, तरुण कमल, कमल पुष्पराज । २१ „

१. निराला, गीतिका, गीत ६६ ।
२. गुप्त, यशोधरा, पृ० १४३ ।
३. नीरज, बिभादरी, पृ० १३ ।

कमल पुष्पराज, कमल पुष्पराज, कमल पुष्पराज, २७	मात्राएँ
राजकमल पुष्पराज,	१२
अमल कमल, धवल कमल, निर्मल सर बीच कमल, २४	"
हरि के युग चरण सदृश, कमल पुष्पराज । ^१ २१	"

कुण्डल छन्द में प्रयुक्त षष्ठक पर्व (दो त्रिकल) के आधार पर इसका प्रवाह चलता है। दूसरे चरण के उत्तर दल में ६ मात्राएँ हैं, जो तीसरे और चौथे चरण में व्रमशः ४ और एक बार आवृत्त होती हैं। पाँचवें और छठे चरण में पहले और दूसरे चरण की मात्राओं की आवृत्ति होती है। यह विकर्ष संयुक्त गान के अत्यन्त अनुकूल है।

(ख) किस अनन्त का/नीला अंचल/हिला-हिलाकर/	२४ क (८+८+८ मात्राएँ)
आती हो तुम/सजी मंडला/कार ?	१६ ख (८+८+३)
एक रागिनी / में अपना स्वर / मिला मिला कर/	२४ क, ८+८+८
गाती हो ये/कैसे गीत उ/दार ?	१६ ख, ८+८+३
सोह रहा है / हरा क्षीण कटि/में, अम्बर शै/वाल,	२७ ग, ८+८+८+३
गाती आप-आप देती सुकु / मार करों से / ताल,	२७ ग, ८+८+८+३
चंचल चरण ब / ढाती हो,	१४ घ, ८+६
किससे मिलने / जाती हो ? ^२	१४ घ, ८+६

समस्त छन्द में अष्टक (पद्यावर्त्तक) की आवृत्ति है, पूर्ण पर्व या पदांश पर चरण समाप्त होते हैं। विकर्ष का मात्राक्रम २४, १६, २४, १६, २७, २७, १४, १४ और अन्यक्रम क, ख, क, ख, ग, ग, घ, घ है। इस कविता में संपूर्ण विकर्ष की चार आवृत्तियाँ हुई हैं।

(ख) यदि होते बी/च हमारे श्री/गुरुदेव आज,/ ८+८+८ अंत SI
देखते, हाय, / जो गिरी देश / पर महागाज,/ "
होता विदीर्ण / उनका अन्तः/स्तल तो ज़रूर,/ "
यह महा वेद / ना १० ८+२ ८+
किन्तु प्राप्त/ ६ ८+
करती वाणी / । ^३ ८ ८+

१. सहस्रदलकमल, श्रीनारायण चतुर्वेदी।
२. निराला, परिमल, तरंगो के प्रति, पृ० ८०।
३. बच्चन, खादी के फूल, पृ० ४२।

समस्त विकर्ष अष्टकाधृत शक्ति-पूजा छन्द के आधार पर निर्मित है। अन्तिम तीन चरण (१०, ६, ८) की मात्राएँ, शक्ति-पूजा के चरण (२४ मात्रा = अंत SI) के ही तीन खंड हैं। छन्द का मात्राक्रम क, क, ख, ग, घ, च है। इस विकर्ष की तीन आवृत्तियों से यह कविता पूरी हो जाती है। अन्तिम चरणों में परस्पर अन्त्यानुप्रास है।

(ग) किस पातकवश आज हाय रे कूटिल विधाता !	२४ मात्राएँ
नील गगन का पूर्ण चन्द्र है अर्द्ध दिखाता ?	" "
कहाँ गया अर्द्धांश, राहु का शास हुआ क्या,	" "
या विरहिनि की शाप-शक्ति से नाश हुआ क्या ?	" "
नहीं, नहीं, यह भ्रान्ति है,	१३ "
प्रेमी अर्द्ध मयङ्क ।	११ "
खेल रहा है सरस्वि में,	१३ "
सखी कमलिनी अङ्क ।	११ "
आज निःशङ्क हो । ^१	१० "

प्रस्तुत प्रयोग में रोला, दोहा और रगणात्मक दस मात्राओं का योग है। अन्तिम पंक्ति का अन्त्यानुप्रास दोहे के समान है।

२६ मात्राएँ—

मैं निहत्था / जा रहा हूँ / इस अँधेरी / रात में,	७+७+७+५ मात्राएँ
हिंस, जीव लगे हुए हैं / प्राणियों की / घात में ।	७+७+७+५ "
गूँजती गिरि / गह्वरों में / गर्जना है /	७+७+७ "
विषम पथ में / वर्जना है / वर्जना है ।	७+७+७ "
किन्तु डरूँ में / क्यों हे प्यारे !/	८ ८
तेरे पीछे/जाता हूँ	८ ६
माना तुझे न / हीं, पर तेरी/	८ ८
उज्ज्वल आभा / पाता हूँ	८ ६
विमुख करने/की मुझे क्या/शक्ति है उर/पात में,	७+७+७+५ "
मैं निहत्था / जा रहा हूँ / इस अँधेरी/रात में । ^२	७+७+७+५ "

इस विकर्ष के चार चरण सप्तक के आधार पर और चार अष्टकों के आधार पर एवं अन्तिम दो चरण सप्तक के आधार पर चलते हैं। अष्टक पर्व में लय-परिवर्तन की नवीनता

१. गोविन्दवल्लभ पन्त, अर्द्धचन्द्र, प्रतिभा पत्रिका, पृ० १ आश्विन सं० १९७५

२. बि०, अङ्क ७, मुरादाबाद ।

२. गुप्त, भंकार, प्रस्थान, पृ० ३६ ।

आती है। इस विकर्ष का मात्राक्रम २६, २६, २१, २१, १६, १४, १६, १४, २६, २६ और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, ग, घ, ड, घ, च, च है। विकर्ष के प्रथम दो चरण छन्दक के हैं, अतः आठ चरणों की आवृत्ति होती है। अर्द्धसम ताटंक के चार चरण माधव-मालती के चरणों के बीच में आते हैं, पर यदि यह योग अलग-अलग दो भागों में विभक्त होता, तो यह प्रयोग मिश्र वर्ग के छन्दों के अन्तर्गत आता।

२७ मात्राएँ:—अभिनन्दन में दिया प्रकृति को अति अनुपम उपहार, (१६ ११)
शान्त वायु-मंडल में गोपित किया सौख्य-सञ्चार, ”
भोगता जिसे प्रेम सानन्द । १६ मात्राएँ
लहुराता जब दिक्-प्रान्तर में तेरा अञ्चल श्याम, (१६, ११)
प्रेमिक जन आलिंगन करते भाव बद्ध अभिराम, ”
दीप्तउष्मा में क्रमिकानन्द ॥^१ (१६) ”

यह विकर्ष सरसी और शृङ्गार छन्द के संयोग से बना है। पहले, दूसरे, चौथे और पाँचवें चरण सरसी के; और तीसरे तथा छठे चरण शृङ्गार छन्द (१६ मात्रा अंतः आदि विषम) के हैं। सरसी का अंत विषम मात्रिक है, और शृङ्गार का आदि विषम-मात्रिक है, अतः दोनों के संयोग से समात्मकता आ आती है। शृङ्गार का चरण सरसी की लयचारा में विश्राम ही नहीं देता, अपितु भाव को ग्रंथिबद्ध भी कर देता है, जिससे मुक्त गति का भाव-वैभव निखर आता है। इसका अन्त्यक्रम अ, ब, स, द, य, स है। ‘स’ और ‘स’ के अन्त्यक्रम के योग से छन्द की इकाई भी सुगठित होती है।

छन्दक और गीत

आचार्य भरत ने ‘छन्दक’ शब्द को टेक के अर्थ में प्रयुक्त किया है और आचार्य अभिनव गुप्त ने अपनी विवृति में इसी अर्थ का स्पष्ट समर्थन भी किया है।^२ विभिन्न छन्दों

१. चन्द्राक, रजनी-गीत, विश्वसाहित्य, जुलाई १९५२।

२. गीतानां छन्दकानां च भूयो वक्ष्याम्यहं विधिम।

सर्वेषामेव गीतानामन्ते छन्दक इष्यते। २६६। चतुर्विंशोऽध्यायः। आचार्य भरत, नाट्यशास्त्रम्।

विधाने छन्दसामेषा/संपदित्यभिसंज्ञिता।

आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, १०३, १४ अ०।

टीका:— तमेवांगनिबद्धेषु छन्दकेष्वपि योजयेत्

वाचंगुर्वक्षरंकृतं तथाल्पक्षरमेव च।

मुखे सोपोहने कुर्यात् वर्णानां विप्रकर्षतः।

यदा गीतिवशावरा भूयोभूयो निवर्तते/

३०५, ३०६ चतुर्विंशोऽध्यायः, नाट्यशास्त्रम्, सम्पादक श्री० भट्टाचार्य।

के साथ विभिन्न सम्पदों (चरणों) ^१ का प्रयोग संस्कृत गीतों में होता था। वर्तमान युग में हिन्दी-गीतों में भी छन्दक और संपदों की लयमैत्री में आन्तरिक साम्य होता है, यद्यपि बाह्यतः आकार-भेद सर्वत्र रहता है। छन्दक सम्पद की अपेक्षा अधिक लचीला और संगीत-प्रधान होता है। सम्पद के चरण प्रायः निश्चित छन्दों में बँध कर चलते हैं। प्रयोग में यन्त्रों के योग से गायक के छन्दक की लयमैत्री पूर्णतया सम्पद-चरणों के साथ स्थापित की जाती है। नर्तक और वादक को सम्पद में सामान्य नृत्य और ध्वनि-योजना करनी पड़ती है, पर जब छन्दक आता है, तो विशेष कलात्मकता दिखानी पड़ती है, क्योंकि छन्दक ही समस्त गीत के भाव और लय का प्राण-केन्द्र होता है। छन्दक और सम्पदों की लयमैत्री के सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि दोनों के छन्द भिन्न होते हैं, अन्यथा सम्पद की धारा के बाद ध्वनि-विधान की नवीनता संभव नहीं हो सकती।

जयदेव के 'गीतगोविन्द' से ऐसे बहुत उदाहरण दिये जा सकते हैं, जहाँ छन्दक और सम्पद में छन्द की भिन्नता होते हुए भी एक आन्तरिक मैत्री है।

- | | |
|--|---------------------------|
| (१) हरिरिह मुग्ध-वधू-निकरे । | १४ मात्राएँ (अष्टकावार ।) |
| वि/लासिनि विलसति केलिपरे । | १+१४ " " |
| पीन-पयोधर-भार-भरेण हरि परिरभ्य सरागम् । | २८ " " |
| गोपबधूरनुगायति कचिदुञ्चितपञ्चमरागम् । ^२ | " " " |

छन्दक का प्रथम चरण हाकलि (१४ मात्रा) का है, दूसरे चरण में हाकलि के पहले एक मात्रा है। दोनों में मध्य और निपात का साम्य है। तीसरे और चौथे चरण सारछन्द (१६, १२) के हैं, जो समप्रवाही हैं। छन्दक भी समप्रवाही है, क्योंकि सम-विषम-मैत्री पर इसकी धारा चलती है, अतः सम्पद और छन्दक में साम्य है।

- | | |
|--|------------------|
| (२) हरिहरिह/तादरतया/गता सा कृपि/तेन । | ५+७+७+३ मात्राएँ |
| मामियं चलि/ता रिलोक्य वृ/तं वधूनिच/येन । | ७+७+७+३ " |
| सापराधत/या मया न नि/वारितातिभ/येन । ^३ | ७+७+७+३ " |

छन्दक और सम्पद दोनों ही सप्तक के आधार पर चलते हैं। सम्पद रूपमाला छन्द (SISX ३+SI) का है। छन्दक की अन्तिम दस मात्राएँ विल्कुल रूपमाला के लय-निपात से मिलती हैं, और पहली बारह मात्राएँ भी सप्तक के आधार पर चलती हैं, पर छन्दक में-

१. नैवातिरिक्त होनं वा यत्र संपद्यतेऽक्षरम् ।

विधाने छन्दसामेव संपदित्यभिसंज्ञिता ॥

ग्राचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, १४ अ., १०३ ।

२. जयदेव, गीतगोविन्द, रासविलास-वर्णन ।

३. जयदेव, गीतगोविन्द, प्रोषितपतिका-वर्णन ।

१२ मात्राओं के अन्त में पवांश आता है. एवं नवीन भेद का सप्तक प्रारंभ होता है, अतः इस स्थान पर यत्रि देनी पड़ती है, जो कि व्यथा के उच्चास की व्यंजना करती है।

(३) विहरति हरिह सरस वसन्ते । १६ मात्राएँ
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि/विरहि-जनस्य दुरन्ते । (छन्दक) १६+१२ ”
ललित-लवंग-लता-परिशीलन/कोमल-मलय-समीरे । ” ”
मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल/कूजित-कुंज-कुटीरे ॥^१ ” ”

प्रथम चरण चौपाई का, दूसरा चरण सार (१६ १२ मात्रा) छंद का है और तीसरे चौथे आदि सम्पद चरण भी सार छंद के हैं। सार और चौपाई दोनों ही पदमावर्त्तक (अष्टकाधार) समप्रवाही हैं। चौपाई की अन्तिम १२ मात्राएँ सार की अन्तिम बारह मात्राओं से मिलती है, और सार की प्रारंभिक १६ मात्राओं की लय भी चौपाई की है, अतः चौपाई और सार की लय का आरंभस्फोट और निपात दोनों ही समान हैं।

(४) यामिहे/कमिहृषार/णं सखी/ जन-वचन/वञ्चिता । ५+५+५+५+५ मात्राएँ
कथित सम/येऽपिहरि/रह हनव/यीवनम् । ५+५+५+५ ”
मम विफल/मिदममल/रूपमपि/यीवनम् ॥^२ ५+५+५+५ ”

छन्दक चरण पञ्चकाधार (रगण) पर निर्मित २५ मात्राओं का है और सम्पद के चरण अक्षर छन्द (२० मात्राएँ, पंचक × ४) से निर्मित हैं। यद्यपि छन्दक के दो खंड हैं, जो बीच में यति देकर पढ़े या गाये जाते हैं, तथापि उन दोनों में भी हरावर्त्तक (पंच-मात्रिक) मंत्री मिल जाती है।

(५) रमते/ग्रमुना/पुलिन व/न, विजय मु/रारिर/धुना । छन्दक। १४+८+३ मात्राएँ
समुदित/मदने/रमणी/वदने/चुम्बन/वलिता/धरे । १६+८+३ ”
मृगमद/तिलकं/ लिखतिस/पुलकं/मृगमिव/रजनी/करे ॥^३ १६+८+३ ”
(राग सोरठ, तीन ताल, उत्कंठावर्णनम्)

छन्दक का पहला अंश हाकलि का है, जो समप्रवाही है और दूसरा अंश ४+४+३ मात्राओं का है, जो सम्पद के निपात से पूर्ण साम्य रखता है। सम्पद भी समप्रवाही है। सम्पद का निपात ११ मात्राओं का है, जो छन्दक के निपात से पूर्णतया मिलता है, जैसा कि वक्रांकित से प्रकट है।

१. जयदेव, गीत गोविन्द, प्रोषितपतिका-वर्णन ।
२. जयदेव, गीतगोविन्द, विप्रलब्धावर्णन ।
३. जयदेव, गीतगोविन्द, उत्कण्ठा-वर्णन ।

हिन्दी के छन्दकों और पदों में भी पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। गीतों के ऐसे अनेक उदाहरण विकर्षाधारों में दिये जा चुके हैं। उन दोनों के संबन्ध की ओर भी स्थान-स्थान पर निर्देश किया गया है।

हिन्दी-गीतों की परम्परा में कबीर, विद्यापति और मीरा के पदों को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि उनसे पहले भी अपभ्रंशकाल (मात्रिक युग) में भी कोई ऐसे पदों की परम्परा जनगीतों के रूप में रही होगी, जिसका इतिहास प्राप्त नहीं है। छन्दकों और संपदों का संयोग जयदेव के पहले नहीं मिलता है। भरत के द्वारा निर्दिष्ट छन्दक कौन है और वे गीत कौन हैं, इसके बारे में संस्कृत का प्रकाशित साहित्य कुछ नहीं कहता। अवश्य ही मात्रिक संगीत के विक.स के साथ छन्दक और सम्पद का विशेष योग हुआ होगा। पदों ही यह परम्परा भक्तिकाल में आकर प्रौढ़ होती है। सूर और तुलसी ने इस धारा को विशेष रूप से शक्तिशाली बनाया है।

भारतेन्दु के युग में पद-परम्परा की सरस्वती पुनः उद्वेलित हुई। उनके बाद गुप्त जी अपने प्रबंधों में निश्चित रूप से प्राचीन शैली के पदों की रचना की है, यथा :—

- (१) वेदने, तू भी भली बनी।
- (२) कहती मैं, चातकि, फिर बोल।
- (३) निरख सखी, ये खंजन आये।
- (४) शिशिर, न फिर गिरि-वन में।
- (५) मुझे फूल मत मारो।
- (६) अब जो प्रियतम को पाऊँ।
- (७) मेरे चपल यौवन बाल।^१
- (८) देखी मैंने आज जरा।
- (९) हाय ! कट डाले वे केश।
- (१०) रोहणि ! हाय यह वह तीर।
- (११) जल के जीव हैं, माँ मीन।^२ आदि

इस युग में भी विकर्ष-वर्ग में ऐसी कविताएँ हुई हैं, जिन्हें पद-शैली में लिख दिया जाये, तो पद मानने में कोई आपत्ति न होगी, यथा—

जादू बिछा दिया इस भू पर।

तुमने सोने की किरणों की,

१. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग।

२. गुप्त, यशोधरा।

जीवन हरियाली बो-बोकर ।
 फूलों से उड़ फूल रँगों से
 निखर सूक्ष्म रँग उर के भीतर,
 बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन,
 स्वर्ण रुधिर से अन्तर थर-थर ।^१

पद-लिपि :—

जादू बिछा दिया इस भू पर ।
 तुमने सोने की किरणों की / जीवन-हरियाली बो-बोकर ।
 फूलों से उड़ फूल रँग से/निखर सूक्ष्म रँग उर के भीतर ।
 बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन/स्वर्ण रुधिर से अन्तर थर-थर ।

हिन्दी छन्दक और सम्पद

८ मात्राएँ :—

(क) ओ वि/भाव/री
 चाँदनी का/अंगराग/,(का' लघु उच्चरित)
 साँग में स/जा पराग,
 रश्मि-तार/बाँध मृदुल,
 चिकुर भार/री ।
 ओ वि/भाव/री ।^२

सारा छन्द भृङ्गावर्त्तक (षष्ठकाधार) है । आठ मात्राएँ षष्ठक में गुरु जोड़ने से बनती हैं और सम्पद भी षष्ठक आधार पर चलता है ।

(ख)	तुम आती हो;/	८ मात्राएँ
	नव अंगों का/	८ "
	शाश्वत मधु-विभव लुटाती हो ।/	१६ "
	बजते नि.स्वर/नूपुर छम-छम,/	१६ "
	साँसों में थम/ता स्पन्दनक्रम/,	१६ "
	तुम आती हो, /	८ "

१. पन्त, स्वर्ण-किरण, सम्मोहन, पृ० ३ ।

२. महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० ६७ ।

अन्तस्तल में/
शोभा ज्वाला/लिपटाती हो/ ।^१

८ मात्राएँ
१६ ”

समस्त विकर्ष समप्रवाही है। इसका मात्राक्रम ८, ८, १६, १६, १६, ८, ८, १६ और अन्त्यक्रम क, ख, क, ग, ग, क, घ, क है। इसके प्रथम तीन चरण छन्दक हैं, शेष पाँच चरणों की आवृत्ति होती है।

६ मात्राएँ:—(१) (SSISS) (जयशस्यश्यामा) तगणात्मक।

इस छन्दक का प्रयोग सारंग छन्द (४ तगण) के साथ हुआ है:—

(१) जय शस्य/श्यामा ५+४ मात्राएँ
रत्नप्र/सू. पुण्य/भू पूर्ण/कामा ।^२ ५+५+५+४ ”

(२) प्राण ! तुम आ/ई।

नयन के प्या/से गगन में/ मेघ बन छा/ई।

रूप के रस/को बरसती/ स्वयं हरषा/ई।

भाव-लतिका/एँ हृदय की/ चपल लहरा/ई।^३

छन्दक और सम्पद दोनों का आधार सप्तक (SSS) है।

(३) नीचे के उदाहरण में SI,IS/S का प्रयोग भूज्ञावर्त्तक चरणों के साथ हुआ है।

मौन रही/हार, ६+३ मात्राएँ
प्रिय पथ पर/चलती, सब/कहते शृंगार ।^४ ६+६+६+३ ”

१० मात्राएँ:—

(१) नीचे के उदाहरण में (IIS/IS) छन्दक का प्रयोग भूज्ञावर्त्तक चरणों के साथ हुआ है:—

सरि, धीरे/बह री ! ६+४ मात्राएँ
व्याकुल उर/दूर मधुर/, तू निष्ठुर/, रह री/ ।^५ ६+६+६+४ ”

१. पन्त, उत्तरा, अनुभूति, पृ० ६३।

२. कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, शम्पा, पृ० ८।

३. चन्द्राकर, प्रणय-गीत, अभिनन्दन।

४. निराला, गीतिका, पृ० ८।

५. निराला, गीतिका, पृ० २१।

अन्त्यानुप्रास का अन्तिम खंड चौकल ही है, क्योंकि छन्दक के अन्तिम अंश में षष्ठक के बाद चौकल है ।

(२) नीचे के उदाहरण में (SISII/SI) छन्दक का प्रयोग अग्न्यावर्त्तक (सप्तकाधार) चरणों के साथ हुआ है :—

मेघ के घन/केश,	७+३	मात्राएँ
निरुपमे, नव/वेश,	५+३	”
चकित चपला/के नयन नव/,	७+७	”
छा रहा सब/देश । ^१	७+३	”

छन्द की समाप्ति त्रिकल में हुई है, क्योंकि छन्दक का निपात त्रिकलात्मक है ।

(३) नीचे के प्रयोग में (ISSS/SI) छन्दक का प्रयोग सप्तकाधार चरणों के साथ हुआ है ।

रहा तेरा/ध्यान,	७+३+	मात्राएँ
जग का/गया सब अ/ज्ञान,	४+७+३	”
गगन घन विट/पी, सुमन न/क्षत्र ग्रह, नव/ज्ञान । ^२	७+७+७+३	”

छन्दक और सम्पद सभी सप्तक के आधार पर निर्मित हुए हैं । अन्तिम चरण का लय-निपात त्रिकलात्मक है, जो छन्दक के त्रिकल-निपात के समान ही है ।

(४) नीचे के उदाहरण में IISIS/SI छन्दक का प्रयोग हरावर्त्तक (पंचकाधार) चरणों के साथ हुआ है ।

बहुती नि/राधार	(५+५)	मात्राएँ
पृथ्वी ग/गन में अ/तनु में सु/तनु हार/	५+५+५+५	(तगणात्मक) ”
शब्द स्वर/के भरे/ ।	५+५	(रगणात्मक) ”
विचरे अ/नल भार/ ॥ ^३	५+५	(तगणात्मक) ”

समस्त छन्द पंचक के आधार पर चलता है । निपातसाम्य के लिये छन्दक की भाँति अन्य चरणों का भी तगणमूलक अन्त होता है ।

१. निराला, गीतिका, पृ० ५० ।

२. निराला, गीतिका, पृ० ६४ ।

३. निराला, गीतिका, पृ० ६८ ।

(५) नीचे के उदाहरण में $SISS/SI$ छन्दक का प्रयोग सप्तकाधार चरणों के साथ हुआ है, जिसमें त्रिकलात्मक निपात है।

प्यार का सं/सार,	७+३ मात्राएँ
सृष्टि-क्रम में/ सतत जीवन/ का बना आ/धार।	७+७+७+३
मृत्तिका में/ भी जगाता/ दिव्य सौरभ/-सार॥	” ”
जड़ प्रकृति में/ एक चेतन/ का यही उप/हार।	” ”
मनुज को दे/वत्व की प्रिय/ साधना वा/ द्वार॥	” ”
पन्थ दुर्गम/ किन्तु बाधा/ सफलता श्रु/ङ्गार।	” ”
विकल पथ में/ इसलिये मन/ ने न मानी/ हार॥ ^१	” ”

११ मात्राओं के छन्दक :—

(१) नीचे के उदाहरण में (SS/SI) छन्दक का प्रयोग हुआ है, जिसमें गुरु-लघु-मूलक त्रिकलात्मक निपात है। छन्दक और सम्पद के सभी चरण समप्रवाही हैं, अतः दोनों की लयें समान होने के कारण यह संयोग संभव हो सका है।

ओ पागल सं/सार	८+१ मात्राएँ
माँग न तू हे/शीतल तममय/ !	८+८ ”
जलन का उप/हार ! ^२	८+३ ”

(२) नीचे के उदाहरण में ($II/SIIS/SI$) छन्दक का प्रयोग भृङ्गावर्तक चरणों के साथ हुआ है, जिसमें छन्दक और सम्पद के निपात त्रिकलात्मक हैं।

तुम/छोड़ गये/द्वार,	२+६+३ मात्राएँ
तब से यह/सूना सं/सार।	६+६+३ ”
पवनांचल/में जैसे/सुखंकर,	६+६+४ ”
मुकुल सुरभि/भार। ^३	६+३ ”

१२ मात्राओं के छन्दक :—

(१) नीचे के उदाहरण में षष्ठक छन्दक का प्रयोग भृङ्गावर्तक (षष्ठकाधार) सम्पदों के साथ हुआ है। छन्दक के प्रथम चरण और सम्पद चरणों के निपात गुरु-लघु-मूलक त्रिकलात्मक हैं :—

१. चन्द्राकर, प्रणय गीत, प्यार का संसार।

२. महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० १६।

३. निराला, गीतिका, पृ० २५।

अमरण भर/ वरण गान,/	६+६ मात्राएँ
वन-वन उप/वन उपवन,/	" "
जागी छवि/ खुले प्राण ।/	" "
उज्ज्वल दृग/ कल-कल, पल,/	" "
निश्चल कर/ रही ध्यान । ^१	" "

(२) नीचे के उदाहरण में (SSSIHSS) समात्मक छन्दक का प्रयोग समात्मक सम्पद चरणों के साथ हुआ है :—

जागो, जीवन-धनिके !	८+४ मात्राएँ	} सारक छंद
विश्व-पण्य प्रिय वणिके !	" "	
खोलो उषा-पटल निज कर अयि, ८+८ मात्राएँ	८+२ "	} विष्णु छंद
छविमयि, दिनमणिके ! ^२		

(३) नीचे के उदाहरण में SII II/III IS छन्दक का प्रयोग भृङ्गावर्तक (षष्ठकाधार) चरणों के साथ हुआ है, जिसमें छन्दक और सम्पद के समस्त चरण समप्रवाही हैं ।

भारति, जय,/ विजय करे !	६+६ मात्राएँ
कनक शस्य/कमल धरे !	"
धोता शुचि/चरण युगल,	"
स्तव कर बहु अर्थ-भरे । ^३	"

(४) नीचे के उदाहरण में IISIISS समात्मक छन्दक का प्रयोग समात्मक सम्पद चरणों के साथ हुआ है, जिसमें सम्पद चरणों का दूसरा बारह मात्राओं का भाग छन्दक के समान है :—

मन को यों मत/जीतो ।	१२ मात्राएँ
बंठी है यह/ वहाँ मानिनी, सुख लो इसकी/भी तो ^४	१६, १२ "

(५) नीचे के उदाहरण में (ISISIS) लगात्मक बारह मात्राओं के छन्दक का प्रयोग समात्मक सम्पद चरणों के साथ हुआ है, जिसमें दोनों की मूल लयें भिन्न हैं । ऐसे

१. निराला, गीतिका, पृ० ६ ।

२. निराला, गीतिका, पृ० १७ ।

३. निराला, गीतिका, पृ० ७३ ।

४. गुप्त, साकेत, पृ० २०६ ।

प्रयोग संगीत की दृष्टि से अभिनन्दनीय नहीं होते। सम्पद और छन्दक चरणों का निपात समान करने के लिए समप्रवाही सम्पद चरणों के अन्त में रगण रखा गया है, और दो भिन्न लयों का मेल किसी तरह बँटा दिया गया है

तुझे नदीश मान दे, (लगात्मक और रगणान्त)

नदी, प्रदीप-दान ले,

तुझे और क्या दूँ ? थोड़ा भी आज बहुत तू मान ले ।^१ रगणान्त, १६, १३ मात्राएँ
१३ मात्राओं के छन्दकों का प्रयोग:—

(१) नीचे के उदाहरण में (IIISIII/SIS) छन्दक का प्रयोग रगणांत समप्रवाही सम्पद चरणों के साथ हुआ है, क्योंकि छन्दक भी रगणांत ही है। यहाँ छन्दक और सम्पद की लय में पूर्ण साम्य है।

विरह संग अभिसार भी (उल्ललित छन्द) (रगणांत)

जहाँ भार आभार भी,

में पिजड़े में पड़ी हुई हूँ, किन्तु खुला हूँ द्वार भी^२ । (मरहठा माधवी) (रगणांत)

(२) नीचे के उदाहरण में (IIIS/SSI) छन्दक का प्रयोग १८ मात्राओं के चरणों के साथ हुआ है, जिसमें सम्पदों का अन्तिम चरण छन्दक के समान रखा गया है, पर इसे प्रसन्न प्रयोग नहीं कहा जा सकता।

बुन कर तर्कों का जाल,

१३ मा० (२+११)

स्वयं मैं ही इस/भू पर आ फँसा,/

१८ मा० (६+६)

उड़ा तू पँछी/ऊपर जा हँसा,/

१८ मा० (६+६)

फँसा कर पंख विशाल ।^३

१३ मा० (२+११)

१४ मात्राओं के छन्दक:—

(१) इस उदाहरण में SSSS/SSS समात्मक छन्दक का प्रयोग समात्मक सम्पद चरणों के साथ हुआ है।

१. गुप्त, यशोधरा, पृ: ११५।

२. गुप्त, साकेत, पृ० २०३।

३. मैथिलीशरण गुप्त, प्रतीक, ४, ५ 'लैंड'।

मेरे प्राणों में आओ । १४ मात्राएँ
शत-शत शिथिल भावनाओं के उर, के तार सजा जाओ ।^१ १६, १४ "

(२) इस उदाहरण में (SIIS/SISII) सप्ताकाधार छन्दक का प्रयोग सप्ताकाधार सम्पद चरणों के साथ हुआ है ।

कौन तम के/ पार^१, (रे कह),/ ७+३+४=१४ मात्राएँ
अखिल पल के/ खोत, जल जग, / १४ "
गगन घन घन/-धार (रे कह)^२ । १४ "

(३) निम्नांकित उदाहरण में समप्रवाही चौदह मात्राओं (हाकलि छंद) के साथ समान मात्राओं के सम्पद चरणों का प्रयोग हुआ है:—

निष्फल दो-दो बार गई, १४ मात्राएँ
हार गई माँ, हार गई ! "
आगे आगे अम्ब जहाँ, "
में पीछे चुपचाप वहाँ, "
खोज फिरी तू भरी कहाँ, "
फिर कर क्यों न निहास गई ।^३ "

(४) निम्नांकित उदाहरण में (SIS II/SISS) सप्तकाधार छन्दक का प्रयोग सप्तकाधार सम्पद चरणों के साथ हुआ है:—

मैं बनी मधु/मास वाली !/ ७+७ मात्राएँ
आज मधुर वि/षाद की धिर/ करुण आई/ यामिनी, ७+७+७+५ मा०
बरस सुधि के/ इन्दु से छिट/की पुलक की/ चाँदनी, ७+७+७+५ मा०
उमड़ आई/ रे दृगों में,/ ७+७ मात्राएँ
सजनि, कालि/दी निराली/ ।^४ ७+७ "

१५ मात्राओं के छन्दक का प्रयोग:—

(१) निम्नांकित उदाहरण में (SISSII/SIIS) छन्दक का प्रयोग समात्मक सम्पद

१. निराला, गीतिका, पृ० १३ ।
२. निराला, गीतिका, पृ० १४ ।
३. गुप्त, यशोधरा, पृ० ५३ ।
४. महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० ४८ ।

चरणों के साथ हुआ है, क्योंकि प्रारम्भ के त्रिकल के बाद छन्दक का प्रवाह भी समात्मक हो जाता है और छन्दक तथा सम्पदों के लय-निपात में साम्य स्थापित हो जाता है ।

छोड़ दो, जीवन/ यों न मलो ।	६ + ६ = १५ मात्राएँ
ऐठ अकड़ उस/के पथ से तुम,/	८ + ८ ”
रथ पर/ यों न चलो । ^१	४ + ६ ”

(२) निम्नाङ्कित उदाहरण म (ISSSII/ISII) छन्दक की लय शृंगार छन्द के अन्तिम गुरु लघु के स्थान पर दो लघु रखने से बनती है, अतः शृंगार छन्द के साथ इस छन्दक का प्रयोग हुआ है । इस प्रयोग में सम्पद चरणों का अन्तिम चरण का अन्त्यानुप्रास छन्दक के तुक के समान कर दिया जाता है:—

तुम्हारे सुन्दरि, कर सुन्दर,	१५ मात्राएँ (गोपी छन्द)
मिलाये हुए वर अमर वर,	१५ ” ”
मृत्यु को अपने ही कर म्लान,	१६ ” (शृंगार छन्द)
कर दिया तुमने प्रिया सुघर । ^२	१५ ” (गोपी छन्द)

(३) निम्नांकित उदाहरणों में समात्मक छन्दक के साथ समात्मक सम्पद चरण का प्रयोग हुआ है ।

(क) वेदने, तू भी/ भली बनी । ६ + ६ (दो त्रिकल) = १५ मात्राएँ
पाई मैंने/ आज तुझी में/, अपनी चाह बनी ।^३ १६, १० (४ + २ त्रिकल) ”

(ख) गये हो तो यह/ ज्ञात रहे, ६ + ६ (SI/IS) = १५ मात्राएँ
स्वामी व्यर्थ न/ दिव्य देह वह,/ ८ + ८ = १६ ”
तप, वर्षा, हिम,/ बात सहे ।^४ ८ + ६ (SI/IS) = १४ ”

इस छन्दक में पहली मात्रा के बाद समात्मक प्रवाह चलता है, जो संपद चरणों के समान है ।

(ग) धूम रहा है/ कैसा चक्र, ८ + ७ (४ + SI) = १५ मात्राएँ, चौपई छन्द
वह नवनीत क/हाँ जाता है/, रह जाता है/ तक्र^५ । १६, ११ (८ + SI)

१. निराला, गीतिका, पृ० १२ ।
२. निराला, गीतिका, पृ० ७१ ।
३. गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ० २०३ ।
४. गुप्त, यशोधरा, पृ० ११२ ।
५. गुप्त, यशोधरा, पृ० १२ ।

छन्दक का छन्द चौपाई और सम्पद का चरण सरसी छन्द का है। ये दोनों ही छन्द गुरु-लघु-मूलक त्रिकलांत होते हैं अतः इन दोनों का लय-निपात समान है।

१६ मात्राओं के छन्दकों का प्रयोग:—

(क) निम्नांकित उदाहरण में शृंगार छन्द के छन्दक के साथ १६ मात्राओं का समप्रवाही चौपाई छन्द और गलात्मक निपात प्रयुक्त हुआ है।

बह चली अब अलि, शिशिर समीर ! (शृंगार छन्द का चरण) १६ मात्राएँ, अंत SI
 काँपी भीरु मृणाल वृन्त पर, (चौपाई चरण) १६ ”
 नील कमल कलिकाएँ थर-थर, ” १६ ”
 प्रात अरुण को कदण अश्रु भर, ” १६ ”
 लखतीं अहा अधीर ।^१ (अहीर छन्द का चरण) ११ ” (अंत, गुरुलघु)

शृंगार छन्द का लय-निपात दोहे के सम दल के लय-निपात के समान होता है, इसीलिये सम्पद का, अन्तिम ११ मात्राओं का चरण छन्दक से लय-साम्य स्थापित कर लेता है।

(ख) प्रस्तुत उदाहरण में शृंगार छन्द के छन्दक के साथ समप्रवाही सम्पद चरणों का प्रयोग हुआ है, लेकिन सम्पद के जिस चरण का अन्त्यानुप्रास छन्दक के साथ मिलत है, उसके अन्त में गुरुलघु रखा गया है, जिससे बीच में समप्रवाही लय-धारा चलने के साथ साथ छन्दक और सम्पद में मंत्री स्थापित हो जाती है।

याद रखना इतनी ही बात। (अन्त, गुरु लघु) १६ मात्राएँ (शृंगार छन्द)
 नहीं चाहते, मत चाहो तुम ” १६ ” } वीर का चरण
 मेरे अर्घ्य, सुमनदल, नाथ ! ” १५ ” }
 मेरे वन में भ्रमण करोगे जब तुम, ” २० ” } योग छन्द
 अपना पथ-श्रम आप हरोगे जब तुम, ” २० ” }
 ढक लूंगी मैं अपने दूग-मुख, ” १६ ”
 छिपा रहूँगी गात ।^२ ” ११ ” (अहीर छन्द का चरण)

इस विकर्ष के १६, १५, २०, २०, १६, ११ मात्राओं के चरण समप्रवाही हैं।

१. निराला, गीतिका, पृ० १०।

२. निराला, गीतिका, पृ० ३०।

(ग) प्रस्तुत उदाहरण में शृङ्गार छन्द के छन्दक के साथ सरसी छन्द के सम्पद चरणों का प्रयोग हुआ है। शृङ्गार छन्द और सरसी छन्द दोनों का लय-निपात गुरुलघुमूलक त्रिकलांत होता है, इसीलिये इन दोनों छन्दों का संयोग संभव हुआ है।

हमारा आया आज वसंत, (अन्त, गुरु-लघु)	१६ मात्राएँ (शृङ्गार)	
फैल रहा उल्लास घरा पर,	१६ "	} (सरसी)
जिसका आदि न अन्त । (अन्त, गुरु-लघु)	११ "	

(घ) चौपाई छन्दक के साथ समप्रवाही सभी छन्द आ सकते हैं। यहाँ चौपाई छन्द के साथ चौपाई छन्द ही के सम्पद चरणों के योग का उदाहरण दिया जाता है।

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे । (चौपाई)	१६ मात्राएँ
रोता है, अब किसके आगे ?	१६ "
तुझे देख पाते वह रोता,	१६ "
मुझे छोड़ जाते क्यों सीता ?	१६ "
अब क्या होगा ? तब कुछ होता,	१६ "
सोकर हम खोकर ही जागे ।	१६ "
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे २	१६ "

१७ मात्राओं के छन्दक का प्रयोग:—

प्रस्तुत उदाहरण में (S|SSS|SSS) त्रिकल के बाद छन्दक समप्रवाही हो जाता है, अतः इस छन्दक के साथ समप्रवाही सम्पद चरणों का योग संभव हो सका है। १६ मात्राओं के चरण समप्रवाह होते हुए भिन्न निपात के हैं। पर सम्पद के मध्य भाग में होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि सम्पद के अन्तिम चरण का निपात छन्दक के समान ही है।

कल्पना के कानन की रानी,	१७ मात्राएँ
आओ, आओ मृदु पद, मेरे	१६ "
मानस की कुसुमित वाणी ।	१४ "
सिहर उठें पल्लव केँ दल, नव अंग,	१६ + ३ "
बहे गुप्त परिमल की मृदुल तरंग,	१६ + ३ "
जागे जीवन की नव ज्योति अमंद,	१६ + ३ "

१. डॉ० भगीरथ मिश्र, चित्रण, वसन्त, पृ० २४।

२. गुप्त, यशोधरा, पृ० ४६।

हिले वसन्त समीर स्पर्श से,
वसन तुम्हारा धानी ।^१

१६ मात्राएँ
१२ ”

२० मात्राओं के छन्दक का प्रयोग:—

यहाँ स्रग्विणी छन्द के आधार पर निर्मित २० मात्राओं के छन्दक का प्रयोग हुआ है, जिसके साथ रगणात्मक (रगण का मात्रिक विस्तार) दस मात्राओं का प्रयोग है। आदि से अन्त तक सभी चरणों का आधार रगण होने के कारण छन्दक और सम्पद चरणों की समान लय-मैत्री रहती है।

अनगिनित/ आगये/ क्षरण में/ जन, जननि/,	५+५+५+५=	२० मात्राएँ
सुरभि सुम/नावली/ खुली, मधु/ ऋतु अविनि/!	५+५+५+५=	२० ”
स्नेह से/ पंक उर:/	५+५=	१० ”
हुए पं/कज मधुर/, (अपवाद)	”	१० ”
ऊर्ध्व दृग/ गगन में/,	”	१० ”
देखते/ मुक्त-मणि / ! ^२	”	१० ”

२२ मात्राओं के छन्दक का प्रयोग:—

इस उदाहरण में समप्रवाही छन्दों के साथ समप्रवाही चरणों का ही योग हुआ है। बीच के चरणों में लय बदलती है, परन्तु छन्दक के साथ तुक मिलाने वाले सम्पद चरण छन्दक की भाँति ही समप्रवाही हैं।

तुम हँसते-हँसते घृणा बन गये मन में,	२२ मात्राएँ
जन मंगल-हित हे !	१० ”
अब काटो जग का अंधकार,	१६ ” (पद्धति)
भू के पापों का विषम भार,	१६ ”
मेढो मानव का अहंकार,	१६ ”
चिर-संचित तुम्हें समर्पित है,	१६ ”
युग-परिवर्तन में !	१० ”
तुम तपते-तपते द्वेष बन गये मन में,	२२ ”
जन-मंगल-हित हे ! ^३	१० ”

१. निराला, गीतिका, पृ० २६।

२. निराला, गीतिका पृ० २०।

३. पन्त, उत्तरा, मनोमय, पृ० ३८।

२३ मात्राओं के छन्द का प्रयोग:—

प्रस्तुत उदाहरण में सप्तक के (SISS) आधार पर निर्मित छन्द के साथ उसी छन्द के सम्पद चरणों का योग हुआ है:—

बीन भी हूँ/ मैं तुम्हारी/ रागिनी भी/ हूँ ।	७, ७, ७, २ मात्राएँ
नींद थी मे/री अचल निस्/पंद कण-कण/में,	"
प्रथम जागृति/ थी जगत के/ प्रथम स्पंदन/ में,	"
प्रलय में मे/रा पता पद/ चिह्न जीवन/ में,	"
शाप हूँ जो/ बन गया वर/दान बन्धन/ में,	"
कूल भी हूँ/ कूलहीन प्र/वाहिनी भी/ हूँ । ^१	"

२४ मात्राओं के छन्द का प्रयोग:—

प्रस्तुत उदाहरण में रोला छन्द का छन्दक है, उसके साथ सममूलक चरणों का प्रयोग हुआ है । सम्पद के अन्तिम चरण का छन्दक के साथ लय-साम्य स्थापित करने के लिये रोला की अन्तिम १३ मात्राओं को सम्पद चरणों के अन्त में रखा गया है, जिसमें छन्दक के अन्त्यानुप्रास का समर्थक सम्पद का अन्तिम चरण १३ मात्राओं का है ।

खूबी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी,	२४ (११, १३) मात्राएँ
देख खड़ी करती तप अपलक,	१६ "
हीरक से समीर माला जप,	१६ "
शैल-मुता अर्पण अशना,	१४ "
पल्लव-वसना बनेगी,	१३ "
वसन वासन्ती लेगी ।	१३ "

२६ मात्राओं के छन्द का प्रयोग :—

प्रस्तुत उदाहरण में समप्रवाही छन्दक के साथ समस्त समप्रवाही सम्पद चरण आये हैं । केवल अन्तिम चरण १५ मात्राओं का है, जो एक मात्रा के पश्चात् समप्रवाही हो जाता है । इस उदाहरण में दस मात्राओं का चरण विष्णुपद छन्द में प्रयुक्त छन्दक की अन्तिम १० मात्राओं का अंश है ।

धीरे-धीरे उत्तर क्षितिज से, आ वसन्त रजनी ! (विष्णुपद) २६ मात्राएँ
तारकमय नव वेणी-बंधन, १६ "

१. महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० २० ।

२. निराला, गीतिका, पृ० १६ ।

शीश-फूल कर शशि का नूतन,	१६ मात्राएँ
रश्मि-बलय सित घन अवगुण्ठन,	१६ "
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे,	१६ "
चितवन से अपनी !	१० "
पुलकती आ वसन्त-रजनी ! ^१	५+१० "

२८ मात्राओं के छन्दक का प्रयोग :—

प्रस्तुत उदाहरण का छन्दक सार छन्द का है, उसके आगे प्रयुक्त दो सम्पद चरण भी सार छन्द के हैं। छन्दकानुबंध में सार छन्द के द्वितीय खंड (१२ मात्राएँ) के आदि में लघु मात्रा जोड़ दी गयी है, जिससे लय-निपात में अन्तर नहीं आता।

नयनों के डोरे लाल, गुलाल भरे, खेली होली !	२८ मात्राएँ
जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति-सनेह रँग-घोली,	"
दीपित दीप-प्रकाश, कंज छवि मञ्जु-मञ्जु हँस बोली,	"
मली मुख-चुम्बन रोली। ^२	१३ "

छन्दक और सम्पद चरणों के योग के कुछ निष्कर्ष दिय जाते हैं :—

१. छन्दक और सम्पद चरणों के छन्द की लयें समान परिवार की होनी चाहिये।
२. यदि छन्दक और उसके साथ प्रयुक्त छन्द की लयें भिन्न हों, तो सम्पद के छन्दोऽनुबंधक चरण के अन्तिम लय-निपात को छन्दक के लय-निपात के समान होना चाहिये।
३. कभी-कभी छन्दक और सम्पद के चरण परस्पर समान मात्राओं के भी होते हैं।

१. महादेवी वर्मा, नीरजा, पृ० ३।

२. निराला, गीतिका, पृ० ४६।

निश्चित मात्रिक छन्दों का सिंहावलोकन

मात्रिक छन्दों के प्रयोग में आधुनिक हिन्दी कविता सर्वाधिक समृद्ध है। सम छन्दों में भी बहुत से ऐसे छन्दों की आयोजना हुई है, जिनका प्रयोग हिन्दी कविता में तो हुआ ही न था, साथ ही छन्दोग्रन्थों में भी उनका विवरण न था। सामान्य लोगों की यह धारणा भ्रान्त है कि आधुनिक युग में निश्चित सम छन्दों में कोई संकलन नहीं हुआ है। इन छन्दों के विषय में यह शंका की जाती है कि सभी नवीन छन्द प्रस्तार-भेद में तो आ ही जाते हैं, अतः नवीनता किस बात की। लेखक का इस विषय में यही निश्चित मत है कि जो प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से नवीन हैं, उन्हें नवीन ही मानना चाहिये।

इनमें से अधिकांश छन्दों की व्याख्या करते हुए पर्व के आचार्यों का निर्देश किया गया है। इस आधुनिक व्याख्या से यह भ्रान्ति नहीं होनी चाहिये कि ऐसा करने में किसी पाश्चात्य मानदण्ड को निर्धारित किया गया है। वे समस्त पर्व हिन्दी के अपने ही हैं, क्योंकि एक भाषा के मूल लय-खंड दूसरे परिवार की भाषा में प्रयुक्त नहीं हो सकते। इस दृष्टि से यह समझने में कठिनाई न होगी कि यह समस्त नवीन छन्दोयोजना हिन्दी की अपनी है। उसकी लयों में किसी इतर भाषा की लय का समावेश नहीं हुआ है। हाँ, यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि दृष्टिकोण के परिमार्जन के लिये आधुनिक कवियों ने स्वदेशी और विदेशी साहित्यों को देखा और समझा अवश्य है। 'नव विकर्षाचार' मूलक छन्दों के अतिरिक्त अब भी सम छन्दों में अनेकानेक नवीन प्रयोग संभव हैं। हिन्दी-कविता की विकास-स्थिति को देखते हुए यह विश्वास स्वाभाविक ही है कि निश्चित मात्रिक छन्दों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी।

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक हिन्दी-छन्दों में स्वच्छन्दता का आगमन

प्रत्येक युग की एक विशेष चेतना-धारा होती है, जो समसामयिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की प्रवृत्ति को अपनी दिशा की ओर ही प्रेरित करती है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्वतंत्रता की प्राप्ति करना प्रत्येक सजग नागरिक का उद्देश्य था। राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से (१५ अगस्त, १९४७) बहुत पहले प्रथम महायुद्ध की समाप्ति (सन् १९१९) के पश्चात् बौद्धिक क्षेत्र में स्वतंत्र होने की अत्यन्त तीव्र भावना जग चुकी थी। स्वतंत्रता का यह आलोक सर्व प्रथम साहित्य में दीप्यमान हुआ और तत्कालीन साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य को रूढ़ियों की कारा से मुक्त करके उज्ज्वल नवीन दिशा में गतिमान करने का संकल्प किया। यद्यपि उस समय के साहित्यकारों के सामने भविष्य की पूर्ण वैज्ञानिक रूप-रेखा अधिक स्पष्ट नहीं थी, पर प्राचीन रूढ़िगत बन्धनों से मुक्त होने का संकल्प अत्यन्त दृढ़ था। काव्य के क्षेत्र में नवीन विचार, नवीन भाव और नवीन विषयों के साथ कवियों ने नवीन अभिव्यञ्जना-पद्धतियों का अन्वेषण और प्रयोग किया। छन्द ही भाव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाहन है और वह स्वरमाधुरी-मूलक अभिव्यञ्जना-पद्धति का उच्चतम विकसित रूप है, अतः अभिव्यञ्जना की नवीन पद्धतियों के अन्वेषण में छन्दों के स्वरूप में नव-नव विविधतापूर्ण प्रयोग होना स्वाभाविक ही था। आधुनिक काव्य की प्रथम स्थिति में प्राचीन उपयुक्त छन्दों का चयन किया गया, जिनमें यति और गति आदि विभिन्न तत्त्वों में परिवर्तन करने का अधिकार कवि के ही पास रहा, ऐसे अनेक निर्देश तीसरे अध्याय के निश्चित छन्दों के विश्लेषण के साथ किये गये हैं। विकास की दूसरी स्थिति में कवि लोग स्वेच्छा से प्राचीन लयों के आधार पर नवीन चरण-संख्या और क्रमायोजन को स्वीकार करने लगे, पर वे लोग नवीन छन्द की निश्चित इकाई बना लेते थे और उस क्रम की आवृत्ति प्रत्येक आगामी छन्द की इकाई में होती थी। ऐसे समस्त नवीन प्रयोगों की तीसरे अध्याय के “नव विकर्षाधार” या “नवीन मात्रिक छन्द” शीर्षक के अन्तर्गत दिया गया है। इस दूसरी स्थिति में हिन्दी के कवियों ने पहली बार अधिक संख्या में नवीन छन्द-निर्माण का अधिकार अपने हाथ में लिया। वर्तमान युग में, नियम मनुष्य के सहयोगी और उपकारी हैं, वह स्वयं अपने

इतने महत्त्वपूर्ण नहीं माने जा सकते कि व्युत्पन्न चेतनाशील व्यक्ति उनका दास बना रहे। कभी मनुष्य नियम के सामने बहुत छोटा था, आज वह उसके सामने बहुत बड़ा है। मनुष्य आज आवश्यकतानुसार नवीन नियम बनाने का अधिकारी है। सभी कवियों ने इस अधिकार का समुचित ही उपयोग किया है, यहाँ यह प्रतिपाद्य और विवेच्य विषय नहीं है। इसका विश्लेषण और मूल्यांकन तो आगे होगा।

छन्द-स्वातंत्र्य की तीसरी स्थिति में कवियों ने अन्त्यानुप्रास या तुक से मुक्ति प्राप्त की। हिन्दी की विशाल छन्द-परम्परा में तुक का पूर्णतया पालन किया गया था, अतः पुराने संस्कारों के कारण लोग इसे छन्द का अनिवार्य अंग मानते थे। हिन्दी में जब तुकों की रूढ़ि से मुक्ति प्राप्त की गयी, तो लोगों ने इस विधान को तुक-परम्परा के चश्मे से देखकर 'अतुकान्त' की निषेधात्मक संज्ञा प्रदान की, यद्यपि इसका आभास सामान्य पाठक को भी मिल गया कि छन्द के लिये तुक आवश्यक नहीं है। इन अतुकान्त छन्दों या 'ब्लैंक वर्स' में छन्द की इकाई या चरण-विस्तार निश्चित होता है, केवल चरणान्त में तुक का प्रयोग नहीं किया जाता है और साथ ही साथ चरण के अन्त में भाव पूर्ण करने के प्रतिबंध को भी नहीं माना जाता। इस वर्ग के छन्दों का विवरण और विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभिक अंश में किया गया है।

छन्द-स्वातंत्र्य की अन्तिम स्थिति में (प्रयोग की ऐतिहासिक दृष्टि से) मुक्त छन्द या स्वच्छन्द छन्दों का विकास हुआ। इन छन्दों में लयाधार तो निश्चित रूप से प्राचीन छन्दों से ही ग्रहण किये गये हैं, पर चरण-विस्तार और चरण-संकुचन की पूर्ण सुविधा कवि को प्राप्त हुई है। ऐसे छन्दों को विषम छन्दों की कोटि में माना जा सकता है। "विषम छन्द" के नाम की सार्थकता जितनी मुक्त छन्दों में परिलक्षित होती है, उसकी शतांश भी हिन्दी के प्राचीन विषम छन्दों में नहीं पायी जाती है। वैज्ञानिक दृष्टि से मुक्त छन्दों के प्रयोग के समय में ही प्रथम बार हिन्दी में विषम छन्दों का अवतरण माना जाना चाहिये, क्योंकि पूर्ववर्ती विषम छन्द तो केवल मिश्रित या यौगिक छन्द हैं। अतुकान्त स्थिति में केवल तुक से ही मुक्त मिली थी, पर चरण-विस्तार निश्चित ही था। स्वतंत्रता की इस अन्तिम स्थिति में तुक और चरण-विस्तार दोनों ही प्रतिबंधों से मुक्ति मिली। साथ ही साथ मुक्त छन्द में भी यथेच्छ रूप से तुक और निश्चित चरण-विस्तार की मान्यता को भी यत्र-तत्र स्वीकार किया जा सकता है। छन्द की यह मुक्त गति, वर्तमान हिन्दी छन्दों की नवीन महत्त्वपूर्ण धारा है।

वर्तमान स्थिति में छन्द पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर चुका है। अब उस पर किसी प्रकार का बाहरी नियम-विधान लागू नहीं किया जा सकता, परन्तु मुक्त छन्द अपने आन्तरिक और स्वाभाविक नियम लय को अनिवार्य रूप से मानता है। लय के बिना भाषा के

गणना गद्य के ही अन्तर्गत होगी। इन मुक्त छन्दों का शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण और विवेचन करना ही प्रस्तुत अध्याय का प्रमुख उद्देश्य है।

अनुकान्त छन्द

‘अन्त्यानुप्रास’ के प्रसंग में तीसरे अध्याय के अन्तर्गत अनुकान्त छन्दों के प्रयोग का इतिहास दिया जा चुका है।^१ अन्त्यानुप्रास भाषागत अलंकार-विधान है। इस अलंकार का छन्द के मूल रूप (लय) से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भारतीय साहित्य में अन्त्यानुप्रास-मुक्त छन्दों का प्रयोग बहुत पुराना है। वैदिक युग से लेकर बारहवीं शताब्दी में ‘गीत-गोविंद’ का जयदेव के पहले तक, समस्त संस्कृत साहित्य अनुकान्त छन्दों में ही लिखा गया है। आधुनिक साहित्य-चेतना ने कवियों को फिर इस प्रयोग की ओर आकृष्ट किया। संसार की सभी मध्यकालीन भाषाओं में पद्य-रचना के विधान में अन्त्यानुप्रास का निरपवाद रूप से प्रयोग किया गया है, परन्तु आधुनिक स्वातंत्र्य-जागरण ने सर्वत्र अन्त्यानुप्रास से मुक्ति पाने की प्रेरणा दी है। वर्तमान काल में वैज्ञानिक वृत्ति के प्रधान होने के कारण साहित्य के प्रत्येक तत्त्व का नवीन मानदंडों पर मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति आई है। छन्द-मर्मज्ञों ने विवेचन करने पर अन्त्यानुप्रास को छन्द का बाह्य आवरण मात्र पाया। परम्परावादी विगत पीढ़ी के साहित्यिक इस नवीनता का अभिनन्दन नहीं कर सके। इसका कारण यह है कि अपभ्रंश काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक हिन्दी में निरपवादतः अन्त्यानुप्रासयुक्त छन्दों का प्रयोग होता आ रहा था और परम्परागत संस्कारों के कारण सामान्यतः यही आभास होता था कि अन्त्यानुप्रास छन्द का अभिन्न, अविच्छेद्य एवं अभिवाज्य अंश है और दोनों का अङ्ग-अङ्गी सम्बन्ध है। साहित्य के मर्मज्ञ यह स्पष्ट रूप से समझते थे कि अन्त्यानुप्रास का लय से कोई सम्बन्ध नहीं है और लय ही छन्द का निर्माण करती, सन्तुलन स्थापित करती और भाव को प्रभावात्मक ढंग से व्यक्त एवं निष्पन्न करने में कौशलपूर्ण आधिकारिक योग प्रदान करती है, अतः अन्त्यानुप्रास के योग के बिना ही सफलतापूर्वक छन्द की सृष्टि की जा सकती है। आधुनिक हिन्दी-काव्य के द्विवेदीयुगीन द्वितीय अभ्युत्थान में इस विचार के प्रचार के पहले आदर्श रूप में संस्कृत में समग्र रूप से और अंग्रेजी तथा बँगला में बहुत से अनुकान्त प्रयोग हो चुके थे।

संस्कृत में वृत्त-प्रयोग तो पूर्णतः अनुकान्त ही होता है। मिस्टन ने ‘पैराडाइज़ लॉस्ट’ में और शेक्सपियर ने अपने नाटकों में Iambic Pentameter (लगात्मक पञ्चक) के आधार पर ‘ब्लैंक वर्स’ (Blank Verse) का प्रयोग किया है। श्री नवीनचन्द्र सेन ने ‘प्लासीर युद्ध’ और ‘अमिताभ’ प्रबन्ध काव्यों में और माइकेल मधुसूदन दत्त ने ‘मेघनाद-बध’ में अनुकान्त वर्णिक

प्रयोग पयार छन्द के आधार पर किया है। युग की चेतना की प्रेरणा से हिन्दी में भी ऐसे प्रयोग आरम्भ हुए। अतुकान्त प्रयोगों के प्रथम अभ्युत्थान में केवल संस्कृत के आदर्श पर वृत्तों का प्रयोग किया गया। हरिऔध जी इस क्षेत्र के अग्रणी उन्नायक थे। उन्होंने अत्यानुप्रास को तो हटाया, परन्तु प्रत्येक चरण को लय के अन्त में समाप्त करने की चेष्टा की और केवल छोटे वृत्तों में संस्कृत की भाँति दो पंक्तियों तक वाक्य प्रवाहित करने का यत्र-तत्र स्वातन्त्र्य लिया। उनके सामने 'मेघनाद-वध' का आदर्श था, फिर भी उन्होंने वृत्तों का पदान्तर-प्रवाही^१ प्रयोग नहीं किया, अन्यथा उन्हें अधिक सफलता मिलती। अतुकान्त छन्द का पूर्ण गौरव पदान्तरप्रवाही प्रयोग में ही पाया जाता है। हिन्दी में ऐसे अतुकान्त वृत्तों के प्रयोग को, अतुकान्त धारा का प्रथम चरण मानना चाहिये। वस्तुतः ऐसे अतुकान्त वृत्त केवल पारिभाषिक दृष्टि से इस वर्ग में आते हैं, अन्यथा उन प्रयोगों में अतुकान्त छन्दों का गौरव और तद्गत प्रयोग की शक्ति का प्रस्फुटन नहीं हुआ है, इसीलिये अतुकात वृत्तों का विवरण इस शीर्षक में न देकर द्वितीय अध्याय के वृत्तों के साथ ही दे दिया गया है। अतुकान्त प्रयोग की मर्मशक्ति (स्पिरिट) का संपूर्ण उपयोग किये बिना छन्द में पूर्ण समृद्धि-वैभव, कलात्मकता, अविकल सौष्ठव और अमोघ प्रभावात्मक व्यञ्जनात्मकता नहीं आती, वह केवल नाम मात्र का अत्यानुप्रासमुक्त छन्द रहता है।

अतुकान्त छन्द के द्वितीय अभ्युत्थान में विकास अपनी चरम गरिमा तक पहुँच गया। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने घनाक्षरी के अंतिम १५ वर्णों को लयाधार मानकर माइकेल मधुसूदनदत्त-कृत 'मेघनाद-वध' का अनुवाद किया और उसमें माइकेल के समान ही पदान्तरप्रवाही 'भावच्छन्द' का प्रयोग किया। पहले प्रयोग में ही इतनी सफलता और प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिये गुप्त जी साधुवाद के पात्र हैं। उन्होंने 'सिद्धराज' और 'जयभारत' आदि मौलिक कृतियों में भी वैसे ही प्रयोग किया है।

अतुकान्त छन्द के तृतीय अभ्युत्थान में मात्रिक छन्दों का विशद रूप से प्रयोग किया गया। श्री सियारामशरण गुप्त, श्री सुमित्रानन्दन पन्त और श्री जयशंकर 'प्रसाद' इस क्षेत्र में अग्रणी हैं। गुप्त जी ने 'आद्री' आदि पुस्तकों की स्फुट कविताओं में, पन्त जी ने 'ग्रन्थि' में (और हाल ही में "उत्तरशती" में) और प्रसाद जी ने 'महाराणा का महत्त्व' और 'प्रेम-पथिक' नामक प्रबंध में मात्रिक छन्द का अतुकान्त प्रयोग अपनाया है।

१. पदान्तरप्रवाही:—अतुकान्त छन्द में भाव विस्तार के अनुसार भाषा के वाक्य को कई करणों की अनिश्चित सीमा तक प्रवाहित करना "पदान्तरप्रवाही" प्रयोग है। इस प्रयोग में भाव एक ही चरण में समाप्त न होकर अपनी अभिव्यक्ति की सीमा तक विस्तार ग्रहण करता है। भाव के प्रारम्भ से अन्त तक जितना पद्यांश सीमाबद्ध होता है, उसे "भावच्छन्द" कहते हैं। लेखक।

विषम छन्द या मुक्त छन्द अतुकान्त की विकास-स्थिति के बाद आया है, अतः मूल नियम के अनुसार मुक्तछन्द तो प्रायः समग्र रूप से अतुकान्त ही होते हैं, केवल अपवाद रूप में विशेष रमणीयता के लिये अनिश्चित त्रम से अन्त्यानुप्रासों का प्रयोग भी यदा-कदा किया जाता है ।

अतुकान्त छन्द की यही तीन ऐसी क्रमिक स्थितियाँ हैं, जिन्हें अतुकान्त छन्द का प्रभेद भी माना जा सकता है । यहाँ पर इन प्रयोगों का विश्लेषण दिया जा रहा है ।

(१) अतुकान्त वृत्तः—इन छन्दों का प्रयोग बिल्कुल संस्कृत वृत्तों के समान है । आधुनिक युग के प्रयोगों में तुकान्त और अतुकान्त के पाठ में कोई लयात्मक अन्तर नहीं पड़ता और न यति में ही परिवर्तन होता है, अतः तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार के वृत्तों को दूसरे अध्याय में एक साथ दे दिया गया है । ऐसे प्रयोगों में पदान्तरप्रवाही शैली में भावच्छन्दों का निर्माण नहीं हुआ है । समस्त प्रयोगों में चार-चार चरणों के वृत्त स्पष्ट ही एक दूसरे से भिन्न हैं ।

श्री अनूपशर्मा ने 'गान्धी-चरित' प्रबन्ध काव्य में सग्विणी वृत्त (४ रगण) का पदान्तर-प्रवाही प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है ।

देश कंलास के मूल में फूल सा,
पूर्ण उत्फुल्ल था, आज तो ग्लान है,
और दो अश्रुधारा वहीं निम्नगा,
सूर्यकन्या मयी, जह्नुजन्यामयी ।
शीघ्र है उच्च प्रालेय शैलेन्द्र सा,
कोश है वृक्ष की श्रेणियाँ उत्तमा,
मंजुमाला गले में पड़ी जह्नुजा,
भानुजा सन्धि की मेखला विन्ध्य है,
शस्यस्यामा मही उत्तरा-संग है,
और धोता पदों को पयोधाम है,
मातृ-भू देवता दिव्य रत्नाम्बरा,
आदिमा शक्ति है धर्मबीज-प्रसू ।^१

(२) मुक्त वर्णिक अतुकान्त :—मुक्तक वर्णिक छन्दों के आधार पर इस वर्ग में बहुत प्रौढ़ प्रयोग किये गये हैं । ऐसे प्रयोगों में पदान्तरप्रवाही पद्धति में अधिकांश

भावच्छन्दों का निर्माण हुआ है, जो अनुकान्त छन्द की प्रमुख विशेषता है। ऐसे अनुकान्त प्रयोगों में लय की दृष्टि से समस्त चरण बराबर होते हैं, अथवा यों कहिये कि प्रत्येक चरण की वर्ण-संख्या समान होती है, यद्यपि पाठ करते समय चरणान्त में रुकना आवश्यक नहीं होता। इस वर्ग के अनुकान्त छन्दों की 'अगणात्मक वर्णिक अनुकान्त सम छन्द' की कोटि में रखा जा सकता है।

अगणात्मक सम छन्द में अन्त्यानुप्रास-मुक्ति

इस वर्ग में वे प्रयोग आते हैं, जो घनाक्षरी के अन्तिम १५ वर्णों को चरण मानकर अनुकान्त रूप से निबद्ध किये गये हैं। अन्त्य-युक्त प्रयोग में लेखक ने इस छन्द का नाम 'मंथिली' छन्द रखा है, जिसका प्रयोग 'नहुष' और 'हिडिम्बा' में हुआ है। माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद-वध' के अनुवाद में इस छन्द का प्रयोग अनुकान्त रूप में हुआ है। माइकेल ने १४ (८+६) वर्णों के पयार छन्द को लेकर भावच्छन्दमयी पदान्तरप्रवाही रचना की थी।^१ इस छन्द में पदान्तरप्रवाह का प्रयोग रहता है और भाव के अनुकूल पंक्ति के बीच में भी वाक्य की समाप्ति होती है, इसीलिये "भावच्छन्द" (वर्स पैराग्राफ़) को श्री मोहितलाल मजूमदार ने "वाक्यच्छन्द" भी कहा है।^२ इस छन्द में प्रत्येक पंक्ति के बाद पूर्ण यति स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती। अधिकांश में पूर्ण यति लिपि-पंक्तियों का अतिक्रमण करके प्रवाहित होती है, इसीलिये इसे प्रवाहमान (Enjambement) कहा जाता है। श्री प्रबोधचन्द्र सेन ने इसी-

१. देवीर आदेशे, ६ वर्ण

हांटू पाड़ि मीनध्वज, शिञ्जिनी भंकारि,	८+६ "
सम्मोहन शरे शूर, वित्रिला उमेशे !	"
शिहरिला शूलपाणि । लड़िल मस्तके ।	"
जटाजूटे तहराजी यथा गिरिशिरे	"
घोर मड़-मड़ रवे लड़े भू-कम्पन ।	"
अवीर होइला प्रभू ! गरजिला भाले	"
चित्र-भानु, धक-धकि उज्ज्वल ज्वलने ।	"

माइकेल मधुसूदन दत्त, मेघनाद-वध, द्वितीय सर्ग ।

२. मधुसूदन पयार के जे नूतन यति वो छन्दे बांधिया छिलेन, जाहारफले काव्य छन्द चिरदिनेर जन्य नूतन चाले चलिते आरम्भ कोरिलो, सेइ नूतन छन्दोभंगी 'वाक्य छन्दे' उपरइ प्रतिष्ठित, सेइ छन्द होइते मधुसूदन ताहार अमर छन्द गड़िबार इंगित पाइया छिलेन । पृ० २८६, आधुनिक बाङ्ला साहित्य, श्री मोहितलाल मजूमदार ।

लिये “मेघनाद-वध” के छन्द को “अमित्राक्षर छन्द” प्रचलित शब्द के स्थान पर “प्रवाह-मान पयार” की संज्ञा दी है।^१

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने घनाक्षरी के उत्तरार्द्ध के १५ वर्णों के चरण को लयाधार मानकर जो रचना की है, वह छान्दसिक दृष्टि से मूल से कम सफल नहीं हुई। गुप्त जी के सामने गुजराती कवि श्री केशवलाल हरषदराय ध्रुव के अमित्राक्षर (१६ वर्ण) का उदाहरण भी सामने था, उससे भी उनको प्रेरणा मिली है, जैसा कि मेघनाद-वध-अनुवाद की भूमिका से स्पष्ट है।^२ गुप्त जी ने माइकेल की भाँति छन्द का स्वरूप पदान्तरप्रवाही ही रखा है, जिससे भाषा के गांभीर्य और कल्पना की स्वतंत्र भूमि को पूर्ण मुक्ति की प्रतिष्ठा में सुविधा मिले। गुप्त जी ने अपने अनुवाद में ‘भावच्छन्द’ का प्रयोग करके अतुकान्त को उच्चतम गौरव प्रदान किया है। प्रबध-धारा में एक संपूर्ण भाव को अविकल एवं समग्र रूप से व्यंजित और प्रभावान्वित बनाने के लिए भावच्छन्द (वर्स पैराग्राफ़) की अयोजना अत्यंत उपयोगी और सद्यः रससिद्धि-विधायिनी होती है। इसमें एक विस्तृत वाक्य-योजना अनेक लय चरणों में, माप के अनुसार सज्जित की जाती है। भावच्छन्द के अतुकान्त चरण यतिवैमिन्य, परिवर्तित विराम, पदान्तरप्रवाह और भावसामंजस्य से इस प्रकार संगुम्फित होते हैं कि पाठक और श्रोता, लिपि और ध्वनि से पूर्ण विराम का पता नहीं लगा सकता है, क्योंकि चरणांत की यति लय की प्रवेगशील धारा में मग्न हो जाती है और विराम का तब पता चलता है, जब कि ‘भावच्छन्द’ पूर्ण हो जाता है।

१. तार प्रवर्तित छन्दे पंक्ति येखाने शेष होय, भाव ओ छन्देर प्रवाह सेखानेह विरत हय ना, वरं भावेर प्रवाह येखाने गिये विराम लाभ करे, छन्देर गतिओ सेखाने पर्यन्तवरे येते बाध्य हय। कविर भार ओ तार अनुसरनकारी छन्देर छ नि एकाधिक पंक्तिर उपर दिये प्रवहित हये चले, प्रतिपंक्तिर अन्ते पूर्ण विरति लाभेर अवकाश पायना भाव ओ छन्देर एइ ये प्रवहमानता (Enjambement) एटोई बाङ्ला साहिये मधुसूदनर विशेषदान। मधुसूदनर प्रवर्तित छन्देर यदि कोनो यथार्थ नाम दिते हय, तबे ताके बला उचित “प्रवाहमान पयार” छन्द।

श्री प्रबोधचन्द्र सेन, छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ, पृ० १०६, १०७।

२. श्री केशवलाल हर्षद राय ध्रुव ने भी अमित्राक्षर छन्द के रूप में इसी को ग्रहण किया है:—

“ठीक, मित्रो, तोहूँ कहूँ / तेम करो ने अमारो, / ८ + ८ वर्ण
अहो भाई, जे ओ माहूँ / सांभड़वा यच्छता हो। / ”

गुप्त, मेघनाद-वध, हिन्दी-अनुवाद, निवेदन,

फलतः, श्रोता और पाठक के हृदय पर संपूर्ण भाव के समस्त छन्द के संगीत का बड़ा ही प्रभावात्मक समन्वित परिस्फुरण होता है ।^१

‘मेघनाद-वध’ के अनुवाद से, प्रमीला के रूप-वर्णन का उद्धरण नीचे दिया जाता है:-

पहना दुकूल दिव्य, / अंचल था जिसका /	१५ वर्ण (८+७)
रत्नों से जटित और / कस ली सुकंचुकी /,	”
पीवरस्तनी ने, क्षीण / कटि में सुमेखला /	”
पहनी नितंबिनी ने / उर पर हीरों के /	”
और मोतियों के चन्द्र / हार हिलने लगे / । ^२	”

इस विकर्ष के प्रत्येक चरण में १५ अक्षर हैं । इस प्रयोग में भाव, चरण के अन्त में समाप्त न होकर आगामी चरणों के मध्य और अंत में पूर्ण होता है । इस प्रकार संपूर्ण छन्द की लय चरणांत की यति का अतिक्रमण करती हुई गिरि-निर्झर की भाँति प्रवाहित होती है । एक संपूर्ण भाव को स्पष्ट करने वाले भावच्छन्द का पदान्तर-प्रवाही उदाहरण गुप्त जी की मौलिक कृति से दिया जाता है:-

घर के निकट कुछ / पेड़-पौधे रोपे थे /	१५ वर्ण (८+७)
और बना ली थी एक / वाटिका सी उसने /	”
गोड़ती थी, सींचती थी / आप वह उसकी /,	”
पानी खींचती थी नित्य / प्रातःकाल कूप से /	”
दायें और बाँये घूम-घूम झूम-झूम के,	”
आता लूम लेता हुआ / पूर्ण घट नीचे से /,	”
पाती गहरे का रस / वह गुणशालिनी /	”

१. A very important development of blank verse, ensuing to it almost all the advantages of stanza in some ways and more than all in other..... it consists in so knitting a batch of blank verse lines together by variation of pause alternate use of stop and enjambement and close connection of sense, that neither eye nor voice is disposed to make serious halt till the close of the paragraph is reached. Thus an effect of concerted music is produced through the whole of it. Page 296, Book IV, Historical Manual of English Prosody.

By George Saintsbury.

२. गुप्त, मेघनादवध, अनुवाद, नवम सर्ग ।

राग रह जाता स्वेद- भाग वह जाता था/ ”
यों व्यायाम और काम/ संग-संग होते थे ।/५ ”

आधुनिकतम प्रयोगों में श्री अनूप-शर्मा ने ‘गान्धी-चरित’ में इस छन्द का प्रशस्त एवं प्रौढ़ प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। वे श्रेष्ठ घनाक्षरी-सिद्ध कवि हैं, अतः प्रस्तुत प्रयोग में उनका साफल्य स्वाभाविक ही है:—

आँगल महिलाएँ देव-चरण-सरणि में
अपने नयन नील नलिन बिछाती थीं,
संहति अनूढ़-ऊढ़ अबला-समाज की
दोनों ओर पथ के मुदित समवेत थी,

× × ×

बोले कर्मवीर राम-राज्य चाहता हूँ में,
जिसके कृषक खाद्य अधिक उगा सकें,
जिसमें श्रमिक पेट भर अन्न पा सकें,
जिसको स्वतन्त्र नर भौम स्वर्ग समझें,
जिससे सतत सुख-शान्ति-सरि निकलें१।

‘अगणात्मक पदान्तर-प्रवाही छन्द’ वर्ग में केवल एक ही प्रकार का छन्द प्रयुक्त हुआ है। ‘जयभारत’ काव्य में भी गुप्त जी ने इस छन्द का प्रयोग किया है।

३. मात्रिक अतुकान्त :—कुछ मात्रिक छन्दों के आधार पर—विशेषतः पीयूष-वर्ष, प्लवंगम, रोला—इस वर्ग में कई प्रयोग किये गये हैं।

भाव की आवश्यकता के अनुसार कवियों ने प्रत्येक चरण को लयनिपात (मुख्य यति) में ही समाप्त कर दिया है। ऐसे स्थानों पर एक ही भाव कई चरणों में समाप्त होता है और अर्थ का विराम लय की यति के स्थान पर न होकर स्वतंत्र रूप से आता है, वहाँ पर कविता ‘पदान्तर-प्रवाही’ स्वरूप धारण कर लेती है और भाव के प्रारंभ से अंत तक एक स्वतंत्र इकाई बन जाती है, जिसे भावच्छन्द कहते हैं। यहाँ पर मात्राक्रम के अनुसार अतुकान्त मात्रिकों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

१. गुप्त, सिद्धराज, पृ० ६१।

२. अनूपशर्मा, गान्धी-चरित।

१४ मात्राएँ :—मानव छन्द में चतुर्दश मात्रिक पदान्तर-प्रवाही प्रस्तुत प्रयोग श्री गोविन्दवल्लभ पन्त से प्राप्त हुआ है, जो मुरादाबाद की 'प्रतिभा' पत्रिका में सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ था। स्कूल-जीवन में 'कंटक' शीर्षक कविता लिखने के बाद उन्होंने बहुत दिनों तक अपना उपनाम 'कंटक' ही रखा।

हम दीन-हीन दुर्बल हैं,
हम दुःखद तीक्ष्ण कण्टक हैं,
हम प्रकृति देवि के कुल के,
छविहीन, कलंक, कठिन है।

× × ×

कुल-कामिनि नहीं हमारे,
आभूषण कभी पहनती,
हम सुर-मस्तक नहि चढ़ते,
हममें नहि सुरभि मनोहर,
नहि रूप-रंग दृग-सुखकर,
जीवन अति सरल हमारा,
फिर भी, जग की आँखों में,
हम हाय ! खटकते क्यों हैं ?^१

१६ मात्राएँ :—पन्त जी ने 'ग्रन्थि' में अनुकान्त पीयूषवर्ष का प्रयोग किया है। इस छन्द का आधार (SISS) सप्तक है, अतः छन्द की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु रहती है। सप्तक की निरन्तर आवृत्ति पदान्तर में सहायक होती है, पर चरणान्त में सप्तक के स्थान पर पञ्चक ही रहता है, सप्तक पूरा नहीं होता, अतः छन्द थोड़ी देर तक गुंजार किया करता है और फिर आगे बढ़ता है। यह क्षणिक गुंजार और स्थिरता करुण भाव को व्यक्त करने में बहुत सहायक सिद्ध हुई है।

शैवलिन ! जा/ओ मिलो तुम/ सिन्धु से,	७+७+५ मात्राएँ
अनिल आलि/गन करो तुम/ गगन का,	"
चन्द्रिके ! चू/मो तरंगों/ के अघर,	"
उडगणो ! गा/ओ पवन बी/णा बजा,	"
पर हृदय-सव/भाँति तू कैगा/ल है। ^२	"

१. गोविन्दवल्लभ पन्त।

२. पंत, पल्लविनी, ग्रन्थि, पृ० ४३।

इस छन्द का पदान्तरप्रवाही नीचे दिया जाता है :—

हैं वड़ीं मुश्किल ! मनाऊँ / किस तरह, ७+७+५ मात्राएँ
 क्या कहूँ ? हाँ /, दाम भी हैं / पास कुछ ?
 जायगी यों / ही कि, दामों / के बिना
 चढ़ सकेगी / किस तरह तू / रेल पर ?
 सीप, धोंघे /, घुँघचियों के / बीच में
 एक पैसा / भी कहीं पर / था छिपा,
 खोजकर उस / ने निकाला / जेब से,
 और मेरे / हाथ पर रख / कर उसे
 हँस पड़ी वह !^१

कुरुक्षेत्र और प्रस्तुत लेखक के 'अनङ्ग' खण्डकाव्य में पदान्तरप्रवाही पीयूषवर्ष का प्रयोग हुआ है। इसमें छन्द के चार चरणों की निश्चित इकाई भी मानी गयी और अनुकान्त पदान्तर-शैली से लाभ भी उठाया गया है।

२० मात्राएँ :— श्रीधर पाठक जी ने स्रग्विणी (४ रगण) वृत्त के आधार पर (या अरुण मात्रिक छन्द के आधार पर) पदान्तर-प्रवाही अनुकान्त प्रयोग किया है :—

प्रसव के काल की लालिमा में लिहसा
 बाल-शशि व्योम की ओर था आ रहा/
 सद्य-उत्फुल्ल अरविन्द निभ नील सुवि-
 शाल नग वक्ष पर जा रहा था चढ़ा/
 दिव्य दिङ् नार की गोद के लाल सा
 या प्रखर भूख की यातना से प्रहित
 पारणा - रक्त - रस-लिप्सु, अन्वेषणा—
 युक्त या क्रीडनासक्त, मृगराज शिशु
 या अतिव क्रोध-संतप्त जर्मन्य नृप
 सा किया अभ्रवैलून उर में छिपा
 इन्द्र या इन्दु का छत्र या ताज या
 स्वर्ग्य गणराज के माल का साज या
 कर्णउत्ताल या स्वर्ण का थाल सा,
 कभी यह भाव था, कभी वह भाव था।
 देखने का चढ़ा चित में चाव था।^२

१. सियारामशरण गुप्त, आर्द्रा, हूक, पृ० ६।

२. श्रीधरपाठक, भारत-गीत, सान्ध्य श्रटन।

२१ मात्राएँ :—प्रसाद जी ने प्लबंगम (प्राचीन नियम २१ मात्रा, ११ मात्रा पर यति) के आधार पर अन्तमुक्त प्रयोग किया है, जिसमे ८ मात्राओं के बाद यति आती है । चरणान्त में रगण छन्द को अधिक वेगशाली बनाता है :—

इस पर भी / ध्यान दो । ६+५ मात्राएँ
घोर अँधेरे / में उठती जब / लहर हो ८+८+५ ,,
तुमुल घात-प्रति/घात पवन का/हो रहा ,,
भीमकाय जल / राशि क्षुब्ध हो / सामने ,,
कर्णधार-र/क्षित दृढ़ हृदय सु/ताव को ,,
छोड़, कूदना / तिनके का अव/लम्ब ले ,,
घोर सिन्धु में/, क्या बुधजन का/काम है ? ,,
परम सत्य को/छोड़ न हटते/बीर हैं !^१ ,,

२४ मात्राएँ :—यह छन्द रोला के आधार पर निर्मित हुआ है, इसमें अष्टक की आवृत्तियाँ अनुकान्त चरण को पदान्तरप्रवाही बनाने में सहायता पहुँचाती हैं, यथा :—

पूँजीवाद उ/ठा हिंसा का/ धूमकेतुध्वज/ ८+८+८ मात्राएँ
लिये लोक-संहार घोर अणु/मुष्टि में विकट/ ,,
फिर ललकार र/हा धरती की/हरित शान्ति को/ ! ,,
जन-समुद्र के/उर की चुम्बी/नभ लहरों को/ ,,
दुरभिसन्धि शा/सित करने को/हाय, दुराशा/ ! ,,
लोक-राष्ट्र भी/भूल वृहद् जन-/साम्य-योजना/ ,,
आज नवल सा/म्राज्यवाद की/मदलिप्सा से/ ,,
बना रहे हैं/सैन्य शिविर निज/जदतन्त्रों को/ ,,
धूम रही है/धरा समर के/घोर भँवर में/ ! ,,
दम सधे है/खड़ा भयंकर/अणु का दानव/ ,,
भूव्यापी सँ/हार, प्रलय हुं/कार छेड़ने/ !^२ ,,

‘अपरा’ में ‘भगवान बुद्ध के प्रति’; आर्द्रा में ‘डाक्टर’; हंस (शान्ति अंक) पत्र में ‘शिली’ (पन्त) और पक्षिपति में ‘एक दोस्त’, ‘चींटी’ ‘पँचालिया’; ‘अस्तव्यस्त’ में; क्रान्ति और शान्ति (अतिमा, पन्त) में अनुकान्त रोले का पदान्तरप्रवाही प्रयोग हुआ है ।

१. प्रसाद, सहाराणा का महत्त्व, पृ० ११ ।

२. पन्त, उत्तरशती, प्रतीक, फरवरी, १९५१ ।

२६ मात्राएँ :—गीतिका (SISS सप्तक) के आधार पर यह अतुकान्न प्रयोग किया गया है :—

औ युधिष्ठिर/से कहा—तूफान देखा/है कभी? ७+७+७+५ मात्राएँ
 किस तरह आ/ता प्रलय का/नाद वह क/रता हुआ, ”
 काल सा बन/में द्रुमों को/तोड़ता, शक/क्षोरता, ”
 और मूलो/च्छेद कर भू/पर सुलाता/क्रोध से ”
 उन सहस्रों/पादपों को/जो कि क्षीणा/धार हैं ”
 रुग्ण शाखा/एँ द्रुमों की/हरहराकर/टूटतीं, ”
 दूर गिरते/शावकों के/साथ नीड वि/हंग के, ”
 अंग भर जा/ते बनानी/के निहित तर/- गुल्म से, ”
 छिन्न फूलों/के दलों से/पक्षियों की/देह से ।^१ ”

२८ मात्राएँ :—सार छन्द की अतुकांत चतुर्दशपदी का प्रयोग श्री दिनकर जी ने किया है :—

मत खेलो यों बेखबरी में जनता फूल नहीं है,
 और नहीं हिन्दूकुल की अबला सतवन्ती नारी,
 जो न भूलती कभी एक दिन कर गहने वाले को,
 मरने पर भी सदा उसी का नाम जपा करती है ।
 जन-समुद्र यह नहीं, सिंधु है यह अमोघ ज्वाला का,
 जिसमें पड़कर बड़े-बड़े कंगूरे पिघल चुके हैं ।
 लील चुका है यह समुद्र जाने कितने देशों में,
 राजाओं के मुकुट और सपने नेताओं के भी ।^१
 सहलाते हो पीठ, सुनाकर चिकनी-चुपड़ी बातें ?
 पर, शेरिनी स्पर्श में मन का पाप समझ जाती है ।
 मणि मुक्ता वैदूर्य रत्न पच गए जहाँ पानी से,
 क्या बिसात है वहाँ तुम्हारे तृण समान बलकल की ?
 सावधान ! जनभूमि किसी का चारागाह नहीं है,
 घास यहाँ की पहुँच पेट में काँटा बन जाती है ।^२

१. दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ० १३ ।

२. दिनकर, जनता, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २२ अगस्त, ५४ ।

इसी प्रकार के अन्य मात्रिक और वर्णिक छन्दों को लेकर अनेक प्रवहमान मुक्त छन्द लिखे जा सकते हैं। वर्णिक छंदों में भुजंगप्रयात, पंचचामर (शिवतांडवस्तोत्र का लगात्मक छंद) और मात्रिक छंदों में मधुमालती (SSSX२), हरिगीतिका (SSISX४), विधाता (ISSX४), वीर और ३२ मात्रा के सवाई छंदों को आधार मानकर इस वर्ग में नवीन प्रयोग सफलता से किये जा सकते हैं। वीर छंद तो प्राचीन काल से अतुकांत रूप में ही प्रचलित है। निराला जी हिंदी में इसे आदि अतुकांत प्रयोग मानते हैं।^१

“अन्त्यानुप्रास मुक्त या अतुकान्त” शीर्षक में अन्त्य मुक्त मात्रिक छन्दों का इतिहास नहीं आया है, अतः उसे दे देना उचित ही होगा। निराला जी मानते हैं कि अतुकान्त कविता का मात्रिक रूप पहिले-पहल श्री गिरधर शर्मा ने आरम्भ किया।^२ उनकी ‘सती सावित्री’ का एक अंश यहाँ दिया जाता है, जो १६ मात्राओं के आधार पर निर्मित हुआ है और उसमें तुकान्त से मुक्ति प्राप्त की गयी है:—

जब यह हुई अवस्था वाली	१६ मात्राएँ (अतुकान्त)
अजब निराली रंग रूप से	,,
इसको देख शची सकुचानी	,,
पानी उतर गया रति मुख का	,,
इसकी सुनी सुरीली वाणी	,,
मानी वृथा मंजुघोषा को	,,
वह गाती जब कभी प्रवीणा	,,
निज वीणा रख देती वाणी। ^३	,,

इसी समय १९०७ ई० में श्री लोचनप्रसाद पांडेय ने ‘नागरी प्रचारक’ में ‘संसार’ नामक अतुकान्त कविता प्रकाशित करवाई थी और १९०८ में ‘पद्य-पुष्पांजलि’ में ‘वीरांगना’ (माइकेल मधुसूदन-दत्त कृत) नाम से मात्रिक अनुवाद प्रकाशित हुआ। लोचनप्रसाद जी मात्रिक अतुकान्त के प्रमुख समर्थकों में थे। उन्होंने ‘इन्दु’ पत्रिका में “हिन्दी में तुकान्तहीन पदरचना अर्थात् ‘ब्लैंक वर्स’, शीर्षक से हिन्दी साहित्यिकों के सामने चार प्रश्न

१. इस प्रकार की अतुकान्त कविता में प्रथम श्रेय आल्हखंड के लिखने वाले को हिन्दी में प्राप्त है। पृ० २१, परिमल, भूमिका।

२. इस प्रकार की अतुकान्त कविता का रूप पं० गिरधर शर्मा ने हिन्दी में लड़ा किया है। परिमल, भूमिका, पृ० २०।

३. गिरधर शर्मा, सती सावित्री।

रखे थे।^१ इसके उत्तर में हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रूपनारायण पांडेय और प्रसाद जी ने अतुकान्त मात्रिकों का समर्थन किया था।

सन् १९१४ में प्रसाद जी ने 'भरत' नाम की पहली कविता प्लवंगम छन्द में अतुकान्त रूप से लिखी।^२ जिसे भूल से प्रकाशक ने अरिल्ल छन्द कहा है, जो १६ मात्राओं का होता है, २१ मात्राओं का नहीं।^३ प्रसाद जी के प्रथम प्रयोग के प्लवंगम छंद का अतुकान्त उदाहरण नीचे दिया है:—

अहा खेलता/ कौन यहाँ शिशु/ सिंह से,	८ + ८ + ५ मात्राएँ
वार्यवृन्द के/ सुंदर सुख में भाग्य सा,	"
कहता है उस/को लेकर निज/गोद में	"
खोल खोल मुख / सिंह बाल मैं/ देखकर	"
गिन लूँ तेरे/ दाँतों को कै/से भले। ४	"

इसी छंद में ही प्रसाद जी ने अतुकान्त रूप से "महाराणा का महत्त्व" नामक खंड

१. (क) खड़ी बोली में मात्रावृत्तों में तुकान्तहीन पद्य (ब्लैंक वर्स) लिखे जाने पर आपकी सम्मति क्या है।

(ख) व्रजभाषा में भी तुकान्तहीन पद्य लिखे जायें ?

(ग) गण-वृत्तों के अतिरिक्त मात्रा-वृत्तों को किसी एक दो या नियमित संख्या में निर्धारित छन्दों में इस शैली के पद्य लिखे जाने चाहिए या कवि के रुचि के अनुसार किसी भी छन्द में ?

(घ) आजकल "इन्दु" में प्लवंगम, लंबी लावनी, रोला, वीर आदि वृत्तों में 'ब्लैंक वर्स' के पद्य लिखे जाते हैं। क्या ये ऐसा ही चलता रहे ? अथवा कुछ मात्रा छन्द इस काम के लिये चुन लिये जायें ?

हिन्दी में तुकान्तहीन पद्य-रचना अर्थात् 'ब्लैंक वर्स,' इन्दु, जुलाई-अगस्त, सन् १९१५।

२. महाराणा का महत्त्व, भूमिका।

३. भानु, छन्द : प्रभाकर, पृ० ४६।

४. "महाराणा का महत्त्व" की भूमिका में उद्धृत, प्रथम संस्करण।

काव्य की रचना की है, ^१ जिसका उदाहरण अभी पीछे दिया जा चुका है। इसी छंद में प्रसाद जी ने मार्च १९१३ में “कहनालय” गीति रूपक की रचना की। इसके अनुकरण में पं० रूपनारायण पांडेय ने ‘तारा’ नामक गीति-रूपक का अनुवाद किया।^२ उनके द्वारा किये हुए राजारानी (रवीन्द्रकृत) के अनुवाद को निराला जी ने परिमल की भूमिका में उद्धृत किया है।

कहना होगा/ सत्य तुम्हारा/, किन्तु मैं	८ + ८ + ५ मात्राएँ
करता हूँ वि/श्वास तुम्हारी/ बात का	”
जब तक, तब तक/तुम चिन्ता कुछ/मत करो।	”
तुम पर से विश्वास हटेगा/ जिस घड़ी	”
सत्यासत्य वि/चार करूँगी/ मैं तभी।	”

श्री सियारामशरण गुप्त जी ने भी पीयूष-वर्षी (१६ मात्राएँ) छन्द का अनुकान्त

१. और २, यह “महाराणा का महत्त्व” इन्दु के कला ५, खंड १, किरण ६, जून, १९१४ में प्रकाशित हो चुका है। इसके लेखक को भिन्न तुकान्त लिखने की जब रुचि हुई तो उसी समय यह प्रश्न उसके मन में उपस्थित हुआ कि इसके लिये कोई खास छन्द होना आवश्यक है, क्योंकि तुकान्तहीन कविता में वर्णविन्यास का प्रवाह और श्रुति के अनुकूल गति का होना आवश्यक है, नहीं तो पद्य और गद्य में भेद क्या है। अतः लेखक ने भिन्न-तुकान्त कविता के लिये कई तरह के छन्दों से काम लिया है। उनमें से २१ मात्रा का छन्द, जो अरिल्ल नाम से प्रसिद्ध था, वही विरति के हेरफेर से प्रचलित किया हुआ, अधिकांश कविताओं में व्यवहृत है। इस छन्द में भिन्न-तुकान्त में सबसे पहली कविता लेखक की ‘भरत’ नाम की है। हर्ष की बात है कि इसी छन्द को भिन्न-तुकान्त के लेखकों ने पसंद किया है और इसी छन्द में वे अपने विचार प्रकट करने लग गये हैं, क्योंकि भिन्न-तुकान्त होने पर भी छन्द में जो गति होनी चाहिये, वह इसमें सर्वथा प्रस्तुत है। मेरी समझ में गीति रूपक के लिये यही छन्द सबसे उपयुक्त है।

मार्च १९१३ में लेखक ने ‘कहनालय’ नाम का एक गीतिरूपक इन्दु में लिखा था। यह देखकर और भी हर्ष होता है कि पं० रूपनारायण जैसे साहित्यिक ने हाल ही में ‘तारा’ नामक गीति-रूपक का इसी छन्द में अनुवाद करके उक्त मत की पुष्टि की है। ‘महाराणा का महत्त्व’, भूमिका।

प्रयोग किया है। पुनः इसी छन्द का प्रयोग सुमित्रानन्दन पंत ने १९१६ में 'ग्रन्थि' गीति-प्रबंध की रचना सरस्वती में छपवाई, जो अब पुस्तकाकार छप गयी है।^१

इन प्रयोगों के ऐतिहासिक विहंगावलोकन के बाद जो निष्कर्ष निकलता है, उसे निराला जी के ही शब्दों में कहना अधिक शालीन होगा।^२ उनका कथन है कि अधिकांश लोगों में एक दूसरे का अनुकरण न करके स्वतंत्र रूप से ऐसे प्रयोग किये हैं, परन्तु, इतिहास इनके पूर्वापर सामयिक प्रयोग का निर्देश तो करता ही है। परवर्ती प्रयोग पर पूर्ववर्ती प्रयोग का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, इसका खंडन किसी तर्क से नहीं किया जा सकता, अतः वैज्ञानिक विश्लेषण, समय के क्रम को महत्व देकर मौलिकता और अनुकरण का निर्णय कर सकता है। पीछे के इतिहास में इसीलिये स्थान-स्थान पर कालक्रम का निर्देश किया गया है।

अन्त में यह कह देना आवश्यक है कि मात्रिक और वर्णिक पदान्तरप्रवाही अतुकान्त रूप में नाटकों के लिए बहुत उपयुक्त है। शेक्सपियर ने अपने नाटकों के वार्त्तलप में पदान्तरप्रवाही लगात्मक पञ्चक (Iambic Pentameter) का प्रयोग किया है। नाटकाचार्य गिरीश चन्द्र ने भी अपने नाटक 'रावण-वध' में और मधुसूदन दत्त

१. इस प्रकार का अतुकान्त काव्य १६ मात्राओं का और लिखा गया है। जहाँ तक पता चलता है, अभी सुकवि बाबू सियारामशरण जी गुप्त इसके प्रथम आविष्कारक ठहरते हैं। हिन्दी के कोमल कवि पंत जी ने भी इतनी ही मात्राओं के अतुकान्त छन्द में 'ग्रन्थि' नाम की अपनी मनोहर कविता कई संख्याओं में 'सरस्वती' में छपवाई है। सियारामशरण गुप्त ने 'प्रभा' में इसी प्रकार की अतुकान्त कविता पहले-पहल लिखी थी, यह मुझे उन्हीं के कथनानुसार मालूम हुआ है। अब तक में समझता था, इस १६ मात्राओं के अतुकान्त काव्य के पन्त जी ही प्रथम आविष्कारक हैं।

निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २०।

२. मुझे केवल यही कहना है कि हिन्दी के अतुकान्त कविता के कवियों में किसी ने भी दूसरे का अनुसरण नहीं किया। जहाँ कहीं मात्राओं में मेल हो गया है, वहाँ मुमकिन है, एक को अपने दूसरे कवि की रचना परखने का मौका न मिला हो। ऐसा न होता, तो वे कोई दूसरा छन्द ज़रूर चुनते, जब कि अन्त्यानुप्रास उड़ा देने से ही अतुकान्त काव्य बन जाता है।

निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २१।

दत्त न 'पद्मावती' नाटक में अतुकान्त छंद का ही प्रयोग किया है। हिन्दी में निराळा^१, पंत^२ और उदयशंकर भट्ट^३ ने हिन्दी में ऐसे प्रयोग किये हैं।

विषम छन्द या मुक्त छन्द

आचार्य हलायुध भट्ट ने 'पिङ्गलछन्द-सूत्रम्' की टीका करते हुए लिखा है कि विषम छन्द वह छन्द है, जिसके सभी सम चरणों और अर्द्धसम चरणों में असमानता हो।^४ छन्द में चार चरणों की कल्पना करके इस प्रकार की परिभाषा दी गयी है। सम और अर्द्धसम चरणों के परस्पर असमान होने का अर्थ है, सभी चरणों का असमान होना अथवा छन्द के सभी चरणों की वर्ण और मात्रा-संख्या का भिन्न होना। यह व्याख्या चार चरणों से अधिक संख्या वाले छन्दों पर भी लागू होती है। छन्द में चार चरण मानने की परम्परा बहुत पुरानी है। वैदिक युग में भी ऋक्-प्रातिशाख्य की सूची के अनुसार २६ प्रकार के ऐसे छन्द प्रचलित थे,^५ जो चार चरणों के थे। यह परम्परा संस्कृत में अधिक दृढ़ रूप से बद्धमूल हो गयी थी। विचित्र बात यह है कि ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच और अंग्रेजी तथा उत्तर भारत की आर्य भाषाओं एवं दक्षिण की द्रविड़-परिवार की भाषाओं में भी अधिकांश चार छन्दों के चरण प्रचलित हैं। परम्परागत छन्द के स्वरूप को देखकर आचार्य केदार भट्ट और आचार्य गंगादास ने विषम छन्द के विषय में कहा था कि 'जिस छन्द के चारों चरण भिन्न लक्षण के हों, वह विषम वृत्त है'।^६ आचार्य भानु जी ने इस परिभाषा

१. एक बार कलकत्ता स्टेज पर भी इस छन्द में नाटक लिखकर खेल चुका हूँ। निराळा, परिमल, भूमिका; पृ० २१।

२. ज्योत्स्ना, शिल्पी और उत्तरशती आदि।

३. तीन नाटक, श्री उदयशंकर भट्ट।

४. सममर्द्धसम विषमञ्च। २, ५ अ०।

सम सर्वावयवत्वात् 'समम्'। यस्य चत्वारः पादा एकलक्षणयुक्तास्तत् 'समं' वृत्तम्। तत्रार्थे समे यस्य तत् 'अर्द्धसमम्' सर्वावयववैभ्यः। अर्धार्थ्यां च विगतं समं यस्य तद् 'विषमम्'।

पिङ्गलछन्द-सूत्रम्, अध्याय ५, सूत्र २, हलायुध टीका।

५. देखिये, वैदिक छन्दों की सूची, अ० २, प्रस्तुत निबन्ध।

६. (क) यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्मभिन्नपरस्परम्।

तदाहविषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः।

आचार्य केदार भट्ट, वृत्तरत्नाकर, अध्याय १, श्लोक १६।

(ख) भिन्नचिह्नचतुष्पादं विषमे परिकीर्तितम्।

आचार्य गङ्गादास, छन्दोमञ्जरी, प्रथमस्तवक, श्लोक ६।

को मानकर उसमें इतना और योगकर किया है कि चार चरणों से कम अर्थात् तीन या चार से अधिक चरण जिन छन्दों में हों, उनकी गणना भी विषम छन्दों में होती है।^१ ऋक्प्रातिशाख्य के दिये हुए छन्द-विवरण से पता चलता है, कि ऋग्वेद युग में ११ छन्दों तथा ७ अतिच्छन्दों का रूप चार चरणों से अधिक था। इसके अतिरिक्त २४ प्रगाथाएँ भी चार चरणों से अधिक प्रयुक्त हुई थीं। इनमें गायत्री, पदपंक्ति, विराज, ऊर्ध्ववृहती विराज, पंक्ति, महापंक्ति और शक्वरी को छोड़ कर सभी छन्दों के चरणों की अक्षर संख्या असमान है। संस्कृत साहित्य के छन्दों का विश्लेषण करके भट्ट केंदार ने वृत्तरत्नाकर के चौथे और पाँचवें अध्याय में क्रमशः बारह, बारह विषम छन्दों का विवरण दिया है। छायावादी युग के पूर्व समस्त हिंदी साहित्य में इस प्रकार के विषम छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ, केवल मिश्र छन्दों के कतिपय प्रयोग किये गये, अतः हिन्दी के छन्दःशास्त्रियों ने छप्पय (रोला + उल्लाला), कुंडलिया (दोहा + रोला) और अमृतध्वनि (दोहा + अष्टक छन्द) आदि को विषम छन्दों के वर्ग में रख दिया है। इन छन्दों के लिये भानु जी ने एक परिभाषा भी दी है, जिसमें उन्होंने कहा है कि चार चरणों से अधिक या कम चरण वाले छन्दों को भी विषम मानना चाहिये।^२ आचार्य भानु जी ने ऐसे छन्दों को भी, जिनके दो

१. जो छन्द मात्रिक सम अथवा मात्रिक अर्द्धसम न हों, वही मात्रिक विषम हैं। चार चरणों से कम अर्थात् तीन या चार चरणों से अधिक चरण जिन छन्दों में हों, उनकी गणना विषम छन्दों में होती है। मात्रिक विषम छन्दों की संख्या जानने की यह रीति है कि प्रत्येक पाद की मात्राओं की छन्द-संख्या को आपस में गुण करो जो गुणफल आवे, उसी को उत्तर जानों।

आचार्य भानु, छन्दःप्रभाकर, पृ० ६३।

२. 'चार चरणों से कम अर्थात् तीन या चार चरणों से अधिक चरण जिन छन्दों में हों, उनकी गणना भी विषम छन्दों में है।'

आचार्य भानु, छन्दःप्रभाकर, पृ० ६३।

भानु जी ने उपर्युक्त विवरण अपवाद रूप में दिया है, उनकी मूल परिभाषा हलायुध भट्ट के समान ही है :—

ना सम ना पुनि अर्द्धसम, विषम जानिये छन्द।

मात्रिक विषम छन्द उसे कहते हैं कि जिसके चारों चरणों की मात्रा अथवा नियम भिन्न-भिन्न होते हैं। जिसके सम सम और विषम विषम पाद न मिलते हों, अथवा सम सम मिलते हों, परन्तु विषम न मिलते हों। इस प्रकार जिसके विषम विषम पाद मिलते हों, परन्तु सम सम न मिलते हों अर्थात् जो छन्द मात्रिक सम अथवा मात्रिक अर्द्धसम न हो, वही मात्रिक विषम है।

आचार्य भानु, छन्दःप्रभाकर, पृ० ६३।

चरण समान और दो असमान हों—(जैसे—लक्ष्मी—१२, १८, १२, १५मा०), गाहिनी (१२, १८, १२, २०), सिहिनी (१२, २०, १२, १८); उन छन्दों को भी विषम वर्ग के अन्तर्गत माना है, परन्तु ऐसे छन्दों को अर्द्धसम वर्ग के एक प्रभेद के अन्तर्गत माना जाना चाहिये, क्योंकि इनके विषम चरण समान हैं। संस्कृत छन्द; शास्त्र में ऐसे छन्दों को विषम माना गया है, जिनके चरण असमान हों। चरणों की असमानता का स्वातन्त्र्य वैदिक युग में भी पूर्णतया स्वीकृत था है। प्रस्तुत लेखक ने वैदिक छन्द के लक्षणों के अनुकूल विषम छन्द की परिभाषा मानी है^१।

‘विषम छंद या मुक्त छन्द वह छंद है, जिसके विकर्ष का लयाधार निश्चित एवं चरणों की संख्या तथा विस्तार अनिश्चित हों।’

महर्षि शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में विषम छंदों का विश्लेषण करके प्रत्येक छंद के नामकरण के साथ निश्चित लक्षण जोड़ दिया है, जिससे यह ध्वनि निकलती है कि यदि अमुक छंद का प्रयोग किया जाय, तो विकर्षाधार में निश्चित लक्षणलक्षित अक्षर-संख्या के क्रम को रक्खा जाय। इस प्रकार के नियम को वैदिक विषम छंदों का स्वरूप-लक्षण न मानकर एक ऋषि या आचार्य का विश्लेषण-निष्कर्ष ही मानना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि छंद निर्माता ऋषियों ने इस अक्षरक्रम को अधिक महत्त्व न देकर भावाभिव्यक्ति और लयधार को ही विशेष महत्त्व दिया होगा। विषम छंद में चरण-संख्या और चरणों की मात्राओं या वर्णों की संख्या को भी अनिश्चित मानना ही पूर्णतया समीचीन है। विषम छंद में कवि को यह पुरा अधिकार है कि वह निश्चित लयाधार की भूमि में रहकर, जितना चाहे, उतना स्वातन्त्र्य प्राप्त करे।

कहीं-कहीं कवि लोग इच्छानुसार किसी निश्चित संख्या के चरणों और उनकी निश्चित मात्राओं का छन्द बना लेते हैं और इस नवीन विकर्षात्मक छन्द की इकाई मानकर आगामी छन्दों में क्रमावृत्ति करते हैं, ऐसे छन्दों को भी प्राचीन परिभाषा के अनुसार विषम छन्द का एक भेद मानना चाहिये।^२ लेखक ने ऐसे समस्त नवीन आधुनिक प्रयोगों को ‘नव विकर्षाधार’ शीर्षक विवरण में प्रथम चरण की मात्राक्रम से वर्गीकृत करके उनकी व्याख्या कर दी है। यहाँ पर ‘नवविकर्षात्मक’ छन्दों को विषम छन्दों के साथ इसलिये नहीं रक्खा गया है, क्योंकि नवविकर्षात्मक वर्ग के छन्दों की इकाई निश्चित होती है और उन छन्दों के समस्त चरण अगले प्रयोगों में उसी क्रम से अनिवार्यतः और नियमतः आवृत्त

१. विभिन्न निश्चित मात्राओं और वर्णों वाले चरणों से निर्मित विषम छन्दों को लेखक एक भिन्न वर्ग में मानता है, अतः उन पूर्व-प्रचलित छन्दों पर इस परिभाषा की लागू नहीं करना चाहिये। लेखक।

२. देखिये, छन्दःप्रभाकर, पृ ६३ या विज्ञाने पृ ५३ की पादटिप्पणी।

होते हैं; अतः उनमें पूर्ण मुक्ति नहीं रह पाती, यद्यपि विकर्ष-निर्माण के समय कवि को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। इस वर्ग के छन्द, भानु जी की परिभाषा के अनुसार, विषम छन्द हैं। परन्तु, इस वर्ग के छन्दों को विषम वर्ग में न रखे जाने का यही कारण है कि इस वर्ग के छन्दों में निश्चित मात्राओं और निश्चित चरण-संख्या के साथ निश्चित तुक की भी आयोजना होती है, अतः इन्हें नवीन मात्रिक छन्द या नवविकर्षात्मक छन्द ही मानना पूर्णतया समीचीन है, ये छन्द निश्चित मात्रिक छन्दों के साथ तीसरे अध्याय में दिये गये हैं। इस प्रकार क्रमायोजन की दृष्टि से विषम छन्द के दो भेद हैं :—

१. नवविकर्षात्मक छन्द :—वह विषम छन्द है, जिसमें विभिन्न चरणों और उनमें प्रयुक्त मात्राओं की संख्या को, कवि स्वयं निश्चित करता है, परन्तु इस विकर्ष-विधान को आगामी छन्दों में नियमित आवृत्त करता है।^१

२. मुक्त छन्द या स्वच्छन्द छन्द :—वह विषम छन्द है, जिसके चरणों की संख्या और विस्तार पूर्ण अनिश्चित एवं स्वतंत्र रहते हैं, केवल लयाधार आद्योपांत एक सा रहता है। लेखक ने व्यावहारिक दृष्टि से इसी वर्ग के छन्दों को विषम छन्दों के अन्तर्गत माना है।

मुक्त छन्द और लय

इन परिभाषाओं के साथ यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि विषम छन्द के प्रत्येक चरण में लय होती है। विषम छन्द तभी सफल होता है, जब कि एक ही लयाधार की अनेक आवृत्तियाँ होती हैं। भिन्न लयाधारों का संयोग, प्रवाह में व्याघात उत्पन्न करता है। कविता के कई खंडों में अलग-अलग भिन्न लयाधारों का प्रयोग हो सकता है, परन्तु भिन्न लयाधारों के चरणों का संयोग अवाञ्छनीय है, अन्यथा प्रवाह अवश्य टूट जायगा। जिन चरणों या छन्दों में लय का प्रवाह न हो, उसे गद्य ही मानना चाहिये, भले ही उसमें पूर्ण रसनिष्पत्ति हो गयी हो।

यद्यपि भारतीय साहित्य में विषम छन्दों की परम्परा वैदिक युग से चली आ रही है, फिर भी, पश्चिमी साहित्य के 'वेर लिब्र' (फ्रेब), या 'फ्री वर्स' (अंगरेजी) ने भी कम प्रेरणा का कार्य नहीं किया है। वैदिक छन्दों की भाँति पश्चिमी मुक्त छन्दों में भी

निश्चित । लयाधारों का प्रयोग हुआ है । ^१ मुक्त छन्दों में लयाधार आद्योपान्त निश्चित होता है, इसीलिये श्री इजर्टन स्मिथ मुक्त छन्दों के विश्लेषण के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चाहे मुक्त छन्द भिन्न चरणों में लिखा जाकर गद्य की भाँति लिपि-बद्ध कर दिया जाय, तो भी मूल लय के कारण भेद न आयेगा । मुक्त चरण में पूर्ववर्ती चरण का लयनिपात और आगामी चरण का स्फोट सम रूप में अंगुष्फित कर दिया जाता है । इसमें चरणों का विभाजन वाक्यांश और विचार वर्गीकरण के आधार पर होता है..... । ^२ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता का अनुवाद सप्तक के आधार पर किया है और उसे गद्य के रूप में ही लिपिबद्ध किया है । ^३ निराला जी वर्ण,

१. भाषा की भाँति प्रतीकवादी कवियों ने छन्द को नवीन रूप दिया । इन कवियों की यह नवीन छन्द-प्रणाली 'स्वच्छन्द छंद' (वेर लिब्र) के नाम से प्रसिद्ध है । प्राचीन रुढ़िगत छंदों का त्याग समस्त रोमैंटिक कवियों की एक विशेषता रही है । ओदेलेर ने 'पेती पोयम आँ प्रोज' लिख कर छंदबंध का अंत किया । किंतु यह छंद-बन्ध का विरोध 'ल वेर ओफीसिए' (अधिकृत छंद) का ही था, अर्थात् जहाँ तक प्रवाह का प्रश्न है, ये 'वेर लिब्र' भी उससे युक्त थे । इन छंदों में 'संगीतात्मकता' कवि तथा पाठक के बीच बड़ी कार्य करती है, जो रुढ़ छन्दों में । यह दूसरी बात है कि कुछ कवियों के हाथ पड़ कर यह छन्द लावण्यहीन हो जाते हैं, किंतु इसके लिए दोषी कवि है, छन्द नहीं ।

साहित्य संदेश, समालोचानाङ्क (१९५२), पृ० १७०, पाश्चात्य शास्त्र के कुछ प्रमुख वाद, श्री भोलाशंकर व्यास ।

2. Unrimed 'Vers Libres' infact, might almost as well be written continuously like prose (for the primary rhythm would be equally manifest in that form)... they are so divided to the poet's desire to balance the cadence of one section of the rhythmical continuum against that of neighbouring sections. The division into these sections (lines or verses) will often be guided by the phrase or thought grouping, but on the other hand there will be often intentions overflow so that sense and may set each other in relief.

The Principles of English Metre. & sound P. 205.
—Egerton Smith.

३. मैं दान कर/ना चाहता/ हूँ बद्ध मा/नव वाक्य को/ यह दीप्त गति/
मय छन्द—ऐ/सा हो कि यह/ उन्मुक्त हो/कर संचरण/ कर सके जग/ की
क्षुद्र सी/माराशि, ले/वे खींच इस/गुरुभार पृ/थ्वी को गनन/ की ओर ले/
फिर खींच बंधनजड़ित भा/षा को मनो/हर भावरस/की ओर जो/ है
देवपी/ठस्थली मा/नव जाति की/, जिस भाँति बाँधा है महा/भ्रुधि ने घरि/त्री को ।

साहित्य का मर्म पृ० ४७, ४८ ।

मात्रा और गण सभी आधारों के प्रति विद्रोह करके भी इस बात का समर्थन करते हैं कि उनके मुक्त छन्द, छन्द की भूमि में ही हैं, और इस बात का समर्थक छन्द का प्रवाह है।^१ सामान्य श्रोता के मन में छन्द की धारणा (Conception) भले ही न बने, पर वह सुखद संवेदना (Sensation) का मोह नहीं छोड़ सकता है। छन्द एक धारणा है और लय एक संवेदना।^२ यद्यपि मुक्त छन्द की लय में ध्वनियों के छोटे-छोटे व्यवधान रहते हैं, परन्तु मनुष्य का संस्कार स्वयं इस अभाव को पूरा करके लय-माधुरी का आनन्द ले लेता है।^३

मुक्त छन्द और अनुप्रास-कला

मुक्त छन्दों के विषय में सामान्य लोगों की धारणा रही है कि इन छन्दों में कला जैसी कोई चीज नहीं है। प्राचीनों ने तो अपनी दृष्टि से पूरी ईमानदारी के साथ कई बार

१. ऊपर जितने प्रकार के अनुकान्त काव्य के उदाहरण दिये गये हैं सब एक-एक सीमा में बँधे हैं, एक-एक प्रधान नियम सबमें पाया जाता है। गणवृत्तों में गणों की शृंखला मात्रिक वृत्तों में मात्राओं का साध्य, वर्णवृत्तों में अक्षरों की समानता रहती है। कहीं भी इस नियम का उल्लंघन नहीं किया गया। इस प्रकार के वृद्ध नियमों से बंधी हुई कविता कदापि मुक्त छन्द नहीं हो सकती। मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है। इस पुस्तक के तीसरे खंड में जितनी कविताएँ हैं, सब इस प्रकार की हैं। उनमें नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छन्द का सा जान पड़ता है। कहीं कहीं ८ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-राहित्य उसकी सुविधा।

निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २१।

2. Of course, rhythm is not really mere sensation but difference between mere rhythm and metre has an exact analogy in the difference between sensation and perception. Page 107.

Principles of English Prosody. Part I.

By Lascelles Abercrombie.

3. The instinct of rhythm is so firmly rooted in human nature that it will lead into involuntary formation of rhythmic groups even where originally there were none i.e. where the stimuli did not vary objectively.

American Journal of Psychology. Jan. 1894.

Sound Experiments, L. T. Bolton,

यह निर्णय दिया है कि कविता की समस्त कलात्मकता मुक्त छन्दों न नष्ट कर दी। प्रायः लोग मुक्त छन्द के कवियों के विषय में भी यही कहते हैं कि वे लोग बिना शब्द, ध्वनि, वाक्य, अलंकार या रस आदि का ध्यान किये, जो मन में आता है, लिखते चले जाते हैं, अतः मुक्त छन्दों में किसी कलात्मक साधना की आवश्यकता नहीं। मुक्त छन्दों की गरिमा को स्पष्ट करने के लिये ऐसी धांकाओं और भ्रान्तियों का निराकरण अत्यंत वांछनीय है।

कवि स्वभावतः कलाप्रिय होता है, और शब्द तथा ध्वनि की योजना को स्वाभाविक महत्व देता है। जिस प्रकार मुक्त छन्द में कवि छन्द के निश्चित रूप को तोड़ कर भी लयादर्श और छन्द की भूमि को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार वह अन्त्यानुप्रास का बंधन तोड़ कर भी उसकी माधुरी को स्वाभाविक मूल्य प्रदान करता है। इसका कारण मनुष्य की सगीत और सौंदर्यप्रियता है। कवि की सौंदर्य-प्रियता सामान्य समाज से बहुत उदात्त और परिष्कृत घरातल पर होती है, अतः वह अपनी प्रकृति से बाध्य होकर भावों के साथ भाषा तथा छन्द के क्रमायोजन से शब्दावली को सौंदर्य प्रदान करता है। कवि अपनी सौंदर्य-प्रियता को, मुक्ति पाने का अभिनय करके, बलिदान नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करने से वह अपनी अभिव्यक्ति पूर्ण संशुद्ध रूप से नहीं कर सकेगा। उस कविता से न तो आत्माभिव्यक्ति का पूर्ण परिष्कृत आनन्द प्राप्त होगा और न साहित्यिक जीवन-रस से सामाजिकों की संवेदनाएँ समृद्ध और उन्नत होकर आनन्द का साधन बन सकेंगी। शब्द-योजना में कवि केवल अनुप्रास के द्वारा कुछ अक्षरों और मात्रा-ध्वनियों की आवृत्ति ही नहीं करता है, कभी-कभी समस्त पंक्ति और छन्दखंड की भी आवृत्ति करता है, यथा:—

युद्ध होगा महा, युद्ध होगा महा,
युद्ध होगा महा, राजनीतिज्ञ के वृन्द ने पूर्व ही क्रूर भावी कही
तार आलाप से, घोर संलाप से।^१

मुक्त छन्द के कवि ध्वनि-वैभव उत्पन्न करने के लिए नाना प्रकार के प्राचीन और नवीन शब्दालंकारों का आयोजन करते हैं, जो कि “हारादिवत्” वाद्य न होकर “रसवत्” एवं “गुणवत्” होते हैं।^२

१. अनूप शर्मा, विराट् संग्राम, पृ० १।

२. छेकानुप्रास:—अनेक स्वरों और अनेक व्यंजनों को एक बार आवृत्ति
“कोटि मुंड माल रण-चंडी के चरणों में”

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, सरदार चूड़ावत।

वृत्त्यनुप्रास:—एक वर्ण की अनेक आवृत्तियाँ:—

देख के स्वार्थ का नृत्य संसार में हो रहा नग्नता से, [शेष पृष्ठ ४१० पर]

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुक्त छन्द के कवि रुढ़िगत अन्त्यानु-
प्रास से विद्रोह करके भी उसके ध्वनि-सौंदर्य को व्यंजना में विशेष स्थान देते हैं। कविता

[पृष्ठ ४०६ का शेष]

तडित्तीव्रता से समावर्त ले (र, की आवृत्ति)

अनूप शर्मा, विराट् संग्राम, पृ० २ ।

स्फुटानुप्रास:—आदि या मध्य में वर्णों की आवृत्ति—

आई याद विछुड़न से मिलन की यह मधुर बात,

आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,

आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात ।

निराला, परिमल, जुही की कली, पृ० १६२ ।

अर्थानुप्रास:—उपमेय और उपमान में वर्ण साम्य—

उर्वशी त्रिलोकसुन्दरी

सुन्दरी ज्यों विभावरी ।

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, उर्वशी, पृ० १२ ।

यमक:—अनेक वर्णों की आवृत्ति का समूह—

मुझे त्याग आई निज अंक से कलंक सा ।

मेरा कलंक कर मोचन निष्कलंक है ।

अंक भर मेरा, मेर शरद-मयंक ।

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, कर्ण और कुन्ती, पृ० ३५ ।

कितने विकलांग अपांगों के अवलंब बने ।

सुमन , प्रतीक ४, युग सारथि गांधी,

अन्त्यानुप्रास:—

घुट रही नर-बुद्धि की साँस,

चाहती है वह कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश,

यह मनुज जिसके लिये लघु हो रहा भूगोल,

अपरग्रह जय की तृषा जिसमें उठी है बोल ।

यह मनुज विज्ञान में निष्णात,

जो करेगा स्यात् मंगल और विधु से बात ।

दिनकर, कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० ६२ ।

कारक यमक^१ :—जिसमें किसी कारक की आवृत्ति हो:—

एक नव रूप में,

[शेष पृष्ठ ४११ पर]

का निर्माण भावमूलक सार्थक ध्वनियों की ही भूमि पर होता है, अतः शब्द-संबंधी जितनी भी समृद्धियाँ हैं, उनका उपयोग मुक्त छन्द के कवि भी करते हैं। शब्द-समृद्धि में अभिधा शक्ति और अभिव्यंजना में प्रसाद एवं ओज गुण छन्द की सफलता में विशेष योग देते हैं। हिन्दी-मुक्त छन्दों की प्राथमिक अवस्था में संस्कृत-दिष्ट वे-मुहाविरदार भाषा का प्रयोग होता था, पर अब उसका स्वरूप अधिकाधिक जनभाषा के शिष्ट वात्तालाप के घरातल पर आ गया है, केवल कुछ अपरिपक्व बुद्धि और विवेक के व्यक्ति अमर शब्दावली का प्रयोग कर जाते हैं। यह समझना बड़ी भूल होगी कि मुक्तछन्दनिबद्ध कविता का शुद्ध सुसंस्कृत, दिव्य भावना एवं परिष्कृत भाषा के साथ अपेक्षाकृत कम संबंध है। इस तथ्य के

[पृष्ठ ४१० का शेष]

आया भर दूसरा ही,
स्पन्दन तव हृदय में,
अन्वेषण नयनों में,
प्राणों में लालसा।

निराला, परिमल, स्मृति-चुम्बन, पृ० २१३/

वाचक यमक (धर्म-व्यंजक शब्द की आवृत्ति) :—

बैसा ही सेवा भाव, बैसा ही आत्म-स्याग
बैसी ही सरलता, बैसी ही पवित्र कांति।

निराला, परिमल, पंचवटी प्रसंग, २४१/

अन्तर्यति अनुप्रासः — अन्तर्यति में अनुप्रास का प्रयोग :—

गूँजता था विकल गान/, दृढ़ गान/ क्षुब्ध गान,/
महा भिक्षु घूमते थे स्थान - स्थान,

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, भिक्षा-प्राप्ति, पृ० ६५/

मालोपमा अन्त्यानुप्रासः — अन्त्यानुप्रास में मालोपमा के उपमान और वाचक का प्रयोग :—

सुषमा की प्रतिमा,
एक तरुणी दिवांगना सी,
कवि कल्पना सी,
विधि की अनूप रचना सी,
सुन्दरी प्रणय-अभिलाषा सी,
मादक मदिरा सी,
मोहक इन्द्रधनु सी।

सोहनलाल, द्विवेदी, वासवदत्ता, पृ० २/

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुक्त छन्द के कवि रुढ़िगत अन्त्यानु-
प्रास से विद्रोह करके भी उसके ध्वनि-सौंदर्य को व्यंजना में विशेष स्थान देते हैं। कविता

[पृष्ठ ४०६ का शेष]

तडित्तीव्रता से समावर्त ले (र, की आवृत्ति)

अनूप शर्मा, विराट् संग्राम, पृ० २ ।

स्फुटानुप्रास:—आदि या मध्य में वर्णों की आवृत्ति—

आई याद विछुड़न से मिलन की यह मधुर बात,

आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,

आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात ।

निराला, परिमल, जुही की कली, पृ० १६२ ।

अर्थानुप्रास:—उपमेय और उपमान में वर्ण साम्य—

उर्वशी त्रिलोकसुन्दरी

सुन्दरी ज्यों विभावरी ।

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, उर्वशी, पृ० १२ ।

यमक:—अनेक वर्णों की आवृत्ति का समूह—

मुझे त्याग आई निज अंक से कलंक सा ।

मेरा कलंक कर मोचन निष्कलंक है ।

अंक भर मेरा, मेर शरद-मयंक ।

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, कर्ण और कुन्ती, पृ० ३५ ।

कितने विकलांग अपांगों के अवलंब बने ।

सुमन , प्रतीक ४, युग सारथि गांधी,

अन्त्यानुप्रास:—

घुट रही नर-बुद्धि की साँस,

चाहती है वह कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश,

यह मनुज जिसके लिये लघु हो रहा भूगोल,

अपरग्रह जय की तृषा जिसमें उठी है बोल ।

यह मनुज विज्ञान में निष्णात,

जो करेगा स्यात् मंगल और विधु से बात ।

दिनकर, कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० ६२ ।

कारक यमक^१ :—जिसमें किसी कारक की आवृत्ति हो:—

एक नव रूप में,

[शेष पृष्ठ ४११ पर]

का निर्माण भावमूलक सार्थक ध्वनियों की ही भूमि पर होता है, अतः शब्द-संबंधी जितनी भी समृद्धियाँ हैं, उनका उपयोग मुक्त छन्द के कवि भी करते हैं। शब्द-समृद्धि में अभिधा शक्ति और अभिव्यंजना में प्रसाद एवं ओज गुण छन्द की सफलता में विशेष योग देते हैं। हिन्दी-मुक्त छन्दों की प्राथमिक अवस्था में संस्कृत-दिष्ट वे-मुहाविरेदार भाषा का प्रयोग होता था, पर अब उसका स्वरूप अधिकाधिक जनभाषा के शिष्ट वात्तालाप के धरातल पर आ गया है, केवल कुछ अपरिपक्व बुद्धि और विवेक के व्यक्ति अभद्र शब्दावली का प्रयोग कर जाते हैं। यह समझना दृढ़ी भूल होगी कि मुक्तछन्दनिबद्ध कविता का शुद्ध सुसंस्कृत, दिव्य भावना एवं परिष्कृत भाषा के साथ अपेक्षाकृत कम संबंध है। इस तथ्य के

[पृष्ठ ४१० का शेष]

आया भर दूसरा ही,
स्पन्दन तब हृदय में,
अन्वेषण नयनों में,
प्राणों में लालसा।

निराला, परिमल, स्मृति-चुम्बन, पृ० २१३/

वाचक यमक (धर्म-व्यंजक शब्द की आवृत्ति) :—

बैसा ही सेवा भाव, बैसा ही आत्म-स्याग
बैसी ही सरलता, बैसी ही पवित्र कांति।

निराला, परिमल, पंचवटी प्रसंग, २४१/

अन्तर्यति अनुप्रासः — अन्तर्यति में अनुप्रास का प्रयोगः—

गूँजता था विकल गान/, रुद्ध गान/ क्षुब्ध गान/,

महा भिक्षु घूमते थे स्थान - स्थान,

सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, भिक्षा-प्राप्ति, पृ० ६५/

मालोपमा अन्त्यानुप्रासः—अन्त्यानुप्रास में मालोपमा के उपमान और वाचक का प्रयोगः—

सुषमा की प्रतिमा,

एक तरुणी दिवांगना सी,

कवि कल्पना सी,

विधि की अनूप रचना सी,

सुन्दरी प्रणय-अभिलाषा सी,

भावक मदिरा सी,

मोहक इन्द्रधनु सी।

सोहनलाल, द्विवेदी, वासवदत्ता, पृ० २/

अपवाद प्रयोगावस्था के सचेतन और अचेतन विकार हैं, क्योंकि कविता का प्रमुख उद्देश्य अनवदात एवं अदिव्य धरातल से ऊपर उठना और उठाना है।

यहाँ पर मुक्त छन्दों की प्रमुख विशेषताओं का विवरण दिया जाता है:—

१. ध्वनि-माधुरी के लिए अनुप्रास के विविध स्वरूपों का आयोजन।
२. चरणांशों और संपूर्ण चरणों की आवृत्ति।
३. भावानुकूल ध्वन्यर्थमूलक शब्दयोजना और वृत्तियों (पुरुषा, मधुरा और कीमला वृत्ति) का प्रयोग।
४. विशेष भाव को व्यक्त करने वाले उपयुक्त शब्दों का चयन।
५. सरलता के लिए अभिधाशक्ति और प्रसाद गुण का उपयोग।
६. महावरेदार सरल प्रचलित भाषा का प्रयोग और व्यंजना-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए उपयुक्त विदेशी शब्दों का सहर्ष ग्रहण।
७. वाक्यों का स्वरूप यथासाध्य गद्य के समीप होना और शब्द तथा वाक्य में कम से कम तोड़-मरोड़।
८. जनभावना के अनुकूल अभिव्यक्ति और विषयों का चयन।
९. एक भाव को एक अवतरण पद्यांश में अंकित करना।
१०. भाषा और भाव को सुगठित और स्पष्ट करने के लिये गद्य के विराम आदि (पूर्ण विराम, अल्प विराम, अर्द्ध विराम, प्रश्न सूचक, विस्मयादिबोधक, मध्यवर्ती, अशतरण और विवरण चिह्नों) का प्रयोग।
११. निश्चितलय-पर्व का प्रयोग।

मुक्तछन्द और लय-खंड

प्रथम अध्याय में छन्द की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि छन्द नियमित मुखध्वनि-रचना है। यह परिभाषा मुक्त छन्दों पर भी पूर्णतया लागू होती है। कवि में छन्द का सहज संस्कार होता है। प्रायः ऐसा भी होता है कि कवि छन्द विशेष की रचना करता चला जाता है, परन्तु उसे यह ध्यान नहीं रहता कि यह कौन छन्द है और इसका क्या लक्षण है। लेखक ने यह निष्कर्ष अनेक कवियों के सामने रखी हुई प्रश्नावली के उत्तर के आधार पर निकाला है, यद्यपि प्रयोग-पात्र अधिकांश तरुण कवि ही थे, परन्तु मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि उन कवियों के छंद, शास्त्रीय दृष्टि से पूर्णतया अनवद्य एवं शुद्ध हैं। इसका कारण यह है कि शास्त्र भी हमारी अभ्यस्त और प्रचलित लयों के पीछे चलता है। मुक्त छंद के आदिम प्रयोगों में कवियों ने स्वयं यह दावा किया कि इसमें कोई भी छंद नहीं है। प्राचीन समस्त प्रयुक्त छन्दों से इन छंदों का रूप भिन्न था, अतः छन्दःशास्त्र के पुराने पंडितों और छंदों से अनभ्यस्त जनता ने कवियों से पहिले ही यह कहना आरंभ कर दिया कि मुक्त छंदों में कोई छंद नहीं है। अपने स्वरूप में ये छन्द निश्चित रूप से नवीन छंद थे, अतः किसी छंदःशास्त्र के ग्रंथ

का समर्थन प्राप्त करके कोई भी व्यक्ति इन्हें छन्द कहने का साहस नहीं कर सकता था। लेकिन, इन छन्दों में लय-रसकता और गेय गुण था, अतः इन छन्दों ने समस्त लयप्रेमियों को आकृष्ट किया, विशेषतः समसामयिक और आगामी तरुण कवियों को इन नूतन लय-संस्कारों में अपने को ढालने में देर न लगी, जब कि बुद्धि द्वारा छंद के स्वरूप को ग्रहण करने वाले पिछली पीढ़ी के लोग इन छन्दों को अस्वीकृत ही करते रहे। मुक्त छंदों का विस्तृत प्रयोग और प्रचार तथा आगामी पीढ़ी द्वारा सहज ग्रहण, उनकी छान्दसिकता का बहुत बड़ा प्रमाण है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि बिना छंदःशास्त्र के ग्रंथों की सहायता के भी छंदों का विकास प्रगति से होता है। छंद की परम्परा संस्कार की परम्परा है और इन्हीं संस्कारों के माध्यम से छन्द प्रचलित होते हैं। छन्दःशास्त्र के ग्रंथ, छन्दों के प्रचार में उतने सहायक नहीं होते, जितने कि छन्दों को सुव्यवस्थित और स्वस्थ रूप प्रदान करने में। यह अवश्य है कि जिन व्यक्तियों को छन्द के सहज संस्कार प्राप्त नहीं हैं, वे लोग भी छन्दों को बुद्धि के माध्यम से ग्रहण कर सकते हैं और अभ्यास के अनुसार उनका प्रयोग भी कर सकते हैं। छन्दों की परख रखने वाले सभी व्यक्ति इस बात को मानने लगे हैं कि मुक्त छन्दों में भी छन्द हैं। पर उनका नियम क्या है, यह बताना लोगों के लिये कठिन है। लेखक ने सन् १९४६ में मुक्त छन्दों के नियमों और सूत्रों को, डाक्टर भगीरथ मिश्र के सहायतापूर्ण निरीक्षण में, निश्चित रूप से निकाल लिया था और एम० ए० के प्रस्तुत किये गये निबंध (१९५०) में मुक्त छन्दों की व्याख्या को विशेष रूप से स्थान दिया गया था। उन नियमों और लक्षणों तथा व्याख्याओं में संशोधन एवं परिवर्द्धन भी चलता रहा है और संप्रति मुक्त छन्द संबंधी समस्त समस्याएँ सुलझ चुकी हैं और लेखक के लिये ये मुक्त छन्द पूर्णतया निश्चित, प्रतिष्ठित एवं शास्त्रीय छन्द के समान ही हैं। इन्हीं छन्दों का विश्लेषण करना यहाँ पर अभीष्ट है।

मुक्त छन्द निश्चित लय-आदर्शों के आधार पर चलते हैं। बिना लय या प्रवाह गुण के छन्द का अस्तित्व सम्भव नहीं और जहाँ लय होगी, वहाँ कोई नियम अवश्य होगा। ये लयादर्श भी उतने ही प्रकार के होते हैं, जितने छन्दों के वर्ग हैं। हिन्दी छन्दों में दो ही वर्ग प्रचलित हैं :—१. वर्णिक, और २. मात्रिक। मुक्त छन्दों में भी वर्णिक और मात्रिक दो प्रमुख भेद हैं।

वर्णिक लयाधार

हिन्दी में घनाक्षरी या मनहरण अथवा कवित्त ही शुद्ध वर्णिक मुक्त छन्द प्रचलित है। यह छन्द अपने प्रस्तुत प्रकृत स्वरूप में व्रजभाषा में ही विकसित हुआ और पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हुआ। खड़ी बोली में भी इसके निश्चित स्वरूप का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। श्री अनूप शर्मा ने 'सुमनाञ्जलि' और 'शर्वांगी' में एक सहस्र से अधिक पूर्ण प्रौढ़ घनाक्षरियों का प्रयोग करके खड़ी बोली में भी घनाक्षरी छन्द की पूर्ण प्रतिष्ठा

कर दी है। श्री 'निराला' जी ने इस छन्द को हिन्दी का जातीय छन्द माना है और इसी छन्द के आधार पर उन्होंने वर्णिक मुक्त छन्द का आविष्कार किया है। श्री 'निराला' जी ने केवल हिन्दी के घनाक्षरी छन्द के संस्कार को ही नहीं विकसित किया है, इस प्रयोग के साथ ही बँगला के वर्णिक छन्दों से पूर्णतया परिचय प्राप्त किया है। इन्हीं संस्कारों के आधार पर उन्होंने सन् १९१६ में 'जुही की कली' शीर्षक वर्णिक मुक्त छन्द की रचना की थी। इस विकास में उन्हें गिरधर शर्मा 'कविरत्न' के प्रयोग से बहुत प्रेरणा मिली। शर्मा जी ने घनाक्षरी के अष्टक के आधार पर रचना की थी।^१ इस प्रयोग में निश्चयात्मकता अधिक थी, अतः मुक्त छन्द के आविष्कार का श्रेय श्री निराला जी को ही मिलना चाहिये। हिन्दी के वर्णिक मुक्त छन्दों में घनाक्षरी के अष्टक को ही लयाधार माना गया है, परन्तु कहीं यह प्रयोग शुद्ध घनाक्षरी की लय के आधार पर होता है और कहीं पूर्वमूलक होता है, जिसे 'अक्षरमात्रिक' नाम दिया गया है।

मुक्त वर्णिक स्वच्छन्द छन्दों के विवेचन के पहले लयाधार का विवेचन कर लेना आवश्यक है। हिन्दी में दो ही मुक्त वर्णिक छन्द प्रचलित रहे हैं, पहला सवैया और दूसरा घनाक्षरी। इन दोनों छन्दों के संस्कार हिन्दी कवियों और हिन्दी जनता में विद्यमान हैं। वर्णिक मुक्त छन्दों में इन्हीं दो छन्दों के लयाधार का प्रयोग होने की संभावना थी, पर मुक्त छन्द में सवैया के लयाधार का प्रयोग नहीं हुआ। ऐसा क्यों हुआ ? यह बहुत बड़ा प्रश्न है।

(१) इसके उत्तर में पहला तर्क यह है कि सवैया अपने मूल रूप में गणात्मक वृत्त है। सवैया में इधर-उधर कुछ वर्ण घटा बढ़ा कर कितने ही भेद बना लिये जायें (आचार्य भिखारीदास ने 'छन्दार्णव पिङ्गल' में सवैया के चौदह भेद वर्णित किये हैं) पर उसकी लय में गण की आवृत्ति अनिवार्य रूप से होगी, इसी कारण सवैया की लय में जितनी एक रूपता होती है, उतनी घनाक्षरी में नहीं। वर्णिक स्वच्छन्द छन्द में किसी विशेष गण की आवृत्ति का आग्रह कदापि स्वीकृत नहीं हो सकता था। जब पूर्ण मुक्ति का प्रयास है, तो गणात्मक आवृत्ति को क्यों स्वीकार किया जाय।

(२) इस पर भी एक प्रश्न उठ सकता है, कि हिन्दी में सवैया छन्द पूर्णतया वर्णिक हो चुका है। (जैसा कि सनेही, अनूप, हितैषी, और रामचन्द्र शुक्ल, 'दत्त' और माधवचरण द्विवेदी के सवैयाओं से स्पष्ट है) और अब गणात्मकता पर ध्यान नहीं दिया जाता है, अतः यह विकसित लय अपनाई जा सकती थी, ऐसा क्यों नहीं हुआ ? इसका

१. एक प्रकार की श्रुतकान्त कविता का रूप पंडित गिरधर जी शर्मा 'कविरत्न' ने हिन्दी में खड़ा किया है। इसकी गति कवित्त छन्द की सी है। हर एक छन्द आठ-आठ वर्णों का होता है। अन्त्यानुप्रास नहीं रहता। '.....मेरे पंख मुरवार' इस तरह हर पङ्क्ति में आठ-आठ अक्षर रहते हैं। निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २०।

उत्तर यह है कि मुक्त वर्णिक छन्दों के विश्लेषण में सवैया छन्द के बारे में यह कहा जा चुका है कि वह चाहे जितनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ले, पर उसकी लय गणात्मक ही रहेगी। जिन छन्दों में लोगों को केवल वर्ण-संख्या ही प्रतीत होती है, गण-विधान नहीं, वहाँ भी यह बात ध्यान देने की है कि परिवर्तन में सगण का दूसरा वर्ण ही गुरु हो सकता है, पहला अक्षर अनिवार्यतः लघु या लघु जैसा रहेगा, अन्यथा सवैया की लय समाप्त हो जायगी। इस प्रकार का बंधन भी वर्णिक स्वच्छन्द छन्दों की वृत्ति के अधिक अनुकूल न था, इसीलिये सवैया छन्द को वर्णिक मुक्त छन्द का आधार नहीं बनाया जा सका^१ और इस प्रयोग में घनाक्षरी का ही पूर्ण उपयोग किया गया, जिसका वर्गीकरण और विश्लेषण नीचे दिया जाता है।

मुक्त वर्णिक छन्द

शुद्ध घनाक्षरी आधार

घनाक्षरी आधार पर अक्षर मात्रिक

शुद्ध घनाक्षरी आधार:—घनाक्षरी छन्द में आठ, आठ, आठ और सात वर्णों के चार लयखंड होते हैं और महाकवि देव के अनुसार रूप घनाक्षरी में, अन्तिम खंड भी आठ अक्षरों का होता है, जिसका अन्त गुरु-लघु-मूलक होता है। इन चारों लयखंडों में केवल अक्षर-गणना का विचार होता है, परन्तु यह अक्षर क्रम सममूलक ही होता है अर्थात् सम संख्या (२, ४, ६, और ८) के अक्षरोंवाले शब्दों के बाद सम संख्याक्षर के शब्द आते हैं और विषम संख्या के अक्षरों के बाद विषम संख्या के अक्षर वाले शब्द (१, ३, ५ अक्षरों के शब्द) आते हैं। इसी प्रकार विषम विषम अक्षर मिलकर सम रूप धारण कर लेते हैं और प्रवाह अखंड रहता है।^२

१. लेखक इस बात को अवश्य स्वीकार करता है कि सवैया-लय के आधार पर वर्णिक मुक्तछन्दों का सफल प्रयोग हेर सकता है। मुक्तछन्द में सवैया का प्रयोग घनाक्षरी के तुल्य ग्राह्य क्यों नहीं हुआ, इसका संभव कारण ऊपर निविष्ट किया गया है। लेखक ने स्वयं मुक्त छन्दों में सवैया-लयों का प्रयोग किया है, पर उसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं माना जा सकता है।

२. कवित्त की लय ठीक होने के लिये प्रथम उसकी ध्वनि ठीक कर लो। दूसरे उसकी रचना में सम वा विषम प्रयोग का उचित निर्वाह करो। कवित्त में सम प्रयोग बहुत कर्ण मधुर होते हैं। यदि कहीं विषम प्रयोग आ जावे, तो उसी के आगे एक विषय प्रयोग और रख देने से उसकी विषमता नष्ट हो जाती है और वे भी वर्ण मधुर हो जाते हैं। इस नियम को प्रधान नियम जानो। यह तो पहले ही लिख चुके हैं कि विभक्ति सहित शब्द को पद कहते हैं। जैसे, घरहि, रामहि, कंज से इत्यादि। इनमें १, ३ वा ५ के वर्णों में पूर्ण होने वाले पद विषम और २, ४, वा ६ में पूर्ण होने वाले सम कहाते हैं।

(छन्दःप्रभाकर, पृ० २१५)

घनाक्षरी के ८ अक्षरों के खंड के भी समात्मक दो भाग (४, ४ अक्षर) किये जा सकते हैं। अन्तिमलय-खंड के ४ और ३ अक्षरों के दो खंड होंगे। इस तीन अक्षर वाले खंड में चरण को पूर्ण कर देने की विशेषता होती है, अतः जहाँ पर यह लयखंड आता है, वहाँ गति में पूर्ण विराम आ जाता है। चार-चार अक्षरों के लयखंडों में क्रम पदान्तर-प्रवाही रहता है और एक खंड के बाद दूसरा खंड अभिन्न रूप से आ जाता है। इस प्रकार इस लय में तीन, चार, सात (४, ३), आठ (४, ४ या ५, ३), ग्यारह (४, ४, ३), बारह (४, ४, ४), पन्द्रह (४, ४, ४, ३) और सोलह (४, ४, ४, ४) अक्षर आते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि ५, ६, ६, १०, १३ और १४ वर्ण की संख्या छोड़ दी गयी है, क्योंकि यह संख्या वर्णिक चतुष्कों और त्रिकों के आधार-योग पर पूरी-पूरी नहीं उतरती। इन वर्णों के चरण-निर्माण में अन्त में घनाक्षरी की अन्तिम लय भी नहीं आ सकती, अतः इन संख्या के चरणों को लयव्याघातक माना गया है। एक चरण में १६ वर्णों से अधिक नहीं आ सकते और यदि कहीं लिपि पंक्ति में ऐसा होगा भी, तो १६ अक्षरों के बाद दीर्घ यति होगी। इस प्रवाह में आठ अक्षरों के बाद अवश्य यति होती और यदि घनाक्षरी के अन्तिम लयखंड का प्रयोग होता है, तो सात अक्षरों के बाद यति होती है।

शुद्ध घनाक्षरी आधार

अन्यनुप्रास युक्त

अन्यान्यनुप्रास मुक्त

घनाक्षरी के आधार पर लिखे हुए वर्णिक मुक्त छन्दों में श्री सियारामशरण गुप्त के समस्त प्रयोग (बापू, आर्द्रा और दूर्वादल में) अन्यान्यनुप्रास युक्त हैं। इन प्रयोगों में निश्चित छन्दों का संगीत घनाक्षरी से भी अधिक मिलता है, क्योंकि घनाक्षरी में तो २८, २६ वर्णों के बाद अन्यान्यनुप्रास की आवृत्ति प्रारम्भ होती है, पर इसमें प्रायः बहुत थोड़े अक्षरों के बाद अन्यान्यनुप्रास आता है। साथ ही साथ कवि को अन्यान्यनुप्रास के क्रम को बदलने और अन्यान्यनुप्रास को न देने का पूर्ण अधिकार रहता है। पाठक और श्रोता के सामने छन्द का निश्चित स्वरूप नहीं होता, अतः उसे यह पता नहीं होता कि कब अन्यान्यनुप्रास आयेगा और कितने अक्षरों के बाद, अतः उसे अयाचित और अप्रत्याशित रूप से शब्द-मधुरिमा और आवृत्ति का दान मिलता है। प्रत्याशित और निश्चित रूप में अन्यान्यनुप्रास के आने पर श्रोता या पाठक को वह आनन्द नहीं आता, जो अनिश्चित, अयाचित और अप्रत्याशित रूप से अन्यान्यनुप्रास के आने पर। ऐसी अवस्था में बुद्धि की अपेक्षा (क्योंकि ऐसे प्रयोगों में छन्द की कोई निश्चित धारणा नहीं होती) संवेदना-शक्ति अधिक जागरूक रहती है, फलतः आनन्द की शुद्ध मधुर दुग्ध-धारा में बुद्धि की नीर-नीरसता बहुत कम होती है। यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

युग्मक अन्त्यानुप्रासः—

कौन यह कौन कृती/	८ वर्ण
कौन, वह कौन निज/कार्यव्रती	१२ वर्ण (८, ४)
जा रहा था आज इस/राह से ?	११ वर्ण (८, ३)
किसके निमित्त सभी/ मन के उछाह से,	(८, ७) १५ वर्ण
आके यहाँ थे एकत्र/	८ वर्ण
यत्रतत्र/	४ वर्ण
कुटिल कठोर बहु/ मार्ग पार करके ?	१५ वर्ण (८, ७)
श्रद्धा का पुनीत घट/भरके	११ वर्ण (८, ३)
बाट जोहती थीं खड़ी/ बालाएँ,	११ वर्ण (८, ३)
पुरुष लिए थे प्रेम/फुल्ल पुष्प-मालाएँ । ^१	१५ वर्ण (८, ७)

यहाँ (८, १२), (११, १५), (८, ४), (१५, ११), और (११, १५) वर्णक्रम से युग्मकों का अन्त्यानुप्रासयुक्त आयोजन हुआ है। पहला चरण अष्टक है, दूसरा अष्टक और चतुष्क के योग से बना है, तीसरा चरण अष्टक और गण के योग से, चौथा अष्टक एवं सप्तक से, पाँचवाँ अष्टक, छठा चतुष्क, सातवाँ अष्टक और सप्तक के योग से, आठवाँ चरण अष्टक और गण के योग से, नवाँ चरण अष्टक और गण के योग से और दसवाँ चरण अष्टक और सप्तक के योग से बना है। इसका लयाधार एक है, अतः विभिन्न चरणों का योग एक साथ संभव हो सका है। इस नियम को स्पष्ट करने वाला सूत्र दिया जाता है:—‘समे लयाधारे भिन्नचरणसंयोगः ।’

या

नियम १. दोहा०—सम लय के आधार पर, भिन्न चरण-संयोग।

मुक्त छन्द मनहरण का, वशिष्क-विषम-सुयोग ।^२

नियम २. युग्मक के अतिरिक्त कवि लोग पहले चरण का तीसरे और दूसरे का चौथे चरण से अन्त्यानुप्रास मिलाते हैं; परन्तु चरणों में विस्तार की समानता का कोई नियम नहीं रहता, ऐसे अन्त्यानुप्रास को पदान्तर, चरणान्तर या दूरान्तर कहते हैं।

(क)	सुप्त नगरी के प्रान्त/ भाग में,	(८+३) ११ वर्ण
	उत्सुक अड़ी थी बड़ी/जनता,	(८+३) ११ ,,

१. सियारामशरण गुप्त, बापू, पृ० १२।

२. लेखक।

	सारी रात निद्रा के वि/राग में,	११ वर्ण
	जाग्रत किये थी अनु/राग की गहनता ।	(८+७) १५ ,,
	छूट कर, काल निशा/कारा से	११ वर्ण (८+३)
	मेघजाल भेदकर/ प्रात रश्मि निखरी/,	१५ वर्ण (८+७)
	श्यामोज्ज्वल शान्त दीप्त/धारा से,	११ वर्ण (८+३)
	श्यामल घरित्री अहा/ ! निखरी । ^१	११ वर्ण ,,
(ख)	जाग उठती है भीति/	८ वर्ण
	शीत के असह्य प्रकं/पन में,	११ वर्ण (८+३)
	दर्शन की सहज प्र/सन्न प्रीति,	१२ वर्ण (८+४)
	आती नहीं मन में/, ^२	७ वर्ण
(ग)	मैंने इस वस्त्र की ही/ जेब में प्रथमबार,	१६ वर्ण (८+८)
	रक्खी थी/गिन्नियाँ सँभाल के,	१० वर्ण (३+७)
	किन्तु फिर जीर्ण सा उसे विचार,	१२ वर्ण (४+८)
	उनको निकाल के ^३	७ वर्ण

नियम ३—इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं आलिगित अन्त्यानुप्रास (Enclosing Rhyming) का भी प्रयोग हो जाता है, परन्तु ऐसा प्रयोग सुविधा के लिए ही होता है। कभी-कभी युग्मक अन्तप्रास के आग्रह से भाव कुण्ठित होने लगता है, तो, पहले चरण के बाद दूसरा अन्तप्रास आता है, फिर दूसरे और तीसरे चरण का युग्मक बन जाता है तथा प्रथम चरण का अन्तप्रास चौथे चरण के समान कर दिया जाता है :—

(क)	खेत लहराते थे	७ वर्ण
	डालों के हिडोरीं पर	८ वर्ण
	बैठे हुए विविध विहंगवर	१२ वर्ण
	कल-कल कूजन सुनाते थे । ^४	११ वर्ण
	व्यक्त नहीं होने दिया उसको,	११ वर्ण
	फेर मुँह काम का बहाना कर,	१२ वर्ण

१. सियारामशरण गुप्त, बापू, पृ० १३ ।

२. ,, ,, ,, पृ० ५१ ।

३. ,, ,, आदर्श, पृ० ६७ ।

४. ,, ,, आदर्श, वंचित, पृ० ७७ ।

मेरा अनजाना कर
पोंछ लिया उसको ।^१

८ वर्ण
७ वर्ण

(ख)	'मार्गभ्रष्ट' होने नहीं पाते तुम,	१२ वर्ण
	शीघ्र लिखे अक्षरों में शीघ्रतर	१२ "
	सर्प-चाल चलकर,	८ "
	कुशल कथा सी लिख जाते तुम ! ^२	१२ "
(ग)	आई अहा ! मूर्ति वह हैसती,	११ "
	जैसे एक पुण्य रश्मि स्वर्ग से उतर के	१५ "
	अन्धतमःपुञ्ज छिन्न करके	११ "
	दीख पड़ी अंतस के अंतक में घँसती । ^३	१५ "

ऊपर 'बापू' के उदाहरण में प्रथम चरण के 'हँसती' का अन्त्यानुप्रास चौथे चरण के 'घँसती' से मिलता है, तथा दूसरे चरण में 'उतर के' का अन्त्यानुप्रास तीसरे चरण के 'करके' से मिलता है । यहाँ बीच के दो चरण, प्रथम और चतुर्थ की बाहुओं में आवद्ध हैं, इसीलिये इस प्रकार के अन्त्यानुप्रास को 'आलिगित अन्त्यानुप्रास' कहते हैं ।

नियम ४—कहीं-कहीं एक चरण अपने पिछले युग्मक से अन्तसाम्य स्थापित करके त्रिसम का निर्माण कर देता है, उसके युग्मक के लिये अन्य चरण की आवश्यकता नहीं पड़ती :—

रक्षा का कल्लू में घटन बेटी किस भाँति आज,	१६ वर्ण
जाने कहीं खो गयी है मेरी लाज,	१२ "
मृत्यु से बचा के तुझे,	८ "
कीन लाभ होगा मुझे,	८ "
छीन लेगा शीघ्र ही तुझे समाज ।	१२ "
सचमुच आज विष तुझको पिलाऊँगा,	१५ "
मरने ही मात्र को न मैं तुझे जिलाऊँगा !	१५ "
औषधि में ऐसा कुछ तत्त्व मैं मिलाऊँगा,	१५ "
तुझको बचा ले जो,	७ "
सर्वदा को रोग-शोक टाले जो । ^४	११ "

-
१. सियारामशरण गुप्त, आदर्श, नृशंस, पृ० ३७ ।
 २. " " आदर्श, पथ, पृ० ८८ ।
 ३. " " बापू, पृ० १४ ।
 ४. " " आदर्श, नृशंस, पृ० ३८ ।

ऐसे प्रयोग श्री सियारामशरण गुप्त ने जितने निश्चित आन्तरिक नियम से किये हैं, उतने नियमों का पालन अन्य कवि ने नहीं किया। ऐसा लगता है कि गुप्त जी में घनाक्षरी का संस्कार इतना गहरा है कि पूर्ण स्वतन्त्रता लेने पर भी वह छन्द के आन्तरिक नियम से, एक भी स्थान पर अपवाद की सृष्टि नहीं करते। कम से कम लेखक ने अपने दिये हुए नियमों का एक भी अपवाद नहीं पाया। ऐतिहासिक क्रम से यह वर्णिक विषम प्रयोग अतुकान्त और अक्षर मात्रिक के बाद में आया है, क्योंकि 'बापू', 'दूर्वादल' और 'आर्द्रा' का प्रकाशन सन् ३५ के बाद का है।

अन्तमुक्त शुद्ध घनाक्षरी आधार

इस वर्ग का नियम अन्त-युक्त सा ही है, केवल अन्तप्रास का विधान नहीं किया गया है। इस वर्ग में प्रसाद जी और उदयशंकर भट्ट के प्रयोग आते हैं। प्रसाद जी ने कुछ अपवादों को छोड़कर कहीं भी अन्त्यानुप्रास नहीं रखा है, पर भट्ट जी बीच-बीच में कहीं-कहीं युग्मक अन्तप्रास और चरण में अन्तःप्रास (या यमक) का विधान करते चलते हैं।

झूमते ह चूम-चूम सुन्दर समीर नीर,	१६ वर्ण
फूलती है कविता मनोहर रस भरिता सी,	१६ "
सरिता सी धौत शुभ्र,	८ "
अभ्रहीन शारदीया—	८ "
कार्तिकीय राका सी	७ "
मोदकर,	४ "
मुग्धकर,	४ "
रस रूप, शिवतर,	८ "
नवीन प्राण बाहिनी,	(१+७) ८ "
काहिनी कथाएँ लिये,	८ वर्ण
नित्य उगता है जहाँ,	८ "
उर्वरा धरा के सम,	८ "
सभ्यता विलास का/मौन, मुग्ध हास का,	७, ७ "(अन्तःप्रास)
प्रखर-प्रखर स्रोत कविता का मधुकर,	८, ८ वर्ण
कल्पना का, भावना का,	८ वर्ण
साधना का, मन का। ^१	७ वर्ण

इसमें 'समीर नीर', 'उर्वरा धरा', 'विलास का', 'हास का', 'कल्पना का', 'भावना' का अन्त्यानुप्रास है और 'मोदकर', 'भुग्धकर', 'रस रूप शिवतर', अन्तःप्रासों का प्रयोग है।

नीचे 'पेशोला की प्रतिध्वनि का एक उदाहरण समस्त अंश में पूर्णतः अन्त्यमुक्त का दिया जाता है। इस कविता में सारे नियम पूर्व लिखित हैं केवल 'निर्धूम' को 'निरधूम' पढ़ने से दूसरी पंक्ति में प्रवाह ठीक होता है।

अरुण करुण बिम्ब/!	८ वर्ण
वह निर्धूम भस्म/रहित ज्वलन-पिंड/	७ : ८, ८
विकल विवर्तनों से/	८ वर्ण
विरल प्रवर्तनों में/	८ "
श्रमित-भमित सा/	७ "
पश्चिम के व्योम में है/आज निरलंब सा।/	८, ७ "
आहुतियाँ विश्व की अ/जस्र से लुटाता रहा/	८, ८ "
सतत सहस्र कर/माला से/	८, ३ "
तेज-ओज-बल जो व/दान्यता-कदम्ब सा/	८, ७ "
पेशोला की उर्मियाँ हैं/शान्त, घनी छाया में/	८, ७ "
तट तरु हैं चित्रित/तरल चित्रसारी में/	८, ७ "
झोंपड़े खड़े हैं बने/शिल्प से विषाद के/	८, ७ "
दग्ध अवसाद से/	७ "
भूसर जलद-खंड/भटक पड़े हैं—	८ : ६ "
जैसे/विजन अनन्त में।	२, ७ "
कालिमा बिखरती है/संध्या के कलंक सी/	८, ७ "
दुंदुभि मृदंग-तूर्य/शान्त, स्तब्ध, मौन हैं।	८, ७ "
फिर भी पुकार सी है/गूंज रही व्योम में/	८, ७ "
कौन लेगा भार यह/?	८, वर्ण
कौन बिचलेगा नहीं/? ^१	८ वर्ण

प्रसाद जी की 'प्रलय की छाया' और 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' कविताएँ भी इसी वर्ग में आती हैं।

यहाँ ऊपर की कविता को घनाक्षरी रूप में व्यवस्थित किया जाता है—

अरुण करुण बिम्ब, वह निरधूम भस्म	१६ वर्ण (२ के स्थान पर २)
रहित ज्वलन पिंड, विकल विवर्तनों से	१६ "

विरल प्रवर्तनों से श्रमित नमित सा ।	१५ वर्ण
पश्चिम के व्योम में है आज निरलंब सा ।	१५ ”
आहुतियाँ विश्व की अजस्र, ले लुटाता रहा,	१६ ”
सतत सहस्र कर माला से,	८ ”
तेज-ओज-बल जो वदान्यता-कदंब सा ।	१५ ”
पेशोला की उर्मियाँ हैं, शान्त घनी छाया में ।	१६ ”
तट-तरु हैं चित्रित तरल चित्रसारी में ।	१६ ”
झोंपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के	१५ ”
दग्ध अवसाद से,	७ ”
धूसर जलद खण्ड भटक पड़े हैं जैसे,	१६ ”
विजन अनन्त में ।	७ ”
कालिमा बिखरती है संध्या के कलंक सी,	१५ ”
दुंदुभि मृदंग-तूर्य शान्त स्तब्ध मौन हैं ।	१५ ”
फिर भी पुकार सी है गूँज रही व्योम में,	१५ ”
कौन लेगा भार यह कौन विचलेगा नहीं ?	१६ ”

लिपि से स्पष्ट है कि इसमें तीन चरणों के अतिरिक्त सभी चरण घनाक्षरी चरण के या तो प्रथम अंश (१६ वर्ण) हैं या अन्तिम अंश (१५ वर्ण) । परन्तु, इस प्रयोग के अतिरिक्त अन्य प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि १६ वर्णों की अपेक्षा १५ वर्णों के चरण का अधिक प्रयोग होता है, क्योंकि उसके अन्तिम चरण में सरल लयनिपात होता है । १६ वर्णों के चरण में प्रवहमानता के लक्षण होते हैं । अपवाद का प्रथम चरण ८ वर्ण और गण के योग से बना है, और शेष अपवाद के दो चरण घनाक्षरी के अन्तिम ७ वर्णों के समान हैं, जिनमें लयनिपात का लक्षण है, अतः उन्हें आगे के चरण से नहीं मिलाया जा सकता ।

उपर्युक्त पदव्यवस्था से स्पष्ट है कि अधिकांश में लय घनाक्षरी होते हुए भी उसके विभिन्न अंशों को विभिन्न लिपि-चरणों में रखा गया है । अनूप जी की 'शर्वाणी' की घनाक्षरी को वर्णिक मुक्त छन्द की भाँति लिपि-बद्ध किया जाता है :—

इस जगती में,	(पदान्तरप्रवाही) ६ वर्ण
पाँव अपने घसीटता था,	” १० ”
पथ में अमाप ताप,	” ८ ”
फैली धूलि-कण की ।	” ७ ”
एक भी न पायी,	” ६ ”
ज्ञान-बाणी जगतीतल में,	” १० ”

देख पड़ी पृथ्वी समाधि भूतगण की ।	पदान्तरप्रवाही	१५ वर्षों
आज सामने ही अति निकट लखाती मुझे,	"	१६ "
लालिमा सकल फलदायक शरण की ।	"	१५ "
चाहता था,	"	४ "
शीतल पदारविन्द की मैं छाँह,	"	१२ "
मिल गयी छाया हरिचन्दन-चरण की । ^१	"	१५ "

इस व्यवस्था में यदि अन्त्यानुप्रास के क्रम में थोड़ा अन्तर हो और पदान्तर-प्रवाही चरणों में एक दो स्थान पर लयनिपात या पूर्णक हो, तो इसे भी वर्णिक मुक्त छन्द की कोटि में ही रखना पड़ेगा । इस छन्द को नूतन परिपाटी से लिखने का अभिप्राय यह है कि अधिकांश रूप में वर्णिक मुक्तछन्द घनाक्षरी छन्द होता है, जिसे प्रायः गद्यात्मक रूप से लिख दिया जाता है, यद्यपि यह दृष्टिकोण सभी वर्णिक मुक्त छन्दों पर पूर्णतः लागू नहीं होता ।

अक्षर मात्रिक मुक्त छन्द

नियम ५—घनाक्षरी छन्द के वर्णिक प्रभाव में वर्णों के साथ मात्रा-मैत्री भी चलती है, पर वह वर्ण के सामने इतनी ईषत् होती है कि आचार्यों ने इसका विशद विवेचन नहीं किया । इस समस्या ने इसलिये और भी गंभीर रूप धारण नहीं किया, क्योंकि सम-विषम-अक्षरमैत्री का निर्देश और गण विवेचन में मित्र, शत्रु, भृत्य, और उदासीन गणों का विचार बहुत से लोगों ने कर दिया था, (यथा केदार भट्ट वृत्तरत्नाकर, भट्ट नारायण की व्याख्या में) इन नियमों के मानने से कभी 'प्रवाह में व्याघात नहीं आता । लेखक ने इसका विवेचन दूसरे अध्याय में किया है ।^२ यह गण-मैत्री अष्टक पर्व के आदि से प्रारंभ होकर अन्त में समाप्त हो जाती है, क्योंकि वहाँ यति आ जाती

१. अनूप शर्मा, शर्वाणी, चरणार्चन, पृ० ५८ ।

२.

SSS	ISS	SS	IIS	SSI	ISI	SII	III
मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

है और नवीन अष्टक लय का आरंभ होता है। गणमैत्री में यदि दोष आता है, तो अष्टक के दो चतुष्क बन जाते हैं या चार अक्षरों के पश्चात् अल्प-यति आ जाती है, तो दोष दूर हो जाता है, क्योंकि वहाँ वर्णिक समता बड़े स्पष्ट रूप में आ जाती है।

वस्तुतः अष्टक के सम योग में (जहाँ विषम वर्णों का योग विषम से नहीं होता) दो चतुष्कों का योग होता है, अतः समप्रवाह में अष्टकों की आवृत्ति न होकर चौकलों की आवृत्ति होती है (विषम योग में अष्टक ही आवृत्ति होती है)। ऐसी अवस्था में यह जान लेना भी घनाक्षरी-प्रवाह में सहायक होगा कि कौन कौन से चौकल लय के अनुकूल होते हैं। चार वर्णों के प्रस्तार के १६ भेद होते हैं, जिनमें अविकल रूप में (I S S S), (I S S I), (I S I I) या खंडित चतुष्क प्रवाह में बाधक होते हैं, शेष सहायक।^१

चरण के प्रारम्भ में (I S S S) और खंडित रूप से (I I I S) का संयोग होने से नीचे के चरण में घनाक्षरी की लय समाप्त हो गयी है, यद्यपि वर्ण १५ ही हैं:—

“हुई एकत्र इस मेरी अंगलतिका में”।^२

यदि इन भेदों का रखना आवश्यक हो, तो दो-दो अक्षरों के खंड में रखना चाहिये, क्योंकि बीच में विराम आन से व्याघातक प्रभाव कम पड़ता है। अक्षर-मात्रिक में घनाक्षरी के इन समस्त चतुष्कों का और चरणान्त में गण का प्रयोग मान्य है।

चतुष्क और गण का विस्तार

नियम ६:— मात्रिक मुक्त छन्द में ये दोनों गण विभिन्न रूपों में प्रयुक्त होते हैं। चतुष्क के त्रिकलात्मक रूप (I S I S या S I S I या I S S I) में ६ मात्राएँ होती हैं, अतः कभी कभी चतुष्क, प्रवाह में मात्रिक रूप धारण कर लेता है और उसका प्रभाव यह पड़ता है कि बीच-बीच में चार वर्णों की आवृत्ति न होकर ६ मात्राओं की आवृत्ति होने लगती है और इस प्रवाह में कभी तीनों गुरु हो जाते हैं, तब अक्षर तो तीन ही रहते हैं पर उच्चारण चतुष्क प्रवाह के समान ध्वनि-विस्तार ग्रहण करता है। वहाँ पर ऐसा लगता है कि चतुष्क के स्थान पर तीन वर्ण आ गये। यह एक अपवाद है, पर, वस्तुतः वह चतुष्क का ही मात्रिक रूप होता है।

१. (S S S S); (S I S S); (I I S S); (S S I S); (I S I S); (S I I S); (I I I S); (S S S I); (S I S I); (I I S I); (S S I I); (S I I I); (I I I I) ।

२. प्रसाद, लहर, प्रलय की छाया, पृ० ६० ।

नियम ७—जहाँ पर चतुष्क के दो त्रिकल लघुमूलक रूप धारण करते हैं, वहाँ चार के स्थान पर पाँच और छः वर्ण भी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में भी इस अक्षर-संख्या को चतुष्क से भिन्न नहीं मानना चाहिये।

यदि चतुष्क के दो युग्मकों में एक त्रिकल मात्रिक रूप धारण करेगा, तो पाँच वर्ण होंगे और यदि दोनों मात्रिक रूप धारण करते हैं, तो ६ वर्ण हो जाते हैं, जो चतुष्क के बराबर ही होते हैं। इन ६ अक्षरों को लिपि-अक्षर कहना चाहिए, उच्चारण अक्षर नहीं। यदि ये उच्चारण अक्षर होते, तो ६ लघुओं के स्थान पर ६ गुरु आ सकते थे, पर ऐसा संभव नहीं।

यहाँ पर उच्चारण और लिपि के बारे में थोड़ा विचार करना आवश्यक है। संस्कृत में जैसा उच्चारण किया जाता था, वैसा ही लिपि-अंकन होता था, पर हिन्दी में संयुक्ताक्षरों तथा लान्तक (जिन शब्दों के अन्त में लघु वर्ण हो) आदि का उच्चारण भिन्न हो गया है, पर लिपि प्राचीन ही है। “चपल्”, “कमल” और “सरल” आदि लघु-परक शब्दों का उच्चारण चपल् (IS), कमल् (IS) और सरल् (IS) होता है। “आह्वान” और “ज्योत्स्ना” आदि संयुक्ताक्षर शब्दों का उच्चारण श्रृंखला कवियों ने हल् में अकार लगाकर किया है, पर उन अक्षरों को लिपिबद्ध संस्कृत की भाँति किया गया है:—

(१) ज्योत्स्ना ? नि/क्षर ठहराती/ ही नहीं यह/ आँख ।^१

७ + ७ + ७ + ३ = २४ मात्राएँ, रूपमाला

(२) बंद कंचुकी केँ सब खोल दिये प्यार से	८, ७ वर्ण
यौवन उभार ने	७
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालि के	८, ६
(परिअंक)	
मूक आह्वान भरे/ लालसी कपोलों के	८ (!), ७
व्याकुल विकास पर	८
भरते हैं शिशिर से/ चुम्बन गगन के । ^२	८, ७

घनाक्षरी की लय से परिचित व्यक्ति को यह समझते देख न लगेगी कि “आह्वान” के “आ” के बाद “ह्” में “अ” का योग करना पड़ता है।

१. प्रसाद, कामायनी, वासना, पृ० ८६।

२. निराला, परिमल, शेफालिका, पृ० १६६।

वैदिक छन्दों में भी इसी प्रकार छन्द के 'निचूत' (न्यून) होन पर हल् अक्षर में 'अ' का योग दिया जाता है, जैसे 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' में गायत्री के अष्टक को पूरा करने के लिये "तत्सवितुर्वरेण्यम्" के रूप में उच्चरित किया जाता है। उद्धरण के समस्त चरण घनाक्षरी के लयाधार पर निर्मित हैं, केवल तृतीय चरण में ८ और ६ वर्णों का योग है। इन ६ वर्णों में प्रारंभ में एक साथ चार गुरु आते हैं, अतः अक्षर मात्रिक रूप से लय पूरी हो जाती है। अक्षर मात्रिक में वर्णिक चतुष्क के स्थान पर कुण्डल छन्द की लय के समान त्रिकलात्मक ६ मात्राओं या सम छकल रूप से ६ मात्राओं का आयोजन भी होता है, जिसका विश्लेषण इसी अध्याय में आगे होगा। यहाँ सोती शे' तक ६ मात्राओं का और 'फालिके' में त्रिकलात्मक लय का प्रवाह है, जिसमें ६ मात्राएँ हैं। इन मात्राओं का योग वर्णन्यूनता को पूरा कर देता है।

आस इच्छा/औ, सभी आ/काङ्क्षा अधि/कार भूली।^१ २८ मात्राएँ।

इस चरण में आकाङ्क्षा के 'ङ्' में 'अ' का योग करके 'आकाङ्क्षा' उच्चारण किया जाता है, तब माधवमालती का सप्तक (SISS) पूरा होता है।

इन दोषों का परिहार इस कारण हो जाता है कि लय में उच्चारण ही प्रधान है, लिपि नहीं, अतः अक्षरमात्रिक मुक्त छन्द में भी लिपि के संकेतों से छन्द के अनुकूल उच्चारण करके लय-ध्वनि के समीप पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिये और विश्लेषण में छन्द को इसी दृष्टि से देखना चाहिये। अक्षर-मात्रिक छन्द पूर्णतया पाठ-छन्द है, अतः उनमें ऐसी स्वतंत्रताएँ अधिक ली जाती हैं।

शुद्ध घनाक्षरी आधार के विषम छन्द में जहाँ गण आ जाता है, वहाँ यति भी आ जाती है, यदि उसके आगे दूसरा गण न हुआ तो यह गण प्रायः चरणान्त में आता है। जब गण मात्रिक रूप धारण कर लेता है, तब उसमें ६, ५, और ४ मात्राएँ यथावसर आ जाती हैं।

नियम ८:—अक्षर-मात्रिक में कहीं-कहीं दो लघु एक गुरु के स्थान पर आते हैं, फिर दूसरा लघु अक्षर पिछले लघु के साथ मिलकर दीर्घ रूप धारण कर लेता है।

आई याद/ बिछुड़न से/ मिलन की वह/ आधी रात।^२

'बिछुड़न' का उच्चारण (IIS) के बराबर और 'मिलन की वह' का उच्चारण (SISI) के बराबर होता है। यहाँ चतुष्क रूप लिपि के ६ अक्षरों में विस्तृत हो गया है। शेष अन्य खंड चतुष्क लय के ही आधार पर निर्मित हैं।

१. उदयशंकर भट्ट, तीन नाटक, राधा।

२. निराला, परिमल, जुही की कली, पृ० १६१।

नियम ६ :—अक्षर और मात्राओं का यह रूप एक साथ ही मिश्रित रहता है, क्योंकि ये दोनों पर्व-रूप समान होते हैं; अतः लय के द्वारा चतुष्क के खंड को विभिन करके पता लगा लेना चाहिये कि अमुक लय पर्व का मात्रिक रूप है, या वर्णिक। मात्रिक पर्व में चार से अधिक अक्षर होंगे।

नियम १० :—कहीं-कहीं पर्व में अक्षर और मात्राएँ दोनों में ही घट-बढ़ होता है, ऐसी अवस्था में पाठ-गति से पर्व को संभाला जाता है। कम मात्राओं में दीर्घ वर्ण को बलाघात दिया जाता है और अधिक मात्राओं में दीर्घ के बाद लघु का हल् उच्चारण किया जाता है, जैसे:—

व्याख्यान बुरा हुआ है।^१

में 'व्याख्यान' में एक मात्रा कम है और एक वर्ण भी कम है, अतः 'व्या' पर आघात अधिक पड़ता है, फलतः 'ख' अधिक स्पष्ट हो जाता है, और—

राजा के गढ़/के मध्य।^२

के पहले पर्व में ६ मात्राएँ ठीक हैं, पर दूसरे पर्व में ५ अक्षर और ७ मात्राएँ हैं, जिसमें नियमतः, वर्णिक दृष्टि से एक वर्ण और मात्रिक दृष्टि से एक मात्रा की वृद्धि होती है, अतः अन्तिम 'य' का उच्चारण हल् सा हो जाता है।

नियम ११:—यह स्पष्ट है कि विभिन्न स्थितियों में अक्षरों का विस्तार ३, ४, ५ तक हो सकता है और मात्राओं का विस्तार ५, ६, ७ तक। गणित की दृष्टि से इतना भेद-मूलक विस्तार पाठकला (Art of Recitation) से ठीक हो जाता है।^३ इसी विस्तार

१. निराला, अग्निमा, स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज, पृ० ८७।

२. निराला अग्निमा, स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज, पृ० ८७।

३. नाटकों में सबसे अधिक रोचकता इसी कवित्त छन्द की बुनियाद पर लिखे गये स्वच्छन्द छन्द द्वारा आ सकती है। इस अपने छन्द को मैं साहित्यिक अनेक गोष्ठियों में पढ़ चुका हूँ, और हिन्दी के प्रसिद्ध अधिकांश सज्जन सुन चुके हैं। ... लोगों से अब तक मुझे उस्ताह ही मिलता रहा है। पर दूसरों की पठन-अक्षमता के आक्षेप भी अक्सर सुनता रहा हूँ। मेरा विचार है कि अनभ्यास के कारण उन्हें पढ़ने में असुविधा होती है। छन्द की गति का कोई दोष नहीं। आजकल हिन्दी के दो चार लेखकों तथा कवियों ने इस छन्द में रचना का प्रयास किया है और उन्हें सफलता भी मिली है। इससे मेरा विचार इस पर और भी दृढ़ हो गया है। इन छन्द में Art of Recitation का आनन्द मिलता है, और इसीलिये इसकी उपयोगिता रंगमंच पर सिद्ध होती है।

निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २२, २३।

को निराला जी ने 'छन्द की भूमि' कहा है।^१ इसे हम 'पर्व की परिधि-भूमि' कह सकते हैं।

मुक्त छन्द की इस धारा को स्वतंत्र जागरण के संदेश के रूप में माना जा सकता है। प्रथम महायुद्ध के बाद जिस प्रकार भारत अपनी राजनीतिक परतंत्रता से मुक्ति पाना चाहता था, उसी प्रकार छन्दों के प्रयोग में भी कवि लोग रूढ़ियों से मुक्त होकर एक आत्म-संयम-जनित नियम की सृष्टि करके अपने मानसिक स्वातन्त्र्य का परिचय देना चाहते थे। समाज में जब स्वतंत्रता की चेतना जगती है, तो सभी भूमियों में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।^२ अब १५ अगस्त, १९४७ के पश्चात् हमारे ऊपर अपने प्राचीन कार्यों के निरीक्षण, परीक्षण और संशोधन का भी उत्तरदायित्व आया है, जिससे

१. मुक्त छन्द तो वह है, जो 'छन्द की भूमि' में रह कर भी मुक्त है। इस पुस्तक के तीसरे खंड में जितनी कविताएँ हैं, सब इस प्रकार की हैं। उनमें नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कविता छन्द सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियमराहित्य उसकी मुक्ति।

निराला, परिमल, भूमिका, पृ० २१

२. मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिये होते हैं - फिर भी स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है।

वैदिक साहित्य में इस प्रकार की स्वच्छन्द सृष्टि को देखकर हम तत्कालीन मनुष्य स्वभाव की मुक्ति का अन्दाजा लगा सकते हैं। परवर्तीकाल में ज्यों ज्यों चित्रप्रियता बढ़ती गयी है, साहित्य में स्वच्छन्दता की जगह नियंत्रण, अनुशासन प्रबल होता गया है, यह जाति त्यों त्यों कमजोर होती गयी है... पराधीन काल के काव्यानुशासनों को देखकर हम जाति की मानसिक स्थिति को भी देख सकते हैं। ... साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति-प्रयास का पता चलता है। धीरे-धीरे चित्रप्रियता छूटने लगती है। मन एक खुली प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है..... यही मुक्ति-प्रयास के चिह्न भी हैं।

निराला, परिमल, भूमिका, पृ० १४, १६, १७, १८।

प्रत्येक क्षेत्र में नये नियम, और नयी व्यवस्था उपस्थित की जा सके। इस युग में विद्रोह की अपेक्षा स्वतंत्र व्यक्ति के निर्भीक आत्म-संयम और सबल आत्मानुशासन का अधिक महत्त्व है, इसी चेतना के फलस्वरूप छन्दशास्त्र के नवीन ग्रन्थ, मुक्ति के लिये किये गये विद्रोह में, निश्चित नियमों का उद्घाटन करके नयी व्यवस्था स्थापित कर रहे हैं।

अक्षर-मात्रिक छन्द

विजन वन्/ वल्लरी पर्/	४, ४ वर्ण
सोती थी सुहाग भरी/ स्नेह स्वप्न/ मग्न/	८ वर्ण + (६ + ३) मात्राएँ
अमल कीमल तनु/तरुणी जुही की कली/	८, ८ वर्ण
/दृग बंद किये/, शिथिल पत्रांक में/	(— २), ६, ७ वर्ण
वासन्ती/ निशा थी/	६ मात्राएँ, ५ मात्राएँ
विरह विधुर/ प्रिया-संग/ छोड़	६, ६, ३ मात्राएँ
किसी/ दूर देश/ में था पवन	३, ६, ६, (७) मात्राएँ
जिसे/ कहते हैं/ मलयानिल/	३, ६, ६ मात्राएँ
आयी याद/बिलुङ्गन से/मिलन की वह/मधुर बात/	४ वर्ण, ६, ६ (७), ६ मात्राएँ
आयी याद/चाँदनी की/ घुली हुई/आधी रात/	४, ४, ४, ४ वर्ण
आयी याद/कान्ता की/कम्पित कम/नीय गात/	४ वर्ण, ६ मा०, ६ मा०, ६ मा०
फिर क्या ? पवन/	६ (७) मात्राएँ
उपवन सर/सरित गहन/गिरि कानन/	६, ६, ६ मात्राएँ
कुंजलता/पुंजों को/पार कर,	६, ६, ५ मात्राएँ
पहुँचा जहाँ/उसने की/किलि	६ (७), ६, ३ मात्राएँ
कली/खिली. साथ/	३, ६ मात्राएँ
सोती थी/	६ मात्राएँ
जाने कहो/कैसे प्रिय-/आगमन वह ?/	४, ४ वर्ण, ७ मात्राएँ
नायक ने/चूमे कपोल,	४, ५ (४) वर्ण
डोल उठी/वल्लरी की/लड़ी जैसे/हिंडोल/	४, ४, ४, ३ वर्ण
इस पर भी/जागी नहीं/	६ मात्राएँ, ४ वर्ण
चूक क्षमा/माँगी नहीं/	४, ४ वर्ण
निद्रालस/वंकिम विशाल नेत्र/मूँदे रही/	४, ४, ४, ४ वर्ण
किंवा मत/वाली थी/यौवन की/मदिरा पिये/	६, ६, ६, ७ (६) मात्राएँ
कौन कहे ?/	६
निर्दय उस/नायक ने/	६, ६
निपट निठुराई की/	५, ६

कि/झोंकों की/झड़ियों से/	१, ६, ६	मात्राएँ
सुन्दर सुकु/मार देह/सारी झक/झोर डाली,	६, ६, ६, ७ (६)	"
मसल दिये/गोरे क/पोल गोल/	६, ५ (६), ६	"
चोंक पड़ी/युवती	६, ४ मात्राएँ, पूर्णक	
च/कित चितवन/निज चारों/ओर फेर,	१, ६, ६, ६	मात्राएँ
हेर/प्यारे को/सेजपास /	३, ६, ६	"
नम्र मुखी/हँसी खिली/	६, ६	"
खेल रंग/प्यारे संग ^१	६, ६ मात्राएँ (७ मात्राएँ)	

प्रस्तुत पृष्ठ की पाद-टिप्पणी से अक्षर-मात्रिक छन्द को समझने में काफी सहायता मिलेगी। अष्टक पर्व और बारह मात्राओं तथा चतुष्क पर्व और ६ मात्राओं का साम्य नवीन नहीं, ऐसे प्रयोग भक्तिकाल में बहुत हुए हैं। ऊपर जहाँ अन्त में पद्यांश आया है, वहाँ पूर्णक (विशेष यति) हो गया है, जैसे 'स्नेह स्वप्न मग्न' में। कभी-कभी ऊपर के चरण की तान मात्राएँ अगले चरण की आदि की तीन मात्राएँ लेकर पर्व ^२ पूरा करती हैं :—

१. निराला, परिमल, जुही को कली, पृ०

२. छः मात्रिक पर्व के निश्चित स्वरूप का एक उदाहरण देखिये और ऊपर के लयाधार से मिलान कीजिये:—

(क) आई थी/ एक बार/	६ + ६ मात्राएँ
हम तन मन/ प्राण वार,/	"
सुन मधु मुर/ली पुकार/	"
छोड़ नैह/ गेह द्वार/	"
तज निज सब/ काम काज/	"
राधेश्याम/ राधेश्याम/	SI S उच्चारण
यमुना की/ कल तरंग/	"
बनी चपल/ भूकुटि-भंग/	"
अंग-ध्रंग/ मैं उमंग/	"
नृत्य-गीत/ रास-रंग/	"
अधरों पर/ मधुर नाम/	"
राधेश्याम/ राधेश्याम ।/	"

पन्त, मानसी, स्वरण-धूलि; पृ० १४६।

ध्यान से देखिये कि ऊपर षष्ठक (६ मात्राओं) और चतुष्क (४ वर्ण) का कितना उभयनिष्ठ योग *।

[शेष पृष्ठ ४३१ पर]

‘विरह विधुर प्रिया संग छोड़’ की अन्तिम तीन मात्राएँ ‘किसी दूर देश में या पवन’ के आदि की तीन मात्राओं से मिलकर पर्व पूरा करती हैं। कई स्थानों पर प्रारंभ की एक मात्रा पर्व में सम्मिलित नहीं होती जैसे—‘जिसे कहते हैं मलयानिल’, ‘कि झोंकी की’, ‘चकित चितवन’ में। संगीतात्मक पाठ में ऐसे प्रयोग मान्य हैं जैसे—‘पंजाब, सिंधु, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंगा’ में दो मात्राओं को छोड़ कर सार की लय आरंभ होती है। कई पंक्तियों में मात्रिक पर्व और अक्षर पर्व का एक साथ योग हुआ है, जैसे—

‘आई याद/ विछुड़न से/ मिलन की वह/ मधुर बात’ में चतुष्क के बाद छकल की तीन आवृत्तियाँ हैं।

कहीं कहीं छकल पर्व की तीन मात्राओं से पंक्ति आरंभ हुई है और फिर छकल की आवृत्ति होती है, जैसे :—

(१) जिसे/कहते हैं/मलयानिल ।।

(२) हेर/प्यारे को/सेज पास ।।

[पृष्ठ ४२० का शेष]

(ख) आज नाग/री किशोर/ भावती वि/चित्र जोर/, तुलना में १२ मात्राओं
 कहा कही/ अंग अंग/ परम माधु/री और अष्टक वर्ण
 करत केलि/ कंठ मेलि/ बाहु-दंड/ गंड-गंड/ लयखंड का
 परस सरस/ लास रास/ मंडली जु/री उभयनिष्ठ योग
 इयाम सुन्द/री बिहार/ बांसुरी मृ/ दंगतार/ देखिये ।
 मधुर घोष/ नूपुरादि/ किकिनी चु/री
 देखत हरि-वंश आलि/-नितनी सु/गंध चाल/
 वारि फेर/ देत प्राण/ देह सों दु/री/

श्री हित-चोरासी, १० पद ।

(ग) गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक षष्ठक के आधार पर पद रचना की है, यथा—
 जानी है/ संकर हनु/मान लखन/ भरत राम/ भगति । १२, ९ मात्राएँ
 कहत सुगम/ करत अगम/, सुनत मोठि/ लगति ॥
 लहत सकुत/ चहत सकल/, जुग जुग जग/मगति ।
 राम प्रेम/ पथ ते कबहुँ/ डोलत नहि/ डगति ॥ (ते लघु)
 रिधि सिधि, विधि/चारि सुगति/जा बिनु गति/अगति ।
 तुलसी तेहि/ सन्मुख बिनु/ विषय डगनि/ ठगति ॥ (ते लघु)

गीतावली, अयोध्याकांड, पद ८२ ।

इस पद में षष्ठक की सम्पूर्ण आवृत्ति के बाद त्रिकल (अर्द्ध षष्ठक) का प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है ।

कई जगहों पर छकल का विस्तार हुआ है, जिसमें लिपि की सात मात्राएँ हो गयी हैं :—

- (१) फिर क्या ? पवन । /
- (२) आगमन वह ? /
- (३) सारी झक/झोर डाली / ।

चतुष्कों में कई स्थानों पर अन्तिम लघु अक्षर का उच्चारण हल् की भाँति होता है, जैसे—

- (१) विजन वन् ।
- (२) बल्लरी पर् । (जूही की कली)

जहाँ पर ओज का आधिक्य होता है, वहाँ पर मात्रिक पर्वों की संख्या कम और चतुष्क एवं अष्टक तथा सप्तक वर्णों की संख्या अधिक होती है। 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता में वीर रस-प्रधान अंश^१ की पंक्तियाँ वर्ण-प्रधान और शृंगार रस-प्रधान अंश^२ मात्रिक पर्वों के आधिक्य से पूर्ण है।

वीर रस :—वीर रस के कारण मात्रिक छकल भी वर्णिक चतुष्क पर्व के तुल्य उच्चरित होकर भाषा को प्रौढ़ और ओजमय बनाने में योग देते हैं :—

(क) जागो फिर/एक बार/	६, ६ मात्राएँ, या ४ वर्ण
समर अमर/कर प्राण/	६ मात्राएँ + ४ वर्ण
गान/ गाये महा सिन्धु से/	२, ७ वर्ण
सिन्धु नद तीर-वासी/	८ ”
सैधव तुरंगों पर/	८ ”
चतुरंग चमू संग/	८ ”
सवा सवा लाख पर/	८ ”
एक को चढ़ाऊँगा,/	७ ”
गोविंद/सिंह निज/	५, ५ मात्राएँ
नाम जब क/हाऊँगा/	६, ६ ”
किसने सुनाया यह/	८ वर्ण
वीर जग/ मोहन अति/	५, ६ मात्राएँ

१. निराला, परिमल, पृ० २०१।

२. निराला, परिमल, पृ० १६८।

दुर्जय संग्राम राग/
फाग का/ खेला रण/
बारहों महीनों में ?/
शेरों की/ मांद में/
आया है/ आज स्यार/
जागो फिर/ एक बार ।^१/

८ वर्ण
५, ६ मात्राएँ
७ वर्ण
६, ५ मात्राएँ
६, ६ ”
६, ६ ”

शृङ्गार रस :—

(ख) जागो फिर/ एक बार !/
प्यारे ज/गाते हुए/ हारे सब/ तारे तुम्हें/
अरुण पंख/ तरुण किरण
खड़ी खोल/ती है द्वार/ ('है' लघु उच्चरित)
जागो फिर/ एक बार/
आँखें अलि/यों सी—
किस/ मधु की गलि/यों में फँसी, /
बंद कर/ पांखे—
पी रही हैं/ मधु मौन/
या सोई/ कमल कोरको में ?/
वन्द हो र/हा गुंजार/
जागो फिर/ एक बार/
अस्ताचल/ ढलें रवि/
शशि छवि वि/ भावरी में/
चित्रित हुई है देख/
यामिनी/-गन्धा जगी/
एक टक च/कोर कोर/ दर्शन प्रिय/
आशाओं/ भरी मौन/ भाषावहु/ भावमयी/
घेर रहा/ चन्द्र को/ चाव से/
शिशिर भार/ व्याकुल कुल/
खुले फूल/ झुके हुए/
आया कलि/यों में मधुर/
मद उर यौ/वन उभार/

६, ६ मात्राएँ
५ मा०, ४, ४, ४ वर्ण
६, ६ मात्राएँ
६, ६ ”
६, ६ ”
६, ४ ”
२, ६ मात्राएँ, ४ वर्ण
४, २ वर्ण
४, ४ ”
६ मात्रा, ७ वर्ण
६, ७ (६) मात्राएँ
६, ६ ”
६, ५ ”
५, ७ मात्राएँ
८ वर्ण
५ मात्रा, ४ वर्ण
६, ६, ६ मात्राएँ
६, ६, ६, ६ ”
६, ५, ५ ”
६, ६ ”
६, ६ ”
६, ७ (६) मात्राएँ
६, ६ ”

जागो फिर/ एक बार
 'पिउ' ख पपीहे प्रिय/ बोल रहे/
 सेज पर/ विरह विदग्धा वधू/
 याद कर/ बीती बातें/ रातें मन/ मिलन की/
 मूँद रहे/ पलकों चारु/
 नयन जल/ ढल गये/
 लघुतर कर/ व्यथा-भार/
 जागो फिर/ एक बार ।^१

(ग) देख यह/ रंग दंग/
 उर्वशी/ अवश हुई/ विवश हुई/
 मिले जहाँ/ नयन चार/
 उमड़ उठी/ अरुण धार/
 जागी काम/ना अपार/
 नीरव निरुपंद प्यार/
 उर्वशी विमुग्ध हुई/
 रूप लावण्य पर/, विक्रम पर/, यश पर/,
 उसकी हृत्/ तन्त्री में/ बजने लगा/ अनुराग
 स्वर्ण स्वप्न/ आने लगे/ पलकों पर/ मिलन के/
 खिल उठी/ नवीन/ अरुणिमा/ कपोलों पर/
 लज्जा, नव/सज्जा कर/थिरक उठी/अंगों में/
 मंद स्मित/नमित नयन/अलस रहे
 कामना तरंगों में/
 यौवन नव/फूट पड़ा/अपने नव/यौवन में/
 जैसे रक्त रश्मियाँ विखरतीं सुमेरु पर/
 लतिका पर/पल्लव पर/तृण तृण पर/कण कण पर/
 एक रात/
 जब कि बह रही थी/मंद मंद/मंदिर वात/
 स्निग्ध हो उठे थे नव/ मधु ऋतु से/कूसुम पात/
 जाती स्व/गंगा इठ/लाती मद/माती सी
 चूमने की/सिंधु अधर/ ।^२

६, ६ मात्राएँ
 ५, ६, ६ मात्राएँ
 ४, ८ वर्ण
 ४, ४, ४, ४ ,,
 ६, ७ (६) मात्राएँ
 ५, ५ ,,
 ६, ६ ,,
 ६, ६ ,,
 ४, ४ वर्ण
 ५, ६, ६ मात्राएँ
 ६, ६ ,,
 ६, ६ ,,
 ६ (७), ६ ,,
 ६, ६ ,,
 ८ वर्ण
 ७ वर्ण, ६ मा., ४ वर्ण
 ६, ६, ७ (६) ५ मात्राएँ
 ६, ७, ६, ५ ,,
 ४, ३, ४, ५ वर्ण
 ६, ६, ६, ६ मात्राएँ
 ६, ६, ६ ,,
 ७ वर्ण
 ६, ६, ६, ६ मात्राएँ
 १६ वर्ण
 ६, ६, ६, ६ मात्राएँ
 ६ ,,
 ८ वर्ण, ६, ६ ,,
 ८ वर्ण, ६, ६ ,,
 ६, ६, ६, ६ ,,
 ४ वर्ण, ६ ,,

१. निराला, परिमल, जागो फिर एक बार, पृ० १६६ ।

२. सोहनलाल द्विवेदी, वासवदत्ता, उर्वशी, पृ० ११ ।

इन दो उदाहरणों से स्पष्ट हुआ कि शृंगार की कोमल और मंद पदचापशीला पदावली में वतुष्कों की अपेक्षा षष्ठक मात्रिक पवों का अधिक प्रयोग होता है। निराला जी के 'परिमल' के तीसरे खंड की कविताएँ और 'वासवदत्ता' की कविताएँ इसी वर्ग की हैं। रसानुकूल यत्र-तत्र कविताओं में वर्णिक और मात्रिक प्राधान्य हो गया है, उसे ध्यान में रखना चाहिये।

'शुद्ध घनाक्षरी आधार वर्ग' और 'अक्षर मात्रिक वर्ग' के अतिरिक्त भी एक वर्ग है, जिसका आधार घनाक्षरी है, पर वह शुद्ध वर्ग में नहीं आता। उस वर्ग को केवल 'घनाक्षरी लयाधार' वर्ग में माना जाना चाहिये। इस वर्ग की यह विशेषता है कि इसके चरण पूर्णतः वर्णिक होते हैं, पर, उनके खंड ठीक ४, ४, ३ या ८ और ७ में विभक्त नहीं होते हैं, अथवा यों कहना चाहिये कि उनमें शुद्ध घनाक्षरी वर्ग के अपवाद बहुत होते हैं, पर उन अपवादों की व्याख्या मात्रिक पवों की सहायता से नहीं हो सकती है। इन वर्णिकों में कहीं कहीं उच्चारण को तोड़-मरोड़ दिया जाता है और कहीं अपूर्ण पवों को पूर्वांश कह कर अपवाद मान लिया जाता है। ये वर्ग प्रथम दो वर्गों से भिन्न है, परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से प्रथम वर्ग के अधिक समीप है, क्योंकि इसका आधार वर्णिक है :—

घेर अंग अंग को/	७ वर्ण.
लहरी तरंग वह/प्रथम तारुण्य की/	८, ७ वर्ण
ज्योतिर्मयी लता सी/हुई में तत्काल/	७, ६ वर्ण (७ वर्ण तत्काल)
देख मैं रुक गयी/	७ "
चल पद हुए अचल,/	६ "
आप ही अपल दृष्टि./	८ "
फैला समष्टि में/स्तब्ध हुआ मन/।	६, ६ "
दिये नहीं प्राण जो/इच्छा से दूपरों को,/	७, ७ "
इच्छा से प्राण वे/दूसरे के हो गये/	६, ७ "
दूर थी,	३, "
खिच कर समीप ज्यों/में हुई/	८, ३ "
अपनी ही दृष्टि में,/	७ "
जो था समीप विश्व,/	७ "
दूर दूरतर दिखा/	८ "
मिली ज्योति/छबि से तुम्हारी/	४, ६ "
ज्योति छबि मेरी/	६ "
नीलिमा ज्यों/शून्य में/	४, ३ "
बँधकर में रह गयी/	६ "

डूब, गये प्राणों में/	७ वर्ण	
पल्लव लता-भार/	७ वर्ण	{ पञ्चमात्रिक आधार की छाया ६ पंक्तियों में है
वन पुष्प तरु-हार/	८ ”	
कूजन मधुर चल/विश्व के दृश्य सब,	८, ७ ”	
सुन्दर गगन के भी/रूप दर्शन सकल	८, ८ ”	
सूर्य हीरक धरा/प्रकृति नीलाम्बरा,	७, ७ ” (२० मात्राएँ-रगणाधार)	
सन्देश बाहक बलाहक विदेश के ।	७, ७ वर्ण	
बँधी हुई तुमसे ही/	८ ”	
देखने लगी मैं फिर/	८ ”	
फिर प्रथम पृथ्वी को,/	८ ”	
भाव बदला हुआ/	७ वर्ण	
पहले की घन-घटा/ वर्षण बनी हुई,/	८, ७ ”	
कैसा निरंजन ये/ अंजन आ लग गया ।/१	७, ८ ”	

इसके अधिकांश चरण घनाक्षरी के अपवाद हैं और जो वर्ण-संख्या यत्र-तत्र घनाक्षरी के लयखंडों के बराबर हैं, उनमें भी कुछ चरण लयप्रवाह से भिन्न हैं। इस वर्ग में गीतात्मकता की अपेक्षा पाठात्मकता अधिक होती है। कभी-कभी इसकी लय वर्णिक होकर भी घनाक्षरी से बहुत दूर चली जाती है जैसे:—

(१) सूर्य हीरक धरा/ प्रकृति नीलाम्बरा ।/ २० मात्राएँ-रगणाधार

(२) पंकिल हु/ई, सलिल/ देह कल/षित हुआ ।/ २० मात्राएँ, रगणाधार

ये दोनों सग्विणी (४ रगण) के मात्रिक रूप की लय-उत्पन्न करते हैं।

जो हो, परन्तु यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्ग पहले दो वर्गों की अपेक्षा अधिक मुक्त है, क्योंकि यह वर्ग लयादर्श की अपेक्षा ‘लयभूमि’ की मान्यता को अधिक स्वीकार करता है और यहाँ भिन्न लय-संस्कार कवि के मन में एक साथ क्रियाशील हुए हैं।

वर्णिक मुक्त छन्दों के प्रयोग की एक छोटी सी सूची देना निर्देश के लिये अत्यन्त अभीष्ट होगा।

निराला:—परिमल (तीसरा खंड), अपरा, अनामिका, अणिमा ।

१. निराला, प्रेयसी, अपरा, पृ० १४३ ।

२. निराला, अपरा, प्रेयसी, पृ० १४३ ।

प्रसादः—लहर (अन्तिम तीन कविताएँ)

सोहनलाल द्विवेदीः—वासवदत्ता ।

सियाराम शरण गुप्तः—बापू, आर्द्रा, दुर्वादल ।

भगवती चरण वर्माः—एक दिन, एकला चलो रे, शम्पा, किरण-बधू, नय पत्ते इत्यादि की कुछ स्फुट कविताएँ तथा पत्रों में प्रकाशित कविताएँ (जैसे प्रतीक, फरवरी ५२, धरती का प्यार) ।

छन्दस्संस्कार-मुक्त कवियों के कुछ ऐसे भी प्रयोग हैं, जिनमें लय है ही नहीं, उन्हें छन्द के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, अतः उनकी व्याख्या का प्रश्न ही नहीं उठता । लेखक ने बार-बार घोषणा की है कि लय ही छन्द का प्राण है । लयहीन कविता का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा ।

क्या तुमने सुना नहीं कि
रूस में रोटी जिन्दा हो उठी है,
कि रूस में रोटी आज़ाद हो गयी है ।
नहीं रही है वह गुलाम अब,
घातु के निर्जीव सिक्के की ।
इंसान के पेट में—
आत्मा के केन्द्र कुण्डलिनी के फनों पर,
नये जीवन की आग सी जाज्वल्य
भूख का प्यारा उत्तर रोटी
आज रूस में जिन्दा हो उठी है !^१

इसमें किसी-किसी चरण के किसी-किसी अंश में लय की झलक मिलती है, जिसे सामान्य गद्य में भी देखा जा सकता है, परन्तु कोई लयाधार या लयभूमि नहीं है, अतः इसे मुक्त छन्द मानना ठीक नहीं है । यह छन्द नहीं है । शिखण्डी के स्त्री-वेश के समान भावुक गद्य ने पद्य का जामा पहनने का हास्यास्पद अभिनय किया है ।

इस प्रकार के गद्य प्रयोगों के अन्य उदाहरण प्रतीक की कुछ कविताओं में देखे जा सकते हैं, यथाः—

(१) प्रतीक, जुलाई ५२, 'सागर के किनारे' ।

(२) प्रतीक, अप्रैल ५२, 'भरा हर्ष वन के मन' ।

१. बीरेन्द्रकुमार जैन, हंस, शान्ति-संस्कृति-ग्रंथ, वर्ष २२ अंक ६, ७, 'कल रूपया मर जायगा' ।

मात्रिक लयाधार

आधुनिक दृष्टि से तो मुक्त छन्दों के तीन भेद किये जाने चाहिये, (१) मात्रावृत्त (Moric) (२) वर्णवृत्त Syllabic या मुक्त वर्ण छन्द और (३) यौगिक (Composite, जिसमें मात्रिक और वर्णिक दोनों का योग हो)। पर, हिन्दी भाषा की मूल प्रकृति के अनुसार मात्रिक और वर्णिक दो ही भेद मुक्त छन्दों में भी मानना समीचीन है। लेखक ने अक्षर मात्रिक या यौगिक को वर्णिक मुक्त छन्द का ही भेद मानकर उसकी व्याख्या वर्णिक वर्ग में

१. वृत्त :—वृत्त शब्द का अर्थ आवृत्ति होना पुनरावर्तन होना या उसी गति से चक्कर लगाना। 'ऋयादिगण' प्रकरण में 'वृड्' धातु का अर्थ वरण, स्वीकार और आवर्तन है। 'वृत्त' प्रत्यय लगने से 'वृत्त' शब्द का अर्थ स्वीकार किया हुआ या घूमा हुआ होता है। संस्कृत में गणात्मक वर्णिक एक ही क्रम से आवृत्त होता है, अतः वृत्त इसी अर्थ में प्रचलित हो गया है। मात्रा पर्व भी यदि एक क्रम से आवृत्त हो और उसे मात्रावृत्त कहा जाय, तो यह पूर्णतया वैज्ञानिक ही होगा। ग्रीक लोगों ने 'मा' धातु से निकला हुआ (माड् (दिवादिगण) = मान, नापना) 'Metron' शब्द का प्रयोग छन्द के लिये किया है। 'मा' से निकला हुआ शब्द 'मात्रा' भी इसी के समकक्ष है। रोमन लोगों ने 'वृड्' धातु से बने 'वर्सम्' का प्रयोग 'वृत्तम्' के लिये किया है। 'Versum' का अर्थ भी "Turn back" या घूमना होता है। 'वर्सम्' से निकला 'वर्स' शब्द Verse (अंगरेजी शब्द = शुद्ध अर्थ चरण है, न कि छन्द) भी इसी अर्थ की सूचना देता है। जेम्स विलियम होम का एक उद्धरण इसके समर्थन में दिया जाता है:—

The Greek, indeed, realizing this distinction from Metron = a measure; which the Romans, thinking rather how the voice in measured speech passed regularly and as it were, 'turn back' to resume the same kind of succession of sound, called such speech verseum = turn back'. P. 4.

कर दी है। मात्रिक मुक्त छन्द मात्रिक पर्वों^१ के आधार पर चलते हैं। पर्व के लिये लेखक ने 'लयाधार' और 'लयादर्श' शब्दों का भी प्रयोग किया है। कम से कम तीन मात्राओं और अधिक से अधिक आठ मात्राओं के पर्व प्रायः प्रयुक्त होते रहे हैं। नौ मात्राओं का पर्व^२ अधिक प्रवाहशील नहीं होता, अतः उसका अत्यन्त स्वल्प प्रयोग हुआ है। इससे अधिक मात्राएँ इन्हीं मौलिक (Fundamental) पर्वों के संयोग से ही बनती हैं।

इन पर्वों को विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नाम दिये गये हैं; बंगाली के छन्दः शास्त्री श्री प्रबोधचन्द्र सेन ने तीन मात्राओं से आठ मात्राओं तक के पर्वों को—त्रिमात्रक, पञ्चमात्रक, षण्मात्रक, सप्तमात्रक, अष्टमात्रक; एवं मराठी छन्दःशास्त्री श्री माधवराव पटवर्द्धन ने पर्व को 'आवर्त्तनी' संज्ञा देकर गुण (तीन), वेद (चार), हर (पाँच) भृङ्ग. (छः), अग्नि (सात), और पद्म (आठ) के आधार पर गुणावर्त्तनी, वेदावर्त्तनी, हरावर्त्तनी, भृङ्गावर्त्तनी, अग्न्यावर्त्तनी और पद्मावर्त्तनी नाम दिये हैं। आचार्य भानु ने छन्दः प्रभाकर^३ में टगण (६ मात्रा), ठगण (५ मात्राएँ), डगण (४ मात्राएँ), ढगण (३ मात्राएँ) नाम दिये हैं, जिसमें ७ और ८ मात्राओं के लिये प्रस्तुत लेखक ने चगण और छगण शब्द जोड़ दिये हैं। कहीं कहीं उन्होंने त्रिकल, चौकल, पंचकल, षट्कल नाम भी दिये हैं और यही नाम दास आदि मध्यकालीन छन्दःशास्त्रियों ने भी दिये हैं।^४ लेखक ने इनके लिये त्रिक,

१. पर्व का अर्थ लयखंड या (foot) होता है। बंगला भाषा में लयखंड के लिये पर्व शब्द ही प्रचलित है। ग्रामादेर उच्चारण कखनउ अविच्छिन्न भावे चलैना। कथोपकथन वा पाठेर समये ग्रामादेर उच्चारणेर धाराय प्रायशइ छेद घटे। एइछेद वा यतिर द्वारा खंडित ध्वनि-प्रवाहेर ये अंश, तारइ नाम पर्व (foot वा measure), छन्देर ध्वनि-प्रवाहे यतिस्थापनेर विभिन्न पद्धति थेके विभिन्न प्रकारेर पर्वेर उत्पत्ति हय' पृ० ५४, छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ)। मराठी के छन्दशास्त्री श्री माधवराव पटवर्द्धन ने 'छन्दोरचना' में पर्व के लिये 'आवर्त्तनी' शब्द का प्रयोग किया है। देखिये, पृ० ३६२, ४०३, ४११, ४४३ 'छन्दोरचना'। लेखक

२. इस पर्व का नाम 'ग्रहक' उचित होगा। लेखक

३. ट, ठ, ड, ढ, गणमत्ता, छै पंच चौ त्रय दुइ कल यत्ता, पृ० ८ ग्रन्थ-रचना काल, १८६४ ई०।

४. आचार्य भिखारीदास, छन्दोर्णव्, पिङ्गल, द्वितीय तरंग के ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१ दोहो में इन गणों के नाम दिये हैं। उन समस्त पर्यायों को यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक है। लेखक

चतुष्क, पञ्चक, षष्ठक, सप्तक, अष्टक और नवक नाम बहुत स्थानों पर प्रयुक्त किये हैं। नीचे इन नामों की क्रमिक सूची दी जाती है, जिसके साथ अँगरेजी पर्वनाम भी दिये गये हैं।

पर्वनाम (लेखक)	प्रबोधचन्द्र	पटवर्द्धन	भानु	अँग्रेजी शब्द
त्रिक पर्व, त्रिकल	त्रिमात्रक पर्व (ले०) ^१	गुणावर्त्तनी (ले०)	ढगण	Trimoric Foot
चतुष्क, चौकल	चतुर्मात्रक पर्व	वेदावर्त्तनी (ले०)	डगण	Tetramoric Foot
पञ्चक, चकल	पञ्चमात्रक पर्व	हरावर्त्तनी	टगण	Pentamoric Foot
षष्ठक, छकल	षण्मात्रक पर्व	भृङ्गावर्त्तनी	टगण	Hexamoric Foot
सप्तक, सप्तकल	सप्तमात्रक पर्व	अग्न्यावर्त्तनी	चगण (ले०)	Heptamoric Foot
अष्टक, अष्टकल	अष्टमात्रक पर्व (ले०)	पद्मावर्त्तनी	छगण ले०	Octamoric Foot

ऊपर विभिन्न मात्रिक लयाधारों के विभिन्न भाषाओं से पर्याय दिये गये हैं, जिससे आगे शब्दों के प्रयोग में सुविधा होगी। पहले कर्ग के त्रिक, चतुष्क, पञ्चक, षष्ठक, सप्तक, अष्टक, शब्दों का निर्माण लेखक ने किया है। इन शब्दों के प्रयोग सुविधा के लिये हुए हैं, मौलिकता-प्रदर्शन के लिये नहीं।

१. प्रस्तुत लेखक ने अन्य आचार्यों के अपूर्ण नामकरणों में उन्हीं की वृत्ति के अनुसार योग कर दिया है। ऐसे स्थानों का निर्देश 'ले०' से कर दिया गया है।

पर्व १	स्वरूप-भेद (प्रस्तार दृष्टि से)
त्रिक	IS ; SI ; III तीन भेद
चतुष्क	SS ; IIS ; ISI ; SII ; III पाँच भेद
पञ्चक	ISS ; SIS ; IIIS ; SSI ; IISI ; SII ; SIII ; IIISI ; SIIII आठ भेद
षष्ठक	SSS ; IISS ; ISIS ; SIIIS ; II IIS ; ISSI ; SISI ; III SI ; SSII ; IISII ; ISIII ; S' III ; III III तेरह भेद
सप्तक	ISSS ; SISS ; IISS ; SSIS ; IISIS ; ISIIS ; SIIIS ; III IIS ; SSSI ; IISSI ; IS SI ; SII SI ; II IIS ; ISSII ; SISI ; IISII ; SSIII ; IISIII ; ISI III ; SI II II ; II II III इक्कीस भेद
अष्टक	SSSS ; IISSS ; ISISS ; SIISS ; II IIS ; ISSIS ; SISIS ; IISIS ; SS IS ; IISIS ; ISIIIS ; S I IIS ; II II IIS ; ISSSI ; SISSI ; IIISI ; SSIS ; IISIS ; ISI SI ; SII SI ; II II IS ; SSSI ; IISII ; ISII ; SIIII ; II IISII ; ISSII ; SISI ; IISIII ; SSIII ; IIS II II ; ISI II II ; SII II II ; II II II चौतीस भेद

१.	१	२	३	४	५	६	७	८	मात्रा संख्या
	१	२	३	४	५	१३	२१	३४	छन्द संख्या

मात्रिक प्रस्तार जानने का नियम यह है कि एक मात्रा का प्रस्तार एक और दो मात्राओं का प्रस्तार दो होता है और तीन मात्राओं का प्रस्तार पहले दो प्रस्तारों के भेद का योग ३ होता है। इसी प्रकार क्रमिक संख्याओं का प्रस्तार भेद पिछली दो संख्याओं के प्रस्तार भेदों का योग होता है, जैसे ८ मात्राओं का प्रस्तार ३४, सात मात्राओं के प्रस्तार-भेद २१ और छः मात्राओं के प्रस्तार-भेद १३ का योग है।

इस नियम का बीज गणित-सूत्र दिया जाता है। जितनी संख्याओं का भेद जानना हो, उतनी ही राशियों तक सूत्र को लिखिये, क्योंकि सूत्र-विस्तार अनन्त है, पुनः उस संख्या को 'अ' के स्थान पर प्रतिरिक्त कीजिये, तब योग द्वारा अभीष्ट प्रस्तार-संख्या आ जायगी।

$$\frac{1}{1} + \frac{(n-1)}{1} + \frac{(n-2)(n-3)}{1.2} + \frac{(n-3)(n-4)(n-5)}{1.2.3} + \frac{(n-4)(n-5)(n-6)(n-7)}{1.2.3.4} + \frac{(n-5)(n-6)(n-7)}{1.2.3.4.5} + \frac{(n-6)(n-7)}{1.2.3.4.5.6} + \dots \text{अनन्त तक।}$$

—लेखक

—लेखक

छन्द की प्रवहमानता में पर्वों का योग

पर्वों की आवृत्ति से छन्द में प्रवाह आता है। सम-मूलक पर्व तो अपने आवर्त्तन से सम लय निश्चित ही कर लेते हैं, पर विषम पर्व का जब दो बार आवर्त्तन होता है, तो विषम-विषम के योग से समलय स्थापित हो जाती है। इन लयखंडों को गद्य के रूप में लिखा जा सकता है, पर पढ़ने में छन्द का स्पष्ट प्रवाह होगा। एक पर्व की आवृत्ति के बीच में दूसरा पर्व नहीं आ सकता, अन्यथा लय में व्याघात आ जायगा और यति-भंग हो जायगा। भाव की सुविधानुसार इन पर्वों की आवृत्ति एक चरण में कितनी ही संख्या तक की जा सकती है, प्रायः यह आवृत्ति वहाँ समाप्त कर दी जाती है, जहाँ भाव का अंश पूर्ण होता है। सामान्यतः १५० मात्राओं से अधिक विस्तार का भाव-वाक्य नहीं रखा जा सकता है। लेखक ने प्रयोग करके देखा है कि पूर्ण उच्च कण्ठ-स्वर से १५० से अधिक मात्राएँ एक साँस में नहीं पढ़ी जा सकती हैं। इसके आगे साधारण आदमी की ताकत जवाब दे देती है। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रवि ठाकुर की एक कविता के अनुवाद में^१ सबसे बड़े भाव-वाक्य में २१३ मात्राओं को रखा है, पर, साथ ही साथ, सात अंतर्गतियों का आयोजन भी करना पड़ा है।

नियम १२ :—यदि चरणान्त में पूरा पर्व समाप्त हो जाता है और दूसरे चरण के प्रारंभ में पूरे पर्व की आवृत्ति भी होती है, तो मुक्त छन्द प्रवहमान रहेगा और यदि चरण के अन्त में पर्व का अंश प्रयुक्त होता है, तो पूर्णक हो जायगा और विशेष यति के कारण कुछ देर रुकना पड़ेगा। मुक्त छन्द के प्रवाह में पर्वश के प्रयोग से जो यति आती है, लेखक ने उसके लिये 'पूर्णक' शब्द का प्रयोग किया है। यदि पूर्णक के अन्तिम पर्वश का पूरक दूसरे चरण के आदि में होता है तो दोनों चरण मिलकर प्रवाह स्थापित कर लेते हैं और मुक्त छन्द प्रवहमान हो जाता है। वर्णनात्मक या ओजोमय कविताएँ प्रवहमान अच्छी होती हैं और गंभीर-चिन्तन-परक तथा माधुर्य-गुण-सम्पन्न कविताओं में पूर्णकों का प्रयोग अच्छा होता है।

त्रिक पर्व या गुणावर्त्तनी वर्ग

त्रिकल का प्रयोग गीतों में हुआ है, जैसा कि प्रस्तुत निबन्ध में बारह मात्राओं के वर्ग में विशेष विवरण के साथ देखा जा सकता है, परन्तु प्रवहमान मुक्त छन्द में इसका प्रयोग

नहीं हुआ है। त्रिकल मन्दगामी और कोमल होता है, अतः शृंगार, करुण, शान्त तथा भक्ति रस में ही इसका प्रयोग होता है।^१

चतुष्क या चतुर्मात्रिक पर्व या वेदावर्त्तनी वर्ग

चतुर्मात्रिक पर्व के आधार पर पादाकुलक (४×४ मात्राएँ) तोटक (११५×४), मोदक (५११×४), और मोतियदाम (१५१×४) छन्द बनते हैं। इन छन्दों में पूरी पूरी 'वेदावर्त्तनी' आवृत्त होती है, पर प्रबहमान मुक्त छन्द में चौकलों के साथ साथ अष्टकों का प्रयोग होता है, जिसमें ४+४ के अतिरिक्त (५+३), (३+३+२), (२+३+३) तथा (६+२) के संयोग भी होते हैं, अतः ऐसा उदाहरण खोजना सामान्यतः कठिन है, जिसमें केवल चतुर्मात्रिक की ही आवृत्ति होती है। प्रबोधचन्द्र सेन ने चतुर्मात्रिक का उदाहरण खोज कर दिया है, पर उसमें भी अष्टकपर्व आ गये हैं।^२ अतः मात्रिक मुक्त छन्द में को चतुष्कपर्व को अष्टक के अन्तर्गत ही माना गया है।

पञ्चक या पञ्चमात्रक पर्व या हरावर्त्तनी वर्ग

ये बड़ा वेगवान और सम्पन्न वर्ग है, पर खेद है कि हिन्दी के मुक्त कवियों ने इसकी शक्ति को नहीं पहचाना, फलतः मात्रिक आधार पर मुक्त छन्द में पञ्चक का प्रयोग

१. (अ) स्तब्ध अन्धकार सघन,	३, ३, ३, ३	मात्राएँ
मन्द मन्द भार पवन,	"	"
ध्यान लग्न नैश गगन,	"	"
मूँदे पल नीलोत्पल ।	६, ६	"

(निराला, गीतिका, गीत ७३)

(ब) कलश, धाये, ऊँचि, दूटे,	३, ३, ३, ३	मात्राएँ
रश्मि-राशि, चूर्ण उठे,	"	"
श्रान्त, वायु, प्रान्त, नीर	"	"
चुम्बि जाय कबु ।	३, ३, २	"

(रवि ठाकुर, अपेक्षा, मानसी)

२. गोपबधूजन विकसित यौवन,	८+४+४	मात्राएँ
पुलकित यमुना पुलकित यौवन,	४+४+४ ४	"
नील नीर पर धीर समीरन,	८+८	"
पलके प्रानमय खोय ।	८+३	"

(भानु सिंह, पद २०)

नहीं हुआ। पञ्चमात्रिक पर्व का गणात्मक प्रयोग तो मुक्त छन्द में हुआ है,^१ पर मात्रिक रूप में नहीं। उर्दू से एक मात्रिक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। यह छन्द रगणाधार (SIS का मात्रिक प्रस्तार) है :—

तुमको मा/लूम है/ आज क्यों/नौजवाँ/ आरिजो/ के कंवल/ मुस्करा/ते नहीं/ हैं। (पू०)
चाँद से/ माथे सू/रज से मुख/डे, (पूर्णक, अंत में पवाँश)
किसलिये/जगमगा/ते नहीं/ हैं ? ”
तुमने बच/पन के फू/लों से खुश/बू चुरा/ली, ”
और जवा/नी के आ/ईने से/ उसकी री/नक चुरा/ली, ”
तुमने हँस/ती हुई/माँग औ/मुस्करा/ती जवा/नों से अस/फ़ा छुड़ा/ली, ”
संदली/हाथों से/ उनका रं/गे हिनी/ले गया/ है ।^२ ”

यहाँ सभी चरणों के अन्त में पवाँश आया है, अतः पूर्णक हो जाता है और प्रत्येक चरण के बाद यति आती है। कवि स्वयं जहाँ तक प्रवाह रखना चाहता है, वहाँ तक चरण का विस्तार कर लेता है। यह कविता रगण के आधार पर है। वक्रांकित खंडों में पाँच मात्राएँ हैं। पढ़ने में छन्द की लय का ध्यान करके गण का दूसरा दीर्घ लघु कर दिया जाता है, गुरु को लघु रूप में पढ़ लेना उर्दू की पाठ शैली है। 'तुमको मा' का उच्चारण 'तुम्क मा', 'माथे से' का उच्चारण 'माथ से' एवं 'तुमने बच' का उच्चारण 'तुम्नबच' के समाव है, आदि।

हिन्दी में भुजंगप्रयातमूलक यगणात्मक (ISS), सारंगात्मक (SSI, तगणात्मक) और स्रग्विणीमूलक (SIS) मात्रिक छन्दों में मुक्त छन्द की विस्तृत संभावना है। आशा है, आगामी कवि इस वर्ग की शक्ति का उपयोग करेंगे। निश्चित छन्दों में हिन्दी, बँगला

१. युद्ध होगा महा, युद्ध होगा महा,
युद्ध होगा महा, राजनीतिज्ञ के वृन्द ने पूर्व ही क्रूर भावी
कही तार आलाप से,
घोर संताप से, किन्तु ज्वालामुखी गर्भ में संस्थिता अग्नि निर्धूम निस्तेज देखी
किसी ने न दुर्लक्षिता ।

अनूपशर्मा, विराट, संप्रदाय, पृ० १ ।

२. सरदार जाफरी, नयी दुनियाँ को सलाम, पृ० ८० ।

और मराठी में इसके अनेक प्रयोग हुए हैं।^१ हिन्दी-उदाहरण के लिये २० मात्राओं का वर्ग देखिये। पीयूषवर्ष जयदेव और महाकवि तुलसीदास ने पंचक के आधार पर दंडकों की रचना की है। इससे मुक्त छन्द के लिये बहुत प्रेरणा मिल सकती है।^२

षष्ठक, षण्मात्रिक पर्व, भृङ्गावर्त्तिनी वर्ग या (Hexamoric Foot)

इस वर्ग का मुक्त छन्द में विरल प्रयोग हुआ है। यह पर्व त्रिक पर्व के ही द्विगुण

१ (अ) बंगला—

अनिल अति/ बहिल मृदु/ भरिल सित/ कोमुदी/
विगत रवि/ ताप यत/ सांभे ।
स्निग्धतम/ परमलभि/ आजि मुख/ अम्बुधि/
उच्छ्वसित/ शान्त मन/ सांभे ॥
(फूलशर, निदाघे, रवीन्द्र)

(ब) मराठी—

शूल रा/जा, तुभा/ रक्त त्यं/चे पिवो,
गृध्रगण/ भक्षणया/ पुण्यगा/त्रां शिवो/,
दुर्गि त्यां/ची शिरें/ अधम कुणि/ लोम्बवो
अन्त सम/ जूं न को/ हा नृपा/ पामरा !
(समग्र कविता, १५८, भास्कर रामचन्द्र ताम्बे)

२ (अ) वदसि यदि/ किञ्चिदपि/ दन्तहचि/ कोमुदी/

हरति दर/तिमिर/सति/ घोरम् ।

स्फुरदधर/सोघवे/ तव वदन/ चन्द्रमा/ रोचयति/ लोचन च/ कोरम्
जयदेव कृत, गीतगोविन्द

(ब) भ्राज विदु/धापगा/ आप पा/वन परम/ मौलिमा/लेव शो/भा विचि/त्रम्
ललित ल/ल्लाट पर/ राज रज/नीशकल/ कलाधर/ नौमिहर/ धनदमि/त्रम् ॥
इन्दु पा/वक भानु/ नयन म/र्दन-मयन/ गुण-अयन/ ज्ञान - वि/ज्ञान-रू/पम् ।
रमण गिरि/जा, भवन/ भूधरा/धिप सदा/अवण कु/ण्डल वदन/ छवि अनू/पम् ॥

गो० तुलसीदास, विनय-पत्रिका, ११, शिवस्तुति ।

५+५+५+५+५+५+५+२=३७ मात्रा (द्वितीय भूलना १०, १०, १०,

विस्तार का एक रूप है। यह वर्ग वेगयुक्त प्रवाह के लिये अधिक उपयुक्त नहीं है। निश्चित छन्दों में इसका प्रयोग गीतों में अधिकांश हुआ है।

१ बंगला—(क) दैन्य जीर्ण/ कक्ष तार/ मलिन शीर्ण/ आशा,
त्रास-रुद्ध/ चित्त तार/ नाहि नाहि/ भाषा,
कोटि मौन/ कंठ पूर्व/ बानी कर/ दान हे !
जाग्रत भगवान हे !

गीत-वितान, द्वि० सं०, प्रथम खंड, पृ० २४६।

मलयालम—(ख) अनियुगनी/, पुलकमनी/
अरुङ्गनी/, अभिवाद्यम् ।/
अभिवाद्यं/, नवयुगतिन् /,
अभिवाद्यं/, अभिवाद्यम् ।/
यक्षिकल, कौमुदी, साप्ताहिक, २६ जनवरी, ५३
श्री गंगाधरन् कृत ।

मराठी—(ग) गगनाचा/ पोकडोत/ भिरभिरवा/रा वाहे/,
आनन्दुनि/ मुक्त मनै/ पक्षीगण/ उडताहे/,
वार्यावरि/ सुटलेले/ दोन सुबक/ से पतंग/
विहरोनी/ भूषविती/ गगनाचे/ अंतरंग ।
काव्य विहारोक्त, स्फूर्तिलहरी, १२१।

हिन्दी—
मैं भी कृत/कृत्य आज/ वीर वत्स/ आ तू,
स्वाधिकार/ भागी बन/ भूरि भूरि/ भा तू ॥
सत्प्रकाश/ और अमृत/ एक साथ/ पा तू ।
बुद्ध-शरण/ धर्म-शरण/, संघ-शरण/ जा तू ।

यशोधरा, पृ०, १४७।

मराठी में षष्ठक आधार पर रचित मुक्त छन्द का उदाहरण भी दिया जाता है:—

मंगलमय/ सुप्रभात/
ऊठ
नीज अजुनि/ नयनांवर/
मल्लुल स्हणनि/ रजनिवदन/
देशी अंग/गास तूहि/
आड़ोखे/ का ? ।

पन्त जी ने विषम छन्दों में इस पर्व का प्रयोग किया है। इसका विकर्षाधार निश्चित नहीं है, अतः इसे मुक्त छन्द के वर्ग में रख लिया गया है। षष्ठक के स्थान पर कहीं-कहीं सप्तक का प्रयोग भी हुआ है, पर वहीं गति के अनुकूल पाठ में अन्तिम गुरु को लघु कर दिया जाता है:—

दिव्याने,	६ (७) मात्राएँ
दिव्य मने	६ ”
भवजीवन/ पूर्ण बनें,	६, ६ ”
आभासर/	६ ”
लोचनवर/	६ ”
स्नेहसुधा/सागर !	६, ४ ”
स्वर्ग का प्रकाश	६, ३ } ६, ६ मात्राएँ
हास/	३ }
करता उर/-तम-विनाश /	६, ६ ”
किरणें वर/साकर !	६, ४ ”
भवभंजने,	६ (७) ”
जन-रंजने !/	६ (७) ”
तुम्हीं भक्ति/	६ ”
ज्ञान-ग्रथित/ सदनुरक्ति/ !	६, ६ ”
चिरपावन/	६ ”
सृजन-चरण/	६ ”
अपित तन/	६ ”
मन जीवन/	६ ”

[पृष्ठ ४४६ का शेष]

हड्ड हड्ड तम/ दूर सरे/
सावरिशी/ मृदुल करे/
विगलित कच/ निचय विपुल/
आणि करिश/
नयनांची/ उघड़ भाँक/
कमलशी/

बागीश्वरी, ४, ३, म. श्री पंडित ।

हृदयासने/
श्री-वसने/^१

६ (७)
(६)

मात्राएँ
,,

नीचे के उदाहरण में भी अंत्यानुप्रास का भी योग हुआ है, यद्यपि उसका क्रम निश्चित नहीं है, क्योंकि इसका कोई विकर्षाधार निश्चित नहीं है। इस उदाहरण में षष्ठक के कई कई आवर्त भिन्न चरणों में स्पष्ट लक्षित हैं।

मन-रंजन/दुख-भंजन/प्रिय की नी/राजना,	६, ६, ६, ५ मात्राएँ (पर्वांश)
चपल चरण/, चंचल गति/और विसुध/नर्तन,	६, ६, ६, ४ (पर्वांश)
केवल/इसी में प्रियतमा की/ साधना,	४, ६, ६, ५ ,,
नयनों में/पावस,	६, ४, ,,
चन्द्रमा ब/ने हैं प्रिय/, दूर हुई/दुःख की आमावस,	६, ६, ६, ६, २ ,,
सस्मित तू/ विस्मित जग/ चकित मौन/ यामा,	६, ६, ६, ४ ,,
ईमन के/ स्वर भर,	६, ४ ,,
झिल्ली झं/कार पर,	६, ५ ,,
दीपावलि/ जागे,	६, ४ } ६, ६
रस/ राग चले/ आगे,	२, ६, ४ } ६, ४ (पर्वांश)
और उसके स/हारे तू/चली चले/श्यामा । ^२ लघु उच्चारण	६, ६, ६, ४ ,,

इसमें सभी चरणों के अन्त में पर्वांश आया है, अतः पूर्णक हो गया है, अर्थात् प्रत्येक चरण के अन्त में विराम (छन्दोयति) लेना पड़ता है। इसी कारण एक चरण (दीपावलि जागे रस राग चले आगे) को छोड़ कर कहीं प्रवहमानता नहीं आयी। चौथे चरण के प्रारंभ में पर्वांश (४ मात्रा) है और षष्ठक शब्द की विषम मात्रा पर टूटता है, अतः छन्दोभंग हो गया है। पाँचवें चरण में 'दुःख की' में 'की' का उच्चारण लघु करना पड़ता है, तब षष्ठक का प्रवाह आता है, अन्तिम चरण में (और इसके स) का उच्चारण (अर इस्क स) होता है, तब षष्ठक की लय प्रवहमान होती है।

नीचे उदाहरण के षष्ठक का आधार गणात्मक है। इसमें सर्वत्र त्रिकल की आवृत्ति होती है। कहीं भी चौकल और द्विकल का योग नहीं होता। यह त्रिकल 15 और 5। दोनों प्रकार का है, पर आवृत्ति में दोनों की लय समान है, अतः दोनों का योग एक साथ संभव हो सका है। त्रिकल रूप में गुरु को दो लघुओं में विस्तृत करने और लय के कारण उर्द्ध की भाँति गुरु को लघु रूप में उच्चारित करने का अधिकार लिया गया है।

१. पंत, स्वर्णभूषि, मातृ-शक्ति ।

२. भगवतीचरण वर्मा, एक दिन, पृ० १५ ।

चल रहा हूँ/ राह पर/	(३+३)+(३+२) मात्राएँ	
सामने नि/गाह पर/	(३+३)+(३+२)	"
रात ने की/ खुदकशी/	"	"
खून बह च/ला उधर/	"	"
जिघर से आ/रही है मौत	(३+३)+(३+३)+१	"
सामना कि/ये हुए/	६+५	"
किन्तु मैं म/नुष्य हूँ/	"	"
और राह/ जिन्दगी/	"	"
जो न कभी/ थिर हुई/	"	"
बदल चुके/ हैं लोक/	६+३+१	"
तंत्र-मंत्र/	६	"
शाप-दान/	६	"
ब्रह्म-देव/	६	"
घृणा-नाश/	६	"
वेश देश/ सब बदल चु/के,	६+६+२	"
किन्तु मैं अ/नादि हूँ/	६+५	"
मन्य हूँ/	६	"
जिन्दगी के/ खेल में/	६+५	"
बड़ा लड़ा/	६	"
झुका नहीं/	६	"
इसीलिये/	६	"
अनादि की/ मनुष्यता/ मरी नहीं/	६+६+६	"
अकाल का/ल विष पिये/	६+६	"
अजेय जिन्/दगी लिये/	६+६	"
समुद्र हूँ/	६	"
म/ट्टी घरों के, श्लेष दंभ/	२+६+६	"
मौत की प्र/चारता/	६+५	"
युगों-युगों/ से सृष्टि की ।	६+६	"
व्यष्टि की स/मष्टि की/	६+५	"
उदात्त प्रे/रणा लिये/	६+६	"
सुखों की क/ल्पना के	६+४	६+६
मू/र्त रूप को/ सँवारता/	२+६+६+६	६+६
		मात्राएँ

चल रहा हूँ/ राह पर/।^१

६+५

मात्राएँ

इस छन्द की गति को समझने के लिये पञ्चचामर^२ (ISX८) और चामर (SI×७+S) की लय को ध्यान में रखना आवश्यक है। लय के अनुसार ऊपर के उद्धरण में कई स्थानों में दीर्घ को लघु रूप में पढ़ना आवश्यक है।

षष्ठक के आधार पर निमित्त जो कविताएँ प्रवहमान न होकर पविक पाठ-प्रधान होती हैं, उनमें अपवाद या सौषम्यवैचित्र्य के रूप में पाँच और ७ मात्राओं के पर्व भी आ जाते हैं, जो पाठ में लय के अनुकूल कर लिये जाते हैं पर, लघु को दीर्घ या दीर्घ को लघु रूप में पढ़ना नहीं पड़ता। नीचे उदाहरण में षष्ठक वृत्त में अक्षर मात्रिक की छाया है, यह ध्यान रखना चाहिए। तुलना के लिए अक्षर-मात्रिक वर्ग की व्याख्या दर्शनीय है। यहाँ प्रथम चरण में ४, ५ मात्राओं के पर्व हैं, अतः दोनों खण्ड अलग-अलग गुञ्जार के साथ पढ़े जायेंगे, शेष षष्ठक प्रवहमान रूप में है।

आओ/ नहायें/	४, ५	मात्राएँ
छत से फु/हार झरे/	५, ६	”
खड़े रहे/ आँख मींच/	६, ६	”
कभी-कभी/ चुपके से/ देखें धूल/ रही धूल/	६, ६, ६, ६	”
थकी पिंड/लियों की/—	६, ५ पर्वश	
थके-थके/ एक दूसरे को उघ/रे देखें/	६, ६, ६, ६	”
और न शर/मायें	६, ४ ” पर्वश	
आओ कुछ/भीगने दो/	४+४	वर्ण
कुछ और/ भीगने दो/	४+४	”

१. शील, धर्म युग, आदिम मनुष्य, २७ अप्रैल १९५२, पृ० ११।

२. जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले,

गलेऽवलम्ब्यलम्बिता भुजंगतुङ्गमालिका ।

डमड्डमड्डमड्डमड्ड निनादवड्डमर्वय,

ञ्चकार चंडतांडवं तनोतु नःशिवः शिवम् । शिवताण्डवलोत्र ।

चामर में पंचचामर का पहला अक्षर कम हो जाता है।

आज चित्त-वृत्त राग की बनी विरागिनी।

खिन्न बीन मानसी बजा रही विहागिनी ॥

वेदना-प्रवाह क्षिप्र और विद्व मौन है!

लोक मध्य अश्रु-सिक्त कारुणीक कौन है? 'चन्द्राकर'।

भीगे के/शों में सु/गन्धि आ/ जाने दो/	६, ५, ५, ६	मात्राएँ
कानों के/पीछे का/ मँल निकल/ जाने दो/	६, ६, ६, ६	"
आह चाह/ते हैं क्या/ कट जायें/ पाप ?	६, ६, ६, ३	"
हिस्त्/	३	"
खड़े रहें/ भीहों में/ ठंड पड़े/	६, ६, ६	"
खड़े रहें/ खड़े रहें/ और निखर/ आयें आ/ओ ^१	६, ६, ६, ६, २	"

अन्त में पर्वाश ज्यों का त्यों पड़ा जाता है, पर बीच में आया हुआ पर्वाश गुञ्जरित यति के साथ पड़ा जाता है, तभी सौषम्यवैचित्र्य की विशेषता आती है ।

चरण के अन्त में १, २, ४, या ५ मात्राओं के पर्वाश आ सकते हैं । बीच में पंचक की कई आवृत्तियाँ भी संभव हैं, जैसे नीचे की २६ त्रिं और सत्ताईसवीं पंक्ति में । पर्व की समाप्ति के बाद एक अल्प यति होती है, जिससे एक मात्रा की घट-बढ़ का प्रभाव अगले पर्व पर नहीं पड़ता है, फलतः छन्द पूर्ववत् गतिमान रहता है ।

कर्म न कर/, कर्म न कर/	६, ६	मात्राएँ
मत थक, मत/ श्रान्त बन/	६, ५	"
मत रे उद्/श्रान्त बन/	६, ५	"
दौड़-धूप/आकुलता/	६, ६	"
तज, थिर मन/ शान्त बन/	६, ५	"
इतने क्यों/ व्यस्त सखे/, शंकित क्यों/त्रस्त सखे/!	६ + ६ + ६ + ६	"
क्यों शत चिं/ताएँ	६ + ४ पर्वाश	"
जीवन के/ रेत में/ बनती बिग/ड़ती हैं	६ + ५ + ६ + ५	"
हार जीत/ यश अपयश/	६ + ६	"
की सी रे/खाएँ	६ + ४ पर्वाश	"
कर्म न कर/, कर्म न कर/	६ + ६	"
शारदी नि/शा में भीत/ नदी के/ किनारे	६ + ७(६) + ५ + ५	"
लहरों का/ खेल देख/ चमके वे/ तारे	६ + ६ + ६ + ४ पर्वाश	"
गृहणी का/स्निग्ध मुख/शिशुओं का/ मुक्त हास/	६ + ५ + ६ + ६	"
भीड़ भरे/ जग मे न/ बढ़ने का/ कर प्रयास/	६ + ५ + ६ + ६	"
कहते वे/ करेंगे/ हम विश्व/ की विजय/	६ + ५ + ५ + ५	"

शक्ति, धन/ मान, ध्रुव/ कीर्ति-संचय	५+५+७	मात्राएँ
झूठ बात/ झूठ बात/	६+६	"
देखता मैं/ साफ तात/	७+६	"
आयें भी/ हाथ तो/कभी न रुक/ पायें	६+५+६+३	पर्वाश "
शक्ति धन/ मान सखे/ वह बह/ जायें	५+६+४+३	पर्वाश "
विश्व विज/गीष्ु वह/	५+५+	"
कहाँ है/सिकन्दर/	५+५	"
कहाँ वह/ बोनापाट/	५+७ (६)	"
कहाँ ज़ार/ सीज़र/	६+४	पर्वाश "
पकड़ के/ रख सका/ कौन भू/गोल ?	५+५+५+३	"
क्षुद्र नर/ विश्व का/ करे क्या/ मोल ?	५+५+५+३	"
कर्म न कर/ कर्म न कर/	६+६	"
मत थक मत/ भ्रान्त बन/	६+५	"
मत रे उद्/भ्रान्त बन/	६+५	"
दौड़-धूप/ आकुलता /	६+६	"
तज, थिर मन/भ्रान्त बन/	६+५	"
विग्रह सं/घर्ष छोड़/	६+६	"
बाद औ वि/वाद	६+३	"
हार ही को/ मान विजय/	७+६	"
जीत विश्व/वाद	६+३	"
जो है रिक्त/ वही भरा/	७+६	"
जो है झुका/ वही उठा/	७+६	"
है अभाव/ग्रस्त धनी/	६+६	"
और धनी/ कष्ट घिरा/	६+६	"
बिना यत्न/ किये ज़ावी/होता सफल/	६+७+७	"
बिना शब्द / देता वह/शिक्षा नि/र्मल/	६+६+६+२	"
चाहता न/ लेना श्रेय/ निज के लिये/	६+७+७	"
फलती इ/सी से कीर्ति/उसकी विमल/	६+७+७	"
करता नहीं/वह आत्म/मंडन/	७+५+४	"
अतः नित अ/खंडित/	६+४	"
करता कभी/ न आत्म/ख्यापन,/	७+५+४	"
अतः श्रेय/मंडित/	६+४	"
करता क/भी न गर्व/अतएव/	५+६+५	"

जन उर में/ शासन	६+४	मात्राएँ
निर्विरोध/कर सकता/ उसका	६+६+४	”
कोई न/ विरोध जन/	५+६	”
कर्म न कर/, कर्म न कर/,	६+६	”
मत थक, मत/ श्रान्त बन/	६+५	”
मत रे उद्/श्रान्त बन/	६+५	”
दौड़-धप/ आकुलता/	६+६	”
तज, थिर मन/ शान्त बन/,	६+५	”
ज्ञानी बन/ ‘टाउ’ बन/ ? ^१	६+५	”

वस्तुतः ७ और ५ मात्राओं के आने से उच्चारण के कारण कोई अन्तर नहीं पड़ता । अन्त में तीन मात्राएँ षष्ठक का आधा अंश ही हैं, २, ४ मात्राओं के अन्त में आने से चरणान्त में पूर्णक हो जाता है ।

जहाँ पर षष्ठक की सममूलक कई आवृत्तियाँ होती हैं, वहाँ कभी-कभी प्रत्यक्षतः गद्य का अभास होता है, पर वर्णिक पाठ करने पर लय का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है ।

पपड़ीले/पत्थर की/पीठ पर/साँप केंचु/ली उतार/ता रहा/, ६, ६, ५, ६, ६, ५ मात्राएँ
लहर जहाँ/ कांस में/, सिवार में/ पेट उच/काती सी/अँडों के/छिलके

उ/तारती सी / ६, ५, ६, ५, ६, ६, ५, ७ ”

हिलती ही/ रही लगा/तार/ ६, ६, ३ ”

नशे का खु/मार वहाँ/ लिए हुए/ हवा में/ ६, ६, ६, ५ ”

चिनक-चिनक/ कर भीठा/ दर्द होता/ ही रहा/ ६, ६, ७, ५ ”

और एक/ मौन/ संध्या के/ सपनों में/ सोता ही/ रहा वहाँ/ कवि सा/ ^२

६ + ३ + ६ + ६ + ६ + ४

सप्तक, सप्तमात्रिक पर्व, अग्न्यावर्तनी वर्ग, Heptamoric Foot

सप्तक पर्व का मुक्त छन्दों में विशेष प्रयोग हुआ है । सप्तक के चार भेद ही प्रचलित हैं । (१) ISSS (पहला भेद) (२) SSSS (दूसरा भेद) (३) SSIS (चौथा भेद) और (४) SSSI (नवाँ भेद) । इन पर्वों के प्रयोग में गुरु के

१. लाउत्से का दर्शन, देवराज, प्रतीक, जनवरी, १९५२ ई० ।

२. पाँच मुक्तक, प्रतीक, जुलाई, १९५२ ।

स्थान पर दो लघु रखने का स्वातंत्र्य लिया जाता है, जैसा कि मात्रिक छन्द का नियम है। सप्तक पर्व का प्रयोग लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। 'मधुमालती' (SSISX२), माधव-मालती (SSISX२), पीयूषवर्ष (SSISX३+SSIS), गीतिका (SSISX३+SSIS) और हरिगीतिका (SSISX४) छन्द सभी सप्तक के आधार पर चलते हैं। 'प्राकृतपैङ्गलम्' में हरिगीतिका को हरिगीता नाम देकर लक्षण दिया गया है और गीतिका छन्द को 'चर्चरी' वृत्त के रूप में वर्णित किया है। हरिगीतिका छन्द का वर्णिक वृत्तरूप भी गीता के नाम से दिया गया है।^१ गोविन्ददास और जयदेव ने रूपमाला छन्द का प्रयोग किया है।^२ रवीन्द्र नाथ ने इस पर्व का प्रयोग अपने गीतों में

२. गगनगगइ टु/किअ तरणि लु/किअ तुरअ तुर/अहि जुज्जिअ/रह रहहि सो/लिअ धरणि पो/लिअ अप्प पर/णहि बुज्जिअ/बल मिलिअ आ/इ अपत्ति जा/इउ कं प गिरि/वर सोहरा/उच्छलइ सा/अर दीण का/अर बइर व/ट्टिय दीहरा/

प्राकृतपैङ्गलम्, १। १६३।

चर्चरी: (SSIS|SSIS|SSIS|SSIS):(र, स, ज, ज, भ, र:)

काहु नाअर/गेह मंडणि/एहु सुंदरि/पेक्खि आ।

प्राकृतपैङ्गलम्, परि० २, १८५।

गीता:—(SSIS|SSIS|SSIS|SSIS)

जहँ फुल्ल के/अइ चार चं/पउ चूअ मं/जरि बंजुला/।

प्राकृतपैङ्गलम् २, १९७।

२. नन्द-नन्दन / चन्द-चंदन / गंध-निन्दित / अंग। ७+७+७+३ मात्राएँ
जलद सुन्दर / कम्बुकन्धर / निन्दि सिधुर/ भंग।
कंज लोचन/ कलुष मोचन/ श्रवन रोचन/ भाष।
अमल कोमल/चरण किसलय/निलय गोविंद/दास।

गोविन्द दास, पदावली, गौर-लीला।

किं करिष्यति/ किं बलिष्यति/ सा चिरं विर/हेण

७+७+७+३ मात्राएँ

किं धनेन ज/नेन किं मम/ किं सुखेन गृ/हेण।

चिन्तयामि त/दाननं कुटिलभ्रुकोप म/रेण।

शोण पद्ममि/वोपरिभ्रम/ता कुलभ्रम/रेण।

गीत-गोविन्द, प्रोषितपतिका

किया है ।^१ मराठी कवि आत्माराम राव देशपांडे ने सप्तक के ही आधार पर मराठी मुक्त छन्द में १६२४ में नवीन प्रयोग किया था ।^२

हिन्दी के मुक्त छन्द में सप्तक का प्रयोग सन् १६२० से पुराना है । यहाँ पर १६२० में रची हुई निराला जी की “तोड़ती पत्थर” शीर्षक कविता दी जाती है, जिसमें (SSIS), (SISS) और (ISSS) सप्तक का संयुक्त प्रयोग हुआ है । इस कविता के अधिकांश चरण पूर्णक हैं ।

(क)	वह तोड़ती/ पत्थर	(पू०)	७, ४ मात्राएँ
	देखा उसे/ मैंने इला/हाबाद के/ पथ पर/	(पू०)	७, ७, ७, ४ ,,
	वह तोड़ती/पत्थर/		७, ४, ,,
	नहीं छ.या/दार	(पू०)	७, ३ ,,
	पेड़ वह जिस/के तले बै/ठी हुई स्वी/कार,	(पू०)	७, ७, ७, ३ ,,
	श्याम तन, भर, बँधा यौवन,/		७, ७ ,,
	नत नयन, प्रिय/कर्मरत्न मन/		७, ७ ,,
	गुरु हथौड़ा/हाथ		७, ३, ७, ७ ,,

१. मातृ-मन्दिर/ पुण्य अंगन/ कर महोज्ज्वल/ आज हे, ७+७+७+५ मात्राएँ

सकल योगी/ सकल त्यागी/
 एक दुःसह/ दुःख-भागी/,
 एक दुर्जय/ शक्ति सम्पद/ मुक्त बन्ध स/माज हे ।
 एक ज्ञानी/, एक कर्मी/ नाश भारत/ लाज हे ।
 एक मंगल/ एक गौरव/
 एक अक्षय/ पुण्य सौरभ/
 एक तेजः/ सूर्य उज्ज्वल/ कीर्ति अम्बर/ माँझ हे ।

रवीन्द्र, गीत-वितान, द्वि० सं०, प्रथम खंड, पृ० २५७ ।

२. अंतरी चे/ दिव्य/शक्ति/ सर्वगामी/ तेजवित् सं/धार तूभा/,
 तू जगा ची/ कोटि भास्कर/वत् प्रभा=(पूर्णक) (पर्वांश)
 हृदयमानस/ज्या प्रकाशें/दिव्य जीवित/भूवरी स्वर/गांतले
 उप/भोगती (पूर्णक) (पर्वांश)
 एक तव ते/जस्वि कण ही/लागतां क्षणि/पेट तो आ/त्मा जशी की/
 दिव्य जोती/जीव गाला/दाख बीते/मार्ग पुढचा/ ।

देशपांडे, छन्दोरचना, पृ० ४१ से उद्धृत ।

करती/ बार बार प्रहार	४, ७, ३	७, ३	मात्राएँ
सामने तरु/मालिका, अ/ट्टालिका प्राकार		७, ७, ७, ३	,,
चढ़ रही थी/ धूप, (पू०)		७, ३	,,
गर्मियों के/ दिन,	७+२	७	,,
दिवा का/ तमतमाता/रूप	५+७+३	७, ७, ३	,,
उठी झुलसा/ती हुई लू,/		७, ७	,,
रुई ज्यों जल/ती हुई भू:/		७, ७	,,
गर्द चिनगी/ आ गयी (पूर्णक)		७, ५	,,
प्रायः हुई/ दुपहर	,,	७, ४	,,
वह तोड़ती/पत्थर	,,	७, ४	,,
देखता दे/खा, मुझे तो/ एक बार/	,,	७, ७, ६	,,
उस भवन की/ ओर देखा/छिन्न तार,/	,,	७, ७, ६	,,
देखकर को/ई नहीं,	,,	७, ५	मात्राएँ
देखा मुझे/ उस दृष्टि से/		७, ७	,,
जो मार खा/ रोई नहीं,/		७, ७	,,
सजा सहज सि/तार (पू०)		७, ३	,,
सुनी मैंने/वह नहीं जो/थी सुनी झं/कार । ,,		७, ७, ७, ३	,,
एक छन के/ बाद वह काँ/पी सुघर, ,,		७, ७, ५	,,
दुलक माथे/ से गिरे सी/कर, ,,		७, ७, २	,,
लीन होते/ कर्म में ज्यों/ कहा- ,,		७, ७, ३	,,
“मैं तोड़ती/पत्थर” ? ,,		७, ४	,,

यह कविता प्रवहमान न होकर पूर्णक है। इसमें साथ साथ अन्त्यानुप्रास की भी योजना की गयी है, जैसे ‘पत्थर’; ‘पथ पर’; ‘छायादार’; ‘स्वीकार’; ‘यौवन’; ‘मन’; ‘प्रहार’; ‘प्रकार’; ‘धूप’; ‘रूप’; ‘हुई लू’; ‘हुई भू’; ‘दुपहर’; ‘पत्थर’; ‘वार’; ‘तार’; ‘सितार’; ‘झंकार’; ‘सुघर’; ‘सीकर’।

अज्ञेय जी की प्रयोगवादी कविता का उदाहरण दिया जा रहा है:—

(ख)	पत्थरों के/ उन कँगूरों/ पर	(पू०)	७, ७, २	मात्राएँ
	अजानी गं/ध की अब छा/ गयी होगी/		७, ७, ७	,,
	उपेक्षित रा/त		७, १	,,

विछलती/ ? ठगर सी सुन/-सान सरिता/ पर	५, ७, ७, २+	मात्राएँ
ठिठक कर/ सहम कर/	(पूर्णक) ५, ५ =	७+५ "
थम गयी हो/गी बात	" ७, ५ भिन्न पर्वति	" "
अनमनी सी/ धुंध में चुप/चाप	" ७, ७, ३	" "
हताशा में/ टग से वे/दना से किल/न्न पू०	७, ७, ७, १, प्रथम सप्तक	" "
पुरनम टपक/ते तारे	७+६,	" "
हारकर मुर/झा गये हों/गे	७, ७, ७, २+	" "
अँधेरे/ में विचारे/	+५, ७	" "
विरस रेती/ली विचारी/	७, ७	" "
नदी के दो/नों किनारे ^१ ।	७, ७	" "

चौथी, पाँचवी, आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं पंक्ति का प्रवाह एक में मिल जाता है, क्योंकि पिछले चरण का प शिं षेष् मात्राओं को अगले चरण के आदि से पूरा कर लेता है। “विछलती” के बाद दो मात्राओं की कमी है, पर उसके आगे त्रिकल आ गया है, अतः वहाँ से नवीन पर्व प्रारम्भ हो जाता है और “विछलती” पर यति हो जाती है। आठवें चरण में प्रथम सप्तक आ गया है, जो प्रवाह में द्वितीय सप्तक के समान होजाता है।

एक खंडित प्रवाह का उदाहरण दिया जाता है:—

(ग) आज दीपक/ बाल ले,	(पूर्णक)	७, ५	मात्राएँ
आ रहे प्री/तम थके से/		७, ७	" "
प्रेम में ते/रे छके से/		७, ७	" "
बावली !		५+	" "
निज/ हाथ में जय/माल ले/ !		२, ७, ५ ७+५,	" "
शून्य मन्दिर/		७	" "
हँस रहव है/ किस प्रतीक्षा / में, समझ !		७, ७, ५] ७, ७	" "
अब शोक और वि/षाद क्या ?		२, ७, ५] ७, ७,	" "
हँस/ले तनिक		२, ५+] ७,	" "
श्रृं/गार कर ले/		२, ७] ५, ७	" "
मोतियों से/ माँग भर ले/ !		७, ७ ७, ७	" "
सेज जो सू/नी पड़ी थी,/		७, ७ ७, ७	" "
नई कलियों / से सजा ले/ तु उसे ।		७, ७, ५ ७, ७, ५ (पूर्णक)	" "
देख, तेरे बाग में		७, ५+] ७	" "

बे/ला चमेली/ जुही और गु/लाब	२, ७, ७, ३ } ७, ७, ७, ३ (पू०)
खिल रहे उ/ल्लास में	७, ५+
प्रिय/ आज तेरे/ आ रहे, यह/ जानकर !	२, ७, ७, ५ (पू०)
जा उन्हें तू/ तोड़ ला,	७, ५ मात्राएँ,
अध्रुओं से/ जिन्हें सींचा/ था इसी दिन/ के लिये ।	७, ७, ७, ५ (पू०)
हो रही है/ शाम,	७, ३
घिर रही है/ कालिमा	७, ५ } ७,
तू/ पथ बिछा भू/लें न वे !	२, ७, ५ } ७, ७
को/मल पदों में/ गड़ न जाये/	२, ७, ५ } ७, ७, ७
कहीं कंकड़/ और काँटे/	७, ७
इसलिये तू/ ऐ सुहागिन/	७, ७
आज दीपक/ बाल ले । ^१	७, ५ मात्राएँ पूर्णक

जहाँ पर प्रत्येक चरण के अंत का पचाश का पूरक अगले चरण के आदि में आता है, वहाँ प्रवाह अखंड चलता है:—

(घ) प्यार का प्रति/विम्ब	७, ३ } ७, मात्राएँ
सागर/ के घरातल/ पर उतर कर/	४, ७, ७ } ७, ७, ७
ढाँक लेता/ है सभी फाँ/लाव को	७, ७, ५ } ७, ७, ५ पूर्णक
सब दुरावों/ में छिपी वो/का घड़ी को/	७, ७, ७
चाँद जब चुप/चाप	७, ३+ } ७,
खिड़की/ खोल	४, ३+ } ७,
अंबर/के किनारे/रोज सायं/काल आता/	४, ७, ७, } ७, ७, ७, ७
वायु सेवन/ के बहाने/	७, ७, } ७, ७
प्यार का रो/गी विचारा/ चाँद । ^२	७, ७, ३ } ७, ७, ३

पदान्तर-प्रवाही का एक उदाहरण और लीजिए:—

(ङ) एक नियमित/ ताल झमझम/ की निरंतर/ व्याप्त मंथर/	७, ७, ७, ७ मात्राएँ
और वर्षा/ की झड़ी का/ एक आयत/ भाग	७, ७, ७, ३+
हल्की/ रोशनी से/ हो प्रकाशित/	+४, ७, ७
ज्योति चिलमन/ बन लहराता !/	७, ७

१. भगवतीचरण वर्मा, 'एक दिन', पृ० ६ ।

२. प्रतीक, एक पत्र का अंश, फरवरी, ५२ ।

श्रवण की सब/ चेतनाएँ/ प्रखर बन कर/ पी रहीं हैं/ ७, ७ ७, ७ मात्राएँ
नाचती उन्मादिनी सी/ व्यस्त वर्षा/ की कुमारी/ !^१ ७, ७, ७, ७ ,,

चतुर्थ सप्तक (SSIS) से हरिगीतिका छन्द बनता है। इस सप्तक के विशुद्ध आधार पर निर्मित कविता का उदाहरण दिया जाता है।

(च) वह कौन रो/ता है वहाँ/ ७, ७ मात्राएँ
इतिहास के/ अध्याय पर/, ७, ७ ,,
जिसमें लिखा/ है नौजवा/नों के लहू/ का मोल है/ ७, ७, ७, ७ ,,
प्रत्यय किसी/ बूढ़े कुटिल/ नीतिज्ञ के/ व्यवहार का/, ७, ७, ७, ७ ,,
जिसका हृदय/ उतना मलिन/ जितना कि शी/र्ष वलक्ष है/, ,,
जो आपका तो/ लड़ता नहीं/ ७, ७ ,,
कटवा किशो/रों को मगर/, ७, ७ ,,
आश्वस्त हो/कर सोचता / ७, ७ ,,
शोणित बहा/ लेकिन गई/ बच लाज सा/रे देश की/।^२ ७, ७, ७, ७ ,,

निश्चित छन्द की दृष्टि से पहला, दूसरा, छठा, सातवाँ, आठवाँ चरण मधुमालती (SSIS × २) का और तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और नवाँ चरण हरिगीतिका (SSIS × ४) छन्द का अंश है।

यदि पूरे-पूरे पर्व की निरंतर आवृत्ति होती रहे, तो समस्त कविता गद्य की भाँति लिखी जा सकती है, पर उसमें छन्द की लय के कारण प्रवाह अखंड होगा। ऐसी कविताओं में भावानुसार या विचारानुसार गद्य की भाँति अल्प विराम, अर्द्ध विराम, और अवतरण चिह्न आदि लगा दिये जाते हैं। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता का अनुवाद (SSIS) चतुर्थ सप्तक के आधार पर इसी ढंग से किया है।

मैं दान कर/ना चाहता/ हूँ बद्ध मा/नव वाक्य को/ यह दीप्ति गति/
मय छन्द ऐ/सा हो कि यह/ उन्मुक्त हो/कर संचरण/ कर सके जग/
की क्षुद्र-सी/मा-राशि, ले/वे खींच इस/ गुरु भार पृ/थ्वी को गगन/
की ओर ले/ फिर खींच बंधन-जड़ित भा/षा को मनो/हर भाव रस/
की ओर जो/हूँ देवपीठस्थली मानव/जाति की । पूर्णक

१. प्रतीक, मैं अकेला, जनवरी, ५१।

२. दिनकर, कुरुक्षेत्र, प्रथम सर्ग, पृ० १।

जिस भाँति बाँधा है महाम/बुधि ने धरि/त्री को समा/वृतकर
निरं/तर गान, आ/वृत नृत्य से/, यह छन्द मे/री भी उसी/ही भाँति
आ/लिंगन-जड़ित/कर युग युगां/तर को सहज/गंभीर कल/रव
से प्रचा/रित करे मा/नव का अपा/र अतुल महिम्/नस्तोत्र,
दे/महनीय म/यादा भुवन/में इस क्षणस/थायी निरस/नरजन्म को।^१

सप्तक के आधार पर रांगेय राघव ने 'हुंकार', (अजेय खंडहर), शेफाली वर्मा ने 'व्याह की शाम' (धर्मयुग, २५ नवम्बर, ५१) और हरिव्यास ने 'पिकासो का कबूतर' (हंस, शान्ति-अंक) नामक कविताओं की रचना की है। आजकल मुक्त छन्दों में सप्तक का प्रयोग विस्तार से अभिनंदित हो रहा है। सप्तक के विभिन्न भेदों के प्रयोग कविता को अधिक समृद्ध करेंगे।

अष्टक, अष्टमात्रिक पर्व, पद्मावर्त्तनी वर्ग, (Octomortc Foot)

अष्टक पर्व हिन्दी का सर्वाधिक प्रचलित और सर्वाधिक प्राचीन पर्व है। इस पर्व का प्रयोग प्राकृत और अपभ्रंशकाल से लेकर अब तक हो रहा है। हिन्दी में बहु-प्रचलित चौपाई, पादाकुलक, योग, रोला, विष्णुपद, सार, ताटक, समान सवाई, मत्त सवाई आदि सप्तप्रवाही छंद और पदरि, शृंगार, शक्ति-पूजा एवं शृंगार-सवाई जैसे, ऊर्मिल-प्रवाही छन्द (क्योंकि इनके अष्टक के अन्त में ८ होता है, अतः सभी छन्दों के अन्त में ८ होता है, बीच के अष्टक इसी गलात्मक निपात के कारण ऊर्मिल गति से चलते हैं) अष्टक के ही आधार पर चलते हैं। जिस प्रकार आदिकाल और मध्यकाल में प्रबन्ध काव्यों की रचना अष्टक पर्व में हुई थी, उसी प्रकार आधुनिक मुक्त छन्दों में भी इस पर्व का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। सप्तक पर्व शिक्षित और सूक्ष्म संगीत-प्रिय जनता के अधिक निकट है, पर, यह पर्व उत्तर भारत की रंगों में समा गया है। यह पर्व तो अशिक्षित व्यक्ति के संस्कारों से भी अपरिचित नहीं है। लेखक ने अवध के जन-साहित्य में, विरहों और नारी-गीतों का अध्ययन करके इसी पर्व का प्राधान्य पाया, जिसका विश्लेषण कभी आगे अवसर आने पर किया जायगा। माधवराव पटवर्द्धन ने ५२ पद्मावर्त्तनी छन्दों की सूची दी है। आचार्य भानु जी ने ८२ ऐसे छन्दों का विवरण दिया है, जिनमें अष्टक का प्रयोग होता है। (लेखक ने स्वयं छन्दों की गणना की है, इन लोगों ने कोई अलग ऐसी सूची नहीं दी है)। इससे इस पर्व की सर्व-प्रियता का पता चलता है। मराठी में ३८ मात्राओं का तुन्दिल और

मदनतलवार, ३६ मात्राओं का कपिवीर; ३२ मात्राओं का वनहरिणी^१ और विजया, ३० मात्राओं का स्वर्गगा, और भवानी, २६ मात्राओं का कमललोचना, २८ मात्राओं का साकी या लवंगलता, २७ मात्राओं सूर्यकान्त और महाराष्ट्र, २६ मात्राओं का चन्द्रकान्त, २४ मात्राओं का अनल-ज्वाला^२, २२ मात्राओं का शुभगंगा, २० मात्राओं का वंशमणि और संतति, १६ मात्राओं का पादाकुलक और वर्णफुल्ल, १४ मात्राओं का बालानन्द और उद्धव, १२ मात्राओं का शुद्ध सती, और १० मात्राओं का सिंह-नाद इसी वर्ग के आधार पर चलते हैं। इनमें अधिकांश छन्द हिन्दी के ही समान हैं जैसा कि सममात्रिक छन्दों की तुलना में दिखाया गया है। बँगला में ब्रज-शैली के मात्रिक छन्दों में विशेषतः इसी वर्ग का प्रयोग होता है जैसे कि राष्ट्रगीत में। रवीन्द्र की कविता से एक उद्धरण नीचे दिया गया है।^३ जयदेव के 'चंदन चर्चित नील कलेवर 'ललित-लवंग...' 'निन्दित-चंदन' 'समुदित-मदन' 'निभूत निकुंज' 'रण निज नित' 'रति सुख सारे' 'राधावदन' 'किसलयशयन' 'कुर्यदुन्दन' 'संचरदधर' से प्रारम्भ होने वाले गीत-गोविन्द के गीत अष्टक पर्व में रचे गये हैं।

मुक्त छन्दों में इसका प्रयोग प्रत्येक चरण के आदि और मध्य में तो पूर्णतः होता है पर अन्त में पर्व का अंश आ सकता है। उसमें चौपाई की भाँति समलय प्रवाह चलता है अर्थात् सम मात्राओं के बाद सममात्राओं का शब्द और विषम मात्राओं के बाद विषम मात्राओं का शब्द आता है।

नियम १२, १३, १४:—इस प्रकार के समप्रवाह में निर्मित सभी चरण एक साथ आ सकते हैं, क्योंकि सबकी लय मूलतः एक ही अष्टक पर्व की होती है। इन भिन्न चरणों के संयोग के लिये लेखक ने 'सम संगतम्' सूत्र बनाया है। प्रवाह के बीच में कहीं भी यदि विषम मात्राओं पर नहीं होगी, विषम मात्राएँ केवल अन्त में आ सकती हैं (जैसे सरसी और वीर छन्द में) उसके लिये लेखक ने विषमञ्चापि पूर्णकं सूत्र बनाया है। यदि किसी चरण के अन्त में विषम मात्राएँ आती हैं, और उसके आगे दूसरे चरण में विषम मात्राओं

१. नयन मनोहर/ वनहरिणी चे/ नाक सरइ जशि/ कइ जा फया ची/

शारदा, देवल-कृत।

२. यज्ञवेदिते/ अनल-ज्वाला/ की लपेट ली/ वामन-नारायण देशपांडे।

३. महन तिमिर निशि/ झिल्लि मुखर दिशि/

शून्य कदम तरु/ मूले।

भूमि-शयन पर/ आकुल कुन्तल/

कांदय आपन/ भूले। भानु सिंह, ४।

का प्रारम्भ होता है, तो दोनों चरणों की विषम मात्राएँ मिलकर समप्रवाह की सृष्टि करती हैं और छन्द पदान्तर प्रवाही हो जाता है। इसके लिये लेखक ने 'पदान्तरप्रवाहे व सममैत्रीनियोजनम्'^{१.२.३.} सूत्र बनाया है।

समं मुक्ततयाधारे, विषमोऽपि पूर्णके ।
पदान्तरप्रवाहे वै, सममैत्री-नियोजनम् ॥

(क)	भर देते हो/	८	मात्राएँ
	बार बार प्रिय/ कण्ठ की किर/णों से	८, ८, ४	पर्वाश
	क्षुब्ध हृदय को/ पुलकित कर दे/ते हो	८, ८, ४	"
	मेरे अन्तर/ में आते हो/ देव निरन्तर/	८, ८, ८	"
	कर जाते हो/ व्यथाभार लघु/	८, ८,	"
	बार बार कर/-कंज बढ़ा कर/	८, ८,	"
	अंधकार में/ मेरा रोदन/	८, ८,	"
	सिक्त घरा के/ अंचल को	८, ६,	"
	कर/ता है क्षण क्षण/	२, ८,	"
	कुसुम कपोलों/पर वे लौल शि/शिर कण	८, ८, ४	पर्वाश
	तुम किरणों से/अश्रु पोंछ ले/ते हो	८, ८, ४	"
	नव प्रभात जी/वन में भर दे/ते हो । ^४	८, ८, ४	मात्राएँ

पदान्तर-प्रवाही अष्टक का उदाहरण और लीजिए : —

वह जो भी हो/	८	मात्राएँ
फटे कलेजे/के से टुकड़े/	८+८	"
इनके मुखड़े/	८	"
भूले दुखड़े/	८	"
मन के भीतर/आग लगाते/	८+८	"
हरियाली उग/ला करती थीं/जिसकी डालें/	८+८+८	"
सुलग रही अब/उसके उर में/भीषण ज्वालें/	८+८+८	"
लटकी हों मु/ण्डों की मालें/!	८+८	"

१. समा: सङ्गता ।
२. विषमोऽपि पूर्णके ।
३. सममैत्रीयोगेन पदान्तरप्रवाहः ।
४. निराला, परिमल, 'भर देते हो' पृ० ११७ ।

जाने कहाँ अ/चेतन की किस/गहराई में/	८+८+८	मात्राएँ
बन्द किये थी/वह निज मुट्ठी/की चिनगारी/	"	"
जो अब बाहर/फूट क्रान्ति की/ पुरवाई में/	"	"
भरती लपटों/की किलकारी/ ।	८+८	"
बुझी नहीं वह/हरित जलधि में/डूब	८+८+३+	"
ज्वाल बन/निखरी दाँव न/हारी !	५+८+४	"
दादण शोभा/की चंडी बन/हँसती नारी/१	८+८+८	"
(ख) उन्मद यौवन/से उभर	८, ५+	मात्राएँ
घटा/सी नव असाढ़/सी सुन्दर	(पूर्णक) ३, ८, ६,	"
अति श्याम वरण/	८	"
इठलाती आ/ती ग्राम युवति/	८, ८	"
वह गजगति	(पूर्णक) पर्वशि = ६	"
सर्प डगर पर/	८	"
सरकाती पट/	८	"
खिसकाती लट/	८	"
शरमाती झट/	८	"
वह नमित दृष्टि/से देख उरो/जों के घट/ (पूर्णक)	८, ८, ६	"
हँसती खल-खल,/	८	"
अबला चंचल,/	८	"
ज्यों फूट पड़े/हों स्रोत सरल/	८, ८	"
भर फेनोज्ज्वल/दशनों के अब/रों के लट (पूर्णक)	८, ८, ६ पर्वशि	"
उल्लसित	५,	"
चकित/	३=८	"
वह लेती मूँ/द पलक-पट/ १	(पूर्णक) ८, ६	"

प्रथम चरण का ५ मात्रा का पर्वशि दूसरे चरण के आदि त्रिक से पूरा होकर पदान्तर-प्रवाही बनता है । पञ्चम चरण पर्वशि है । पन्द्रहवीं और सोलहवीं पंक्ति के योग से एक पर्व बनता है । इसमें कवि ने अन्त्यानुप्रास का भी विधान किया है । स्पष्ट है कि इस कविता में ८, १४, १६, २२, २४ मात्राओं के चरण एक साथ आये हैं, पर, एक लयाधार के कारण सब में परस्पर मंत्री है ।

अष्टक के आधार पर बिना पूर्णक के आद्योपान्त पदान्तर-प्रवाही उदाहरण दिया जाता है :—

१. पन्त, अतिमा, विद्रोह के फूल, पृ० ९९ ।

२. पन्त, ग्राम्या, ग्राम-युवति, पृ० ११७ ।

(ग) तुम-बीतराग/	८	मात्राएँ
दे दिया अपर/को महायज्ञ/का महाभाग/	८, ८, ८	"
सपनों को सत/य बनाने में/सोते जगते/सब समय व्यस्त/	८, ८, ८, ८	"
रह गये स्वयं/हित रिक्त-हस्त/	८, ८	"
हे नील कंठ/ !	८	"
पी गये गरल/	८	"
हिंसा ईर्ष्या/छल दंभ अंध/दानवता के/	८, ८, ८, ८	"
दूधिया हँसी/	८	"
धो रही पास/मानवता के/ ।	८, ८	"
जन जन कण कण/की व्यथा-कथा/से	८, ८, २ ८, ८, ८, ८	"
पल पल म/महित जर्जर/	६, ८	"
छलनी हो गया हाय अन्तर/	१६	"
ऊस दावा/लू लपटों से/, झुलसे प्राणी/जब जब तरसे/	८, ८, ८, ८	"
हे करुणाधन/, तुम कहाँ नहीं/कब-कब बरसे ?	८, ८, ८, ८	"
कलियाँ चटखीं/किसलय मरमर/	८, ८	"
ऊसर उर्बर/	८	"
नव जीवन ला/ली शान्ति सुधा/मय हरियाली/	८/ ८, ८	"
बरसो भू पर/	८	"
युग की विभीषिका से तापित/ ।	८, ८	"
मन की जड़ता/से संतापित/	८, ८	"
सूखा रूखा/जन अंतर पट/,	८, ८	"
तुम अक्षय वट/	८	"
शीतल छाया/में सँजो रहे/	८, ८	"
मानव महिमा/का शुक्ति मुक्ति/मय मंगल घट । ^१	८, ८, ८	"

१६ मात्राओं के चरण 'छलनी हो गया हाय अन्तर' में विषम-योग दो अष्टकों से संयुक्त है, अतः १६ मात्राओं का (२ अष्टक) का लयखंड प्रयुक्त हुआ है । समस्त चरण अष्टकल आधार पर निर्मित हैं और इस खण्ड में १, २, ३, ४ आवृत्तियों तक के चरण प्रयुक्त हुए हैं ।

“छन्दक और छन्द” शीर्षक में यह लिखा जा चुका है कि छन्दक और छन्द में पार-स्परिक लय-निपात-साम्य होता है । यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है, जिसमें अन्त्यानुप्रास-

यीजना के साथ अनेक छन्दक और छन्द चरणों का योग हुआ है । कहीं-कहीं निश्चित छन्द के चरणों की अन्तयुक्त आवृत्ति हुई है । नीचे के उद्धरण में अधिकांश चरण पूर्णक हैं, केवल ६ चरण पदान्तर-प्रवाही हैं । जहाँ पर कि व्याकरण की दृष्टि से अर्थ पूरा नहीं होता है, वहीं पर दो चरणों का लय-योग रखा गया है ।

(घ) खड़े सामने/पीपल तरु के/पास	(पदान्तर)	८, ८, ३+	मात्राएँ
झोपड़ी/ एक उदास,	(पू०)	५, ७	”
रहते हैं जिस/के कोटर में/ चिड़ियों से	”	८, ८, ६	”
दो/ प्रानी	(पू०)	२, ४	”
एक, दूसरे/ के हित अपने/ हित का है बलि/दानी ।	(पू०)	८, ८, ८, ४	”
भूखे अपने/ युवाकाल में/, बूढ़ी हुई ज/वानी,	(पू०)	८, ८, ८, ४	”
लगती भूख, किन्तु उस पर पी/ति वे सूखा/ पानी ।	”	१६, ८, ४	”
(ऊपर की पंक्ति में विषम मात्रिक पर्व योग है)			

सिकली गर है/ एक,	(पू०)	छन्दक	८, ३	”
लगती जिसकी/ छठे छमाहे/ है रोजी की/टेक (छन्दयोग)	८, ८, ८, ३	”		”
वह तड़के मुँह/ अँधियारे,	(पू०)	छन्दक	८, ६	”
ले अपने औ/जार बैठता/ जाकर सड़क कि/नारे(पू०)छन्दयोग	८, ८, ८, ४	”		”
उसी सड़क से/ खाँचे-वाले,	(पदान्तर)	छन्दक	८, ८	”
रसगुल्ले कक/ड़ी वाले औ/, गजक रेवड़ी/ वाले—	”	८, ८, ८, ४	”	”
निकला करते/ हैं प्रातः से/ सन्ध्या तक ही/नित्य (पूर्णक)	८, ८, ८, ३	”		”
दौड़ मचलते/ सभी पड़ोसी/ लड़के,	पू०	८, ८, ४	”	”
लेते खाते/ जो जिसके मन/ भाता	”	८, ८, ४	”	”
किन्तु अकिचन/ सिकलीगर की/	(पदान्तर)	८, ८	”	”
उससे निर्धन/ गृहणी	पू०	८, ४	”	”
कान मूँद कर/ शिशु का ध्यान ब/टा कर पू०	८, ८, ४	”		”
शोर मचा कर/	८	”		”
है वारण कर/ती इन सब खों/चे वालों का/	(पदान्तर) ।	८, ८, ८	”	”
आक्रामक ध्वनि/यों का !	(पू०)	८, ४	”	”
देख दृश्य यह/ सिकलीगर—	पदान्तर	८, ६	मात्राएँ	”
झो/पड़ी-द्वार पर/	”	२, ८	”	”
विलख-विलख कर/ प्रेम, खीझ, कर/णा से भर ^१ ..	८, ८, ४	”		”

नीचे के उदाहरण में अष्टक वर्ग के आदित्य, चौपाई, योग, रोला और सार छन्द के चरण एक साथ आए हैं ।

(ङ)	वह कैसी थी/,	८	मात्राएं
	अब न बता पाऊँ/गा	(पू०)	८, ४ पर्वशि ,,
	वह जैसी थी/ ।	८	”
	प्रथम प्रणय की/ आँखों ने था/उसको देखा/	८, ८, ८	”
	यौवन उदय, ७ +	(८)	”
	प्रण/य की थी वह/ प्रथम, सुनहली/रेखा/ (पू०) १, ८, ८, ४ (८, ८, ४),		”
	ऊषा का अब/गुण्ठन पहने/	८, ८	”
	क्या जाने खग/ पिक से कहने/	८, ८	”
	मौम मुकुल सी/ मृदु अंगों में/	८, ८	”
	मधुऋतु बंदी/ कर लाई थी/	८, ८	”
	स्वप्नों का सौंदर्य कल्पना/ का माधुर्य ८, ८, ७ + (८, ८)		”
	हृदय में भर आ/ई थी (पू०)+१, ८, ४ (८, ८, ४)		”
	वह कैसी थी/	८	”
	वह न कथा गा/ऊँगा (पू०)	८, ४	”
	वह जैसी थी/	८	”
	‘क्या है प्रणय? एक दिन बोली/उसका वास क/हाँ है ?(पू०) १६, ८, ४,,		”
	इस समाज में/ देह-मोह का/,	८, ८,	”
	देह,द्रोह का/ त्रास जहाँ है/ ?	८, ८	”
	देह नहीं है/ परिधि प्रणय की/	८, ८	”
	प्रणय दिव्य है/ मुक्ति हृदय की/,	८, ८	”
	यह अनहोनी/ शक्ति, ८, ३ +	८, ८	”
	देह बे/दी हो प्राणों/ के परिचय की/ १२ + ४, ८, ८]	८, ८	”

विषम संयोगों से किस प्रकार छन्द पदान्तर-प्रवाही होता है, इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है, जिसमें कुछ ऐसे भी चरण हैं, जिनमें कुछ मात्राओं के बाद लय प्रारम्भ होती है, क्योंकि अष्टक पर्व का यह नियम है कि चरण के प्रारम्भ में दो पंचक वहीं रखे जा सकते । देखिये, यहाँ प्रथम चरण में दो मात्राओं के बाद अष्टक लय चलती है ।

(च) सौ/दर्य-सरोवर/ की वह एक त/रंग,	पू०	२, ८, ८, ३ मा०	पर्वति
किन्तु नहीं, चं/चल प्रवाह उ/दाम वंग पदान्तर	८, ८, ६+		"
सं/कुचित एक ल/ज्जित गति है वह/,	+२, ८, ८		"
प्रिय समीर के/ संग	पू०	८, ३	"
नव वसंत की/ किसलय कोमल/ लता,	"	८, ८, ३	"
किसी विटप के/ आश्रय में मुकु/लिता,—	८, ८, ३+		"
किन्तु अवनता/	"	+५, ३	"
उसके खिले कु/सुम संभार—	(पदान्तर)	८, ७+	"
वि/टप के गर्वो/न्नत वक्षःस्थल/पर सुकुमार,	पू० + १, ८, ८, ७,		"
मोतियों की मानो है लड़ी/	१६,		"
उ/से सर्वस्व दिया है,	पू० १, १२		"
इस जीवन के/लिए हृदय से/जिसे लपेट लि/या है। ^१	पू० ८, ८, ८, ४		"

प्रथम चरण में दो मात्राओं के बाद समात्मक अष्टक आरम्भ होता है। दूसरे चरण की अंतिम ६ मात्राएँ तीसरे चरण की दो मात्राओं से मिल कर अष्टक का निर्माण करती हैं। छठे चरण की अंतिम तीन मात्राओं और सातवें चरण की आरम्भिक पाँच मात्राओं के योग से पर्व बनता है। आठवें चरण की अंतिम ७ मात्राओं और नवें चरण की ६ मात्राओं से २ पर्व बनते हैं। दसवें चरण की अंतिम सात मात्राएँ अगले चरण की एक मात्रा के योग से पर्व बनाती हैं। इन विषम संयोगों से चरण पदान्तर-प्रवाही बनते जाते हैं।

(छ) दिवसावसान/ का समय	(पदान्तर)	८, ५+	८, ८
मेघ/मय आसमान/ से उतर रही/ है	३, ८, ८, २		८, ८, २ पू०
वह संध्या सु/न्दरी परी सी/	८, ८		मात्राएँ
धीरे, धीरे,/ धीरे,	८, ४ पूर्णक		"
तिमिरांचल में/चंचलता का/कहीं नहीं आ/भास,	८, ८, ८, ३		" पूर्णक
मधुर मधुर हैं/ दोनों उसके/ अधर,—	८, ८, ३,		"
किन्तु गं/भीर नहीं है/ उसमें हास-वि/लास	५, ८, ८, ३		पूर्णक
हँसता है तो/ केवल तारा/ एक	पू०	८, ८, ३	"
गुँथा हुआ उन/धुँधराले का/ले काले बा/लों से,	८, ८, ८, ४		"
हृदय-राज्य की/रानी का वह/करता है अभि/षेक। ^२	८, ८, ८, ३,		"

१. निराला, परिमल, बहू, पृ० १६०।

२. निराला, परिमल, संध्या-सुन्दरी, पृ० १३५।

ऊर्मिल सम-प्रवाहः—इस अष्टक में अन्त गुरुलघु-मूलक होता है । (अष्टक पर्व के चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें, बीसवें और इक्कीसवें भेद में) शृङ्गार, पद्मरि या तत्संबन्धी मात्राएँ इसके अन्तर्गत आती हैं । नीचे के उदाहरण में सम और ऊर्मिल दोनों प्रकार के अष्टकों का योग है ।

(ज) कहीं आज वह/ जीर्ण पुरातन/ वह सुवर्ण का/ काल ?	१६, ११ मात्राएँ
भूतियों का दिगंत छबिजाल/	१६ ”
ज्योति चुंबित जगती का भाल/	१६ ”
राशि-राशि विक/सित वसुधा का/ वह यौवन वि/स्तार ?	१६, ११ सरसी
स्वर्ग की सुषमा जब साभार/	१६ ”
धरा पर करती थी अभिसार/	१६ ”
प्रसूनो के शाश्वत शृङ्गार/	१६ ”
स्वर्णभृङ्गों के गन्ध-विहार/	१६ ”
गूंज उठते थे बारंबार/	१६ ”
सृष्टि के प्रथमोद्गार/	१२ मात्राएँ
नग्न सुन्दरता थी सुकुमार/	१६ ”
ऋद्धि औ' सिद्धि अपार/	१२ ”
अये, विश्व के/ स्वर्ण स्वप्न सं/सृति के प्रथम प्र/भात न, न, न, ३	”
कहीं वह सत्य वेद-विख्यात/	१६ ”
दुरित दुख दैन्य न थे जब ज्ञात/	१६ ”
अपरिचित जरा-मरण-भ्रूपात/	१६ ”

इसमें तीन प्रकार के छन्दों के चरण प्रयुक्त हुए हैं (१) सरसी (२) शृङ्गार (३) शृङ्गारहार । सरसी की अंतिम ११ मात्राओं का निपात शृंगार की अन्तिम ११ मात्राओं के निपात के तुल्य है, अतः दोनों चरण एक साथ आ सके हैं, जैसे 'वह सुवर्ण का काल' के पूर्व ५ मात्राएँ 'सुखद अति' जोड़ने से 'सुखद अति वह सुवर्ण का काल' शृङ्गार का चरण हो जायगा । शृंगार छन्द के अन्तिम जगण को हटा देने से १२ मात्राओं का शृङ्गारहार चरण रह जाता है, जिसके अंत में गुरुलघु होने के कारण शृंगार से साम्य स्थापित हो जाता है । 'सृष्टि के प्रथमोद्गार' में 'प्रसार' (जगण) जोड़ने से शृङ्गार छन्द बन जाता है—सृष्टि के प्रथमोद्गार (प्रसार) ।

सम अष्टक की निरन्तर आवृत्ति को गद्य-रूप में लिखा जाने पर भी पाठ की लय में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि मूलतः लयाधार में छन्द-संगीत विद्यमान रहता है। इसमें भाव समाप्त होने पर चरण की समाप्ति होती है, अतः इसे 'भावच्छन्द' (Verse Paragraph) कहते हैं।

आर्य-राष्ट्र के/ महायज्ञ की/ अन्तिम वेदी/ पूर्ण हो चुकी/, स्वतंत्रता
का/ साम-गान गुं/जार कर रहा/ और दिशाएँ/ तृप्त हो रहीं/।
दृष्ट नेत्र से/ महिमामय मुख/-मंडल में आ/भा भर करके/
जय जय हर हुं/कार उठाते/ निकल पड़ो तुम/ पूर्णाहुति के/
दिव्य मन्त्र से/।^१

इसी प्रकार अष्टक के दूसरे भेदों से भी 'भावच्छन्द' बन सकते हैं^२।

नवक पर्व, नवमात्रिक पर्व या ग्रहावर्तनी वर्ग

नवक पर्व का मूलाधार इन्द्रवज्रा वृत्त में खोजा जा सकता है, और वही प्रेरणा अधिक सिद्धिदायिनी भी होगी, ऐसा लेखक का विश्वास है। यगण और चतुष्क के योग से बना नवक पर्व (1SS+SS) भी बड़ा प्रवाहपूर्ण है, पर इसकी अपेक्षा इन्द्रवज्रा के नवक में अधिक शक्ति है। नवक पर्व का प्रयोग मुक्त छन्दों में नहीं किया गया है। तगण और चतुष्क (SSISS) के योग से निर्मित नवक पर्व का उदाहरण लेखक स्वयं अपनी कविता से प्रस्तुत कर रहा है। नवीन दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए कुछ पङ्क्तियाँ ही पर्याप्त होंगी:—

चिर बन्धनों से/ उन्मुक्त मरा/	६+६ मात्राएँ
यह देश जिसकी/ गुरुभूमिका में/ स्वातन्त्र्य की पुण्य सुधापणा है।	
	६+६+६+६ मात्राएँ
जो देह या बुद्धि तथा वचन की/ मन की न केवल/ उन्मुक्ति में ही/	
	६+६+६+६ मात्राएँ
विश्वास करता/	६ मात्राएँ

१. चन्द्राकर, प्रयाण-गीत।

२. अष्टक पर्व-प्रयोग की एक छोटी सूची अगले पृष्ठ के फुटनोट में दी गयी है।

अध्यात्मिकी मु/क्ति बनी सदा ही/उद्देश्य, ६+६+५+ } ८+६ मात्राएँ
जो मु/क्ति चिरं परं है/।^१ ४+६ } ६+६ ,,

प्रथम नवक (ISSSS) लय-प्रवाह के अधिक अनुकूल नहीं है। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है, परन्तु उसे पढ़ने में ऐसा लगता है कि इन्द्रवज्रा नवक उसके बीच से बोलने लगा है। हिन्दी में इस नवक का प्रयोग मुझे अभीष्ट नहीं प्रतीत होता, केवल कौतूहलवश प्रयोग की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

प्रणय का बन्धन/कठिन है, पर रे/शमी है,	६+६+५+ मात्राएँ
पहले/ पहल तो सहसा/	+४+६ ,,
हृदय में व्याकुल/ प्रतिध्वनि जगती/	६+६ ,,
किसी की मधु/र्चना में होकर/समर्पित मैं ध/न्य होऊँ।	६+६+६+५,, (पूर्णक)
मगर जब मिलता/उसे, तो पर फड़/फड़ाता मधु-पा/त्र तजके,	६+६+६+५+ ,,
सूने/ गगन में उड़ना/ उसे क्यों भाता/ ?	+४+६+६ ,,
अगर वह उससे/ किसी विधि पाता/ कहीं अपनी मु/क्ति तो क्यों आकर/	६+६+६+६ ,,
उसी में फिर डू/बता है ?	६+५ (पूर्णक)
कभी क्या चञ्चल/ हृदय की उलझन/	६+६ ,,
तथा अनुरागी/ विरागी इन वृ/त्ति व्यापारों के/	६+६+६ ,,
रहस्यों को कवि/ करेगा प्रस्तुत/ जगत में ? ^२	६+६+५ ,, (पूर्णक)

१. जन-भारती, सं० २०११, संख्या २, मासिक मुक्तछन्द, पृ० ११, चन्द्राकर, 'स्वतन्त्रता'।

२. चन्द्राकर, 'बन्धन और मुक्ति'।

अष्टक पर्व-प्रयोग की सूची

ग्राम्या (पृ० १७, १८), उत्तरा (पृ० १७, १३४), वीणा (पृ० ८१, ८२), पल्लव (पृ० १, ३, १०, १५, ११०), स्वर्ण-धूलि (पृ० २७, ७३), स्वर्णकिरण (पृ० १६, ९८), परिमल (पृ० ११७, ११८, १२४, १२६, १३१ तथा समस्त द्वितीय खण्ड), अपरां (पृ० २, ६१, १२९), एकला चलो रे (पृ० २५, २६, २७, २८), किरण-बधू (पृ० ३४, ७), एशिया जागा (समस्त) चित्रण (पृ० ५३, ८२, ६५), छन्दमयी (पृ० ४), हंस, शान्ति-अङ्क (पृ० ११६, ११७), प्रतीक (जुलाई १९५२, पृ० ६१; अक्तूबर १९५१, पृ० २५, ८८; जून ५१, पृ० ४२ ८२; दिसम्बर ५१, पृ० १५; जनवरी ५१, पृ० ८७; फरवरी ५२, पृ० ७३), नया साहित्य (अक्तूबर ५१, पृ० ८)।

उपसंहरण

वर्तमान कविता का युग, पूर्ण मुक्ति का युग है, परन्तु जैसे किसी भी प्रकार की मुक्ति आत्मसंयम और नियम से रहित नहीं होती, वैसे ही कविता में छन्द के रुढ़िगत विधान से मुक्ति मिलने पर भी मुक्त छन्द के कवियों ने स्वतः-निर्मित छन्दों को स्वीकार किया है। प्रत्येक भाषा की कुछ मौलिक लयें होती हैं, जिनको त्यागकर किसी भी प्रकार का नवीन छन्द नहीं बनाया जा सकता। यदि कविता को सर्वप्रिय और सर्वग्राह्य बनाना है, तो कविता-रचना में किसी निश्चित लयाधार को आत्म-संयम के साथ स्वीकार करना ही होगा, क्योंकि लय छन्द की पहली शर्त है। मूल लय की जितनी ही आवृत्तियाँ होंगी, उतनी ही, छन्द में प्रवाहात्मकता और प्रभावात्मकता आयेगी, लय की आवृत्ति में त्वरा के साथ पूर्णक विराम देने से धारा में व्याघात उपस्थित होता है और प्रभाव विच्छन्न हो जाता है। लयावृत्ति की सफलता पर लेखक को बड़ा विश्वास है और उसकी यह भी धारणा है कि निकट भविष्य में इस निष्कर्ष की प्रेरणा से 'मुक्त छन्दों' में महाकाव्यों की रचना होगी, अभी तक तो अतुकान्त छन्दों में ही महाकाव्यों की रचना हुई है।

हिन्दी साहित्य के लिये यह गर्व और गौरव का विषय है कि आधुनिक छन्द-प्रयोग अत्यंत सम्पन्न एवं विविधतापूर्ण हैं। इस युग में ही आकार हिन्दी ने अपने को सचमुच वैदिक साहित्य की उत्तराधिकारिणी सिद्ध किया है, क्योंकि वैदिक युग के बाद और वर्तमान युग के पहले कभी भी छन्दों का इतना विविध प्रयोग नहीं हुआ। यह विविधता उसकी उर्वरा शक्ति की परिचायिका है। मात्रिक छन्दों के विवेचन के साथ यह कहा जा चुका है कि आधुनिक हिन्दी युग के समान किसी भी पूर्व युग में या प्रान्तीय भाषाओं में इतना विविध और विस्तृत मात्रिक प्रयोग नहीं हुआ है। इस सम्पन्नता का आदर्श और संदेश, इतर प्रान्तीय और विदेशीय भाषाओं के साहित्य-संस्थाओं तक पहुँचना चाहिये।

मुक्त छन्दों का यह विकास यहीं पर समाप्त नहीं होगा। इस स्थिति तक तो उसके मार्ग की बाधाएँ समाप्त हुई हैं, अभी उसे जनता के प्राणों और कंठ में समाकर सर्वप्रियता प्राप्त करनी है। विषय-चयन और भाषा-प्रयोग की दृष्टि से, मुक्त छन्द जन-जीवन में घुलने-मिलने का प्रयत्न कर रहा है। किमर्श में, विचार-प्रधानता और भाषा-स्वच्छता एवं प्रवाहात्मकता के कारण मुक्त छन्द भाषणकला के समकक्ष आ चुका है। यह शैली जन-जागरण और नूतन संदेश के प्रचार में भी सहायक होगी, परन्तु इन प्रयोगों में कुछ छन्दस्संस्कार-हीन व्यक्तियों

ने लय को छोड़कर गद्य का धरातल अपना लिया है, ऐसे प्रयोग कभी भी सफल नहीं हो सकते। यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है कि मुक्त छन्दों की कोई ऐसी विकास-स्थिति संभव नहीं हो सकती, जब उसकी लयात्मक छान्दसिकता के स्थान पर गद्य आ जाय।

साथ ही, केवल मुक्त छन्दों से ही कविता का काम नहीं चल सकता है। हृदय के लघु और कोमल स्पन्दनों की अभिव्यक्ति के लिये गीतों की सदैव आवश्यकता रहेगी और गीत सदैव ही सतुकान्त छोटे छन्दों में होंगे, यही कारण है कि आज तक किसी कवि ने अतुकान्त छन्द या मुक्त छन्दों में गीतों की रचना नहीं की। रस-संचार के लिये, गीत में एक विशिष्ट भाव बार-बार आना चाहिए और यह तभी संभव है जबकि छन्दक के साथ कुछ चरणों के बाद अन्त्यानुप्रास का विधान किया जाय। संगीत-प्रधानता के कारण तुक की आवृत्ति तो आवश्यक है ही, एक गति से भाव को प्रेषित करने के लिए और एक ही गति से गायक द्वारा श्रोता को ध्वनि की दोला पर झुलाने के लिये समान चरणों का होना भी आवश्यक है। इसी प्रकार कोमल बाल-प्रकृति कभी भी मुक्त छन्दों में नहीं रम सकती, क्योंकि बच्चों को विचारों से अधिक भाव चाहिये और भाव से अधिक संगीत, अतः बाल-साहित्य में सदैव निश्चित छन्दों का सतुकान्त प्रयोग होगा। फिर भी, आधुनिक विचारों और समस्याओं का प्राबल्य तो पाठप्रधान मुक्त छन्द को ही प्रेरणा देगा और प्रौढ़ पुरुष, कविताओं एवं प्रबंधों में मुक्त छन्दों का ही अधिक अभिनन्दन करेंगे, ऐसा लेखक का विश्वास है। विचारों का प्राधान्य और उदात्त एवं ओजोमय भावों को जगानेवाली संघर्ष की हिलोरें, मुक्त छन्दों के लिये बहुत विशाल पटभूमि तैयार कर रही हैं, फलतः, यह विश्वास सकारण और तर्क-पुष्ट है कि मुक्त छन्दों का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

परिशिष्ट

छन्द-पाठ

छन्द-पाठ एक कला ही नहीं है, वह भाषा का अभिजात निर्मल चरित्र भी है। शुद्ध उच्चारण ही भाषा की गरिमा और वैभव है। छन्दो-माधुरी संगीत का प्राण, और शब्दों का स्वराघात अभिव्यंजना का अनुनय है, इन तीनों तत्त्वों से छन्द का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावोत्पादक बन जाता है। इसके साथ ललित कंठ का योग सोने में सुगन्ध का काम करता है। नाटक के पढ़ने में अवश्य आनन्द आता है, पर, अभिनय में वही कथानक अधिक सजीव, स्वाभाविक, अनुकूल और जीवन की समीप मालूम होने लगता है, ठीक वही अन्तर छन्द और छन्द के पाठ में है। यदि छन्द ठीक ढंग से पढ़ दिया जाय, तो, अभिव्यंजन का आधा काम पाठ से ही सिद्ध हो जाता है। जब तक छन्द अपने वैभव के साथ, स्वर और लय के संयोग से जीवन्त नहीं होता, तब तक छन्दोगत मानसिक स्थिति की संवेदना और भावयोजना श्रोता के मानस में नहीं हो सकती, फलतः, काव्य का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता।

कविता, निरन्तर भाव-संस्कार, सजग संवेदना, तीव्र अनुभूति, तरलहृदयता, अनुराग, भाषा-सौष्ठव, अभिव्यंजन-कुशलता एवं शब्द-संगीत के समन्वित प्रभाव से जन्म लेती है। छन्द-पाठ भावतल्लीनता और मधुरकंठ (या भावयोजक स्वर-विधान) का परिणाम है। प्राचीन काल से यों तो यह परंपरा चली आई है कि समाजों में कवि ही अपनी कविता का पाठ करता है, परन्तु, इसे स्वतन्त्र कला मानने में समाज को यह लाभ होगा कि उच्चकोटि के कुशल कवि कंठ के अभाव में निरुत्साहित नहीं होंगे, और मधुर-कंठ वाले लोग प्रतिभा के अभाव में उच्च कवि के रूप में स्वीकृत होकर सामाजिक वंचना नहीं उत्पन्न करेंगे। मराठी में गायक-गायिकाएँ कवियों के गीतों को गाती हैं, और बंगला में कवि लोग बिना स्वर-शालित्व के सोधा पाठ करते हैं। अभी तक हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के अधिकांश उच्च शिक्षित समाज की संस्कृति और जीवन में, कलात्मकता का आधिपत्य नहीं हुआ है। निम्न वर्ग के दासद्वय ने और मध्यवर्ग के 'भयंकर मर्यादावाद' ने कभी कला को मुक्त रूप से जीवन में पनपने नहीं दिया।

वैदिक युग में अलग-अलग भेद के छन्दों के लिए अलग-अलग स्वर-पाठ निश्चित

था। “स्वर-पाठ” छन्दःशास्त्र का एक अलग प्रयोगात्मक (Experimental and practical aspect) विषय था। इससे भाषा के उच्चारण की शुद्धता निश्चित रहती थी और भाषा में राष्ट्रीय एक-रूपता अक्षत थी। छन्द-पाठ की शुद्धता से प्राप्त पुण्य और अशुद्धता से प्राप्त पाप का वर्णन पाणिनीय शिक्षा (५०।५५) में किया गया है, जिसका उद्धरण ‘छन्द-महिमा’ में दिया जा चुका है। छान्दोग्य उपनिषद् में “शिक्षा” पर कुछ मन्त्र हैं, जिनमें स्वर, ऊष्म एवं स्पर्श के आक्षेपों और उसके प्रत्युत्तरों का वर्णन है^१। ऋक्-प्रातिशाख्य में छन्द-पाठ सीखने की विधि का वर्णन है। गुरु उत्तर, ईशान या पूर्व की ओर बैठता है, एक या दो शिष्य (या अधिक) दाईं ओर बैठते हैं और चरण छूकर ‘भो’ सम्बोधन से गुरु को अभिवादित करते हैं। गुरु उत्तर में “ऊँ” कहता है। पुनः गुरु दो-तीन शब्दों का उच्चारण एक साथ करता है, शिष्य उसकी आवृत्ति करते हैं। यदि किसी शब्द की व्याख्या पृच्छनी है, तो शिष्य “भो” कहता है, तब गुरु “ऊँ” कहकर प्रश्न की आज्ञा देता है। यदि वाक्य में समास होता है, तो गुरु एक ही शब्द पढ़ता है, यदि समास नहीं है, तो वह दो शब्द एक साथ कहता है^२। प्रश्न समाप्त होने पर शिष्य उसकी आवृत्ति करते हैं, उसके पश्चात् निरन्तर मृदुवाणी से छन्द का संवृत स्वर में गान करते हैं, और प्रविग्रह (संयुक्त स्वतंत्र शब्द)

१. सर्व स्वराः इन्द्रस्यात्मानः, सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः, सर्वे स्पर्शाः मृत्यो-
रात्मनः। तं यदि स्वरेषूपालभेत, ‘इन्द्र (ग्वं) शरणं प्रपन्नोऽभूवम्’ स त्वा प्रतिपेक्ष्यती’ त्येनं
ब्रूयात् । ३।

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत, ‘प्रजापति (ग्वं) शरणं प्रपन्नोऽभूवम्’ स त्वा प्रतिपेक्ष्यती’—
त्येनं ब्रूयात् । अथ यद्येनं स्पर्शेषूपालभेत ‘मृत्यु (ग्वं) शरणं प्रपन्नोऽभूवम्, स त्वा प्रतिपेक्ष्यती’
त्येनं ब्रूयात् । ४।

प्रपाठक २, खं. २२, छान्दोग्य उपनिषद् ।

२. गुरुः शिष्यस्य पदमाहमुख्यं, समासश्चभेद समासो यदिद्वे ।

एतेन कल्पेन समाप्य प्रश्नं, प्रात्याम्नायुस्ते पुनरेव सर्वे । १९॥

(अनुवाद) ऋक् प्रातिशाख्य, पटल १५ ।

The teacher recites (only) the first word for the pupil (शिष्यस्य), if there is a compound; if there is no compound, he recites two words. Having finished a question in this way all the pupil should recite again and again. Translated by Max Muller,

को प्रविग्रहों से इति शब्द के द्वारा अलग करते हैं^१। अन्त में गुरु 'भो' कहता है और शिष्य 'ऊँ भो' कह कर समाप्त करता है। संहिताओं में भी इस प्रकार पाठ-विधि का विशेष वर्णन है !

हिन्दी में छन्द-पाठ-कला का सुव्यस्थित विकास नहीं हुआ है। यद्यपि इस क्षेत्र में कम प्रयोग नहीं हो रहे हैं। एक ही छन्द भिन्न कवियों से कई चालों में सुना जा सकता है। छन्द के अनुकूल पाठ-शैली का विकास आवश्यक है, इससे भावाभिव्यञ्जना में सहायता मिलती है। पाठ की विभिन्न निश्चित पद्धतियों से ही छन्दों में विविधता और नवीनता आयेगी।

छन्द और गायन

पाठ-शैली में संगीत का विशेष योग छन्द-साहित्य के विकास में बाधक होगा। छन्द में उच्चारण और लय की समानान्तर धारा चलती है, अतः हिन्दी के छन्द भी संस्कृत की तरह सोने की तौल के समान होते हैं, उनके बीच में न मात्रा या स्वर के योग की आवश्यकता है और न घटाने की। संगीत के भीतर गायक की तौल के अनुसार भाषा के शून्य स्थानों में विशुद्ध ध्वनिक्रम भर देने का अधिकार है, परन्तु छन्द के क्षेत्र में यह अधिकार नहीं लिया जा सकता। खड़ी बोली में तो संस्कृत का सा उच्चारण होता है, उसमें व्रज, अवधी या उर्दू की तरह दीर्घ अक्षर को लघु पढ़ने का भी विधान मान्य नहीं है। साथ ही लघु अक्षर को बँगला की तरह दीर्घ रूप में भी नहीं पढ़ा जा सकता।

हिन्दी-गीत-परम्परा मात्रा-ग्रधान है, अतः उसमें स्वर-लालित्य तो है, परन्तु संगीत के तराने की तरह अर्थ-शून्य स्वर-लहरी के लिए स्थान नहीं, अतः छन्द-पाठ शैली को संगीत-पद्धति से भिन्न रखना चाहिए। छन्द के पाठकों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह संगीत की तालें भी जानते हों, हाँ, हिन्दी का मात्रिक क्रम इस प्रकार का अवश्य है कि वह संगीत के विभिन्न तालों और रागों में बैठ जाता है। यों तो, नृत्य की मात्राओं का भी, छन्द की मात्राओं

१. तत ऊर्ध्वं सततं संवृतेन, प्रविग्रहेण मृद्वग्रहेण मृद्वग्रहेण।

सर्वोदात्तेन चर्चयेयुः सर्वे इमान्युपस्थापयन्तं पदानि । १०।

(अनुवाद)

ऋक्प्रतिशाख्य, पटल १५।

After that they should all recite without any break and with an even, continuously acute tone in which euphonicly combined independent words (प्रविग्रह) are slightly separated by an (अवग्रह) with using (इति) with the following words.

Translated by Max Miiller.

से साम्य है और छन्द की लय को नृत्य में पूर्णतया प्रदर्शित किया जा सकता है। भरत-नाट्य की नर्तकियों के नृत्य को देखकर लेखक को कई बार आभास हुआ कि छन्द की अमुक मात्रा पर यह नृत्य चला रहा है। एक ही नृत्य में नर्तक कई प्रकार की लय-मात्राओं का आधार अवश्य लेता है। नृत्य और भाव-अभिनय कला के क्षेत्र में छन्दों की लय का उपयोग एक नवीन प्रयोग होगा। हिन्दी-क्षेत्र के कला-विकास के युग में ऐसे प्रयोगों की संभावना है।

साहित्य का छन्द अर्थपूर्ण शब्दों से निर्मित होता है। जब छन्द शब्दहीन होकर अपनी विशुद्ध लय में विद्यमान होता है, तो उसकी संज्ञा संगीत हो जाती है। संगीत के 'परन' में, निरर्थक शब्दों की आयोजित लय होती है। पक्के गानों में छन्द और संगीत का योग कर दिया जाता है, क्योंकि उसमें कुछ सार्थक शब्दावली के साथ संगीतात्मक निरर्थक ध्वनियाँ भी जोड़ दी जाती हैं। सिनेमा के गीतों के छन्दोभंग और मात्राओं के अभाव को प्रायः संगीत-स्वरों के योग से संभाल लिया जाता है।

छन्दःशास्त्र की सीमाएँ

छन्दःशास्त्र का विशेषज्ञ होने मात्र से कोई उच्चकोटि का काव्य नहीं लिख सकता और न गीत में अलौकिक एवं अपूर्व लय ला सकता है^१। काव्य-रचना के लिए संस्कार एवं भाव-परिष्कार की आवश्यकता होती है। सांस्कृतिक दृष्टि से, जो रचयिता जितना ही ऊँचा होगा, जितनी ही परिष्कृत अभिरुचि होगी, मनोरोग जितने ग्रहणशील एवं उदार होंगे, उतना ही ऊँचा कवि बनने की उसकी संभावना है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में स्वीकार किया है कि संस्कृतात्मा यदि चाहे तो काव्य का निर्माण अवश्य कर लेगा "करोति काव्यं प्रायेण संस्कृतात्मा यथा तथा"। कविता-रचना के लिये छन्दःशास्त्र का पांडित्य नहीं चाहिये, उसके लिए लयात्मक संस्कारों की आवश्यकता है, जो मन में, प्राणों में, कानों में और कंठ में सहज रूप से व्याप्त हो। छन्दःशास्त्र का ज्ञान छन्द का बौद्धिक ग्रहण है, अतः वह काव्य-शोधन और अनवद्य प्रणयन में सहायक सिद्ध होता है।

काव्य का पूर्ण आनन्द प्राप्त करने में पाठक के लिये आवश्यक है कि वह छन्दःशास्त्र का अवश्य अध्ययन करे^२। कवि में लय के सहज-प्राप्ति संस्कार होते हैं, परन्तु सामान्य पाठक,

१. केवल लगक्रम डोलमापुटे ठेऊन सरस पद्यरचना करिता के ईल काय ? नाहीं । पद्य-रचना केड मूलचीच थोड़ी फार प्रवृत्ति असल्या बिना पद्य-निर्मित होऊँ शकट नाहीं । छन्दोरचना, पृ० ७ ।

2. Prosody may be boredom but it is impossible to understand poetry without it. Page 101.

Form and Style. Professor W. P. Ker.

जिन्हें छन्दःशास्त्र का ज्ञान नहीं, वे छन्द की अलौकिक रमणीयता से वंचित रह जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में अपनी भाषा के गीतात्मक संस्कार अवश्य होते हैं, अतः पाठक जितना अपनी भाषा की कविता में आनन्द ले सकता है, उतना अन्य भाषा की कविताओं में नहीं।

छन्द की लय के श्रेष्ठ निर्णायक कंठ एवं कान ही हो सकते हैं। कॉलरिज भी ज्ञान-जगत् के अप्रबुद्ध संस्कारों को छन्दः शास्त्र (काव्य-शास्त्र) की अपेक्षा अधिक सफल एवं कुशल मान-दंड मानते हैं,^२ परन्तु, पीछे कहा जा चुका है कि छन्दःशास्त्र इस शक्ति के अभाव में संस्कार-निर्माण में सहयोग देते हैं। काव्य-रचना में स्वयं आचार्यों ने 'काव्य शास्त्राद्यवेक्षण' और 'शिक्षयाभ्यास' को निर्माण का हेतु माना है। छन्द का परिज्ञान होने पर श्रोता या पाठक आशय से छन्द का आनन्द लेता है। पहली पंक्ति को सुनने के बाद उस छन्द की लय से परिचित होकर स्वर के आगामो उतार-चढ़ाव को आशा के अनुकूल पाकर श्रोता आनन्दोत्फुल्लित हो जाता है^३। छन्द में, यति और अन्त्यानुपास भी इस आशा को पूरा करने में सहयोग देते हैं।

1. Every stanza scheme must undergo and finally to be judged by the test of ear and that only. P. 88

Historical Mannual of English Prosody. Saintsbury.

2. Lumber-room of neglected wisdom, which contains more hints towards a theory of poetry than all the rest ever written upon the subject.

Literara Biographia Ch. XIV, Coleridge.

3. Rhythm and its specialized form metre, depend upon repetition and expectancy. Equally, where what is expected recurs and where it fails, all rhythmical and metrical effect spring from anticipation. As a rule, this anticipation is concious. Just as the eye reading print unconsciously expects the spelling as usual and the fount of the types to remain the same, so the mind after reading a line or two of verses or half a sentence of prose, prepares itself a head for any one of a number of possible sequences at the same time incapacitating itself for others.

Principles of Literary Criticism, Page 135. I. A. Richard.

अनुकान्त छन्द में तो यह प्रक्रिया होती है, पर मुक्त छन्द में नहीं होती। वहाँ केवल भाव की, परिस्थिति की और घटना की कल्पना की जा सकती है, अतः मुक्त छन्द तभी सफल होता है, जब घटनाक्रम और भावावेग आशा से अधिक वेगवान हो।

कई प्राचीन और अर्वाचीन छन्दःशास्त्री प्रयुक्त छन्दों के विश्लेषण को ही छन्दःशास्त्र की सीमा मानते हैं, वे कोई नवीन तत्त्व-संधान या तत्त्वप्रतिष्ठा की चेष्टा नहीं करते।^१ एवरक्राम्बी मानते हैं कि छन्दःशास्त्र का सम्बन्ध केवल सुनने से है, उसके निर्माण से नहीं, यद्यपि निर्माण एवं श्रवण की पद्धति में साम्य है।^२ कवि छन्द की लय का समग्र एवं अखंड प्रयोग करता है। वह मात्राओं, वर्णों एवं पवों या लय-खंडों को गिनने नहीं बैठता। छन्दःशास्त्री व्याख्या करने के लिये लय को विशेष इकाइयों (मात्रा, वर्ण, पवं आदि) और खंडों में विभक्त करता है।^३ जिस प्रकार प्रकृति की सहायता से माँ बच्चे को उत्पन्न करती है, परन्तु उसके शरीर का 'शरीर-विज्ञान' संबंधी ज्ञान नहीं रखती, उभी प्रकार अधिकांश कवि अपनी ही कविता के छन्दों के वैज्ञानिक विश्लेषण से परिचित नहीं होते। कवि के लिए छन्द का पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण जानना अनिवार्य नहीं है। यह कार्य छन्दःशास्त्री का है।

१. कविदेर चरणार मध्ये याहा आछे आमि ताहाकेइ आमार आत्मासेइ नियमगुनि प्रामान्य करियाछे। आमि ये कोनो रूपतत्त्वसंधान वा तत्त्व-प्रतिष्ठार चेष्टा करिनाइ।

बाङ्ला कवितार छन्द, मोहितलाल मजूमदार, भूमिका।

2. The science of prosody is not concerned with the composition of verse but with the hearing of it. The manner in which the base asserts itself in composition is, however, an analogous with the manner of its assertion in hearing.

Principles of English Prosody. Page 104. Abercrombie.

3. The business of poet is simply to find his expressive rhythm and when he is using repeating pattern of rhythm (i. e. Metre) that is not because they are made out of feet nor his method is governed by consideration of foot division; on contrary his rhythm are divided into motional feet solely for criticism in order to show his analysis the modulatory form taken by his repeating rhythm.

Principles of English Prosody, Page 104. Abercrombie.

वस्तुतः, कवि के मन में छन्द का अभौतिक, एवं अपार्थिक सूक्ष्म रूप होता है, उसी आधार पर वह छन्द का निर्माण करता है, अतः अधिक अभ्यस्त होने पर कवि बिना गुनगुनाए और पढ़े छन्द का निर्माण कर लेता है। पाठक भी इसी भाँति बिना गाये या सुने, दृष्टि-मात्र से छन्द के लक्षण एवं स्वरलहरी का पता लगा लेता है, अतः विश्लेषण का सम्बन्ध सुनने पर ही निर्भर नहीं है। हाँ, जो छन्दःशास्त्री लय की संस्कृति का विकास नहीं कर पाते, उन्हें गाकर और मात्राएँ गिनकर छन्द का निर्णय करना पड़ता है। छन्द की इस अभ्यास-साधना के महत्त्व को पन्त जी ने स्पष्टतः स्वीकार किया है ^१।

कवि छन्दःशास्त्र का कैसे और कितना उपयोग करता है, यह भी विचार करने योग्य प्रश्न है। प्रो. केर का यह मत है कि लय संस्कार-रूप में कवि के मन में विद्यमान रहती है। वे कहते हैं, ^२ कि कवि का मन विभिन्न काव्यात्मक लयों में ग्रहणशील एवं तत्पर रहता है, बिना शब्द के लय उसके मन में बैठ जाती है '....' शब्द का उपयोग पश्चद्वर्ती है, कान, प्राण आदि सध जाते हैं और बिना गिने ही उसे लय का वजन मालूम रहता है, बिना कोशिश किये ही उसकी हर बहर बराबर बैठती जाती है। 'प्राकृतपैंगलम्' के रचयिता ने कहा है, 'जिस प्रकार कनक तुला तिल का आधा भाग भी तौल में सहन नहीं कर सकती, उसी प्रकार श्रवण की तुला छन्दोभंग (एक मात्रा की भी घट-बढ़) को सहन नहीं कर पाती।' ^३ प्रो० ब्रेन्डर कुछ

१. छन्दों को अपनी उगलियों में नचाने के पूर्व, कवि को छन्दों के संकेतों पर नाचना पड़ता है, सरकस के नवीन अश्वों की तरह उन्हें साधना, उन तक साथ-साथ दौड़ना, घूमना, चक्कर खाना पड़ता है, तब वे कहीं स्वेच्छानुसार इंगितमात्र पर वर्तुलाकार, अंडाकार, आयताकार नचाये जा सकते हैं। पल्लव, प्रवेश, पृ० २५।

2. His mind is open and responsive to different poetical melodies without words, they settle in his mind—and the words come later. Prosody is science not only of what has actually been composed in verse, but of this shadowy bodiless music in the mind of the poet before the poem is made.

Form and Style, Page 101. Professor W. P. Ker.

३. जेम ण सहइ कणअ तुला,

तिल तुलियं अद्ध अद्धेण ।

तेम ण सहइ सवणतुला,

अवच्छन्द छन्दभंगेण ॥

यथा न सहते कनकतुला, तिलतुलितमर्धार्धेन ।

तथा न सहते श्रवणतुला, अवच्छन्दं छन्दोभङ्गेन ॥

प्रथम परिच्छेद, १०, प्राकृतपैङ्गलम् ।

निम्नतर स्तर पर इस संस्कार-सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कवि के लिए छन्द का अपेक्षा-कृत उपयोगितावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। विषय ही कवि के भाव को दीप्त और लय को भङ्कृत करता है, एक बार लय की प्रतिष्ठा के बाद छन्द उसके भावावेग को अधिकाधिक प्रेरित करता है। तब शब्दावली एवं अभिव्यंजन-पद्धति पहले से अधिक सुगम और सुकर हो जाती है। इस प्रकार छन्द कवि की सहायता करता है, जो कि छन्द-प्रयोग का द्वितीय कारण है। कभी-कभी कवि लोग कहते हैं कि विषय से छन्द का आवेग जगता है। 'छन्द का ध्वनिकाल' कवि के मन में प्रस्पन्दित और निरन्तर भङ्कृत होता रहता है, जब तक उसके स्थान पर शब्द नहीं आ जाते। दोनों में प्राथमिक स्थिति किसकी है, यह जानना भी आवश्यक है। दोनों एक साथ काम करते हैं। तब कवि प्रशस्त एवं उदात्त स्थिति में काव्य का अभिव्यंजन करता है।^१

कवि की इस 'उदात्त एवं प्रशस्त उच्च स्थिति' को ब्रेंडर महोदय ने देवात्मा का मानव के मन में अवतरण माना है।^२

1. His subject has excited him originally and the regular beating once established, runs in his mind and increases his mental excitement, so that phrases and ways of expressing and subject come to him more easily than before. Thus metre helps the poet which is the other reason why poets use metre, sometimes, poets tell us, the metrical excitement come from the subject. The time of a stanza runs in the poets' mind and beat insistantly till the words come. The essential thing to realize is that whether subject or metre comes first, they work together, so that the poet expresses himself in that exalted way, we call poetry. Page 87.

Rhetoric and Prosody-Brander.

2. Not all poems are conceived in this way, but many great poems have been, more than enough for us to claim that this is no mechanical study, but an inquiry into the secret of these visitations of spirit upon man. Page 98.

Rhetoric and Prosody—By Brander,

निःसंदेह कविता-रचना के समय मनुष्य की असाधारण और विशेष उदात्त अवस्था होती है। थोड़े समय के भिन्ने कवि संसार से ऊपर उठ जाता है। प्रत्येक सृष्टि के क्षणों में उसका निर्माता असामान्य आनन्द का अनुभव करता है। उस समय उसकी प्रतिभा में सहज दीप्ति आ जाती है और व्यक्ति अपनी विशेष शक्ति के साथ सचेतन हो जाता है। वाल्मीकि ने प्रथम छन्द-रचना के समय यही अनुभव किया था, कि किसी अलौकिक शक्ति की प्रेरणा से हमने श्लोक की रचना की है। आस्तिक भारतीय लोग इस स्थिति को सरस्वती की कृपा के क्षण मानते हैं। पन्त जी ने इस स्थिति को वैज्ञानिक अभिव्यक्ति देने की चेष्टा है, पर वह व्याख्या कवित्वमय और मार्मिक है, “कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।” इस स्थिति में कवि भावानुकूल नवीन छन्दों की आयोजना भी कर लेता है, अतः यह सिद्ध है कि कवि नवीन छन्दों की रचना के लिये छन्दःशास्त्र का सहारा नहीं लेता।

छान्दसिक आनन्द

छन्द आत्मानुभूति के अभिव्यंजन का नर्तन है। कवि ब्रह्म का रूप है, और उसकी वाक् माया। माया के द्विधा स्वरूप के सन्निकर्ष से अनुभूति का जन्म होता है। विषय जगत् विषयी इन्द्रियों को आकृष्ट करके संयोग से आप्तकाम होने की प्रतीति कराता है^१। इन क्षणिक तृप्ति-स्फुरणों से राग-विरागादि अनुभूतियों की अन्तःकरण में उत्पत्ति होती है। इन अनुभूतियों की समन्विति से मन में, जो संकल्प उठता है, वह एक नवनिर्माण करता है और उस अभिव्यक्ति से कवि सद्दय प्राणियों के साथ तादात्म्य प्राप्त करके आत्मपूर्णता की उपलब्धि करना चाहता है। इस संकल्प से अन्नमय कोश से ऊपर प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों में क्रमशः भ्रंकार हो उठती है। विज्ञानमय कोश आनन्दमय है, वहाँ की मधुमती भूमिका में अखण्डनाद में अनन्त छन्दों की धारा बहती है; जो भावानुकूल स्पन्दन लेकर मनोमय कोश तक आती है, और वहीं स्पन्दन की दोला में छन्द का जन्म होता है, जो भाषा के साथ बुद्धि-

१. पल्लव, प्रवेश, पृ० २१।

२. माया इस परोक्ष आत्मा के सौंदर्य या रस को शब्दरूपरसगन्धस्पर्शात्मक जगत् के रूप में व्यक्त करके, उसके भोगने के लिये श्रोत्रचक्षुरसनाघ्राणत्वगात्मक ऐन्द्रिय जगत् का निर्माण करती है, इन दोनों जगत्‌ओं में से एक में आकर्षण है, दूसरी में चाह, एक में काम है, दूसरे में रति, एक में इच्छा है, दूसरे में तृप्ति। पृ० ४४, साहित्य और सौंदर्य, डा० फतेहसिंह।

निर्मित संयत विकर्षाधार में मूर्त रूप धारण करता है। यह मधुमती भूमिका योगियों के द्वारा अन्तः आनन्द का स्रोत और भोगों की चरम सूक्ष्म स्थिति मानी गई है ^१।

स्पन्दन का क्रमिक निरन्तर आवर्त्तन उत्पन्न करके, संकल्प सुखद आन्दोलन का विधान करता है। आनन्दमय कोश के छान्दसिक ध्वनि-विवर्त्तन का वर्णन योगियों ने विभिन्न भौतिक ध्वनि-समूहों के रूप में किया है। यहीं से विज्ञान-मय कोश के परिमाणुओं को शक्ति मिलती है। विज्ञानमय कोश मनोमय कोश को शक्ति देता है, जिससे हृदयतत्त्व की संवेदना जागरित होती है। संवेदना के अस्तित्व के साथ छन्द की लय का अस्तित्व हो जाता है। छन्द आवर्त्तन से अभ्यस्त होकर विज्ञानमय कोश में (जो त्रिकाल-व्यापी है) स्मृति रूप में सुप्त रहता है और संकल्प के साथ मनोमय कोश में आता है, परन्तु छन्द की प्रस्पन्दिका शक्ति फिर भी आनन्दमय कोश से प्रेरित होती है। मनोमय कोश का स्पन्दन प्राणमय कोश में व्याप्त होता है। जब वह प्रस्पन्दन प्रश्वास के प्राण वायु के माध्यम से वैखरी रूप धारण करता है, तो उसका समान-धर्मा प्रस्पन्दन व्यान वायु में व्याप्त होकर समस्त शरीर को भंकारता है और अन्ततः शरीर का अन्नमय कोष भङ्ग हो जाता है। अन्नमय कोश की संवेदना फिर ऊर्ध्वमुखी होकर प्राणमय तथा मनोमय कोश तक पहुँचती है। इस परिधि-परिवर्त्तन में शरीर के बाह्य स्थूल रूप से लेकर मनस्तत्त्व तक समस्त अन्तस्तत्त्व एक साथ तन्त्री की भाँति भङ्ग हो उठता है। यह संवेदना इसके ऊपर विज्ञानमय कोश में नहीं जाती है, क्योंकि वहाँ संवेद और क्रिया एकीभूत हो जाते हैं। फलतः, छन्द के माध्यम से कवि (ब्रह्म) की वाक् (माया) व्यष्टि के निम्नतम कोशों तक आनन्द की वृष्टि करती है। आनन्दमय कोश से छन्द की प्रस्पन्दन-प्रेरणा अचेतन रूप से स्वतः संभूत होती है, परन्तु संवेदना की तीनों भूमियों—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, में छन्द का आनन्द अनुभूत किया जाता है।

१. अ. मधुमतीभूमिकां साक्षात्कुर्वतोऽस्य देवाः सत्त्वशुद्धिमनुपश्यन्तः स्थाने-
उपनिमन्त्रयन्ते, 'भो इहास्थिताम्, इह रम्यताम्, कमनीयोऽयं भोगः, कमनीयेयं कन्या,
रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते, वैहायसमिदं यानं, अभी कल्पद्रुमाः, पुण्या मन्दाकिनी, सिद्धा
महर्षयः, उत्तमा अनुकूला अप्सरसः, दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी, वज्रोपमः कायः स्वगुणैः सर्वमिद-
मुपाजितमायुष्मता, प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरमरस्थानं देवानां प्रियमिति'।

पातंजलयोग, भाष्यकार व्यास।

आ. यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।

कामस्तु यत्राप्ताः कामस्तत्र माममृतं ववधि॥

ऋग्वेद, ९ मंडल, ११३ सू०, मंत्र १०।

यह प्रस्पन्दन की प्रक्रिया निखिल मानवों में समान रूप से होती है, पर उसका मुखर रूप-विस्तार प्रथमतः भाषा-उच्चारण के अभ्यास और अपरतः अन्तःकरण के तीसरे रूप बुद्धि के व्यवसाय और संयत जागरूक नियोजन पर निर्भर है, फलतः रुचि-भिन्नता के कारण छन्दोजगत् में रूपानेकता सहज दर्शनीय है।

छन्द और संस्कार

छन्द का खड़ा और प्रशेता ही कवि-पद प्राप्त करता है। यह अखंड नियम है कि खड़ा जितना महान् होगा, उसकी सृष्टि उतनी ही महिमामयी होगी। कवि का चिरन्तन संकल्प है कि वह अपनी रमणीक रचना से इतनी पावनता और आनन्द का संप्रसरण करेगा कि उससे आदि कवि ब्रह्म की चेतन सृष्टि अपने उच्चतम महत्त्व को प्राप्त करेगी। ऐतरेय ब्राह्मण में छन्द आत्म-संस्कृति का साधन माना गया है (छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुर्वते)। यदि कवि की प्रसूति जनमानस के संस्कार का साधन है, तो कवि के लिए उच्चतम आदर्श संस्कृति की उपलब्धि आवश्यक सम्पत्ति (शर्त) है। कवि की इस श्रेष्ठ विधात्री एवं ज्योतिःस्वरूपा निर्मात्री शक्ति को देखकर ही वैदिक एवं उपनिषत्युग में ब्रह्म को कवि की संज्ञा दी गई।^१ यास्कनिरुक्त में कवि का अर्थ ज्योतिर्विधायक है,^२ वह संसार का महान् द्रष्टा, खड़ा एवं प्रगतिशील प्राणी है।^३ कवि शब्द-धर्म का साधक है। व्याकरणा-

१. कविमिव प्रचेतसम् (८, ८४, २, ऋग्वेद)।

कविकवित्वा दिवरूपमास (१०, १२४, ७ ऋग्वेद)

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। ८।१।

श्रीमद्भगवद्गीता।

२. विश्वानि सर्वाणि रूपाणि रूपवत्सु अयेषु प्रतिमुंचते आवध्नाति। तमोऽपघ्नन् रूपाण्याविःकुर्वन्।

वि नाकं अख्यत्। विख्यापयति नाकं द्यां च विदर्शयति तदाहि सस्यां विकीर्णां रश्मयो भवन्ति। किञ्च अनुप्राणं उवसः विराजति। उपसः प्रयाणमनुविराजति प्रकाशते।

निरुक्त, देवत काण्ड, १२।

३. कविः क्रान्तदर्शनः। अथवा। कवतेः धातोः गत्यर्थस्य कविः, कवति गच्छ-त्यसौनित्यं। किञ्च कवित्वा देव प्रासावत प्रमुर्वीत जनयति अभ्यनुजानाति च।

निरुक्त, देवतकाण्ड, १३।

चार्यों ने जहाँ 'कुङ्' शब्दे' धातु से उसके धर्म की व्याख्या करके मूल स्फोट शब्द के अर्थ से ब्रह्म की समकक्षता दी, वहीं 'कुङ्' शब्दे, (कवते) धातु से वर्णमय कविता-रचना के व्यावहारिक धर्म की भी व्याख्या की है। कवि अपनी आत्मा की इसी उच्चसंस्कृति का विश्व में संप्रसारण करता है।

रवि ठाकुर ने 'बाङ्ग ला छन्देर प्रकृति' शीर्षक लेख में स्वीकार किया है कि स्वरचित विशेष छन्दोमय शिल्प ही संस्कृति है। सम्यक्-रूपदान ही संस्कृति है, उसे ही शिल्प कहते हैं। आत्मा को सुसंयत करके मनुष्य जब आत्म-संस्कार करता है, अर्थात् उसे सम्यक् रूप देता है, वह भी शिल्प है। शिल्प यज्ञ का यजमान आत्मा को संस्कृत करता है, उसे छन्दो-मय बनाता है।^३ छन्द स्वयं भी कवि के कंठ से शिल्प रूप में व्यक्त होता है, इसीलिए भर्तृहरि ने साहित्य रस, संगीत-माधुरी और कलाकुशलता को मनुष्यता के प्रमुख लक्षणों में माना है।^४

छन्द का यह संस्कार कवि को ही प्राप्त होता है। यद्यपि सामान्य जन भी अपने भाव को अर्थमयी भाषा में प्रकाशित कर सकता है, परन्तु अन्तस्तल-प्रेरक आह्लाददायी छन्द का प्रयोग उसके लिए दुष्कर हो जाता है। छन्दसंस्कार के विश्लेषण से आचार्यों ने विभिन्न सिद्धांतों को माना है। अधिकांश लोग तो इस संस्कार को जन्मना मानते हैं, और 'सहजा प्रतिभा' के साथ संयुक्त करते हैं, कुछ लोग 'उत्पाद्य प्रतिभा' के अन्तर्गत इसे आहार्य लक्षण भी मानते हैं, परन्तु सुचिन्तकों ने जन्म-लक्षण और साधना दोनों को समन्वित किया है। अंग्रेज़ी में यह उक्ति प्रचलित है कि कवि उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जाते (Poets are born, not made) निश्चित ही छन्द-संस्कार एक आध्यात्मिक शक्ति के प्रस्फुरण का परिणाम है। यह आह्लादिनी शक्ति की कृपा सहज सुलभ नहीं। भारतवर्ष के देवोपासक कवियों ने इसे माँ

१. तुदादिगण, १४०१।

२. भ्वादिगण, ९५१, कुङ् + ३ = कवि, कुवतेऽति कविः

३. एइ संस्कृति स्वरचित विशेष छन्दोमय शिल्प। सम्यक् रूप दानइ संस्कृति, ताकेइ बले शिल्प। आत्मा के सुसंयत करे, मानुष जखन आत्मार संस्कार करे, अर्थात् ताके दिए सम्यक् रूप, सेइतो शिक्षे। शिल्पयज्ञेर यजमान आत्मा के संस्कृत करने, ताके करेन छन्दोमय।

विशेषः—यहाँ आवश्यकतानुसार वाक्यों का क्रम परिवर्तित कर दिया गया है।

—लेखक पृ. ३५२. रवीन्द्ररचनावली, भाग २१, बाङ्गलाछन्देर प्रकृति।

४. साहित्यसंगीतकलाविहीनः, साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहोनिः।

तृणन्नखादन्नपिजीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥

नीतिशतक, भर्तृहरि !

सरस्वती की अनुकम्पा का फल माना है। बंगाल के सुकवि श्री कालिदास राय इसी सिद्धान्त को मानते हैं। उनका कथन है, 'कवि के मनोवेग सहित जो संगीत अंगंगी भाव में विजड़ित हैं, वह उसके (कवि के) पक्ष में स्वभाव का दान है। यह अनुशीलन के द्वारा मार्जित हो सकता है, प्रयास के द्वारा अर्जित नहीं हो सकता। कवि के मन में रस-सिद्धान्त के अनुसार सहज भाव से प्रेरणा वर्तमान रहती है। इस सृष्टि के साथ उसके चित्र की एक सहज समरसता रहती है और सृष्टि की सुरसौषम्य की समग्रानुभूति रचना को प्रेरणा प्रदान करती है।'

प्रकृति के इस सहज दान के सिद्धान्तों को कोई अस्वीकार नहीं कर सका, परन्तु साधना और आयास तथा अभ्यास के योग को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सभी सिद्धियाँ साधना-साध्य हैं, और समस्त सुख श्रमसाध्य तथा यत्नार्जनीय हैं। छन्द का संस्कार भी साधना और अभ्यास से प्राप्य है। अभ्यास से तो ब्रह्म की भी प्राप्ति हो जाती है।^२ अग्नि पुराण में विद्या, कवित्व, शक्ति, व्युत्पत्ति और विवेक का 'दुर्लभ' होना तो माना गया है, पर अलभ्य और असंभव नहीं माना गया। वहाँ जिस उन्नतिमूलक क्रम से और जिस प्रोत्साहन-पद्धति से शक्ति प्राप्त का वर्णन किया गया है, उसमें भी यत्न-साध्यता की सूचना मिलती है। हाँ, शास्त्र से अनभिज्ञ और अविद्वान् इसे खोज कर भी नहीं प्राप्त कर सकते। लेखक की दृष्टि से 'दुर्लभ' शब्द लाभ की अनुगुण राशि से आपूर्ण है, केवल 'दुः' उपसर्ग का गड़ तोड़ने के लिए यत्न, निरन्तर अभ्यास तथा अध्यवसाय की अपेक्षा है।^३

काव्यमीमांसा में राजशेखर ने भी स्वीकार किया है कि सहज संस्कार न होने पर भी सुसंस्कृत आत्मा छन्द-रचना कर ही लेता है:—

१. कविर मनोवेगेर सहित ये संगीत अंगंगी भावे विजड़ित, ताहा ताहार पक्षे स्वभावेर दान । इहा अनुशीलनेर द्वारा मार्जित होइयाछे वाट प्रयासेर द्वारा अर्जितनय । कविर मनेर निजस्व प्रकृतिते, रसदृष्टि ते ओ प्रेरनार मूलेइ सहजभावे ईहा वर्त्तमान, एइ सृष्टिर सहित ताहार चित्तेर एकटो सहज Harmony आछे, आर सृष्टिर सुर-सौषम्येर समग्रानुभूतिइ, ताहार रचना के प्रेरणा दान करे । पृ० १६२ ।

साहित्येर प्रसंग, कालिदास राय ।

२. अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।

अभ्यासयोगेन ततो, मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ! ॥१२, ९, श्री मद्भगवद्गीता ॥

३. नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा ॥ ३ ॥

कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्तिस्तत्र च दुर्लभा ।

व्युत्पत्तिदुर्लभा तत्र, विवेकस्तत्र दुर्लभः ॥ ४ ॥

सर्वशास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिध्यति ।

अग्निपुराण, अ. ३३७, काव्यादिलक्षण ।

‘करोति काव्यं प्रायेण संस्कृतात्मा यथा तथा’ ।

यहाँ यह न भूलना चाहिए कि काव्य का अर्थ छन्द-रचना है । प्रायः अधिक लोग कवित्व के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उसका कारण सहजा प्रतिभा और पूर्व संस्कार को स्वीकार कर लेते हैं और साथ ही सामान्य लोगों को निरुसाह करते हैं । सभी कवि निरन्तर छन्द की साधना करते हैं, बिना बुद्धि के आयास के छन्द में वैविध्य नहीं आ सकता । कवि के प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध होने पर आलोचक लोग प्रशंसा में कहते हैं कि अमुक व्यक्ति दैवी पुरुष था । लेखक का विश्वास है कि जिस प्रकार अन्य कार्यों में अभ्यास से कुशलता आती है, उसी प्रकार छन्द के संस्कार भी उत्पन्न किये जा सकते हैं । महाकवियों के छन्दों में विशेष प्रकार के विकर्षाधार, विशेष प्रकार के ब्रम का अन्यानुप्रास, विभिन्न प्रकार के छन्दों के प्रयोग, निश्चित विस्तार के चरण, कभी एक लय का आवर्तित विस्तार और संकोच, क्या बुद्धि के आयास और अभ्यास की कुछ भी अपेक्षा नहीं करते !

मध्यकालीन कुछ भारतीय काव्यशास्त्रियों ने इन दोनों सिद्धांतों का अत्यन्त प्रसन्न समान्वय किया है । वे सहज और आहार्य दोनों योगों को स्वीकार करते हैं । कोई भी चिंतक पैतृक-लक्षण (Heridity) या वातावरण (Environment) के मूल्य में किसी को कम नहीं मानना चाहता । बिना बीज के वृक्ष नहीं होगा, साथ ही वह बिना भूमि, जल या खाद के पनप भी नहीं सकता । हाँ, समाज-कल्याण के लिए साधना और वातावरण को अधिक महत्त्व देना अवश्य आशाप्रद एवं श्रेयस्कर है । आचार्य मम्मट ने छन्द-निर्माण या काव्य-रचना के लिए सात तत्त्वों को आवश्यक माना है । (१) सहज शक्ति (२) निपुणता (३) लोक-निरीक्षण (४) शास्त्र-अध्ययन (५) काव्यानुशीलन (६) काव्यमर्मज्ञों से शिक्षा प्राप्त करना (७) और निरन्तर अभ्यास एवं आयास करना^१ । आचार्य भिखारीदास इसी सिद्धांत का समर्थन करते हुए तीन बातों को अवश्यक मानते हैं । (१) जन्मना शक्ति (२) कवियों द्वारा शिक्षा प्राप्ति (३) लोक का अध्ययन ।^२ आचार्य चंमेन्द्र ने भी लौकिक वस्तुओं के अध्ययन के लिए एक लम्बी सूची दी है ।

१. शक्तिनिपुणतालोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणत् ।

काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इतिहेतुस्तदुद्भवे ॥ काव्यप्रकाश ॥

२. सक्ति कवित्त बनाइवे, जेहि जन्म-नक्षत्र में दीन बिधातैं ।

काव्य की रीति सिखी सुकवीन सों देखी सुनी बहु लोक की बातैं ॥

दासजू जा में एकत्रये तीन बनै कविता मनरोचक तातैं ।

एक बिना न चलैं रथ जैसे धुरंधर सूत कि चक्रनिपातैं ॥

आचार्य भिखारीदास ।

कवि को पूर्व संस्कारों और पूर्व पुरयों से यदि छन्द-रचना अथवा काव्य-निर्माण की शक्ति जन्म से ही मिलती भी हो, तो वह यहाँ विवेचन का विषय नहीं है। वह शक्ति मिलती है या नहीं मिलती है ? कैसे मिलती है ? क्यों कुछ ही लोगों को मिलती है ? इन प्रश्नों का उत्तर देना अभीष्ट नहीं है। इन प्रश्नों में पुनर्जन्मवाद, भाग्यवाद और पारलौकिक सिद्धान्त पहले से ही सन्निहित हैं, जिन्हें वैज्ञानिक विवेचन में मानना आवश्यक नहीं। यहाँ पर इस बात का विश्लेषण, विवेचन एवं निर्देशन किया जायगा कि साधना और तपस्या के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति कैसे रस-सिक्त छन्दों का राशि राशि निर्माण कर सकता है।

जन्म से ही व्यक्ति का उच्चवंश या उच्च परिवार से सम्बन्ध होना चाहिए। यह उच्चता किसी धर्म, वर्ण, जाति, या देश से सम्बद्ध नहीं, वरञ्च, विशुद्ध मानवीय उच्चता है। जिस परिवार की मनुष्यता ऊँची होगी, उस परिवार के शिशु का संस्कार सम्मूलक और मंगलमय होगा। वहाँ पर उसकी कोमल वृत्तियों के जागरण का अधिकाधिक अवसर होगा। चरित्रवान् माता-पिता परस्पर प्रेम से घर को अमृत से भरते रहते हैं। उस अमृत सरोवर से शिशुकमल को उत्फुल्लता और पोषण के तत्त्व मिलते हैं। निर्विकार भाई और बहिनों तथा मित्रों का स्नेह, बालक के सरस भावों में कोमल आन्दोलन करता है। उसकी सचेत बाल्यावस्था में, उस वातावरण में प्रेम, कसणा, स्नेह, सहानुभूति, त्याग, न्याय, सुदिता, श्रद्धा और शील का आचरण होना चाहिए और किशोरावस्था के पश्चात् इन गुणों को दीप्त करने के लिए इनके विरोधी दुर्गुणों और असत् तथा अमंगलमयी धाराओं का विवेकपूर्ण परिचय होना चाहिए। ध्यान देने की बात है कि यदि परिचय में विवेक जागरूक न रखा गया, तो वह सत् और असत् को सम्पूर्णता से यथावत् आत्मसात् कर लेगा, और तब उसमें महाकवि के स्थान पर महान् उपन्यासकार बनने के लक्षण आ जायेंगे। तत्पश्चात् उसे विवेक के साथ समाज के व्यक्तियों के विभिन्न स्थितिगत मनोभावों के आन्तरिक और बाह्य व्यक्त रूप का अध्ययन करके अनुभव प्राप्त करना चाहिये।

बाल्यकाल से ही दीक्षा के साथ शिक्षा और विविध विषयों का अनुशीलन भी चलना चाहिए। सुव्यवस्थित शिक्षा के अभाव में कालिदास और तुलसी जैसी प्रतिभा न होकर कवीर जैसी प्रतिभा होगी, जिसमें काव्य की उच्चता तो होगी, पर काव्य की कला न होगी। इस अवस्था में काव्य के विभिन्न ग्रंथों का पाठ, अनुशीलन, मनन एवं विवेचन अभीष्ट है। जहाँ तक संभव हो, अधिकाधिक सुन्दर छन्दों को कंठस्थ कर लेना चाहिए। इस स्थिति में जो व्यक्ति बिना कष्ट किये काव्य का आस्वादन और मनन करता है, उसकी रसग्राहिणी शक्ति के साथ विवेक बुद्धि पुष्ट होती है, फलतः, वह काव्यालोचक बन जाता है और सर्जनात्मिका प्रतिभा को पुष्ट नहीं कर पाता। इसी अवस्था में इतिहास, भूगोल, दर्शन, मनोविज्ञान, आचारशास्त्र, राजनीति और विज्ञान का भी अच्छा परिचय मिलना चाहिए। उसे प्रकारण्ड पांडित्य की तो अपेक्षा नहीं है, पर अपने समाज के धर्म, विश्वास, उपासना-पद्धति, रीति, व्यवहार एवं नैतिक मूल्यों से

परिचय होना चाहिए। साथ ही कलाप्रियता के विकास के लिए संगीत, चित्रकला, नृत्य, गायन, नाटक और सिनेमा (काफी चिन्तन के पश्चात् सिनेमा के महत्त्व को स्वीकार करना लेखक ने आवश्यक समझा है) से समय-समय पर सम्पर्क होते रहने से साहित्य-संस्कार पुष्ट होते हैं। अभीष्ट सामाजिक भाव और व्यवहार, महान शक्तियों में विश्वास, पितृजनों और गुरुजनों में श्रद्धा, मित्र, सहपाठी, भाई और बहनों से स्नेह; छोटे से स्नेह और वात्सल्य; पीड़ित जनों के प्रति सहानुभूति और त्याग; विकासशील व्यक्तियों के प्रति मुदिता और मंगलाकांक्षा, न्याय के प्रति आस्था और अन्याय के प्रति सबल सक्रिय आक्रोश, सत्य का अविचल और निर्भीक आग्रह, अपनी शक्ति पर विश्वास और स्थिति का ज्ञान आदि अन्तःकरण को शुद्ध करके रस-सिद्धि के लिए भूमिका तैयार करते हैं।

इन साहित्य के संस्कारों में भाव की प्रबलता स्वयं रम्य छन्दोनिबद्ध होकर भाषा में मूर्त होती है। कंठस्थ छन्द नवीन छन्दों को रूप देने में सहायक होते हैं, पर, उसके परिष्कार के लिए छन्दःशास्त्र का सामान्य ज्ञान (विशेष नहीं) और भाषा-परिष्कार के लिए सामान्य व्याकरण का ज्ञान भी आवश्यक है। इस अवस्था में छोटे गीतों और भाव-पूर्ण मुक्तकों की ही सृष्टि संभव है। उसके संप्रसारण के लिए गोष्ठियों और समाजोत्सवों में कविता-पाठ आवश्यक है, क्योंकि वहाँ की प्रशंसा प्रेरणा का कार्य करती है। कविता की आलोचना रसज्ञ गुरु से करानी चाहिए; बराबर वाले कभी-कभी मुदिता या मंगल के अभाव में प्रतिस्पर्धाजनित विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

धीरे-धीरे अभ्यास से कवि का अनुमान और कल्पना-विधान सशक्त होता जाता है, फलतः, चित्रात्मकता अधिक स्पष्ट और चारुवर्णा होती जाती है। वह व्यक्ति जितना स्वस्थ होगा, उसकी पंच ज्ञानेन्द्रिय-संवेदना उतनी ही तीव्र होगी और इन्द्रियसन्निकर्षजनित अनुभूतियाँ उतनी ही समृद्ध होंगी, फलतः, उसके व्यक्तित्व से प्रस्फुटित काव्य उतना ही इन्द्रियानन्द के चित्रों से आरंजित होगा।

कवि के उच्चतम आचरण और दृष्टिकोण के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। समग्रता को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है, जो कवि जितना ही बड़ा होता है, उसका चरित्र उतना ही ऊँचा होता है। वस्तुतः कवि अपने युग का आदर्श व्यक्ति होता है। उसके प्रत्येक कर्म और आचरण पर समाज को विश्वास होना चाहिए, क्योंकि वह समाज का सबसे बड़ा मंगलाकांक्षी होता है। कवि विश्वात्म होता है। उसकी आत्मा विश्व को आच्छादित कर लेती है। संवेदना के ज्ञानकेन्द्र को भाँति समस्त मानवों की एक-एक अनुकूल और प्रतिकूल अनुभूति कवि की अन्तरात्मा में झंकृत होकर नूतन अभिव्यक्ति करती है। कवि सामान्य सम्बन्धों और प्रतिबन्धों से ऊपर उठकर निलीन हो जाता है, परन्तु उसका आत्मिक अन्तराल सभी के मानसों में व्याप्त हो जाता है, इसीलिए विश्व की समस्त माताओं का वात्सल्य, समस्त

प्रेमिकाओं का प्रेम, समस्त भाई-बहनों का स्नेह, समस्त साधुपुरुषों का कष्ट, समस्त तपस्वियों का तप और त्याग, समस्त न्यायप्रियों का सत्याग्रह और समस्त वीरों का प्रसन्नदर्प एवं हुंकार-कम्पन उसके अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होते रहते हैं ।

यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए सन्यास-भाव प्रथम सम्पत्ति है, पर, उच्च कवि पूर्णतः भाव-सन्यासी होता है । अपने लिए तो वह 'सुखदुःखे समे कृत्वा' आचरण करता है, परन्तु दूसरों के सुख-दुःखों को अनुभूत करता है । जिस प्रकार सामान्य रसज्ञ ब्रह्मानन्द सहोदर के आह्लादन के सत्वोद्रेक के समय अपने शरीर का मान भूलकर अन्तःस्पर्शवेद्य चिन्मयानन्द में द्वेष जाता है, उसी प्रकार युगविधायक महाकवि अपने शरीर के धर्म और कर्मों की ग्रहन्ता को भूल कर^१, विश्वात्मसंस्थित रस और सृष्टिव्यापी हृन्द की भंकार-माधुरी में सर्वाङ्ग मग्न होकर जीवनमुक्त विदेह-अवस्था की प्राप्ति कर लेता है । उसके सारे कर्म विश्व के लिए होते हैं । उसका हृत्संज्ञीत, विश्ववीणा की भंकार और रस, विश्वा-नुभूति से सम्पृष्ट होता है । वह विश्व के सद्बुद्ध प्राणियों के मानस को कवि, मनीषी और परिभू रूप से आनन्दाप्यायित करता है और विभिन्न कोशों में यथोचित तत्त्वों (विषयों) की प्रतिष्ठा करता है ।^२

महाकवि को, विश्व को काव्याङ्गन करने के लिए प्रत्येक विषय एवं स्थिति के प्रत्यक्षीकरणजनित अनुभव की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह अपने भाव-योग, कल्पनाशक्ति, और क्रान्तदर्शी दृष्टि से त्रिकाल की घटनाओं और स्थितियों का अनुभव कर लेता है, परन्तु अपेक्षाकृत निम्नतर धरातल के अविकसित कवियों को प्रत्यक्ष अनुभव की आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा वे राग को तीव्र और चित्र को स्पष्ट नहीं कर पाते हैं । इन प्रयोगों और अनुभवों में उसे कभी-कभी सामाजिक कृष्टियों के प्रतिकूल भी आचरण करना पड़ता है, उस समय समाज के सामान्य व्यक्ति उस पर आक्षेप भी करते हैं, परन्तु वह उस दृष्टिकोण से परिचालित नहीं होता, जिसे समाज समझता है । वह वहाँ भी 'पद्मसत्रमिवाम्भसा' अलिप्त रहता है । एक तो वह विश्व को रस देने के हेतु सौंदर्य-संस्कार का संग्रह करता है, दूसरे उसका निर्मल स्वरूप स्थूल शरीर के धर्मों से असंस्पृक्त भी रहता है, अतः समाज को किसी सीमा तक क्षमाशील भी होना चाहिये । इसीलिये कवि के जीवनाध्ययन में विवेक के साथ समाजादर्श के

१. योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

२. पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्श्नन् गच्छन् स्वप्नन् इवसन् ।

प्रलपन्विसृजन्मूढो न्युमिषन्निमिषन्तपि ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥

गीता, अध्याय पञ्चम, ७, ८, ९ ।

प्रतिकूल अंशों को निवारित कर देना चाहिये, किन्तु आजकल यह अध्ययन भी सद्सत् की समग्रता में होता है। कवि को वस्तुतः योगी की दृष्टि से देखना ही उचित दृष्टिकोण है।^१

महाकवि अपने अन्तर्जगत् तथा प्रत्येक व्यष्टि और समष्टि में, देवासुर-संग्राम के दर्शन करता है। विश्व में ब्राह्मी और रौद्री शक्तियाँ जीवन और मरण की क्रीडा करती हैं। विश्वधात्री की सत् दृष्टि से जीवों का सर्जन, पोषण और विकास होता है और दूसरी शक्ति की अस्त् प्रेरणा से ह्रास, निपात और उन्मूलन धरित होता है। कवि विश्व-युद्ध के चित्रण में मंगल भाव (शम, दम, दया, त्याग, करुणा, प्रेम और मुदिता आदि) को अमंगल भाव (क्रोध, मद, मत्सर, घृणा, हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या आदि) पर विजयी के रूप में अंकित करके व्यष्टि की संश्लिष्ट समष्टि को सुन्दर, सुखद एवं अभिनन्दनीय बनाता है, फलतः सामाजिक-संयम, सदाचार, संतोष, विश्वास और आह्लाद को संचित करके गतिमान और विकासमान होने की आकांक्षा और साधना करता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, मिल्टन, दान्ते, तुलसी और प्रसाद के महाकाव्यों में यही द्वन्द्व-धारा प्रवाहित हुई है। महाकवि समाज की बहुत बड़ी मङ्गलविधायिनी शक्ति का संचालक है।^२

मनुष्य के संस्कार छन्द की विशाल समृद्धि को अवतीर्ण करने में कितने सहायक होते हैं, यह स्पष्ट हो चुका है। कवि की मङ्गलाकाङ्क्षा सत्कृति का रूप धारण करती है, तो छन्द उसे केवल रूप ही नहीं देता, विश्व को उस 'सत्' से सहज आच्छादित और आह्लादित करके अपनी अमरता की सार्थकता सिद्ध करता है। सौंदर्य और प्रेम दो ही मानव-अनुभूयमान ईशदत्त निरुपम वरदान हैं। छन्द, सौंदर्य के प्रदर्शन से मनुष्य को एकचित्त योगी बनाता है और प्रेम से चिर आह्लादित अमरदेव।

छन्द और संगीत

सङ्गीतशास्त्र में गाने की दो विधाएँ हैं, एक लयात्मक, दूसरी स्वरात्मक। पहले वर्ग में तालें आती हैं और दूसरे में राग। तालों का आधार लयात्मकता है, अतः इनका छन्दों से सीधा सम्बन्ध है। राग में स्वर-समूह का आयोजन होता है, जिसका आधार लय है। प्रत्येक राग में ताल का आधार आवश्यक है, पर राग के भेदों और तालों का निश्चित सम्बन्ध नहीं होता। एक राग में कई प्रकार की तालों का अवलम्ब लिया जा सकता है और एक ही ताल

१. कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू

यथातथ्यतोऽर्थान्वयदधाच्छास्वतीभ्यः समाभ्यः ।

यजुर्वेद ४०, ८ ।

२. योगी न होते हुए भी कलाकार समाधि की निम्नतम भूमियों में

बार-बार प्रवेश करता है ।

पृ० २१४, चिद्विलास, डॉ० सम्पूर्णानन्द ।

कई रागों में गाई जा सकती है। एक राग मालकोस में त्रिताल, एकताल, आड़ा चौताल, तिलवाड़ा, भूपताल, सूलताल, चौताल और धमार ताल का प्रयोग हो सकता है, और त्रिताल को राग भूपाली, हमीर, केदार, विहाग, देस, तिलक कामोद, कालिंगड़ा, रागश्री, सोहनी, वागेश्री, वृन्दावनी सारंग, भीमपलासी, पीलू, जौनपुरी और मालकोस में गाया जाता है (हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति, भातखण्डे)। पर, एक लय को एक ही ताल में सुगमता से गाया जा सकता है। इसके अपवाद को आप चाहें गायक का कौशल मानें और चाहे दुराग्रह। यहाँ पर लय शब्द का प्रयोग छन्दःशास्त्रीय अर्थ में हुआ है, संगीत शास्त्रीय विलम्बित, मध्य और द्रुत अर्थ में नहीं। यहाँ पर यह स्पष्ट करना अभीष्ट है कि छन्द की लय और संगीत की ताल का सीधा सम्बन्ध है।

समस्त मात्रिक छन्दों में निरपवादतः केवल सात पवों का आधार प्रयुक्त होता है। इन मौलिक लयों के अतिरिक्त मात्रिक गेयता की कोई इतर संभावना ही नहीं है। इस सप्तपर्विक मानदण्ड पर समस्त मात्रिक छन्दों की व्याख्या प्रस्तुत की जा चुकी है। छन्दः शास्त्र और ताल का गणित-भाग एक सा ही है। यहाँ पर मात्रिक पवों के क्रम से यह निर्देश किया जाता है कि कौन पर्व किस ताल के अनुकूल है।

त्रिक एवं षष्ठक पर्व

त्रिक पर्व के तीनों भेद दादरा ताल में ठीक बैठते हैं। दादरा त्रिकलात्मक षण्मात्रिक ताल है। षष्ठक पर्व भी त्रिक की भाँति दादरा ताल में ठीक बैठता है, पर षष्ठक का विषमात्मक रूप समात्मक की अपेक्षा दादरे के अधिक अनुकूल है, क्योंकि इस ताल का आधार त्रिकलात्मक है।

दादरा ताल के बोलः— स्वरूप ।।।।।	X			2		
	धा	धी	ना	घा	ती	ना
	१	२	३	४	५	६

निराला जी की गीतिका का प्रस्तुत उदाहरण दादरे की दो आवृत्तियों में पूरा होगा।

स्तब्ध / अन्ध / कार / सधन /,	३+३+३+३ मात्राएँ
मन्द / मन्द / भार / पवन /,	” ” ” ”
ध्यान / लगन / नैश / गगन /,	” ” ” ”
मूँदे पल // नीलोत्पल //।	६+६ ”
	(गीतिका, पृ० ७३)

इस उदाहरण में प्रथम तीन चरण त्रिकलात्मक और अन्तिम चरण षष्ठकात्मक है। षष्ठक पर्व के समात्मक और विषमात्मक दो रूप होते हैं। विषमात्मक रूप दादरे में ज्यों का

यों बैठता है, पर समात्मक पर्व दो त्रिकलों में एक साथ बिठाया जाता है। समात्मक षष्ठक मत्तताल, वसन्त ताल, षट्ताल और पुराण ताल के अधिक अनुकूल है। यह तीनों तालों समात्मक १८ मात्राओं की हैं।

मत्तताल के बोल

X	२	३	४	५	६
धा ऽ कि टि	त क	धे ऽ ता ऽ	त क धि न	ध दि ग न	
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४	१५ १६ १७ १८		

वसन्त ताल

X	२	३	४	X	५	X	६	X
धु म कि टि	धु म कि टि	त क धु म	कि टि त क धा ता					
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४	१५ १६ १७ १८					

षट्ताल

X	२	३	४	५	६
धा ऽ धा ऽ कि टि	त क धु म कि टि	त क ध दि ग न			
१ २ ३ ४ ५ ६	७ ८ ९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८			

पुराण ताल

X	२	३	४	५	६
धा ऽ धि न न क धे ऽ धि न	न क धा गे ध दि ग न				
१ २ ३ ४ ५ ६	७ ८ ९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८			

ऊपर की चारों तालों क्रमशः निम्नलिखित छन्द के चार चरणों के अनुकूल हैं।

मन्दिर में भक्तों के स्वर उठते।

बम बम बम बम बम बम भर उठते॥

शिव शंकर की महिमा जग भर में।

बाणी बन जागी जो नर-नर में॥

षष्ठक वर्ग के पूर्ण छन्द और ताल

२२ मात्राओं का कुण्डल छन्द अष्टमङ्गल ताल में विल्कुल ठीक बैठता है, जब कि दादरे में दो संगीत मात्राओं की पूर्ति करनी पड़ती है।

अष्ट मङ्गल ताल

×	२	३	४	५	६	७	८
धा ऽ कि ट	त क	धु म कि ट	त क	धे ऽ ता ऽ त क	ध दि	ग न	
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२					

छन्द के उदाहरणः—तुमु कि चलत/ रामचन्द्र/ वाजत पै/जनियाँ/ (तुलसी) ।

मैं भी कृत/कृत्य हुआ/ वीर वत्स/ आ तू/ (यशोधरा, गुप्त) ।

अर्जुन ताल में २० मात्राओं का भृङ्ग सुम्मित छन्द पूरा-पूरा ठीक बैठता है।

अर्जुन ताल

×	२	३	४	५	६	७
धा ऽ धि न	न क	धे ऽ धि न	न क	धे ऽ ध ऽ धि न	न क	
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०				

छन्दः—हुआ प्रातः/ प्रियतम तुम/ जावगे च/ले ।

कैसी थी/ रात बन्धु / थे गले-ग/ले ॥ (गीतिका, गीत ६१, निराला)

विष्णुताल और मयूरताल में १० मात्राओं का षष्ठकामक अणिमा छन्द ज्यों का त्यों ठीक बैठता है और शिखरताल में ग्रह-परिवर्त्तन के साथ बैठता है अर्थात् छन्द की अन्तिम ५ मात्राओं को ताल के आरम्भ में रखना होगा।

विष्णु ताल

×	२	३	४	५	६
धा ऽ कि ट	त क	धु म कि ट	त क	धे ऽ धि न ता	
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४ १५ १६ १७			

मयूर ताल

×	२	३	४
धा धा	धिन नक छे छे	धिन नक कि टि त क	ग दि ग न त
१ २	३ ४ ५ ६	७ ८ ९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७

शिखर ताल

×	२	३	४
धा तृक धिन नक धुंगा	धिन नक धुम किट तक धेत	धा तिट	कति गदि गन ता
१ २ ३ ४ ५	६ ७ ८ ९ १० ११	१२ १३	१४ १५ १६ १७

छन्द :—

फैली दिङ् / मण्डल में / चाँदनी ।

बँधी ज्योति / जितनी थी / बाँधनी ॥

करती है / स्तवन मंद / पवन से ।

गन्ध कुसुम / कलिकाएँ / भवन से ॥ (अग्रिमा, पृ० ४२, निराला)

देवध्वनि ताल में श्येनिका छन्द ज्यों का त्यों ठीक बैठता है ।

देवध्वनि ताल

×	२	३	४
धीधी तृक तूना किड नक धा	कत गदि गिन	तट गदि गिन	धुम किट तक गिद गिन
१ २ ३ ४ ५ ६	७ ८ ९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७	

छन्द का उदाहरण :—ज्योति प्रेम / की विचित्र / साथ में । (SISISISISIS = १७ मात्राएँ)

जीत-हार / संग-संग / हाथ में ॥

अश्रु का प्रवाह और / हास भी ।

अन्धकार / बीच लघु प्रकाश भी ॥ (लेखक)

चतुष्क और अष्टक पर्व

चतुष्क पर्व के तीसरे भेद (ISI) को छोड़कर शेष चार भेद (SS; IIS; SII, IIII) समात्मक हैं, जो ताल के अनुकूल हैं । अष्टक पर्व चतुष्क का दुगुना है, अतः जिन तालों में चतुष्क बैठना है, उन्हीं में अष्टक पर्व भी बैठेगा । अष्टक पर्व के पहले (SSSS), दूसरे

(॥SSS), चौथे (S॥SS), पाँचवें (॥ ॥SS), नवें (SS॥S), दसवें (॥S॥S), बारहवें (S॥ ॥S) और तेरहवें (॥ ॥ ॥S) भेद सम-प्रवाही हैं। ये भेद ही यहाँ निर्दिष्ट तालों में बैठेंगे।

नट ताल

X	२	३	४
धा	तेट	कत	गदिगत
१	२	३	४

वर्णभिन्न ताल

X	२	३	
धा ने	धा ने	धि न न क	
१ २	३ ४	५ ६ ७ ८	

घट ताल

X	२	३	४	५	६
धा	S	ते ट	क	त	धे त
१	२	३ ४	५	६	७ ८

कहरवा ताल

X	२		
धा धि न धि	न क धि न		
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८		

नटताल, वर्णभिन्नताल, घटताल और कहरवा तालों में अष्टक पर्व के आवर्त्तक छन्द ठीक बैठेंगे। इनमें कहरवा ताल बहुत प्रचलित है। १६ मात्राओं के छन्द प्रायः कहरवाताल में बजाये जाते हैं, उस स्थिति में कहरवा की दो आवृत्तियाँ होती हैं।

१२ मात्राओं का समप्रवाही सारक छन्द इकताला, चौताला, द्रुताली, और मदनताल में बैठेगा।

(४९६)

इकताला

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

चौताला

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

द्रुताली

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

मदन ताल

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

छन्द का उदाहरण—

जंगम जग-प्रांगण में।

जीवन-संघर्षण में ॥

(ग्राम्या, पृ० ६७, पन्त)

समप्रवाही १६ मात्राओं के छन्द—पादाकुलक, सिंह, मत्तसमक, चौपाई, पदपादाकुलक
छन्द निम्न लिखित १६ मात्राओं की तालों में बैठेंगे।

ध्रुपद की सवारी

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

त्रिताल

×	२	३
धा धि धि धा	धा धि धि धा	धागे त्रक धि धा
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६

तिलवारा

×	२	०	३
धा त्रक धि धि	धा धा धि धि	ता त्रक ति ति	धा धा धि धि
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६

छन्दों के उदाहरणः—पादाकुलकः—खोलो/ मुख से /घूंघट /खोलो । (पन्त, पल्लविर्ना, छाया)

सिंहः—रथ मानों एक रिक्त बन था । (साकेत, पृ० ११६)

मत्त समकः—जब रजनी आकर प्राप्त हुई । (साकेत, पृ० १२०)

चौपाईः—तुमने निज सत्य-धर्म पाला (साकेत, पृ० ११८)

पदपादाकुलकः—नृप राम-राम ही रटते थे । (साकेत, पृ० ११६)

अष्टक वर्ग, पूर्णक छन्द और ताल

शूल ताल में विष्णुपद छन्द का १० मात्राओं का द्वितीय खण्ड ठीक बैठता है ।

शूल तालः—	×	०	२	३	०
	धा ऽ	दिं दिं	ता ऽ	तिट कत	गदि गन
	१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०

छन्दः— नव यौवन आया ।

स्वर्ण भोर लाया ॥

मन के शतदल में ।

जीवन के जल में ॥

भावों का गुञ्जन ।

मधु रस का सिंचन ॥

सौरभ-मुख छाया ॥ लेखक ॥

विश्वताल और द्वितीय मण्डिका ताल में उल्लास (१३ = ८ + ५ मात्राएँ) और द्वितीय उल्लाला [१३ (८ + ५); १३ (८ + ५)] छन्द ठीक बैठते हैं ।

विश्वतालः—

X		२		३		४		५		६		७		८		९	
धा	८	धि	न	न	क	वे	८	धि	न	न	क	ता					
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३					

द्वितीय मण्डिका तालः—

X		२		३		४		५		६		७		८		९	
धा	धि	ट	धि	ट	धु	म	कि	ट	ध	दि	ग	न					
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३					

उल्लास छन्दः— लीन हुई रस-रंग में । ८+५=१३ मात्राएँ
 डूबी रूप-तरंग में ॥
 जग की सुधि-बुधि खो गई ।
 मैं उनकी ही हो गई ॥ (लेखक)

लघु मात्रा मूलक छन्द विश्व ताल के अनुकूल होगा और दीर्घ मात्रा मूलक मण्डिका ताल के ।

आड़ा चौताल में १४ मात्राओं का छन्द हाकलि ठीक बैठता है ।

आड़ा चौतालः—

X		२		३		४		५		६		७		८		९	
धिं	धिं	धा	त्रक	तू	ना	क	त्ता	धी	धी	धा	धी	धी	धा				
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४				

हाकलि छन्दः— भाग सुहाग पक्ष में थे ।
 अञ्चल-बद्ध कक्ष में थे ॥
 थी कमला सी कल्याणी ।
 वाणी में वीणापाणी ॥ (साकेत, पृष्ठ ७२)

जगम्पा, छोटी सवारी, गजम्पा और इन्द्र ताल में १५ (४+४+४+८) मात्राओं का चौपई छन्द ठीक बैठता है, और गोपी छन्द में (८+४+४+४) इन तालों की पन्द्रहवीं मात्रा का ग्रह मानना पड़ता है ।

जगर्भपा:—

X	धा	५	धा	गे	ध	दि	ग	न	२	धु	म	३	कि	ट	४	दि	ग	न
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५				

छोटी सवारी:—

X	धा	५	ध	दि	२	ग	न	धु	म	३	कि	ट	त	क	४	धि	न	ता
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५				

गजभस्पा:—

X	धा	धिन	नक	तक	२	धा	धिन	नक	तक	३	धिन	नक	किट	तक	धिन	गदि	गन
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५			

इन्द्र ताल:—

X	धागे	तेट	धुम	किट	२	धदि	गन	धिन	नक	३	तेट	कत	४	गदि	गन	५	किटि	तक	ता
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५					

चौपई:—

हम मास्त के मधुर झकोर ।

नील व्योम अंचल के छोर ॥

(पन्त, पल्लविनी, पृष्ठ ६५)

गोपी:—

अचल हो उठते हैं चंचल ।

चपल बन जाते हैं अविचल ॥ (पन्त, पल्लविनी, उल्लास, पृष्ठ ६८)

गणेश ताल में १८ मात्राओं का समप्रवाही सिन्धुजा छन्द ठीक बैठता है ।

गणेश ताल:—

X	धा	५	धि	ट	२	धि	ट	धा	५	३	धा	५	कि	टि	४	त	क	५	ध	दि	ग	न
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८					

(५००)

सिन्धुजा छन्दः—मीठी लगती, मोहक किलकारी ।

हँसी लग रही, कितनी सुखकारी ॥

अस्फुट अक्षर, किन्तु अर्थ कितने !

सरल वदन में, भाव खिले जितने ॥ (लेखक)

अभिनन्दन ताल में २० मात्राओं का समप्रवाही योग छन्द ठीक बैठता है ।

अभिनन्दन ताल

X	२	३	४	५
धा ऽ धु म	कि टि त क	धे ऽ ता ऽ	धा दि ग न धि न न क	
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०	

योग छन्दः—आशा/मनमें, पर/ विर/वास प्रकम्पित/ ।

राग-वेग द्रुत, साहस अचल अकम्पित ॥

सजग जा रही वह गज मन्थर गति से ।

चञ्चल लोचन पर कुछ विभ्रम मति से ॥ (लेखक)

भैरव ताल में २२ (१०+१२) मात्राओं का राधिका छन्द ठीक बैठता है ।

भैरव तालः—

X	२	३	४	५	६	७
धा ऽ धि न न क धे ऽ धि न	न क धि न	न क	त क ध दि गि न			
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२ १३ १४	१५ १६	१७ १८ १९ २० २१ २२			

राधिका छन्दः—फल फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी ।

ये हरी पत्तलें भरी थालियाँ मेरी ॥ (साकेत, पृष्ठ १५६)

सालवण्ट ताल में विष्णुपद छन्द (१६, १०) ठीक बैठता है ।

सालवण्ट तालः—

X	२	३	४	५	६	७	८
धा ऽ गे ऽ धा ऽ गे ऽ धि न न क धे ऽ ता ऽ धि न न क त क धा ऽ धि न							
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६							

विष्णुपदः—मेरे / मन में / उनकी / छवि / विभित / दर्पण / की/सी ।
 चञ्चल रहती जल में शशि प्रतिमा अर्पण की सी ॥
 चाह रही मैं मेरे मन में स्थिरता आ जाये ।
 नयनों में मन-चाही छवि की प्रियता छा जाये ॥ (लेखक)

राजनारायण ताल में २८ मात्राओं का सार छन्द ठीक बैठता है ।

राजनारायण तालः—

X	२	३	४	५	६
धा ऽ धि	न न	क धे	धि न न	धि न न	त क ध दि ग न धि न न धि न न त क
१ २ ३	४ ५ ६ ७ ८ ९	१० ११ १२ १३ १४ १५ १६	१७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८		

सार छन्दः— विधुरा फाल्गुन की सन्ध्या वन-वीथी में इटलाती । (पन्त, अतिमा, पृष्ठ १०४)
 चक्रताल में ताटक छन्द (३० मात्राएँ १६, १४) ठीक बैठता है ।

चक्रतालः—

X	२	३	४
धा ऽ कि टि त क धु म कि टि त क	धा मे ते ट क त त क ता	ध दि ग न धि न न क	
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०			

फैलीं कोमल / रवि की / किरणों, अचल शिखर / पर स्वर्णमयी / ।
 जैसे विजयी / जन-ना/यक की कण्ठ-माल / की छया नयी / ॥ (लेखक)

पञ्चक पर्व

इस पर्व का रगणात्मक रूप ५ मात्राओं की हंस-लोल ताल और १० मात्राओं की भूपताल में ज्यों का त्यों ठीक बैठता है, पर यगणात्मक पञ्चक (आदि लघु पञ्चक), और तगणात्मक पञ्चक (अन्त लघु पञ्चक) में ग्रह का परिवर्तन करना पड़ता है ।

हंसलोल तालः—

X	२
धा धे	डे धे ड
१ २	३ ४ ५

(५००)

सिन्धुजा छन्दः—मीठी लगती, मोहक किलकारी ।

हँसी लग रही, कितनी सुखकारी ॥

अस्फुट अक्षर, किन्तु अर्थ कितने !

सरल वदन में, भाव सिले जितने ॥ (लेखक)

अभिनन्दन ताल में २० मात्राओं का समप्रवाही योग छन्द ठीक बैठता है ।

अभिनन्दन ताल

X	धा	५	धु	म	२	कि	टि	त	क	३	धे	५	ता	५	धा	दि	ग	न	धि	न	न	क
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०			

योग छन्दः—आशा/मनमें, पर/ विश्वास प्रकम्पित/ ।

राग-वेग द्रुत, साहस अचल अकम्पित ॥

सजग जा रही वह गज मन्थर गति से ।

चञ्चल लोचन पर कुछ विभ्रम मति से ॥ (लेखक)

मैख ताल में २२ (१०+१२) मात्राओं का राधिका छन्द ठीक बैठता है ।

मैख तालः—

X	धा	५	धिन	न	क	धे	५	धिन	न	क	धिन	न	क	त	क	ध	दि	गि	न
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०

राधिका छन्दः—फल फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी ।

ये हरी पत्तलें भरी थालियाँ मेरी ॥ (साकेत, पृष्ठ १५६)

सालवण्ट ताल में विष्णुपद छन्द (१६, १०) ठीक बैठता है ।

सालवण्ट तालः—

X	धा	५	गे	धा	५	गे	धिन	न	क	धे	५	ता	५	धिन	न	क	त	क	धा	५	धिन
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२

(५०१)

विष्णुपदः—मेरे / मन में / उनकी / छवि / विम्बित / दर्पण / की/सी ।
चञ्चल रहती जल में शशि प्रतिमा अर्पण की सी ॥
चाह रही मैं मेरे मन में स्थिरता आ जाये ।
नयनों में मन-चाही छवि की प्रियता छा जाये ॥ (लेखक)

राजनारायण ताल में २८ मात्राओं का सार छन्द ठीक बैठता है ।

राजनारायण तालः—

× २ ३ ४ ५
धा ऽ धि न न क धे ऽ धि न न धि न न त क ध दि ग न धि न न धि न न त क
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८

सार छन्दः— विधुरा फाल्गुन की सन्ध्या वन-बीथी में इटलाती । (पन्त, अतिमा, पृष्ठ १०४)
चक्रताल में तार्क छन्द (३० मात्राएँ १६, १४) ठीक बैठता है ।

चक्रतालः—

× २ ३ ४
धा ऽ कि टित क धु म कि टि त क धा गे ते ट क त त क ता ऽ ध दि ग न धि न न क
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०

फैलीं कोमल / रवि की / किरणें, अचल शिखर / पर स्वर्णमयी / ।
जैसे विजयी / जन-ना/यक की कण्ठ-माल / की छटा नयी ॥ (लेखक)

पञ्चक पर्व

इस पर्व का रगणात्मक रूप ५ मात्राओं की हंस-लोल ताल और १० मात्राओं की ऋपताल में ज्यों का त्यों ठीक बैठता है, पर यगणात्मक पञ्चक (आदि लघु पञ्चक), और तगणात्मक पञ्चक (अन्त लघु पञ्चक) में ग्रह का परिवर्तन करना पड़ता है ।

हंसलोल तालः—

× २
धा धे ट धे ट
१ २ ३ ४ ५

(५०२)

भपतालः—

×	२	३	४
धी ना	धी धी ना	धागे तृक	धी धी ना

दस मात्राओं का दीप छन्द और बीस मात्राओं का अरुण छन्द इन तालों में ठीक बैठता है ।

दीप छन्दः—विजनवन / प्रान्त था / । रगणात्मक १० मात्राएँ
प्रकृति मुख / शान्त था / ॥ (श्रीधर पाठक, भारतगीत)

अरुण छन्दः—मग्न मैं / हो रहा / मिलन की / आश में / ।
मैं न व/ञ्चत रहूँ / एक, मुस/कान से / ॥
क्षीर सी / दिव्य मधु / दृष्टि के / दान से / ।
और दो/बोल ही / कोकिला / गान से / ॥
हो सके / यदि मुझे / प्राप्त सं/मान से / ।
खिल उठे/गा हृदय / हर्ष-उल्लास में / ॥ (लेखक)

पञ्चक पर्व के पूर्णक छन्द और ताल

जगदम्बा ताल में पञ्चक पर्व मूलक जगदम्बा छन्द ग्रह परिवर्त्तन के साथ बैठता है ।

जगदम्बा तालः—

×	२	०	३
धि ता तेटे तेटे कट	कट गदि गिन	न क	धि धि धागे तृक
१ २ ३ ४ ३	६ ७ ८ ९ १०	११ १२ १३ १४	१५ १६ १७ १८ १९

जगदम्बा छन्दः—देखती / राह / मैं /, आये / क्यों नहीं / ?
पन्थ में / विछर / हे / लोचन / ललक से / ।
धन्य बन/ती म/धुर / मोहक / झलक से / ॥
नयन में / श्याम / घन / छाये / क्यों नहीं ॥ (लेखक)

पञ्चक वर्ग के भुजङ्ग-प्रयात, (/SS X ४) सुजंगी, (1SS X ३ X 1S), सुजंगक (३ X 1SS X 1S), लक्ष्मी (३ X 1S), विध्वंकमाला (SS X ३ X SS), शास्त्र (SS / X ४) ग्रहपरिवर्त्तन और मात्रापूर्ति के साथ बैठेगे ।

सप्तक पर्व और ताल

सप्तक पर्व के पहले (ISSS) और दूसरे भेद (SISS) ताल तेवरा या तीव्रा और रूपक ताल में ठीक बैठते हैं और चौथे (SSIS) तथा नवें भेद (SSSI) धुमाली और लघुशेखर ताल में ठीक बैठते हैं।

तेवरा ताल

×	१	२	३	४	५	६	७
धा	दि	ता	ते	क	ग	दि	ग
१	२	३	४	५	६	७	

रूपक ताल

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
१	२	३	४	५	६	७

मनोरम, सिन्धु, मधुमालती छन्द इस तालों में ठीक बैठते हैं।

मनोरमः— जो क/हा / रुक/-रुक प/वन / ने/,

जो सुना झुक झुक गगन ने,

साँझ जो लिखती अधूरा,

प्रात रंग पाता न पूरा,

(आँक डाला वह दृगों ने एक सजल निमेष में।

आँसुओं के देश में) । दीप-शिखा, गीत १७।

सिन्धु छन्दः—क्या नहीं नर ने उसे रौरव बनाया।

क्या न तुमने स्वर्ग है इस पर बसाया ॥ सोहनलाल द्विवेदी, वासन्ती, ५० पृ०।

मधुमालती—सृष्टि के आरम्भ में मैंने उषा के गाल चूमे।

बाल रवि के भाग्यवाले दीप्त भाल विशाल चूमे।

बच्चन, मधुकलश, कवि की वासना।

धुमाली ताल

×	१	२	३	४	५	६	७
धा	धि	न	त	क	धी	ना	
१	२	३	४	५	६	७	

लघुशेखर ताल

×
धा धि ट धु | म कि ट

इन तालों में मधुमालती, सुलक्षण, हरिगीतिका छन्द ठीक बैठते हैं।

मधुमालती:—यदि सुन/दरी / मन में/ रमी/।

तो फिर तरुण को क्या कमी ॥

यदि मिलन-सुख भी हो कहीं !

सुरलोक धरती पर यहाँ ॥ (लेखक)

सुलक्षण :— गा डाले विरह आख्यान,
गा डाले विरह मधुगान ।

(SSSI × २) १४ मात्राएँ
सुमन, जीवन के गान ।

हरिगीतिका :—मानस-भवन में आर्यजन जिसको उतारें आरती । (SSIS × ४) २८ मात्राएँ
भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारे भारती । 'भारत-भारती', गुप्त ।

चौदह मात्राओं की ताल भूमरा और ताल दीपक-चन्दी में भी ऊपर के छन्द ठीक बैठेंगे ।

भूमरा ताल

× धि	धि	नक	२ धि धि धागे तिरकिट	३ ति ति नक	४ धि धि धागे तिरकिट
१	२	३	४ ५ ६ ७	८ ९ १०	११ १२ १३ १४

दीपक-चन्दी ताल

× धी धी	२ धा गे तीं	० ता तीं	३ धा गे धीं
१ २ ३	४ ५ ६ ७	८ ९ १०	११ १२ १३ १४

सप्तक परिवार के पीयूष-वर्ष (१६ मात्राएँ) और रूपमाला (२४ मात्राएँ) छन्द क्रमशः २ और ४ मात्राओं की पूर्ति से रूपक ताल में ठीक बैठेंगे ।

नवक पर्व और ताल

इस पर्व का प्रयोग हिन्दी में प्रचलित नहीं हुआ । इस पर्व के तीन लय भेद हैं, परन्तु इन्द्रवज्रत्मक मध्य लघु मूलक नवक सर्वाधिक प्रौढ़ है । यह पर्व मंदेश ताल में ठीक बैठता है और अन्त-लघु-मूलक पर्व अंक ताल में ।

महेश छन्दः—घन / आ ग / ये हैं / ।

अङ्क ताल

अच्छु छन्दः—प्रिय/,आई/,याद/,

तुम/जाते/भूल/ ।
बन/फूले/फूल ।

मन/आकुल/मौन/ ,

तुम/आये/आज/वर/सों के/बाद/ । (लेखक) ।

चन्द्रावली ताल में १८ मात्राओं का इन्द्रवज्रक छन्द ठीक बैठेगा।

चन्द्रावली ताल

×					२		०	३	०								
त	देत	थुं	ना	कत	तुं	ना	गदि	गित	तुं	ना	धा	गदि	गनि	त	दित	थुं	ना
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८

इन्द्रवज्रक छन्द (इन्द्रवजा का मात्रिक रूप)

नचतीं ठ/पा सी/तुम/स्वर्ग/द्वारे/ ।

सुर देखते हैं सुधि बुधि बिसारे ॥

उन्मुक्त वेणी नर्तित विवसना ।

पद-पद्म प्रेक्षित भङ्गार रशना ॥ (लेखक)

वृत्त और ताल

तालों में केवल आवर्त्तक या आवर्त्तनमूलक पूर्णक ही ठीक बैठते हैं। यहाँ पर प्रमुख तालों के साथ वृत्तों का निर्देश किया जाता है।

त्रिक और षष्ठक पर्व

इस वर्ग की दादरा, मत्तताल, वसन्तताल, षट्ताल और पुराण तालों के बोल पीछे दिये गये हैं। इन तालों में निम्नवृत्त ठीक बैठेंगे।

सुख (1S); दुःख (S1); कमल (111); अमरी (11SS); सुमुखी (S11S); कमल-मुखी (1111S); नगाणिका (1S1S); प्रमाणिका (1S1S/1S1S); विभावरी (1S1S/1S1S/1S1S), कलिन्दनन्दिनी या पंचचामर (1S1S/1S1S/1S1S/1S1S), कुन्ददशन (S1111), समानिका (S1S1/S1S1), चंचला (S1S1/S1S1/S1S1/S1S1), गण्डका (S1S1/S1S1/S1S1/S1S1/S1S1), नागरक (S11S1S1S), चित्रपदा (S11S/11SS), माणवक (S11S/S11S), संकुलक (SS11/SS11), पुरुषोत्तम (11S11/SS11), कुलया (111 1S/111 1S); मदनदमन (111 111/111 1S), तरलनयन (11 11 11/11 11 11), मानवती (S11S/S11S/S11S/S11S), मनोमोहिनी (1SS1/SSS1/SSS1/SSS1), गिरिवाला (11SS/11SS/11SS/11SS); वसुन्धरा (1S1S/11SS/1S1S/11SS), इन्दुमुखी (S11S/S11S/S11S/S11S), प्रमाथिनी (1S1S/S11S/1S1S/S11S), पाणिबन्ध (S1S1/S11S/S1S1/S11S), मानसभंजिनी (S11S/1S1S/S11S/1S1S)।

चतुष्क और अष्टक पर्व

इस वर्ग की नयताल, वर्ण-भिन्न ताल, कहरवा, इकताला, चौताला, द्रुताली, मदनताल, त्रिताल, तिलवारा ताल के बोलों का निर्देश किया जा चुका है। इन तालों में निम्नलिखित वृत्त ठीक बैठते हैं।

कन्या (SSSS), घनपंक्ति (11SSS), कुन्तलतन्वी (S11SS), नन्दा (SS11S), मकरक-शीर्षा (1111SS); सम्मदजनक (S1111S); सौरीतद्वर (SS1111); गुरुमध्या (11SS11), सौरभ-सञ्चित (S11S11); द्रुतगति (111111S); करुणापरिमल (11S1111); सुवासक (11 11 S11); अचल (1111 1111); विद्युल्लेखा (SSSS/SS), मदलेखा (SSS11/SS); मणिचित्र (11S S11/SS); चित्र-पदा (S11S11/SS); शशिलेखा (1111S11/SS); भुजगशिगुम्फा (111111S/SS); सरल (SSSS/11S), शार्ङ्ग (1111 SS/11S); गुणरुचिरा (S11S11/11S); अमृतगति (1111S11/11S); मदनदमन (11 11 11/11S); वृष्णा (SS11S/S11), सञ्चल (S11 1111/S11); पणवक (SS S1111 SSS), मोटक (SS11S11S11S), तोटक (11S11S11S11S); उत्थापिनी (SS1S1 11S11S); प्रमिताक्षरा (11S1S1

[illegible]

पञ्चक पर्व

इस वर्ग की हंसलोल और भूपताल के बोलों का निर्देश किया जा चुका है। इन तालों में निम्नलिखित वृत्त ठीक बैठेंगे।

केशा (ISS); सोमराजी (ISSISS); प्रमीला (ISSISSISS); भुजंग-प्रयात
(ISS ISSISSISS); सिंह-पुच्छ (५ यगण), कीडचन्द्र (६ यगण), विद्युदाला (७ यगण)
महानाग (८ यगण), सिंह-विक्रीडदंडक (९ य); पञ्जाल (SSA), मन्थान (SSISSA);
संनैत (३ त), सारंग (४ त), आभार (८ त); तडित् (SIS); मृगवधू (IIIS);
कमलमधु (IIII); द्वयोधा (२ र); शारदी (SIII/SIS); सुखकमल (IIII/SIS);
सुरनदी (SIII/IIIS); गजगती (IIISIII); कमलजा (IIII/IIIS); वीरवर (IIIS/SIII);
वोरलक्ष्मी (३ र); खग्विणी (४ र); उर्वशी (IIIS+३ र); जनकतनया (IIII+३ र);
विपिनतिलक (IIII/SIII/SISSIS); निशिपालक (SIII/SIII/SIII/SIS); नवमधु (IIII/SIS/
IIII/SIS); सरसिरुहलोचना (५ ल+५ ल+५ ल+२ र); विलोलनयना (२+IIIS+३ र);
वंशतिलक (IIIS×४); चन्द्र (IIII/IIII/SIII/IIII); स्वैरिणीक्रीडन (८ र); मतमातंग-
दंडक (९ र)।

सप्तक पर्व

इस वर्ग की तेवरा, धुमाली, लघुशेखर, झूमरा और दीप-चन्दी ताल के बोल दिये गये हैं। इन तालों में निम्नलिखित वृत्त बैठेंगे।

बीड़ा (1SSS); महामाया (1SSS/1SSS), प्रसूनाङ्गी (1SSS×३); वियग्दङ्गा (1SSS×४), सोम-प्रिया (SSIS), संयुत (11SIS/11SIS); सम्मद-मालिका (11 11 S/11SIS); वैखरी (SSIS×३); मानसहंस (11SIS×३); मन्दाकिनी (SSIS×४); पुष्प (S1SS); रति (SI 11S); अशोका (111 11S/11 SS); कान्तिडम्बर (SIS11×२); मन्जुघोषा (S1SS×३); व्योम-गंगा (S1SS×४)।

नवक पर्व

इस वर्ग की महेश, अंक, और चन्द्रावली ताल के बोलों का निर्देश किया जा चुका है। इन तालों में निम्नलिखित वृत्त ठीक बैठेंगे।

विमला (11S1SS); इन्द्रवज्रा (SS1SS/11S1SS); और आन्दोलिका (SS1SS/1S1SS)।

इन पर्वों में बहुत से वृत्त ऐसे हैं जो संगीत-मात्रा-पूर्ति के द्वारा विभिन्न तालों में बिठाये जा सकते हैं। विस्तार-भय से ऐसे छन्दों की सूची नहीं दी जाती है।

वर्णिक छन्द और ताल

तालों का स्वरूप मात्रिक है, वर्णिक नहीं, अतः यदि वर्णिक छन्दों को ताल में बिठाना है, तो छन्दों को मात्रिक दृष्टि से संतुलित करना पड़ेगा। सबैया छन्दों में चतुष्क (सगण या भगण) की आवृत्ति होती है, अतः सबैया छन्दों को मात्रिक रूप में बिठाने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

मत्तगयन्द (७ म+SS), दुर्मिल (८ सगण), किरीट (८ भगण) छन्द ३२ मात्राओं के होने के कारण त्रिताल और तिलवारा ताल की दो आवृत्तियों में सुगमता से बैठ जाते हैं। अरसात (७ म+४ र) के अन्तिम गुरु को लघु रूप देकर ताल में बिठाया जाता है। चकोर (७ म+गल) के अन्त में एक मात्रा की पूर्ति करके १६ मात्राओं की ताल में बिठाया जाता है। मदिरा (७ म+ग) में दो मात्राओं की पूर्ति की जाती है। सबैया के शेष भेदों में आभार (८ तगण), गंगोदक (८ रगण), भुजंग-प्रयात सबैया (८ यगण) को १० मात्राओं की रूपताल में बिठाया जा सकता है। सुख (८ सगण + दो लघु),

अरविंद (८ स + ल), सुन्दरी (८ स + ग) छन्द ३२ मात्राओं से अधिक होने के कारण ताल में बाँधने में कठिनाई होगी। इसके लिए इन छन्दों की गुरु मात्राओं को लघु रूप में पढ़ना पड़ेगा। यों सिद्धान्त रूप में किसी छन्द को ताल में बिठाने में कोई कठिनाई नहीं है। छन्द के अनुकूल नवीन ताल का निर्माण भी हो सकता है, जैसे किसी भी प्रकार की ताल के अनुकूल नवीन छन्द का निर्माण हो सकता है।

मुक्तक वर्णिक (घनाक्षरी और उसके प्रभेद) को ताल में बिठाने में छन्द को मात्रिक रूप देना पड़ता है, क्योंकि ताल मूलतः मात्रिक है। घनाक्षरी के १६ और १५ वर्णों को मात्रिक रूप में स्वीकार करना पड़ता है, अर्थात् एक वर्ण की एक मात्रा मानो जाती है, चाहे वह लघु हो, या दीर्घ। घनाक्षरी को त्रिताल में बिठाने के लिए १५ वर्णों के खण्ड में एक मात्रा का योग करना पड़ता है, रूप घनाक्षरी में ऐसा नहीं करना पड़ता, क्योंकि उसमें ३२ (१६, १६) वर्ण होते हैं। घनाक्षरी छन्द के आविष्कारक को मार्दङ्गिक मानने का सकारण आधार है, क्योंकि यह छन्द मृदंग पर त्रिताल रूप में बहुत अच्छा बैठता है। घनाक्षरी-परिवार के अन्य छन्दों को भी मात्रिक रूप देकर तालों के अनुकूल बनाया जा सकता है।

छन्द और संगीत का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः घनिष्ठ है। पर, यह भी स्पष्ट है कि छन्द का सीधा सम्बन्ध ताल से है, न कि राग से। छन्दःशास्त्र के गणित और ताल के गणित में सिद्धान्ततः बहुत साम्य है, पर व्यावहारिक विस्तार में अन्तर हो जाना स्वाभाविक ही है।

विशेषः—संगीत, ताल अङ्क, (हाथरस), और संगीत-विशारद, वसंत कृत, से सहायता ली गई है।

छन्दोऽनुक्रमणिका

पृष्ठ-संख्या

अखण्ड, २४४	अभिकृति, ७३, १५४, १५५
अङ्क, ५०५	अभिसारिणी, ७३
अंकुसिरानिचूत्, ७२	अभङ्ग, १३७
अंश, ७२	अभ्रसू, ७२
अचल, ५०६	अमलकमलरुचि, ५०७
अचलधृति, ५०७	अमृत, ७२
अणिमा, २६६	अमृतगति, ५०६
अतिकृति, ७२, १५४, १५५, २८८	अमृतध्वनि, ४६, ७५, २००, ३२२
अतिच्छन्द, ६७, ६८	अम्बर, ५०७
अतिजगती, ५, ७२, ७३, ७६, १५४, १५५	अम्बु, ७२
अतिधृति, ७२, ७३, ७६, ७७, ८५, १५४, १५५	अर्णसू, ७२
अतिविमला, ५०७	अरविन्द, १६८, ५०६
अतिशक्वरी, ५, ७२, ७३, १५४, १५५	अरसात, १६८, ५०८
अत्यष्टि, ६, ७२, ७३, ७६, ७७, ७९, ८५, १५४, १५५	अरिलल, ४६, ४७, ४८, ४९, ११८, २६२
अत्युक्त, १५४, १५५	अरुण, ४७, १२१, २७६, ५०२
अत्युक्ता, १७३	अर्चना, १६६
अधिकृत, ६	अर्णवदण्डक, १५७
अनघ, २४६	अर्द्धदण्डक, १५७
अनलज्वाला, १३४	अर्द्धक्षामा, ५०७
अनवसित, ५०७	अर्द्धाली, २६५
अनापेस्टिक, डाइमीटर ६६	अल्कमेनियन स्ट्रॉफ्री, १००
अनुकूला, २६३	अशोका, ५०८
अनुष्टुभ्, ५, ३२, ४७, ६७, ६८, ७२, ७३, ७५, ७६, ७८, ७९, ८१, ८२, ८३, ८४, १२१, १५४, १५५, १५६, १६१, १७०, १७३, २०६	अष्टक, ३०३, ३५६
अनुष्टुभ् का उष्णिक्, ७२	अष्टि, ६, ७२, ७३, १०४, १०५, १५४, १५५
अनुष्टुभ् त्रैष्टुभ्, ७४, ७५	असम्बन्धा, १०४
अनन्द, १८०	अहि, १६८
अपराजिता, १०४	अहीर, २४७
अप्रमेया, १५६, १७८	आकृति, ६, ७२, ७३, १५४, १८८
	आनन्दिनी, १८७
	आनुष्टुभ्, ७४, ८४
	आनुष्टुभौष्णिह, ७४

आनुष्टुभ् जागत, ७४
 आनुष्टुभ् ऋष्टुभ्, ७४
 आनुष्टुभ् पाङ्क्त, ७४, ८४
 आन्दोलन, १२२
 आन्दोलिका, ५०७
 आप, ७२
 आभार, १६८, ५०७, ५०८
 आकिलोकियन स्ट्राफ़ी, ६६
 आर्ची, ७१
 आर्या, ४६, ७५, २०२, ३१८, ३१९
 आर्यागीति, ४७, २०२, ३१९
 आर्षी, ७१
 आसुरी, ७१
 आस्तार पङ्क्त, ७३, ७६, ७७
 इआम्बिक, ८७
 इआम्बिक ट्राइमीटर, ८८
 इआम्बिक डाइमीटर, ६६
 इन्दव, १५७
 इन्दिरा, १७६
 इन्द्रमुखी, ५०६
 इन्द्राणी, २४५
 इन्द्रवंशा, १५७, १५८, १७७, १७८, १८७, १९८
 इन्द्रवज्रा, १९, ४६, ४७, ८१, ८२, १२४, १५७,
 १५८, १७३, १७५, १७६, १७९, १८०, १९१,
 १९८, २३५, २७२, ५०८
 इन्द्रवज्रक, ५०५
 उक्त, १५४, १५५
 उक्ता, १७३
 उडियाना, २८४
 उत्कृति, ६, ७१, ७२, ७३, १५४, १५५, १६०
 उत्कर्ठा, ३०३
 उत्सव, १८१
 उत्थापिनी, ५०६
 उदक, ७२
 उद्गता, १५३
 उद्गीति, ४६, ७५
 उद्दाम, १५६
 उद्धत, ३०१
 उन्नत, ५०७
 उपगीति, ३१९
 उपचित्रा, २६५
 उपजाति, ४६, ७३, १७२, १७५, १७६, १९०

उपरिष्टज्योति, ७६
 उपरिष्टाद् बृहती ७३, ७६, ७७
 उपेन्द्रवज्रा, ४६, ८२, १५७, १५८, १७२, १७५,
 १७६, १९०, १९८
 उरोबृहती, ७३
 उमिला, ४६, १२५, २००, २११, २६८, ३२६
 उमिला-सखी, २७१
 उर्वशी, २५१
 उल्लाला, ७५, २००, २०२, २५१, २५२, ३२६
 ३३०, ४९७
 उल्लास, ४९७ ४९८
 उष्णिक्, ५, ६७, ६८, ७२, ७५, ७६, ७९, ८५,
 १५४, १५५, १५९, १७३
 उष्णिक् अनुष्टुम्, ८४
 उष्णिक् अनुष्टुम् गर्भ, ७३
 उष्णिक् पिपीलिका-मध्या, ७३
 ऊर्ध्वबृहती विराज्, ७३
 ऋषभ, १५८
 एकपद, ६८
 एकपदा, ६७
 एकनाथ ओवी, १३७
 एकाक्षर, ५
 एन्टिबैकियस, ८७
 एनापेस्ट, ८७
 एम्फिब्राक, ८७
 एम्फिमेसर, ८७
 एलेजी, ४४
 ओड, ४५
 ओपी, १३७
 ओवी, १३७, १६०
 ककुभ्, ७२, ७५, ७६, ८५, ३०३
 ककुभ् सतोबृहती, ७९
 कनकप्रभा, १५९
 कन्या, ५०६
 कमन्द, ३०१
 कमल, ५०६
 कमला, ५०७
 कमलाक्षी, ५०७
 कमलजा, ५०७
 कमलमधु, ५०७
 कमलमुखी ५०६
 करिल्ला, २६५

कहणापरिमल, ५०६
 कवित्त, ४६, ४७, १२८, १६१, २०२, ३३०
 कविराज, ७३
 कलगीत, ५०७
 कलस्वन, ५०७
 कलाधर, १६४
 कलापक, २३३
 कलिन्दनन्दिनी, १८२
 काकुभू, ७३
 कान्तिडम्बर, ५०८
 कान्तिमान, ३१४
 कामिनी, ४६
 कामिल, १०८
 कालगङ्गा, १३५, ३००
 किरीट, १६१, १६८, ५०८
 कुडमलदन्ती, ५०७
 कुण्डल, १३६, २८१, २८३
 कुण्डलिया, ४६, ४७, ७५, २००, ३२२, ३२६,
 ४०४
 कुन्तलतन्वी, ५०६
 कुन्द, २८०, २८१
 कुन्ददशन, ५०६
 कुलक, २३३
 कुवलयमाला, ५०७
 कुसुमविचित्रा, २६३, ५०७
 कुसुमलतावेल्लिता १५८
 कृति ६, ७, ३१, ५४, १५५
 कृपाशा, १६४
 कृशा, ५६०
 केशा, ५०७
 कोकिला, २५७, ३२५,
 कोकिलक २८४
 क्रिआम्ब, ८७
 क्रीडचन्द्र, ५०७
 क्षत्रक्षयक. ५०१
 खजा, १५३
 खरारी, ३०७
 गगनाङ्गना, २६२
 गङ्गाधर, १३७, १६८
 गङ्गोदक. १६८, ५०८
 गजगति, ५०७
 गजल, ४५

गण्डका, ५०६
गाथा, ७५
गायत्रिकाकुम्भ, ७४
गायत्रिवाहेतु, ७४
गायत्री, ५, ६७, ६८, ७२, ७५, ७६, ८२, ८३, ८४,
१२७, १४२, १५४, १५५, १५६, १७०,
१७३, ४०४, ४२६
गायत्री अतिनिचूत, ७२,
गायत्री उष्णिक् गर्भ, ७२
गायत्री निचूत, ७२
गायत्री भूरिक्, ७२
गायत्री यवमध्या, ७२
गायत्री वर्द्धमान, ७२
गायत्री विराज, ७२
गिरिबाला, ५०६
गीति, ४६, ७५, २०२, ३१६,
गीतिका, ११०, १३५, २०२, २११, २६३, २६५,
३२५, ४४३
गुणरुचिरा, ५०६
गुरुघत्तानन्द, ३१३
गुरुमध्या, ५०६
गोदल, १३५
गोपाल, २५६
गोपी, ४७, २५७, ३५६, ४६८, ४६९
गोपी-वल्लभ, ३०४
गोपी-शृङ्गार, २०२, ३०६, ३११
ग्रह, २७२
घनपक्ति, ५०६
घनाक्षरी, ४६, ४७, ११५, १२०, १२६, १२८,
१२९, १३०, १३१, १३७, १४०, १६०,
१६१, १६२, १७१, २०२, २०७, २११,
२२१, २३७, ५०९
चकोर, १६८
चक्रपद, ५०७
चञ्चला, १८२, २५७, ५०६
चण्डवृष्टिप्रपात, १५७
चण्डालिनी, ३१७
चतुष्पद, ४७
चतुष्पदी, ४७
चन्द्र, २०२, २६७, २६९, ३६२, ५०७
चन्द्रकान्त, ११३
चन्द्रमणि, २५२

चन्द्रवर्त्म, २६३
 चन्द्रायण, २०२, २७६, २८१
 चम्पकमाला, २६३
 चामर १८१, १८२
 चामरी १८२, २७०
 चर्चरी, २९३
 चित्रपदा, ५०६
 चित्रलेखा, १५६
 चित्रा, ११८, २६५
 चुलियाला, ३०२
 चौपदा, ४७, २०२
 चौपई, ४७, ५६, २११, २५८, २६४, ३२७, ३३३,
 ३३४, ३५५, ४६६
 चौपाई, ४६, ४७, ११८, १२७, २००, २०२, २११
 २५८, २६२, २६३, २६५, २६६, ३०३,
 ३०५, ३२४, ३२५, ३२७, ३३५, ३३७, ३३८,
 ३५५, ३६०, ३७०, ३८१, ४०७, ४६७, ४६८,
 चौबोला, २५८,
 छन्दसार, ३२६
 छप्पय, ४६, ४७, ७५, २००, ३२०, ३२२, ३२६,
 ३३०
 छवि, ११८, २४४
 जगती, ५, ३२, ६७, ६८, ७१, ७२, ७३, ७५, ७६,
 ७६, १५४, १५५, ३०४
 जगदम्बा, ५०२
 ज्ञानदेव ओवी, १३७
 जयकारी, २५७
 जयलक्ष्मी, ३०२
 जलधरमाला, १५७
 जलहरण, १६४
 जलोद्धतिगति, १५७, २६७
 जागत, ७४
 जीमूत, १५७,
 जीव, ७२
 जीवकलिका, ३००
 ज्योति, १४५
 ज्योतिष्मती, ७३
 झूलना, ४७, २०७, २६२, ३०१, ३०४
 डेटामीटर, ४४
 डेटामीटर एकैटिलक्टिक, ६८
 ड्राइवॉक, ८७
 ड्राइमीटर, ६५

ट्राँकी, ८७
 डमरू, १६४
 डाकूम्यक, ८७
 डिल्ला, ११८, २६, २६५
 डेकटाइल, ८७
 डेकटाइलिक डेटामीटर, ६७
 डेकटाइलिक पेन्टामीटर, ८८
 डेकाइलिक रिडम, ६७
 डेकटाइलिक हेक्सामीटर, ८८
 णराच, १८२
 तडित्, ५०७
 तनुशिरा, ७३
 तमाल, २७४
 तरलनयन, २७१, ५०६
 ताटङ्क, ४६, ४७, ११८, १२७, १३२, १६४,
 २००, २०२, २०६, २११, २६४, ३०२,
 ३०३, ३०४, ३०८, ३२०, ३२५, ३२६,
 ३५१, ४६०, ५०१, ५०६
 ताण्डव, ११३
 तामरस, ५०७
 तालरस, २६३
 तिलोक, २०२
 तिलोकी, ४६, ४७, २८१
 तृप्त, ७२
 तृष्णा, ५०६
 तौटक, ४७, १५७, १७६, २६०, ४४३
 तोमर, २५०
 त्रिपाद जगती, ७५, ७६
 त्रिपाद त्रिष्टुभ्, ७६
 त्रिभङ्गी, ४६, ४७, ३०७
 त्रिलोक, ३०३, ३०६, ३१६
 त्रिलोकगामी, ५०७
 त्रिष्टुभ्, ५, ३२, ६८, ७१, ७२, ७३, ७५, ७६, ७६,
 ८१, ८३, ८४, १०२, १०५, १२४, १५४,
 १५५, १७३, १७४, २०६, ३०४,
 त्रैष्टुभ्, ७४
 त्रैष्टुभ्, जागत ७४, ७५
 त्रैष्टुभ् प्रगाथा, ६
 श्रोटक, ४६
 त्र्यष्टक, ७५, १३४, २००
 दण्डक, ४७, ५०७
 दण्डकला, ३०१

दासी, १३६
 दिगम्बरी, २६४
 दिग्गल, ४६, १११, २०२, २४८, २६१, ३३२
 दिग्बधू, २८२
 दीप, २४५, ५०२
 दुर्मिल, ४६, ४७, १६१, १६८, ३०७, ५०८,
 देव घनाक्षरी, १३८, १६४
 देवी गायत्री, ७१
 दोल, २७५
 दोवै, १३३, २६५
 दोहा, ४६, ४७, ७५, १३३, १३४, १६७, १६८,
 २००, २६२, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८,
 ३२६, ४०४
 दोहक, २००, ३१५, ३१६
 दोहडा, ३१६
 दोहयं, ३१५
 द्रुतगति, ५०६
 द्रुतपदा, १५८
 द्रुतविलम्बित, ४६, ४७, १५७, १५८, १७२,
 १७७, १८६, १८०, १८१, २३६
 द्वितीय उल्लाला ३२०
 द्विपद, ६८
 द्विपदा, ६७
 द्विपाद, ७२
 द्विपाद उष्णिक्, ७६
 द्विपाद गायत्री, ७५
 द्विपाद जगती, ७५
 द्विपाद त्रिष्टुप्, ७५
 द्विपाद पुरउष्णिक्, ७६
 द्विपाद वार्हत, ७४
 द्विपाद विराज, ७६
 द्विपाद बृहती, ७६
 द्विपाद सतोबृहती, ७६
 द्वियोधा, ५०७
 धारा, ३०२
 धीर, २०२
 धृति, ६, ७२, ७३, ७६, ७७, ८५, १५४, १५५
 नगमहिता, ५०७
 नगाणिका, ५०६
 नन्दा, ५०६
 नन्दन, ३०१, ३१२
 नन्दिनी, १८७

नयन, २४५
 नयनविशाला, ५०७
 नरेन्द्रललितपद, १३३, २६५
 नष्टरूप, ७३
 निश्चल, २८६, ३१२
 नाग, २६२
 नान्दीमुख, १०४, १५८
 नाराच, ४६, ४७
 न्यङ्कुसारिणी, ७३
 पङ्कज, ५०७
 पङ्क्ति, ५, ६८, ७१, ७२, ७३, ७६, ८४, ८५,
 ११५, १५४, १७३
 पञ्चटिका, ११८, २६०, २६५
 पञ्चामर, ४६, ४७, ११०, २७०
 पञ्चपादजगती, ७६
 पञ्चाल, ५०७
 पणव, २६३
 पणवक, ५०६
 पतितपावना, १३३
 पद, ४७
 पद पङ्क्ति, ७२, ४०४
 पद पङ्क्ति भूरिक्, ७२
 पदपादाकुलक, २६५, २६६, ४९६, ४९७
 पय ७२
 पयार, ११५, १२९, १३१, १६७, २३४, २३७
 परमेष्ठी, ७२
 परितोषा, ५०७
 परिलीना, १३६
 पाणिबन्ध, ५०६
 पादपङ्क्ति, ७६, ७७
 पादमन्थर, २०२
 पादाकुलक, ४६, ४७, ११८, १२७, १३५, २००,
 २५९, २६५, २६६, ३०७, ४४३, ४६०,
 ४६६, ४९७
 पादाकुलकुलक, २११
 पारिजात, २६८
 पावक, ५०७
 पिपीलिकामध्यमा, ७३
 पिपीलिकामध्या, ७२
 पीयूषराशि, २७८
 पीयूषवर्ष, ४६, ४७, ४८, ११२, १२५, २०२,
 २११, २३८, २७३, ३२५, ३४०, ५०४

पुनीत, २५९
 पुरउष्णिक्, १५, ७२, ७६, ८५
 पुरस्ताद् बृहती, ७३, ७६
 पुराण, २७२
 पुरुष, ५०८
 पुरुषोत्तम, ५०६
 पुष्पिताग्रा, ४६
 पृथ्वी, १५७, १५६, १८५, २३५
 पद्धति, ४६, ४७, ७५, ११८, २००, २०३, २११
 २४४, २६२, २६६
 पद्धतिसवाई, २०३, ३६१, ४६०
 पद्मावती, ३०१
 पद्मिनी, १५६, १७६, १८०
 प्रकृति, ६, ७२, ७३, १५४, १५५
 प्रगाथा, ६, १५
 प्रणय, २८१
 प्रतिष्ठा, ७२, १५४, १५५, १७३
 प्रतीची, ११०
 प्रथम उल्लाला, ३१६
 प्रबोधिता, १८७
 प्रमाणिका, ११०, १५७, १५६, २४७, ५०६
 प्रमाथिनी, ५०६
 प्रमिताक्षरा, १५७, ५०६
 प्रमीला, ५०७
 प्रवराक्षरा, ५०७
 प्रवासी, २८२
 प्रसूनाङ्गी, ५०८
 प्रस्तार पङ्क्ति, ७३, ७६, ८५
 प्रहरणकलिका, १०४
 प्रहर्षिणी, १५७
 प्राजापत्या, ७१
 प्रात, २४५, २४६
 प्रामाणिक, २४७
 प्रियलोचना, १३३
 प्रियम्बदा, १५८
 प्लवङ्गम, ४६, ४८, २००, २०२, २११, २३८,
 २८०, २८१
 बरवै, २०२, ३१८
 बहरतबील, ११०
 बाला, २६९
 बृहती, १५४
 बेला, २८५

बैकिक टेटरामीटर, ९८
 बैकियस, ८७
 बैलेड, ४४
 ब्रह्म, ६८
 ब्राह्मी, ७१
 ब्लैकवर्स, ४५
 भगणात्मकपञ्चपाद, ८८
 भगणात्मक भ्रमरपाद, ८८
 भानु, २००
 भावच्छन्द, २४०
 भुजगशिशुभृता, ५०६
 भुजङ्गक, २७५, ५०२
 भुजङ्गप्रयात, ४६, ४७, १०७, १०८, १५७,
 १५९, १७८, २७५, २७६
 भुजङ्गप्रयाता, २००, २७६, ३४१, ५०२, ५०७
 भुजङ्गी, १७६, ५०२
 भृगुचुम्बित, २७८
 भ्रमरविलसिता, २६३, ५०७
 भ्रमरी, ५०६
 मकता, ४५
 मकरकशीर्षा ५०६
 मञ्जुघोषा, ५०८
 मञ्जुभाषिणी, १५६
 मञ्जुलतिका, २७६
 मञ्जुलवचना, ५०७
 मणिगुणनिकर, १५३, ५०७
 मणिचित्र, ५०६
 मणिवन्ध, ३०१
 मणिवन्धक, ३०१
 मता, २६३
 मत्तगयन्द, ४६, १५७, १६८, ५०८
 मत्तचेष्टित, १५६
 मत्तमातङ्ग, ५०६
 मत्तसमक, ११८, २६१, २६५, ४६७
 मत्त सर्वैया, ११८, १३२, २००, २०२, २०६,
 २११, २६४, ३०१, ३०८, ३२०, ३२४,
 ३३७, ३३८
 मत्ता, ५०६
 मत्तभक्तीदित, १५८
 मदन-दमन, ५०६
 मदनहर, ३०१
 मदनाग, २६२

मदलेखा, ५०६
 मदिरा, ४६, १६१, १६८, ५०८
 मधुमालती, ४६, १२५, २०२, २५४, ५०३, ५०४
 मधुमालतीला, ३०६
 मध्यरजनी, १३५
 मध्या, १५४, १५५, १७३
 मध्येज्योतिष, ७६, ८५
 मनहरण, १६२
 मनोरम, ५०३
 मनोरमा, २५४
 मनोमोहनी, ५०६
 मन्थान, ५०७
 मन्दाकिनी, ५०८
 मन्दाक्रान्ता, ४६, ४७, ८४, १५७, १५८, १८३,
 १८४, १८०, २११, २३५, २३६
 मन्दारमाला, १५७, १६८
 मरहठामाधवी, ४६, ४७, १३३, २०२, ३०२
 मल्लिका, १५७
 मसनवी, ४५, १०८
 महानाग, १६८, ५०७
 महापङ्क्ति, ७३, ७६, ८४
 महापदपङ्क्ति, ७३
 महापादपङ्क्ति, ७६
 महमाया, ५०८
 महावाहून, ७४
 महालक्ष्मी, २५८
 महासतोबृहती, ७३, ७६, ७७, ८५
 महास्रग्धरा, १५८
 महेन्द्रवज्रा, २४४, २७४
 महेश, ५०५
 माणवक, ५०६
 माधवमालती, ४६, १०८, १२५, १३६, ३००,
 ३६३, ४२६
 माधवी, ४७
 मानव, ४६, ४७, ११८, १५३, २०२, २११
 मानवचतुष्पदक, ४७
 मानवती, ५०६
 मानवीय, ३००
 मानसभञ्जिनी, ५०६
 मानसहंस, ५०८
 मालती, २६३
 माला, १५५

मालिका, २५०
 मालिनी, ४६, ४८, १५७, १५८, १७२, १८१,
 १८०, २३५
 मुक्तहरा, १६८, १६८
 मुक्तामणि, २६२
 मुक्ति, २४४
 मुवतेश्वर ओवी, १३७
 मुखकमल, ५०७
 मुखी, ५०६
 मुतदारिक, १०७
 मृगवध, ५०७
 मृदङ्ग, १५८
 मेघविस्फूर्जित, ८४
 मैथिली, २०२, २६५
 मोटक, ६७, ५०६
 मोतियदाम, ४६, ४४३
 मोदक, २६३, ५०७
 मोलोसस, ८७
 मोहिनी, ४७
 यवमध्या, ७३
 यक्षकन्या, १३८
 याजुषी, ७१
 युग्मक, २३३
 योग, ४६, ४७, ११८, १२७, २०२, २०३, २११,
 २६४, २७६, २७८, ५००
 रजज १०८
 रजनी, २८५, ३२६
 रथोद्धता, ४६, १५७, १५८
 रमल, १०८, ११०, १११
 रसशृङ्गार, २०२
 रसाल, २८६
 राग, २८६
 राज, ७२
 राधिका, ४३, ४७, ४८, २०२, २११, २८२,
 ३४१, ३४२, ५००
 राम, २०२, २६७
 रामदास, ओवी, १३७
 रास, २०३, २८३,
 सचिरा, ३०४, १५७
 रुवाई, ४५
 रूप घनाक्षरी, १२८, १६३, १६४, १६५
 रूपचौपाई, २६५

रूपमाला, ४६, ४७, ४८, १२५, १२७, १३४,
 २००, २०२, २६०, २६२, ३११, ३१६,
 ५०४
 रोला, ४६, ४७, ४८, ७५, ११८, २००, २०२,
 २०६, २११, २३८, २५१, २६४, २८६,
 २८७, २८८, २८९, २९२, ३१२, ३२०,
 ३२६, ३४२, ३४३, ३४४, ३८३, ४६०
 लक्ष्मी, ३४७, ५०२
 लक्ष्मीघर, १८०
 लगात्मक त्रिपाद, ८८
 ललित, २३३
 ललितलवङ्ग, १३३, २६६
 लवङ्गलता, १३८, १६८
 लावनी, २८२, ३०३
 लीला, ४६
 लीलाक, ६५७
 वनहरिणी, १३२, १३७
 वरमङ्गला, १३६
 वल्लभा, १३५, २६८
 वल्लवलीला, ५०७
 वसन्ततिलका, ४६, ४७, १०४, १५७, १५८,
 १७२, १८०, १८६, २३५
 वसुन्धरा, ५०६
 वंशतिलक, ५०७
 वंशस्थ, ४६, ४७, १५७, १५८, १७२, १७७,
 १८१, १८७, १९०, २३६
 वागीश्वरी, १६८
 वाम, १६८
 वारि, ७२
 वासन्ती, १०४
 वास्तु, २८०, २८१
 वार्ताहारी, ५०७
 वार्हत, ७३, ७४
 वार्हत त्रैष्टुभ, ७४
 वार्हत प्रगाथा, ६
 वार्हतानुष्टुभ, ७४
 विकृति, ६, ७३, १५४, १५५, १८७
 विचित्रा, ५०७
 विच्छन्द, ६७, ६८
 विद्युन्माला, १५७, १५९, २६३, ५०७
 विद्युल्लेखा, १५९
 विद्रूप, ७३

विधाता, ४६, १०६, ११०, २६६
 विधाताकल्प, २५६, २५७
 विधातानुज, २०२
 विन्दु, ५०७
 विध्वङ्कमाला, २७४, ५०२
 विपरीत, ७३, ७६, ८५
 विपरीता, ३०६
 विपरीतान्त, ७४
 विभावरी, ५०६
 विमला, ५०८
 वियद्गङ्गा, ३००, ५०८
 विबोधिता, १८७
 वियोगिनी, १८७
 विरतिमहती, ५०७
 विराज, ६८, ७२, ७३, ७५
 विराज गायत्री, ८४
 विराट्, ३२
 विराट् पङ्क्त्युत्तरा, ७३
 विराट् स्थान, ७३, ७६
 विलम्बितगति, १५६, १८५
 विलोलनयन, ५०७
 विशेषक, २३३
 विश्वलोक, ११८, २६१, २६५
 विण्टर पङ्क्ति, ७६, ८५
 विष्णुपद, ४६, ४७, १२७, १३३, २०२, २११,
 २६४, २८४, २९२, ३२०, ४६७, ५००
 विस्तारपङ्क्ति, ७३
 विस्तार बृहती, ७३
 विहङ्ग, २६७
 वीर, ४६, ४७, १६४, २००, २०२, २०९, २११,
 ३०४, ३०५, ३५४
 वीरवर, ५०७
 वृन्दारक, १८५
 वृषा, ७२
 वृषभललिता, १५६
 वृत्तालीय, ४६, ४८, १८७, १९१
 वैष्णव, ५०७
 व्योमगङ्गा, ३००, ५०८
 शक्वरी, ५, ३२, ७२, ७३, ७६, ८४, १०४, १०५,
 १५४, १५५
 शवद, ४७
 शरण, १६५

शशिकला, १५३
 शशिलेखा, ५०६
 शङ्खी, १५६
 शारदी, ५०७
 शाहूलविकीर्णित, ४६, ४७, १५७, १५८, १७२,
 १६०, २११, २३५, २३६
 शाङ्गी, ५०६
 शालिनी, ४६, १५७, १५८, १७६, १८६
 शास्त्र, २७६, ५०२
 शिखरिणी ४६, ४७, १५७, १८४, १६०, २११,
 २३५
 शिखा, १५३
 शिव, २४५
 शीर्षा, ५०६
 शुद्धगीता, २६५
 शुद्धध्वनि, ३०७
 शुद्धविराट्, २६३
 शुक्र, ७२
 शुद्धान्त, ५०७
 शृङ्गार, ४६, ४७, २०२, २५७, २६६, ३०८,
 ३११, ३१२, ३२७, ३३३, ३३६, ३५४
 ३५७, ३६१, ३६८, ३८०, ४६०
 शृङ्गार-गोपी, ३०६, ३०७
 शृङ्गार राग, ३०८
 शृङ्गार सवाई, ४६०
 शृङ्गारहार, ४७, ३०८
 शैल, १०८
 शैशव, २७१
 शोकहर, ३०४
 शक्ति, २७१
 शक्तिपूजा, ४७, २०२, २६०
 श्येनिका, २६८, ४६४
 श्रीधर ओवी, १३७
 श्रीधरा, १५६, १८३
 सखी, ४६, ४७, ४८, ११८, २०२, २५२
 संकृति, ६, ७२, ७३, १५४, १५५
 सञ्चल, ५०६
 संनीत, ५०७
 संकुलक, ५०६
 संयुत ५०८
 सतावृहती, १३, ७५, ७६, ८५
 समानिका, २४५, ५०६

समान सवाई, ३०१, ३६१, ४६०
 समान सवैया, ११८, २६४
 सम्मदमालिका, ५०८
 सम्मदवदना, ५०७
 सम्राट्, ७२
 सरल, १५७
 सरसिहलोचना, ५०७
 सरसी, ४६, ४७, २६४, ३२३, ३२५, ३२७,
 ३५०, ३५१, ३५३, ३५५, ३५७, ३६५,
 ३६८
 सरसीदल, ३२१, ३२८
 सरस्वती, ४६, ४७
 सवाई, १२७, ३३८, ३६१
 सवैया, ४६, ४७, १३७, २०२, २०७, २२१,
 ५०८
 सर्वगामी, १६८
 सस्तार पङ्क्ति, ७३
 सही, २०२
 सहस्रदल, ३०१
 साकी, १३३, २६५
 सॉनेट, ४५
 सान्द्रानतिक, २३३
 साम्नी, ७१
 सार, ४६, ४७, ११५, ११८, १३३, १६४, २००,
 २०२, २०१, २०६, २६४, २८४, २८५,
 २८६, २६२, २६७, ३२०, ३२३, ३४४,
 ३५१, ३७०, ३७२, ३८४, ५०१
 सारस, १३६, २६०, २६२
 सारंग, १५७, २७६, ५०७
 सारक, २४८, ४६५
 सारसरसी, २०३
 सिन्धु, २८१
 सिन्धुजा, २०७, ३४१, ४६६, ५००, ५०३
 सिंह, २६०, २६५, ४८७
 सिंह-पुच्छ, ५०७
 सिंहोन्नता १८०
 सुख, १६८, ५०६
 सुखदा, २८४
 सुगति, २४१, ३२३
 सुगीतिका, २६२
 सुदन्त, १५८
 सुन्दरी, १६८, १६६, ५०६

सुपवित्रा, ५०७
 सुप्रतिष्ठा, १५४, १५५, १७३
 सुमुखी, १६८, ५०६
 सुमेरु, ४६, १११, १२५, १२६, २०२, २०३,
 २७४
 सुरपति, ५०७
 सुरललना, ५०७
 सुरसरि, १५७
 सुलक्षण, २५६
 सुवदना, १५७
 सुवसना, ५०७
 सुवासक, ५०६
 सुषमा, ५०७
 सोमप्रिया, ५०८
 सोमराजी, ५०७
 सोरठा, ४६, ४७, २००, २०२, २०३, ३१७
 सौरभ, १५७
 सौरभसञ्चित, ५०६
 सौरीतटचर, ५०६
 स्कन्धोग्रीव, ७३, ७६, ८५
 स्तूणक, १८१
 स्निग्धा, ५०७
 स्पाण्डी, ८७
 स्रक्, १५३

स्रग्धरा, ४६, ४७, ८४, १५७, १५८, १७२,
 १८६, २०१
 स्रग्विणी १२१, १३६, १३७, १५७, १५८,
 १७९, २७६, २७७, ३१४, ३८२, ५०७
 स्वराज, ७२
 स्ववासिनी, ७२
 स्वागता, १५७, १५८, २६३
 स्वैरिणीक्रीडन, ५०७
 हंस, २७६
 हज्ज, १०६
 हरभगिनी, १३२, १३८
 हरिगीतिका, ४६, ४७, ४८, ७५, १०८, १२५,
 १२६, १३५, १५७, २००, २०२, २०३,
 २११, २५४, २६२, २६५, २९७, २९८,
 ३२२, ५०४
 हरिणी, ४६, १५७, १५८
 हरिणीप्लुता, १५६
 हाकलि, ४६ ४७, ११८, २००, २०२, २११,
 २५२, ३०२, ३३३, ३५४, ३६६, ३७०,
 ४६८
 हीर, २८५
 हीरोइक वर्स, ४४, ८७, २१३
 हुलास, ७५, ३२२
 हेक्सामीटर, ८८, ६७

ताल-सूची

अङ्कताल, ५०४, ५०८, ५०९
 अभिनन्दनताल, ५००
 अर्जुनताल, ४६३
 अष्टमङ्गल ताल, ४६३
 आड़ाचौताल, ४६८
 इकताल, ४६५, ४६६
 इन्द्रताल, ४६८, ४६९
 कहरवाताल, ४६५
 गजझंपा, ४६८, ४६९
 गणेशताल, ४६९
 चक्रताल, ५०१
 चन्द्रावलीताल, ५०५, ५०८
 चौताल, ४६५, ४६६
 छोटी सवारी, ४६८, ४६९
 जगक्षम्पा, ४६८, ४६९

जगदम्बा ताल, ५०२
 झपताल, ५०१, ५०७
 झमरा, ५०४, ५०८
 तिलवारा, ४६७, ५०८
 तेवरा, ५०३, ५०८
 त्रिताल, ४६७, ५०९
 दादराताल, ४६१, ४६३, ५०६
 द्रुताली, ४६५
 द्वितीय मण्डिका ताल, ४६८
 दीपकचन्दी ताल, ५०४, ५०८
 देवध्वनिताल, ४६४
 धुमाली ताल, ५०३, ५०८
 ध्रुपद ताल, ४६६
 नटताल, ४६५
 पुराण ताल, ४६२, ५०६

भैरव ताल, ५००
मत्तताल, ४६२, ५०६
मदनताल, ४६५, ४६६
मयूर ताल, ४६४
महेशताल, ५०४-५०८
राजनारायण ताल, ५०१
लघुशेखर ताल, ५०३, ५०४, ५०८
वर्णभिन्न ताल, ४६५

वसन्त ताल, ४६२, ५०६
विष्णुताल, ४६३
विश्वताल, ४६७, ४६८
शिखरताल, ४६४
शूलताल, ४६७
षट्ताल, ४६२, ५०६
सालवण्ठ ताल, ५००
हंसलोल ताल, ५०१, ५०७

ग्रंथानुक्रमणिका

अग्निपुराण, ४२, ५७, ५६, ६०, १७३, १७७,
१७६-१८१, १८५, ४८५
अच्युताष्टक, ६८, १०७
अणिमा, २२६, २६५, ३३५, ४६३, ५०१
अतिमा २६४, २६५, ३३५, ४६३, ५०१
अथर्ववेद, ५
अनघ, २५२, २५७, २५६, २७३
अनङ्ग, २३८, २७३
अनाथ, २५६, २६७, २८२
अन्नदामङ्गल, १२६
अपरा, २११, २१७, २८३, २६०, ३१३, ४३६,
४५६, ४७०
अमिताभ, ३३८
अमीरुलउरुज, १२
अमृतराय कविता संग्रह, १३३
अयोध्या काण्ड, २०७
अर्जन और विसर्जन, ३०५
अर्थशास्त्र, ६१
अहुन्वदगाथा, १०३, १०४
आदि पुराण, २६४
आधुनिक बँगला साहित्य, २३५
आन दि आर्ट अन् राइटिंग, ५८
आन दि ओरिजिन एण्ड दि आथेन्टीसिटी अन्
दि एरियन् फ्रेमिली आव लैङ्गवेज, दि
जिन्दावेस्ता एण्ड दि हुजवाराश, १०२
आनन्द-लहरी, २१४
आरती, २८१, ३४७, ३५३
आर्द्रा, २८८, ३०३, ३६६, ४१८, ४१६, ४३७,

आर्या-सप्तशती, १६८, २१५
आँसू, २५२, २५८
इङ्गलिश प्रोज, ४३८
इन्ट्रोडक्शन टु दि होली गाथाज, १०२, १०४
इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, ८६-८८, ६६,
२३३ ।
इलियड, ६२
उत्तर पुराण, २६४
उत्तरा २२०, ३८२, ४७०
उदयाचल, २३२, २४७, २५६, ३३८, ३४१
उदीयमान, २२५, २२८
उद्धवशतक, १६३
उरुज, ४५, १०७, ११०
उस्तवत गाथा, १०३
उषा-अनुरुद्ध, २३८
ऋक् प्रातिशाख्य, ५, ६, ६, २५, ४०, ६७, ६८,
१०५, १२७, १७०, १७३, २०४, २०५,
२२८, ३०६ ३३१, ४०५, ४७४, ४७५
ऋग्वेद, ५, ८, ६, १८, २४, २७, ६८, १०४, १२७,
१६६, १७३, २०५, ३३२, ४८२, ४८३
ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका, ६
ऋतु-तरंगिणी, १७२
एक दिन, ४४८, ४५६
एनल्ज अन् राजस्थान, २१५
एनिड, २३३
एकला चलो रे, ४२०, ४७०
एशिया जाग उठा, ११४, ४७०
ए हिस्ट्री अन् इंगलिश प्रोज रिद्म, ५८

ऐतरेय उपनिषद् ७
 ऐतरेय ब्राह्मण, १७, ३२
 ओडेसी, ६२
 कठोपनिषद्, १७५
 कल्पना, ११८, १२७
 कंसवध, २३६
 कवि-भारती, २१६, २८३, २८५, २६४
 कन्द्रीव्यूशन अव् हिन्दी पोयट्स टु प्रॉसोडी,
 १६, ४६, २०८
 काबा और कबला, २५६, २७३, २७४, २८१,
 २६३, २६४, ३०२
 कामायनी, ११६, १२०, १२५, २०८-२१०,
 २२०, २२१, २५४, २६७, २६०, २६५
 काव्यादर्श, ४२
 काव्य-प्रकाश, ४२, २१३, ४८६
 काव्य-प्रभाकर ४५, ४६
 काव्य-मञ्जूषा, १७२
 काशि कवि-पद-संग्रह, १३२
 किरण-वधू, ३०६, ४७०
 किराताजुनीय, १५१
 किसान, २७६, २६३
 किसान-सतसई, ३१६
 कीर्तिलता, २७७
 कुक्षेत्र, १६६, ३६६, ४५६
 कुलियात जामी, १७१
 कुषक-कन्दन, २५१
 कुष्णायन, २६४
 केशव स्वामी पद-संग्रह, १२६
 केशवसुत पद-संग्रह, १३२
 कैसल वाइरन्स प्रोफेसन, ६२
 कौशीतकी ब्राह्मण, ७
 खण्डहर, ३४४
 खादी के फल, ३६६
 गय सुकुमाल रास, २८४
 गङ्गालहरी, १७२
 गङ्गावतरण, २८८
 ग्रन्थि, ११२, २३८, २७३
 गाँडीव, २७२
 गान्धी-चरित, १६५, २३६, ३६०, ३६४
 गिरिन्द्र-नन्दिनी, १३२
 गीत-गोविन्द, १२१ १२४, १३३, १७२, १६८,
 २१५, २६६, ३६६, ४४५, ४५४

गीतावली, ४३१
 गीतिका, ११७, २४६, २६६, २७८, २८३,
 २८४, ३४६, ३७६, ३७८, ३७९, ३८०,
 ३८२, ३८३, ३८५, ४६१, ४६३
 गीत-माधवी, ३३८
 गीत-वितान, ११८, १२२
 गुञ्जन, १६६, २१०, २२०, २२६, ३०१
 गुरुकुल, ३०५
 ग्राम्या, २०६, २४८, २८८, २६२, ४६३, ४७०,
 ४६६
 गोविन्ददास पदावली, १२५
 चर्चरी, २८०, २८१
 चन्द्रालोक, २१३
 चाणक्य-नीति, ८
 चित्रण, ५१, ३०८, ३८१, ४६५, ४७०
 चित्रा, १२२, २४५
 चिद्विलास, ५३, ४६०
 छन्दमयी, ३४७, ४७०
 छन्दःप्रभाकर, १७, १०५, १०६, १३३, १४३-
 १४५, १५२, १६१-१६४, १७६, १७७,
 १८२, १८५, १८७, २५३, २६३, २६५,
 २६६, २७५, २८०, २८१, २८६, २८७,
 २६६, २६७
 छन्दःप्रभाकर-पिंगल, २६३, २६८
 छन्दोऽर्णव, ३०१
 छन्दोऽनुशासन, १३४, १५३, १६१, १८१,
 १८५, १८७
 छन्दोगुरु रवीन्द्र नाथ, २, ६०, ६३, ११६, १२३,
 १२४, २६६
 छन्दोमञ्जरी, ११, ५८, ५६, ६४, ६७, १२१,
 १४२, १४५, १५४, १६७, १७३-१८६,
 २०३, २७५, २७७, ३१६, ४०३
 छन्दोरचना, १६, ५८, १३७, १४३, १५६,
 १६०, १७१, १७३, १८२, १८७, २०४,
 २६६, ३००, ४७६
 छान्दोग्योपनिषद् ४२४, ३०, ३१, ३२, ७०
 जसहरि चरित, २६४
 जयद्रथवध, १२६, २६८, २६६
 जयभारत, १३८, २३६, २५७, २५८, २६२,
 २८१, २८६, २८०, २६४, २६५, ३०१-
 ३०३, ३०७, ३१६, ३१७, ३३०
 जीतू, २३८

- जीवन के गान, २५६
 जीहर, १२५, २१७, २४५, २४६, २५२, २५४,
 २५६, २६३, ३०३, ३२१
 जंकार, २४७, ३१४, ३१४, ३४५, ३४६, ३५७,
 ३६७
 झरना, २७२, ३१०, ३११, ३४६, ३५७, ३५९
 टाइलस एण्ड क्रीसीडी २३३
 ड्रेक, ६२
 तपस्वी तिलक, ३०५
 ताण्डय ब्राह्मण, ७, ६५
 तुकाराम पद-संग्रह, १२२, १३८
 तुलसीदास, ३६०
 तीन नाटक, ४२६
 दश-रूपक, २१४
 द्वापर, २६५, ३०२, ३०३
 दि ऑर्ट अन्वर्सिफिकेशन एण्ड टेक्निकालि-
 टीज अन्व पोयटरी, १३, ३४, ४४
 दि प्रिंसिपल्ज अन्व इंगलिश मीटर, १४, १५, २७,
 ५९
 दीपशिखा, २५४, ५०३
 दुलारे-दोहावली, ३१६
 दुर्वादल, २८८, ३३८, ४३७
 देवीस्तुति, १७२
 दैनिकी, ३४३, ३४८
 दोहा रामायण, १३३
 धम्मपद, १९७
 धातुपाठ, ४
 धूप और धुवाँ, २८९, ३२८
 नहुष, १२८, १३८
 नई दुनियाँ को सलाम, ४४४
 नंदिनी, २२२, ३४३
 नाट्यशास्त्र ९, ४१, ५९, १५५, १५९, १७३,
 १७७, १७८, १७९, १८१, १८३, १८५,
 १८६, ३६८
 निघण्टू, ५, ५३
 निदान जातक कथा, २६३
 निर्मल्य माला, १३५
 निरुक्ति, ४, ५, ४८३
 नीतिशतक, ४८४
 नीरजा, ३४७, ३८२, ३८३
 नूरजहाँ, २८०, ३००, ३०३
 नैवेद्य, १२९
 नोआखाली, ३४३
 पञ्चमचरित, २६४
 पत्रावली, १३२, १७२, १८०, १८४, १८५, १८८
 पथिक, ११९, २०९
 पद्मावत, २६४
 पद्मावती नाटक, ११६
 पद्मप्रदीप, १७६, २५१
 पद्मप्रसून, १६७
 परिमल, ५७, १२८, १६१, १९९, २१४, २२१,
 २२५, २२६, २३२, २३८, २७४, २८६,
 ३१२, ३४९, ३९९, ४०२, ४२५, ४२६,
 ४२८, ४२९, ३५०, ३६६, ३६७, ४७०
 पल्लव, २०, २६, ४७, ४८, १२५, २५२, २५८,
 २६२, २६७, २८९
 पल्लविनी, २२२, २२४, २५४, २६०, २६३,
 २६५, २८३, २८४, २९५, ३०१, ३०५,
 ३०६, ३२१, ३३४, ३६१, ४७९-४८१,
 ४९७, ४९९
 पंचमी, २४४, २४८
 पंचवटी, ३०३, ३०६, ३९५, ४६८, ४७०
 पलाशवन, ३०८
 प्रणयगीत, १५, २२२, २८३, २८६, ३४०,
 ३४१, ४६९
 प्रणयिनी, २४९
 पृथ्वीराज रासो, १६०
 प्रबंध पद्म, १२८
 प्रभात-संगीत १२२
 प्यार की रात, ३१४
 प्रयाण-गीत, ४६१
 प्लासीर युद्ध, ३८८
 पिङ्गलच्छन्दःसूत्र, ५९, १७३, २०३, ३०९, ४०३
 प्रियप्रवास, १३२, १७३, १७७, १७८, १८०,
 १८१, १८४, १८५, १८९, २३५
 प्रिंसिपल्ज अन्व इंगलिश प्रॉसोडी, १५, ३५,
 ३६, ५२
 पीयूष-लहरी १७२
 प्रेम-पथिक, ३९९
 पैंराडाइज लॉस्ट २३३, २३४
 पाण्डव पुराण, २६४, ३१६
 पाणिनीय शिक्षा, २८, ३३
 पातञ्जलि योग-दर्शन, ४८२
 पाथेय, ३०७

पारिजात, २६७, २६८
 पार्वती, २८६, २८८, २९०, २९४, २९५, ३०५
 प्राकृत-पैंगलम्, ११, १२४, १३४, १३५, १६१,
 १८०, १८२, २१५, २८७, २९८, ३१६,
 ३३०, ३६१, ४५४, ४७६
 फलसर, १२१
 फेरि मिलिबो, २८८
 वरबै शतक, ३१८
 बंधन और मुक्ति, ४७०
 बापू, ५१, १२०, १६५, २१३, ४१७, ४१८, ४१९,
 ४३७
 बालकाण्ड, २०७
 बायब्रेफिया लिट्टेरिया, ३०,
 बाहुबल चरित, ३१५, ३१६
 बाँगला कवितार छन्द, २, १६, ४३, १२८, २३४,
 २३८, ४७८
 बुद्ध-चरित, १२५, २९०
 बृहत्संहिता, १६८, १७०
 बृहदारण्यक, २५
 बेला, १४६, २००, २०१, २६६, २७२, २८६,
 ३११
 बोल्डन, (यस्० टी०) २२
 भक्तमाल, ३३०
 भारतगीत, २४५, २५१, ३६६, ५०२
 भारत-भारती, ६१, २६६, ५०४
 भूमि-भाग, ३४६
 भैरवाष्टक, १८१
 मधुकलश, ११०
 मन्दारमरन्दाचम्पू, २६८
 मयण-पराजय-चरित, २७६
 महाभारत, १२४, १५४, १७५, २६४, २८१
 महाराणा का महत्त्व, २८१, ३८६, ३६७, ४८०,
 ४०१
 महिम्न-स्तोत्रम्, १७२
 मार्ग-प्रभाकर, १६०
 माधव-मधुप, १६३
 मातृभूमि, ३३०
 मिलन-यामिनी, २१७, २२७, २७०, २८२,
 ३३६, ३३७, ३४३
 मीरा स्मृति-ग्रन्थ, १६७
 मुकुल १०८, २७८, २६२, २६३, २६६
 मुण्डकोपनिषद्, ६, ६५

मुक्ति की मशाल, २४४, ३४८
 मुक्तेश्वर रामायण, १३५
 मेघदूत, १८३
 मेघनाद-वध, ६३, १२६, १३८, १६४, २३५,
 २३७, २८८
 मेघमाला, १०७, १२१, १३७, २४४
 मैनूअल हिस्ट्री अन्ड इंग्लिश प्रॉसोडी, ४३
 मौर्य-विजय, ३३०
 यजुर्वेद, ४६०
 यशोधरा, १६, १६, ११०, ११६, १२६, १३५,
 १४६, २११, २८३, ३०४, ३१३, ३१६,
 ३२०-३२३, ३२६, ३३३, ३४१, ३४४,
 ३५०, ३५२, ३५३, ३६०, ३७१, ३७८,
 ३७९, ३८१, ४४६, ४६६
 यक्षिणी के अतिथि, २५६
 युगवाणी, २४४, २८३, २६६
 रघुवंश, २४, २५, ४८, १८७
 रजतगिरि कौलास, ३२५
 रवीन्द्र-रचनावली, १७, १८, २६, ३५, ३६, ४३,
 ५४, ६६, ११७, १२०
 रश्मिरथी, २६०, २६२, २७४
 रसवन्ती, २६२, ३२४
 राज्ञे-उरूज, १२
 रामचरितमानस, २६४, २६८
 रामानुजभाष्यगीता, ५
 रामायण, ८, १७५
 राष्ट्रगीत, ३२३
 रुद्राष्टक, ६६, १०८
 रूप-राशि, ३०८
 रेखा, ३५६
 रेटॉरिक एण्ड प्रॉसोडी, ३५, ४३, ५५, २३४
 लहर, ५०, ३२५, ३३६, ३५१, ४२१, ४२४, ४३७
 लाल चूनर, २६६, ३११
 लीब्ज अन्ड ग्रास, २३३
 वर्द्धमान, १३२, १७३, ११७, ११८, १८६, २३५
 वलाका, १३०
 वहिस्तविस्त गाथा, १०४
 बहुस्वस्त गाथा १०४
 ब्रजविलास, २६४
 वृत्त-जाति-समुच्चय, १३४, १३८
 वृत्त-रत्नाकर, १७१, १८७, २०४, २०५
 वृत्त-विचार, १३८, २८२

वागेश्वरी, १६२
 वाजस्नेयी संहिता, ७१
 वाणी-भूषण, १४७, २८८
 वाणी-वैयाकरण भूषण-सार, २६
 वासवदत्ता, २३२, २३८, २४०, ४३४, ४३७
 वासंती, २८१, ५०२
 विक्रमादित्य, ३०४
 विनय-पत्रिका, १२१, १२६, १३०, १३८, २८४,
 ४४५
 विनोवास्तवन, २८३, ३०४
 विभावरी, २६६
 विराट् संग्राम, ११३, १८०, १६२, ४०६, ४४४
 विशुद्ध मग्नो, १६८
 विहार-वाटिका, १७२
 विहारी सतसई, ३१७
 वीणा, ४७०
 वीरसतसई, ३१६
 वैतालिक, २५२
 वैदिक इण्डेक्स ५
 वैदिक दर्शन, ८, २६, ६५, ६६, ७०
 वेदेही वनवास, ११४, २५२, २५७, २८०
 वैदिक मीटर, ६८, ७८, ७९, ८२-८५, ११०,
 १७१, १७४, १७५, २०६
 शकुन्तला, २७३, २८१, २६१, ३२६
 शक्ति, ३२६
 शतपथब्राह्मण, ६, ७, ८, ३१, ३२, ६५
 शर्वाणी, १२८, १६०, १६३, १६५, २११, २१२,
 २२१, ४१३, ४२३
 शाङ्कर भाष्य गीता, ५
 शाहनामा, ६६, १०८, १७५
 शिवाष्टक, २१४
 शिवताण्डव-स्तोत्रम् ११७, १८२, ४५०
 शिवराज-भूषण, २०७,
 शिशुपाल-वध, १५१
 शैशव संगीत, १२२
 श्रीमद्भगवद्गीता, ५, ४८३, ४८५, ४८६
 श्रुतबोध, १०, २६, ७८, ८४, १२१, १४५, १४८,

१७० १८०, १८४-१८६, २०६, ३१६
 सतरंगनी, ३३३, ३५८
 सद्बृत्तमुक्तावली, १८२
 स्कन्दगुप्त, ३०८, ३११
 स्तो व्यू, ३१६
 सती सावित्री, ३६६
 स्वर्णोदय, २५७
 स्वर्ण-धूलि, २५५, २४१, २४६, २५०, २५४
 २७६, २८३, २८८, २८९, २९१, २९४,
 ३१०, ४७०
 स्वर्ण-किरण, २४७, २७६, २८६, २८८, ३०३,
 ३०३, ३१०, ४६६, ४७०
 सहस्रदलकमल, ३२१, ३२६, ३६६
 संचयिता, २६१
 संदेश-रासक, २१७
 साकेत, १६४, १६५, १६८, १७६, १७७, १७९,
 ३०३, ३०६
 सागरिका, ३५२
 साहित्य का मर्म, ४०७, ४४२, ४६०
 साहित्य-दर्पण, २१३, २३३
 साहित्येर प्रसंग, २१६, २१८, ४८५
 साहित्य-सौन्दर्य, ४८१
 सिद्धराज, १६४, १८०, १८१, २१२, २३८, ३६४
 सिद्धार्थ, १७३, १७८, १८४, २३५
 सुनाल, २६८,
 सुमनाञ्जलि, १६२, २८८
 सुलोचना-चरित, ३१५
 सूत की माला, ३३६
 हल्दीघाटी, ३०३, ३०४
 हरिचरितामृत-सिन्धु, २४६
 हरिवंशपुराण, २६४, ३१५, ३१६
 हिन्दी मेघदूत, २३५
 हिन्दी साहित्य का आदिकाल, ३१५
 हिन्दीसाहित्य का इतिहास, ३०५
 हिडिम्बा, ३६१
 हिमकिरीटिनी, ३२६
 हुंकार, २६४

पत्रिकानुक्रमणिका

१. अमेरिकन जर्नल अवं सयकॉलोजी, २२
२. आभा, १३८
३. जन-भारती, ४७०
४. जर्नल अवं र्वायल एशियाटिक सोसाइटी, १०१
५. धर्मयुग, ४५०
६. नया साहित्य, ४७०
७. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, १३५, २००
८. प्रतीक, ४३७, ४६१, ४५३, ४५७, ४५८, ४५६, ४६४
९. प्रतिभा, ३३७
१०. मर्यादा, २३६।
११. राअस्थान-भारती, २८४
१२. विश्व-साहित्य, ३६८
१३. सरस्वती, १७६
१४. साहित्य, १४०
१५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३६८
१६. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन कार्य-विवरण-२३५
१७. हंस, ४३७, ४७०

नामानुक्रमणिका

- अगरचन्द नहटा, २८४
 अङ्कुरा, ६
 अञ्चल, १०६, २६६, ३११
 अनूप शर्मा, ११३, १२२, १३२, १६०, १६२, १६३-१६८, १७३, १८०, १६१, २११, २१२, २२१, २३६, २५२, २५७, २६७, २६८
 अब्दुर्रहमान, १०५, २७७
 अभिनवगुप्त, १४३
 अमृतराय, १३३
 अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध', ११४, १३२, १६३, १६७, १८६, १६१, १६२, २०२, २३५, २३६, २५२, २५७, २६७, २६८, ३८६,
 अर्नॉल्ड, ६८, ७८, ७९, ८०, ८१ — ८५, ६५, १७०, १७१, १७४, १७५, २०६,
 अल्फ्रेड नेइस, ६२
 अश्वघोष, १७५
 आत्माराम रावजी देशपाण्डे, १३६
 अपर्णा देशपाण्डे, १३८
 अप्पय दीक्षित, ६१
 आर्थर क्विलर कूश, ५८
 इजर्टन स्मिथ, १४, १५, २६, २७, ३०, ५८, ५६, ४०७
 इलियट, २३४
 इस्किलस्, ८६
 ईरानी (डी. जे.), १०२
 ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, २३४
 उदयशङ्कर भट्ट, ४०३, ४००, ४२६
 उमादत्त सारस्वत 'दत्त' १६३, ३०१, ४१४
 एवर-क्रॉम्बी लैसल्स, १५, ३५, ३६, ४३, ५२
 कन्हैलाल प्रोद्दार, १७३
 कबीर, ३१६
 कलीमुल्ला हुसेनी, ४५, १०७, १०६, ११०
 कात्यायन, ७१, १०८
 कामताप्रसाद गुरु, १७८
 कालिदास, २४, २५, ७८, १७२, १८३, १८७, ४८५
 कालिदास राय, १५, २१६, २१८
 कॉलेरिज, ३०
 काश्यप, २०४
 काशि कवि, १३२
 कीथ, ५
 केदार भट्ट आचार्य, ११, १४५, १४७, १५१, १५६, २०३
 केशवदास आचार्य, १७२
 केशवसुत, १३२, १३३
 केशव स्वामी भागानगरकर, १२६, १३६

क्षेमेश्वर आचार्य, ४१, ४८६
 गयाप्रसाद शुक्ल, 'सनेही', १११, १६०, १६३,
 २४८, २५१, २७४, २६१, २२०, ३३०, ४१४,
 ग्रेस्ट (डॉ०), १४
 गङ्गादास आचार्य, ११, ५८, ५६, ३०८,
 ३०६, ४०३
 गिरिधर शर्मा, १७३, ३६६
 प्रियसैन, १०१, २६७
 गिल्डर स्लीव्स, ६१, १०१
 गोकुलचन्द्र शर्मा, २५१, ३०५, ३२३
 गोञ्जाले लाज, ६७
 गोपालशरण सिंह १६३, ३५२
 गोपालसिंह नेपाली, २७६
 गोविन्ददास, ११५, १२२, ३२४, १२४
 गोविन्दवल्लभ पन्त, २८१, ३४७, ३५३, ३६७,
 ३६५
 चतुर्भुज शर्मा, १६३
 चन्द्रशेखर मिश्र १७३
 चन्द्रकुँवर वत्सवाल २२२, ३३८, ३४३
 चन्द्रप्रकाशसिंह कुँवर, १०७, १२१, २२२,
 २७५, ३७३
 चन्द्राकर, १२३, २२५, २२८, २४३, २४४, २४५,
 २४६, २४८, २४९, २५१, २५७, २६८,
 २७०, २७१, २७२, २७५, २७६, २७८,
 २७९, २८३, २८४, ३०१, ३०२, ३०८,
 ३११, ३१४, ३१५, ३२०, ३४०, ३४१,
 ३६८, ३७३, ४५०, ४६६, ४७०
 चरक, ६१
 चण्डीदास, ३६७
 चाणक्य, ८
 चार्ल्स इलियट, ३०५
 चौसर, २३३
 जगन्निभ भट्ट, ३०५
 जगन्नाथप्रसाद 'भानु' आचार्य, ११, १०५,
 १०६, १६१, १६२, १६४, १७०, १८५, २०१
 जगन्नाथदास 'रत्नाकर', १३५, १६३, १७०,
 २८८, ३३०
 जगन्नाथपंडितराज, १७२, १७५
 जयकीर्ति, १८१, १८३
 जयदेव, ५१, १६८, २०४, २१५, २६६, ३१०,
 ३६६, ४४५
 जयशंकर 'प्रसाद', ११८, १२०, १२४, १८२,

२०२, २११, २२०, २२१, २३८, २५४, २५८,
 २६६, २७२, २७३, २८१, २६६
 जार्ज बर्नार्ड शॉ, ६२
 जानकीनाथसिंह 'मनोज', १६, ४६
 जानी विहारीलाल २८७, २६३
 जिनदत्त सूरि, २८१
 टॉड कर्नल, २१५
 टेनिसन, २३३
 तुकाराम, १२२, १३८
 तुलसीदासगोस्वामी, १०८, १२१, १२२, १३०,
 १३४, १३८, २०७, २६४, २८४, २६८,
 ३१६, ४३१, ४४५, ४६३
 तेजनारायण, २४४, ३४७, ४४५
 दयानन्द सरस्वती महर्षि, २०१
 दण्डी आचार्य, ४२
 द्वारकाप्रसाद मिश्र, २६४
 दामोदर मिश्र, २८८
 द्विजदत्त-द्विजेन्द्र, १३६
 दिनकर, १६३, १८२, २०२, २६०, २६२, २८५,
 २८६, २६०, २६४, ३२४, ३२७, ३२८, ३६८,
 ४५६
 दिवाकरप्रकाश अग्निहोत्री, १३२, २४७
 दुर्गाचार्य, ५३
 देव, २३६
 देवराज, ४५३
 देवसेन ३१५
 देवीप्रसाद 'पूर्ण' राय, १७३, ३२५
 धनपाल ३१५
 धवल कवि, २६४ ३१५
 नगेन्द्र, ३४७
 नरेन्द्र शर्मा ३०६ ३०८
 'नवीन', १६३, २८३, २६४, ३०५, ३२५
 नवीनचन्द्रसेन, ३८८
 नन्ददास, ३१६
 नाभादास, ३३०
 नारायण भट्ट आचार्य, १४८, १५१, १५६, १७०,
 १७१, २००, २०५
 निरंजन माधव, १८२
 निराला, ३१२, ३१३, ३४७, ३४९, ३५६, ३६०,
 ३६४, ३६५, ३६६, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६,
 ३७८, ३७९, ३८०, ३८२, ३८३, ४०२, ४०३,
 ४०७, ४०८, ४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९

४३२, ४३३, ४३४, ४३६, ४४३, ४४५, ४४६
 ४६२, ४६७, ४६९, ४६३, ४६४
 नीरज, २६६, ३०६, ३४२, ३६५
 निःशंक, १६३
 प्रबोधचन्द्र सेन, ६०, ६३, २१६, ३८१, ४३६,
 ४४०, ४४३
 पाणिनि, ४, २०४
 पिङ्गलाचार्य, १५७, १५६, २०३, ३०८
 पुष्पदन्त, ७२, २६४, २६६
 पूर दाऊद १०१, १०२, १०४
 फतहसिंह, ८, २६, ६५, ६६, ४८१
 फिरदौसी, १०८, २७५
 फामजी, १०१
 बच्चन, १३६, २१६, २२७, २७०, ३००, ३३३,
 ३३३, ३३७, ३३६, ३४०, ३४३, ३६३, ३६४,
 ३६६
 बज्जी अन्सारी, १२
 बल्लभ, २६७
 बालकृष्ण भट्ट, २३५
 बुद्धघोष, १६८
 बुन्द कवि, ३७६
 ब्रीवर आर०, एफ०, १३, ३४, ४४
 ब्रेण्डर, ३५, ४३, ५५, २३४
 भगवतीचरण वर्मा, ४३७, ४४८, ३५८
 भगीरथ मिश्र, ५१, ६२, ४६५
 भरतआचार्य, ४०, ४१, ४६, ५६, ६१, २०४
 भर्तृहरि, ४८४
 भामहआचार्य, १५१
 भास्कर रामचन्द्र ताम्बे, १३३, १३६, ४४५
 भोज आचार्य, ४२
 मतिराम, १६८, ३१६
 मधुसूदनदत्त माडकेल, १७६, २३४, २३५,
 २३७, २६३, ३८७
 मल्लिनाथ, १८७
 महादेवी वर्मा, ३००, ३४७, ३७२, ३७५, ३७८,
 ३८३
 महावीरप्रसाद द्विवेदी, १७२
 माखनलाल चतुर्वेदी ३२६
 माण्डव्य, २०४
 माधवचरण द्विवेदी 'माधव', १६३, ४१४
 माधवराव पटवर्द्धन, ५८, १३३, १३७, १४३,
 १५६, १७१, २०४, २६६, ३००, ४३६, ४६०

माधवाचार्य, ६१
 श्रीमती मालती शुक्ल, २५०, २५६, २७८,
 ३२६, ३५७
 मिरजा हबीब काआनी, १११
 मिल्टन, २३३, ३८८
 मुकुटधर पाण्डेय, ३२५
 मुक्तेश्वर, १३५
 मैक्डॉनल ५, ७१
 मैक्समूलर, ८६ ३३१, ४७४, ४७५
 मैथिलीशरण गुप्त, ६१ ६२, १०६, ११०, १११,
 ११८, १२५, १२६, १२८, १२९, १३२,
 १३८, १६३, १६४, १६५, १६६, १७२,
 १७३, १७५, १८२, १८४, १८७, १८८,
 १८९, १९१, २०२, २०६, २१०, २११,
 २१२, २१६, २२०, २२२, २३५, २३६,
 २३७, २४६, २४७, २४८, २५०, २५१,
 २५२, २५३, २५४, २५७, २५८, २५९,
 २६१, २६५, २६६, २६७, २६८, २७३,
 २७४, २८१, २८२, २८४, २८६, २८८,
 २८९, २९१, २९३, २९४, २९५, २९८,
 २९९, ३०२, ३०५, ३०६, ३१३, ३१४,
 ३१६, ३२४, ३२७, ३२८, ३३०, ३३३,
 ३४०, ३४१, ३४५, ३४७, ३४८, ३५२,
 ३५३, ३५६, ३५७, ३६०, ३६१, ३६७,
 ३७१, ३७७, ३७८, ३७९, ३८१, ५०४
 मोरो पन्त, १३३
 मोहितलाल मजूमदार, २, १६, ४३, ६३, १२०,
 २३५, २३८, ३६१, ४७८
 मन्नन द्विवेदी, २३६
 मम्मटाचार्य, ४२, ६१, ४८६
 यशःकीर्ति, २६४
 यास्क मुनि, ४
 यूरिपिडीज, ८८, ८९
 य० द० भावे, १४०
 रवीन्द्रनाथ ठाकुर, २, १६, १७, २६, ३०, ३६,
 ४३, ४४, ५४, ६०, ६२, ६३, ६४, ११५,
 १२२, १२७, १२९, १३०, १६७, २६७,
 ४३६, ३४२, ४४३, ४४५
 रहीम, ३१७
 राज्ञेय राघव, ४०६
 राजनारायण वसु, २३४
 राजशेखर, ४८५

राजाराम, ७०
 रामझकबालसिंह 'राकेश', २७२
 रामकुमार वर्मा, १६७
 रामचन्द्र शुक्ल आचार्य, १२५, २६०, ३०५,
 ४१४
 रामचरित उपाध्याय, १७०, १७८
 रामनरेश त्रिपाठी, ११६, २०६, २५७, २६५,
 ३०७
 रामनारायण शुक्ल, १६७
 रामविलास शर्मा, २६०
 रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', १६२, १६२
 रामसिंह आचार्य, ४२
 रामानन्द 'भारतीनन्दन', २८८, २६५, ३०५
 रामानुजाचार्य, ५
 राय कृष्णदास, ६२
 रायस डेविड्स, १६८
 रावण, १११, १८२
 राव सी० वी०, २४४, २४८
 रूपनारायण पाण्डेय, २३८, २८१
 लक्ष्मण सेन, २१५
 लक्ष्मीधर वाजपेयी, २३५
 लाल, २६४
 लेखक, ५०, ११०, १२६, १६६, १६६, १८०—
 १८३, २३८, २४१, २४२, २४५, २७३
 लोचनप्रसाद पाण्डेय, १७३
 लोलिम्बरराज, ६१
 वज्रिल, ६७
 बराहमिहिर, ६१, १५६
 वर्डस्वर्थ, ६२
 वल्लभाचार्य, ११५
 वंशीधर मिश्र आचार्य, १३४, २८७, २८८
 वामननारायण देशपाण्डे, १३४
 वाल्टव्हिट मैन्, ६२
 वाल्मीकि, ८, ६६
 वि. न. भिडे, १३३
 विनयतोष भट्टाचार्य, ३१५
 वियोगीहरि, ६२
 विरहाङ्क, १३४
 विश्वनाथ आचार्य, ४२, ४७, ५६, १४५
 विहारीलाल, ३१६
 वी. भट्टाचार्य, ३६८
 वीरेन्द्रकुमार, ४३१

वैद्य सी. वी., ३२
 व्यास द्वैपायन, ६१
 शङ्कराचार्य, ५, ६२, १०७, १८१, २१४
 शम्भूनाथसिंह, २३२, २३८, २४७, २५६,
 ३४१
 शिवमङ्गलसिंह 'सुमन', २५६
 शिवसिंह 'सरोज', २५६
 शिशु, १६३,
 शुकदेव मिश्र आचार्य, १३४
 शेक्सपियर, २३३, ३८८
 शौनक महर्षि, ६६, ४०५
 श्यामनारायण पाण्डेय, २५६, ३२१
 श्रीधर पाठक, २४१, ३६६, ५०२
 श्रीनारायण चतुर्वेदी, ३२१, ३२६, ३३६
 साफ़ोकलीज ८६
 सियारामशरण गुप्त, ५१, १२०, १६५, २०२,
 २१३, २६७, २८८, ३०७, ३३०, ३३८, ३४२,
 ३४८, ३६६, ४०१, ४१७—४२०
 सीताराम लाला, १७३
 सीमाव सिद्दीकी, १२
 सुधीन्द्र १५६
 सुभद्राकुमारी चौहान, १०८, २७८, २६१, २६२,
 २६३, २६६, ३०१
 सुभेषज, ६
 सुमित्रानन्द पन्त, १६, २०, २६, ४७, ११२, ११८,
 ११६, १२५, १६०, २११, २१४, २२०, २२२,
 २२३, २२४, २२५, २२६, २३८, २४१,
 २४४, २४७, २४८—४२, २५४, २५७, २६०,
 २६२, २६३, २६५, २६७, २७३, २७६,
 २८३, २८६, २८८—२६२, २६४, २६५,
 २६६, ३०१, ३०५, ३०६, ३०६, ३१२, ३२१,
 ३२२, ३३३, ३६१, ३६२, ३७२, ३७३,
 ३८२, ३६७, ४४७, ४४८, ४६३, ४६६,
 ४६८, ४६६
 सूरदास २६४,
 सैगर, ३१६
 सेन्टसबेरी जार्ज, १५, २७, ५८, २०४
 सेन कवि १६०
 सैवत, २०४
 सोहनलाल द्विवेदी, ५८, २३२, २३८, २४०,
 ४३४, ४३७, ५०३
 सत्यनारायण कविरत्न, १६३

सत्येन्द्रनाथ दत्त, ४४, १२०

सबलसिंह चौहान, २६४

सम्पूर्णानन्द, ५३, ४६०

सरदार जाफरी, ११२, ११३, ११४, ४४४

सरस, १५०, १५१, १६३

सरहपा, २६४,३१५

सरे, २३३

स्वयम्भुव, २०४, २६४,

हाफिज शीराजी, १०६, २६१, २६६

हितहरिवंश, १७७, २४६

हेमचन्द्र आचार्य, १३४, १५७

होमर, ६२

होरेस, १००

हकीम अफ़ज़ल खाक़ानी ११०

हजारीप्रसाद द्विवेदी, २०, ३१५, ४४२

हरदेव, २७६

हरिदत्त शास्त्री, १४२

हरि व्यास, ४६०

हलायुध भट्ट आचार्य ५, ६, ७१, १२७, १४२,

२०३, ३०६

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ

अशुद्ध

शुद्ध

५	पाताल	पटल (सर्वत्र 'पाताल' के स्थान पर 'पटल' पढ़िये)
७	सर्वथोऽभवत् वयोऽथ ते लृदिश्लन्दो	स वयोऽभवत् वयोऽध तैः लृदिश्लन्दो
८	तन्त्रीलय से ब्रह्मन् सूर्याया करीरं यातियौ	तन्त्रीलय ते ब्रह्मन् सूर्यायाः कुरीरं यतियों
१४	Pacon (—०००; ०—००; ००—०; ०००—)	शुद्ध है।
४६	अरिह	अरिह
४८	न गति	गति
६३	मध्ये मध्ये	मध्ये
७३	ज्योतिषशती	ज्योतिष्मती
७६	—०००० / ०— / ०—० /	० (०) ० (०) / ००— / ०—०
८०	० (०) (०) / ००— / ०—० /	० (०) ० (०) / ००— / ०—० /
६६	Invested	Invented
६०	—/ambus	०—Iambus
	— — Bacchius	०— — Bacchius
२	cretic SS	cretic SIS
६५	Trimetre SIS/SIS/SIS/	SIS/SIS/SIS
६६	शुद्ध (पहली तीसरी पंक्ति)	—००/—००/—००/—००/—
१००	शुद्ध (दूसरा चरण) SII SII SII SS	
१०८	इसमें (SSIS)	इसमें (SIS)
११२	यगण (SIS)	रगण (SIS)

